गंगांक

काशी

र्ष १ जून १९३६ संख्या ७

स्थापक—स्वामी विद्यानंद] [संपादक--पद्मनारायण आचार्य, एम० ए०

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे।
हे नाथ नारायण वासुदेव ॥

हर हर महादेव शंभो ! काशी विश्वनाथ गंगे।

× × × ×

गंग सकल-मुद-मंगल-मूला। सब सुख-करनि हरनि सब सूला ॥

× × × ×

'स्रोतसामस्मि जाह्नवी'। गी० १०

ऋषियों से राम ने गंगा की कथा सुनी थी। अपने लोगों को उन्होंने स्वयं कथा सुनाई थी। उस परंपरा-प्राप्त कथा को कृष्ण ने फिर गाकर सुनाया था। सखा अर्जुन ने सुना था; और गंगा की दिव्य विभूति को देखा भी था। हमें भी गंगा की कथा सुनना चाहिए, अपने सखा संबंधियों को सुनाना चाहिए, गंगा का दिव्य रूप देखना चाहिए और अर्जुन के समान विजयी और 'योगी' बनना चाहिए।

× × × ×

भगवद्गंगा की धारा सदा बहा करती है। हमें चाहिए उसका दर्शन करें, उसमें स्नान करें और उसका पान करें।

× × × ×

गंगा का त्रिविध स्वरूप—आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक—हमारे सामने है। हम जिस रूप का ध्यान करते हैं उसी में मग्न हो जाते हैं।

× × × ×

× × × ×

सुना है गंगा की धार सूख रही है।

सावधान! परंपरा-प्राप्त योग नष्ट न होने पावे। ध्यानी कपिल का ध्यान न टूटे, हमारे वीर का नाश न हो!

वार्षिक मूल्य
भारत में ४)
भारत के बाहर ६॥)

साधारण प्रति
भारत में ।=)
विदेश में ।≡)

एक महत्त्वपूर्ण कार्य

अभी अभी नागपुर में सभी भारतीय भाषाओं से राष्ट्रभाषा हिंदी का परिचय बढ़ाने के संबंध में जो परिषद् करने का आयोजन हुआ था उसकी महत्ता को सब लोग अच्छी तरह जानते हैं। मुझे यह सूचित करते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है कि इस कार्य के अनुष्ठान में गीता-धर्म भी काफी प्रयत्न कर रहा है। हमारे पत्र में जो लेख हिंदी में 'व्यासवचनामृत' शीर्षक से अथवा लोक-संग्रही स्वामी विद्यानंदजी के नाम से छपते हैं, उनका गुजराती-रूप आगामी अंक में अन्य गुजराती लेखों के साथ अवश्य दिया जाता है। इससे गुजरातीवाले हिंदी को और हिंदीवाले गुजराती को आसानी से सीख सकेंगे। इसलिये ऐसे पत्र का जितना ही प्रचार किया जावे, लोक-कल्याण की दृष्टि से उतना ही भला होगा। जो धार्मिक होंगे उन्हें ज्ञानोपदेश मिलेगा और जो केवल भाषा सीखना चाहेंगे उन्हें दूसरी भाषा का ज्ञान।

आशा है जनता हमारे इस महत्त्वपूर्ण कार्य पर ध्यान देकर गीता-धर्म को अपनावेगी।

मैनेजर, 'गीता-धर्म'

गीताधर्म का अनूठा और अद्वितीय कार्यक्रम

गीताधर्म का उद्देश्य है **स्वधर्म** का ज्ञान कराना—अपनी संस्कृति और अपने साहित्य का ज्ञान कराना। इसी विचार से गीताधर्म के प्रत्येक अंक में एक विशेष विषय पर लेख प्रकाशित किए जाते हैं। गत सात महीनों में इस प्रकार के सात अंक निकल चुके हैं। **१—प्रवेशांक** (गीतांक) **२—कुंभांक ३—वसंतांक ४—यज्ञांक ५—रामांक ६—शंकरांक ७—गंगांक।**

लोगों को अंक इतने अधिक अच्छे लगे हैं कि ग्राहक संख्या इस थोड़े समय में ही छः हजार हो गई है। पहला अंक दूसरी बार छपाना पड़ा है। आप भी शीघ्र ४) भेजकर ग्राहक बन जाइए। पीछे अंकों के समाप्त हो जाने पर फाइल पूरी न हो सकेगी।

देखिए आगे और भी सुन्दर और शिक्षाप्रद अंक निकलेंगे—

१—व्यासांक
२—कृष्णांक
३—विजयांक
४—दीपांक
५—दर्शनांक
६—विश्वधर्मांक

नये वर्ष का **प्रवेशांक** बड़ा विशाल अंक होगा—लगभग छ सौ पृष्ठ का। एक संग्रहणीय ग्रंथ होगा। ग्राहकों को तो मुफ्त ही मिलेगा।

—मैनेजर,
गीता-धर्म, काशी

गीताधर्म का नवम अंक

कृष्णांक

सभी मान्य लेखकों, कवियों और विद्वानों से प्रार्थना है कि निम्नलिखित लेख-सूची में से किसी पर लेख लिखकर गीताधर्म के इस ज्ञान-यज्ञ में यज्ञपुरुषोत्तम की पूजा करें।

१—भगवान् कृष्ण
२—कृष्ण
३—साहित्य के कृष्ण
४—व्रज के कृष्ण
५—महाभारत के कृष्ण
६—पुराणों के कृष्ण
७—वैदिक कृष्ण
८—कृष्ण की रासलीला
९—पूर्णावतार कृष्ण
१०—लोकसंग्रही कृष्ण
११—प्रेमी कृष्ण
१२—योगी कृष्ण
१३—योगेश्वर कृष्ण
१४—भक्त कृष्ण
१५—कृष्ण-लीला
१६—कृष्ण की स्वराज्य-साधना
१७—कृष्ण की धर्मस्थापना
१८—हमारे उपास्य कृष्ण
१९—पाश्चात्य साहित्य पर कृष्ण का प्रभाव
२०—प्राच्य साहित्य के प्राण कृष्ण
२१—भारतीय भाषाओं में कृष्ण का साहित्य
२२—भगवान् कृष्ण और सन्त-साहित्य
२३—कृष्ण और अन्य अवतार
२४—कृष्ण कालीन भारत
  (१) भौगोलिक दृष्टि से
  (२) ऐतिहासिक दृष्टि से
  (३) आर्थिक दृष्टि से
  (४) सामाजिक दृष्टि से
  (५) राष्ट्रिय दृष्टि से
  (६) धार्मिक दृष्टि से।
२५—कृष्णकालीन भारत का अन्य देशों से सम्बन्ध
२६—चित्रकला में कृष्ण की अभिव्यक्ति
२७—कृष्ण का विभूति-तत्त्व
२८—कृष्ण कालीन सभ्यता
२९—कृष्ण का जीवन और गीता
३०—राम और कृष्ण
३१—कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्
३२—कृष्ण-शाखा के भक्त कवि
३३—संस्कृतसाहित्य में कृष्ण
३४—हिन्दीसाहित्य में कृष्ण
३५—मराठीसाहित्य में कृष्ण
३६—गुजरातीसाहित्य में कृष्ण
३७—कृष्ण और भागवतधर्म
३८—कृष्ण और इन्द्र
३९—कृष्णचरित में रहस्यवाद
४०—कृष्णसंबंधी साहित्य
४१—कृष्ण के सखा
४२—कृष्ण का परिवार
४३—यदुवंश
४४—वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि
४५—कृष्ण और शिशुपाल
४६—राधा और रुक्मिणी
४७—कृष्ण और गीताधर्म
४८—वंशी और पांचजन्य
४९—चतुर्व्यूह
५०—कृष्ण की नीति

कुछ ध्यान देने योग्य आवश्यक
सूचनाएँ

आगामी आठवाँ अंक **व्यासांक** होगा।

नवम अंक कृष्णांक होगा। उसकी सूची अन्यत्र देखिए।

प्रार्थना

(१) गीतापति भगवान् कृष्ण के अनुग्रह से लोक-संग्रही स्वामी विद्यानंदजी के द्वारा गीता-धर्म पत्र की स्थापना हो गई है। महात्मा और महापुरुष आशीर्वाद दे रहे हैं, भक्त और प्रेमी ग्राहक और संरक्षक बन रहे हैं। अनेक वृद्ध, युवा और बालक मिलकर इस पत्र की सेवा कर रहे हैं। अपने अपने ढंग से सभी लोग इस **ज्ञान-यज्ञ** में भाग ले रहे हैं।

हमारी प्रार्थना है, आप भी इस **'मासिक यज्ञ'** में सहायता कीजिए। 'गीता-धर्म' मासिक यज्ञ है।

गीता-धर्म का लक्ष्य है आत्म-कल्याण और लोक-संग्रह। इससे गीता-धर्म के ग्राहक बनकर, ग्राहक बनाकर और अन्य उचित उपायों से गीता-धर्म का प्रचार करके इस लक्ष्य की पूर्त्ति करना आपका कर्त्तव्य है।

'गीता-धर्म' भगवान् का पत्र है। इसकी सेवा भगवान् की सेवा है।

प्रत्येक गीता-धर्म-प्रेमी से यह अनुरोध है कि जैसे आप स्वयं ग्राहक बने हैं वैसे ही प्रत्येक महीने में औरों को भी ग्राहक बनावें।

(२) **लोक-संग्रही स्वामी विद्यानंदजी** आज कल हरद्वार में हैं। वहाँ का पता C/o श्रीकल्याणानंद गिरि घंटाकोठी, पो० कनखल, हरद्वार है। इसके बाद स्वामीजी किसी एकांत स्थान में शांति के लिये जायँगे।

(३) **रुपया किसे देना ?**—'गीता-धर्म' की शाखाओं तथा प्रचारकों का नाम अंत में दिया रहता है। ग्राहकों से प्रार्थना है कि वे इनको छोड़कर और किसी सज्जन को रुपए न दें। यदि उन्हें ग्राहक अथवा संरक्षक बनना हो तो रुपए मनीआर्डर से सीधे कार्यालय को भेज दें।

(४) हमारी समिति ने यह निश्चय किया है कि संस्कृत विद्या, भारतीय संस्कृति तथा साहित्य से संबंध रखनेवाले ग्रंथ प्रकाशित किए जायँ और इस ग्रंथ-माला का नाम होगा **'विद्यानंद-ग्रंथ-माला'**।

(५) दो विशाल **विशेषांक**--(१) विश्वधर्मांक, (२) गीतांक। गीता-धर्म के दो भाग करके दो अंक निकाले जायँगे। उनका विशेष वर्णन पीछे निकलेगा।

(६) **प्रश्नोत्तर**--जिज्ञासु लोग प्रश्न भेजते हैं; हम गुरुजनों से पूछकर उसके उत्तर भेजने का यत्न करते हैं। काशी के प्रसिद्ध गीता के आचार्य श्री गीतानंदजी ने यह वचन दिया है कि कोई भी जिज्ञासु हमसे गीता पर प्रश्न करे; उसका उत्तर यथाशक्ति अवश्य देंगे। तत्त्वबोध और सत्संग का यह अपूर्व अवसर है।

(७) **पत्र-व्यवहार**--अँगरेजी या हिंदी में ही रहना चाहिए और जो लोग उत्तर चाहें उन्हें **टिकट** अथवा **जवाबी कार्ड** भेजना चाहिए।

(८) गुड्स रेलवे स्टेशन बनारस कैंट पर भेजना चाहिए।

(९) पार्सल बनारस टाउन के पते से भेजना चाहिए।

(१०) **उलहना**--कृपालु ग्राहक पत्रिका न मिलने पर शीघ्र पोस्ट में अथवा अपने स्थान के शाखा-कार्यालय में जाँच कर, हमें न मिलने का उलहना पत्र द्वारा दिया करें।

मैनेजर

'गीता-धर्म', काशी

बहुरंगे और एकरंगे चित्र

गीता-धर्म में प्रतिमास जो अनेक कलापूर्ण बहुरंगे और एकरंगे चित्र प्रकाशित होते हैं, वे हमारे पास सदा बिक्री के लिए भी तैयार मिलते हैं। यदि आप भारत-कला-भवन अथवा अन्य लब्धप्रतिष्ठ कलाकारों की सजीव कला का नित्य दर्शन किया चाहते हैं तो हमसे पत्र व्यवहार कीजिए।

थोक खरीदारों के लिये मूल्य में रियायत है। शीघ्रता नहीं करनेवालों को दूसरे संस्करण तक के लिए बैठना पड़ेगा।

पता—

मैनेजर (चित्र-विभाग)

गीता-धर्म कार्यालय

साक्षीविनायक,

बनारस सिटी

विषय-सूची

कहां छपा ?

गंगा का चित्र ; प्रार्थना और ध्यान के दो पृष्ठ ; फर्मा नं० ५९, ६३ और ६४ ; सूचना ; विषय-सूची तथा शाखाओंवाले फर्मे गीताधर्म प्रेस में छपे हैं।

—मैनेजर

गंगाप्रेमियों से निवेदन

संवत् १९८९ के माघ मास में मेरे हृदय में श्रीनर्मदाजी और श्री गंगाजी के संबंध में पुस्तकें लिखने की प्रेरणा हुई। अक्षयतृतीया, सं० १९९१ को श्रीनर्मदाजीवाली पुस्तक तो 'नर्मदा-परिक्रमा-मार्ग' के नाम से छपकर प्रकाशित हो गई, पर पर्याप्त सामग्री के अभाव में श्रीगंगाजीवाली पुस्तक नहीं लिखी जा सकी। अब मैं उस पुस्तक को शीघ्र ही लिखकर प्रकाशित कर डालना चाहता हूँ। अतः जिन्हें गंगाजी के संबंध में जो कुछ विशेष बातें मालूम हों वे उन बातों को लिखकर इस कार्य में सहायता दें और पुण्य के भागी बनें।

दयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल० बी०
दारागंज, प्रयाग।

हिंदी ग्रंथों में व्यास

१ जुलाई को 'गीताधर्म' का 'व्यासांक' प्रकाशित होगा। हम उसमें हिंदी साहित्य के उन सभी ग्रंथों की तालिका प्रकाशित करना चाहते हैं, जिनमें साधारण अथवा विशेष प्रकार से व्यासजी के बारे में कुछ लिखा गया हो। सभी प्रकाशकों और लेखकों से मेरी प्रार्थना है कि वे इस प्रकार के अपने और दूसरों के सभी ज्ञात ग्रंथों के नाम-पता लिख भेजें।

नोट—जो ग्रंथ भेजेंगे उनका प्राप्तिस्वीकार भी किया जावेगा।

संपादक—'गीताधर्म'

गीताधर्म

स्रोतसामस्मि जाह्नवी

गंगांक

संस्थापक
लोकसंग्रही स्वामी विद्यानंद

सं० { पद्मनारायण आचार्य, एम० ए०
मधुसूदनप्रसाद मिश्र 'मधुर'

भाग १ — काशी, ज्येष्ठ १९९३ — संख्या ७

प्रार्थना

तरल तरंगिनि भव भय भंगिनि जय जय देबी गंगे ॥ जगदघ हारिणि करुणा कारिणि रमारंग पद रंगे ॥ नवल बिमल जल हरत सकल मल पान करत सुखदाई ॥ पापहि नासत पुन्य प्रकासत जलमय रूप लखाई ॥ कच्छप मीन भ्रमर मय सोभित कृपा कमल दल फूले ॥ देव बधू कुच कुंकुम रंजित लखि छबि सुर नर भूले ॥ शिव सिर बासिनि अज कमंडलिनि पतित मंडलिन तारो ॥ हरीचंद इक अधम जानि कै कृपाकरि निहारो ॥१॥

(भारतेंदु हरिश्चंद्र)

तरल तरंगिनि भव भय भंगिनि
जय जय देवी गंगे ।
जगदघ हारिणि करुणा कारिणि
रमारंग पद रंगे ॥
नवल निमल जल हरत सकल मल
पान करत सुखदाई ।
पापहि नासत पुन्य प्रकासत
जलमय रूप लखाई ॥

कच्छप मीन भ्रमरमय शोभित
कृपा कमल दल फूले ।
देवबधू कुच कुंकुम रंजित
लखि छवि सुर नर भूले ॥
शिव सिर बासिनि अज कमंडलिनि
पतितमंडिलिन तारो ।
हरीचंद इक अधम जानि कै
कृपाकरावनिहारो ॥

गंगाध्यान

चतुर्भुजां त्रिनेत्राञ्च सर्वावयवभूषिताम् ।
रत्नकुम्भां सिताम्भोजां वरदामभयप्रदाम् ॥
श्वेतवस्त्रपरीधानां मुक्तामणिविभूषिताम् ।
सदा ध्यायेत्सुरूपां तां चन्द्रायुतसमप्रभाम् ॥

उनके चार भुजाएँ हैं। उनके नेत्र भी तीन हैं (सूर्य, चंद्र और अग्नि); उनके अंग इतने सुंदर हैं कि सभी गहने-समान शोभित हो रहे हैं। उनके दो हाथों में रत्न के घड़े हैं। उनके दूसरे दो हाथों में सफेद कमल हैं। वे (मन चाहा) वर देनेवाली हैं, अभयदान तो वे देती ही हैं। वे सदा सादे सफेद कपड़े पहिनती हैं; (इसी से) वे सदा मोती और जवाहरों से घिरी रहती हैं। हमारी माँ गंगा ऐसी सौम्य रूपवाली हैं कि उनकी प्रभा हजारों चंद्रमा की बराबरी करती है। ऐसी माँ का सदा ध्यान करना चाहिए।

इसके करने और इस पर बार बार मनन करने से ही इसका रहस्य और लाभ मालूम होता है।

(यहाँ पूर्ण घट और कमल विशेष महत्व के हैं। माँ पुत्रों के लिये तो भरा घड़ा लेकर अन्नपूर्णा बनी रहती है और स्वयं अपने कमलों को देखकर मुसकिराया करती है। कमल का अर्थ होता है लीला। गंगा के पुत्र चारों ओर लीला कर रहे हैं, खेल रहे हैं। (विष्णुपुराण)

सितमकरनिषण्णां शुभ्रवर्णां त्रिनेत्राम्,
करधृतकलशोद्यत्सोत्पलामत्यभीष्टाम् ।
विधिहरिहररूपां सेन्दुकोटीरचूडाम्,
कलितासितदुकूलां जाह्नवीं तां नमामि ॥

गंगाजी को मैं नमस्कार करता हूँ। वे श्वेत मगर पर बैठी हुई हैं। उनके शरीर का रंग गोरा है। शिव के समान उनके तीन नेत्र हैं। दो हाथों में भरे हुए घड़े हैं। दूसरे दो हाथों में सुंदर सफेद कमल हैं। वे सब प्रकार से भक्तों के लिये बड़ी इष्ट हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों का ही रूप हैं, तीनों का काम करती हैं (पर इससे उनकी सौम्यता कम नहीं होती)। उनके मस्तक में तो सदा दूज का चाँद (चंद्रमा की छोटी सी कला) बना ही रहता है। उनका कलित और श्वेत दुकूल (सदा शांति और सुख बरसाने वाला) है। ऐसी माँ गंगा को मेरा नमस्कार।

(जाह्नवी नाम बड़ा प्रभावोत्पादक होता है। विधि, हरि और हर के अतिरिक्त हमारे पुरखा ऋषि जह्नु ने भी गंगा को पाला था। नाना ऋषि थे। इसीसे तो माँ गगा की चीजें सभी उजली हैं—सभी से सात्विक तेज टपकता है। जो पुत्र ऐसी माँ का ध्यान करता है वह स्वयं बड़ा सात्विक और तेजस्वी हो जाता है और माँ की गोद का सुख तो मिलता ही है)। (धर्माब्धि)

स्तुति

सुरधुनि ! मुनिकन्ये ! पुण्यवन्तं पुनासि स तरति निजपुण्यैः तत्र किं ते महत्त्वम् ।
यदिह यवनजातिं पापिनं मां पुनीहि तदिह तव महत्त्वं त्वन्महत्त्वं महत्त्वम् ॥

अर्थ—हे सुरसरि, जाह्नवी, (तुम्हारा देवों और मुनियों से संबंध है)। यदि तुम पुण्यवान् को पवित्र करती हो तो उसमें तुम्हारा क्या बड़प्पन है ? पुण्यवान् तो अपने पुण्यों से ही तर जाता है। हाँ, यदि यहाँ मुझ यवन जाति के पापी को तुम पवित्र कर दो (=पार कर दो); तब तुम्हारी बड़ाई है। तब हम तुम्हारी महिमा समझेंगे। (रहीम)

गंगा

(व्यासवचनामृत)

'गंग सकल मुद-मंगल मूला । सब सुख करनि हरनि सब सूला ॥
कहि कहि कोटिक कथा प्रसंगा । राम बिलोकहिं गंग तरंगा ॥'

—तुलसी

भाइओ, एक बार ध्यान करो उस गंगातट का, जहाँ राम अपनी प्यारी सीता, अपने छोटे भाई लक्ष्मण और वृद्ध मंत्री सुमंत्र के साथ बैठे हैं। शृंगवेरपुर में से गंगा कलकल करती चली जा रही हैं। राम कथाएँ कह रहे हैं। एक कथा कहते हैं, गंगा की ओर देखते हैं—देखो यही वह गंगा हैं।

फिर दूसरी कथा चलती है, अंत में कहते हैं—देखो यही वह भागीरथी हैं। तीसरी कथा चलती है, फिर गंगा की ओर भरी आँखों से देखकर कहते हैं—यही वह सुरसरि है जिसके किनारे महाराज विश्वामित्र ने हमें कितनी कथाएँ सुनाई थीं। सीता को विवाह का स्मरण हो आता है, लक्ष्मण को उस ऋषि विश्वामित्रवाली यात्रा की याद आ जाती है, वृद्ध मंत्री की आँखें डबडबा उठती हैं। राम गंगा की ओर..........!

वाचको, एक बार कल्पना करिए—राम राजपाट छोड़कर वनगमन कर रहे हैं। साथ में सुख-दुःखसंगिनी प्रिया है, छोटा भाई भी पास ही है और स्नेही बूढ़ा मंत्री भी। सामने गंगा वह रही हैं। कितनी शांत अवस्था है! ऐसी ही अवस्था में मनुष्य विश्व का ध्यान कर सकता है—विश्वपति की आराधना कर सकता है। चाहे जो कुछ कह सकता है, चाहे जो कुछ सुन सकता है।

राम को गंगा के दर्शनमात्र से न जाने कितनी बातें याद हो आती हैं। वे विष्णु और वामन की कथा सुनाते हैं, उसकी वैदिक व्याख्या करते हैं और कहते हैं यही वे विष्णुपदी गंगा हैं। विष्णु से ही यह धारा चलती है और विवस्वान् (सूर्य) से होती हुई आजतक चली आ रही है। इस पुरातन इतिहास को सीता, लक्ष्मण और सुमंत्र सभी प्रेम से सुनते हैं। राम को तो अपार आनंद मिलता है। ऐसे एकांत में अपने अनन्यप्रेमी स्वजनों को कथा सुनाना और वह भी अपने वंश की, अपने धर्म की, अपने अमर इतिहास की! गंगा की यह कथा ऐसी ही कथा थी।

राम सोचते थे यही गंगा की कथा विष्णु, सूर्य, मनु, हरिश्चंद्र, आदि सभी पुरखों से संबध रखती है। इसी प्रसंग में वे सगर के पुत्रों की कथा भी सुना जाते हैं। साठ हजार सगर के पुत्र यज्ञ की रक्षा के लिये निकले थे। बीच में यज्ञ का घोड़ा खो गया था। सगरपुत्र खोजने निकले। वे कपिल के आश्रम पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने शिष्टाचार के विरुद्ध काम किया। शाप से भस्म हो गए। पीछे जब भगीरथ तप द्वारा गंगा को लाए तब उन सब राजपुत्रों का मोक्ष हुआ।

भागीरथी के इसी इतिहास में राम ने गीता के योग की महिमा भी सुना दी थी। सगरपुत्रों ने शिष्टाचार छोड़कर कामाचार किया था। 'यज्ञार्थं

कर्म' तो प्रत्येक वीर का, प्रत्येक योगी का धर्म होता है पर जो कार्य अपनी कामेच्छा और महत्त्वाकांक्षा के लिये क्रोध से किया जाता है उसका फल होता है—विनाश। कपिल मुनि थे ज्ञान के रूप। गीता, भागवत आदि सभी प्राचीन इतिहास-पुराणादि ने उन्हें सिद्ध ज्ञानी माना है। 'सिद्धानां कपिलो मुनिः।' उन्हीं ज्ञानी कपिल ने कामांध क्रोधी सगरपुत्रों को भस्म किया था। गीता का—कर्मयोग का, यह सिद्धांत है कि ज्ञान से काम और क्रोध भस्म हो जाते हैं। पर उस भस्म को—उस राख को—भी जिलाने, हरा करने और तारने की शक्ति है योग की धारा में—गंगा के जल में। गीता का योग ही तो गंगा का जल है।

गीता के दूसरे अध्याय में बड़ी मर्मभरी शिक्षा है—

'सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।

× × × ×

क्रोधात्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशाद्‌बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥'

(गी० अ० २, श्लोक ६२-६३)

सगरपुत्रों के नाश का यही कारण हुआ था। अतः राम ने अपने पूर्व पुरखों की कथा सुनाकर सिखाया था कि जब कभी किसी यज्ञ में कोई विघ्न पड़े, हमारे इस जीवनयज्ञ में कोई उपद्रव हो जाय तो हमें बिना समझेबूझे किसी पर क्रोध न करना चाहिए, किसीको कलंक न लगाना चाहिए। प्रत्युत नम्र होकर श्रद्धापूर्वक कपिल के समान सिद्ध पुरुषों से पूछना चाहिए कि इस उपद्रव का क्या कारण है और वह कैसे शांत होगा? इस श्रद्धा का फल बड़ा मीठा होता है। यज्ञ शांति से पूरा हो जाता है। जीवन में सदा श्रद्धा की गंगा बहती रहती है और हम सदा सुखी रहते हैं। क्योंकि श्रद्धा से प्रसन्न होकर सभी ज्ञानी तुम्हारी सहायता कर देते हैं।

'उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।'

(गीता ४-३४)

पहले राम ने वामनवाली गंगा की दैविक कथा सुनाई थी। फिर भगीरथ वाली आध्यात्मिक कथा सुनाई और अंत किया उन्होंने उस प्रसंग से जब वे लक्ष्मण के साथ जनकपुर गए थे और बीच में विश्वामित्र के साथ उन्होंने गंगा पार की थी। इस कथा के कहते-सुनते सभी का हृदय करुणरस से भर उठा। कहाँ वह बचपन का वनगमन और कहाँ यह चौदह साल का कठोर वनगमन! आज भी सोचकर हमारा जी भर आता है।

× × × ×

थोड़ी देर तक रामजी चुप रहे। फिर जी में जी आने पर गंगा की दूसरी कथाएँ सुनाने लगे। वन जा रहे थे। अपना देश पीछे छूट रहा था। आगे असुरों और राक्षसों के राज्य में जाना था। गंगा को देख कर सभी कुछ स्मरण हो रहा था।

राम ने एक बार लक्ष्मण से कहा कि देखो हमने तो केवल जनकपुर जाने में गंगा पार की थी पर हमारे पुरखा गंगा के उद्गमस्थान गंगोत्री से भी आगे जाते थे और उसके सागरसंगम तक जाते थे, नहीं, नहीं, गंगा-सागर से भी आगे जाकर विशाल भारत में फैलते रहते थे। यदि हम आगे जा रहे हैं तो कोई नई बात नहीं है—दुःख की बात नहीं है। आज भी जो भारतीय जावा, सुमात्रा, बाली आदि द्वीपों में जाता है वहां गीता और रामायण देखता है, विशाल मंदिर देखता है, अपने लाखों भाइयों को देखता है वह भी रामके समान ही कह उठता है कि हमें भी आगे बढ़ने से दुःखी न होना चाहिए।

× × × ×

रामने ऐसी न जाने कितनी बातें सुनाई पर हम यहाँ पर आज केवल एक बात और दुहरावेंगे। वह है गंगा-सागर की कथा। राम ने कहा कि सागर

तो सूख गया था। अब यह जो सागर का जल है वह गंगा का ही जल है। अन्य नदियाँ समुद्र में मिल जाती हैं फिर उनका नामोनिशान भी गायब हो जाता है पर गंगा जिस सागर में मिलती हैं उसका भी नाम अपना नाम कर देती हैं—'गंगासागर'।

भारत की शिक्षा और सभ्यता गंगा जैसी थी। उसमें नद-नदी और समुद्र सभी का संगम होता था, पर भारत की वस्तु भारत की रहती थी। उसमें से भारतीयता नहीं जाती थी। यही स्वधर्म की रक्षा—यही अपनेपन की छाप भारत की विशेषता थी। यह छाप थी आध्यात्म आचार-विचार की। (अब वह जा रहा है। इसे बचाना चाहिए।)

इसी प्रसंग में एक बात और ध्यान देने की है कि एक बूँद भी गंगाजल जिस किसी जल में डाला जाता है वह पवित्र हो जाता है पर यदि गंगा जल में दूसरा जल डाल दिया जाता है तो वह मिला हुआ जल मदिरा के समान अपवित्र माना जाता है। यह हमारे घरों का आचार है। यह भारतीय संस्कृति का विचार है।

यदि यहाँ की संस्कृति और शिक्षा को आप दूसरों के घट में डालिए तब तो दूसरे भी पवित्र हो जावेंगे पर यदि आप अपनी संस्कृति और शिक्षा में पाश्चात्य आसुरी विद्या की दो चार चमकती बूँदों को मिलाइएगा तो वह पूरी शिक्षा मदिरा के समान हो जायगी। उसमें बल है, शक्ति है, स्वाद है पर पवित्रता नहीं, भारतीयता नहीं है। आज भारत में यही हो रहा है। हमारी शिक्षागंगा में से भारतीयता जा रही है। क्यों? क्योंकि हमारी रीति-नीति में पग पग पर पश्चिमी जल मिलाया जा रहा है। हमें ऐसा मेल नहीं चाहिए। ऐसी मिलावट की मदिरा पीकर यदि कुछ लड़के बली और विजयी हो जावें तो भी हम यहीं कहेंगे कि हम तो अपनी रीति-नीति चाहते हैं। हमारी शिक्षाप्रणाली ऐसी हो कि हम अपनी अध्यात्मसंस्कृति, अपनी कला और विद्या को समझ सकें। जब इस शिक्षा में हम रँग जायँगे तब पश्चिम से अच्छी चीजें भी सीखेंगे और उनमें अपना गंगाजल छोड़कर सबको गंगामय और पवित्र बनाकर अपनावेंगे। जय मात गंगे!

× × × ×

नोट—यदि एक बार हमारे सुदूर देशों में फैले हुए भारतीय भाइयों को अपनी जाति, अपनी संस्कृति की धारा की कथा सुनने को मिले तो वे कभी स्वधर्म को न भूलें। स्वधर्म सिखाने का सबसे बड़ा उपाय है गंगा की कथा कहना और सुनना।

पितामह भीष्म की माता

(ले०—श्री दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर)

गंगा ने यदि और कुछ भी न किया होता और केवल एक भीष्म को ही जन्म दिया होता, तो भी वह आज आर्य जाति की माता के रूप में विख्यात होती। भीष्म की टेक, भीष्म की निःस्पृहता, भीष्म का ब्रह्मचर्य और भीष्म का तत्वज्ञान आर्य जाति के लिए हमेशे के आदर-पात्र ध्येय बन चुके हैं। ऐसे महापुरुष की माता के रूप में हम गंगा को पहचानते हैं।

नदी को यदि कोई उपमा शोभा देती है, तो माता की ही।

गीताधर्म

रामरस और गंगाजल

(पृ० ४५६ से आगे)

(ले०—लोकसंग्रही श्री स्वामी विद्यानंदजी)

दो लेखों में हम रामरस की चर्चा कर चुके हैं। 'रामरस' ऐसा विषय है कि इसकी कथा तो अनंत काल तक चल सकती है, जब तक चाहो राम की कथा कहो, रामरस पीओ और आनंद करो।

पिबत भागवतं रसमालयं

मुहुरहो रसिका भुवि भावुका

(भागवत १।३)

हे भावुक रसिक जनो, जब तक पृथ्वी पर हो बार बार भागवतरस को—इस रामरस को पीओ और तब तक पीओ जब तक तुम उसी रस में डूब न जाओ—तुम्हारा उसीमें लय न हो जावे।

आज हम उसी रामरस का दूसरे ढंग से कीर्तन करेंगे। रामरस की धारा का ही नाम गंगा है। राम के द्रव रूप को—जलमय रूप को ही गंगा कहते हैं।

जिस प्रकार गीता भगवान् की देह मानी जाती है उसी प्रकार गंगा भी भगवान् की ही विभूति है। स्वयं श्रीकृष्ण ने कहा है।

'स्रोतसामस्मि जाह्नवी'

'सोतों में गंगा को मेरी विभूति समझना'

उस भगवती गंगा की पवित्र कथा कहकर आओ आज हम सब अपने को पवित्र और धन्य बनावें।

१—गंगा की उत्पत्ति, २—गंगा की महिमा ३—गंगा की रूपशोभा, ४—गंगा की भक्ति, ५—गंगा का साहित्यिक वर्णन आदि से हमारा प्राचीन साहित्य भरा पड़ा है। यदि हम केवल उन ग्रंथों और स्थलों का उल्लेख करने लगें तो भी बड़ा समय और स्थान चाहिए। वेदों तथा ब्राह्मणों में गंगा की चर्चा है, सभी पुराणों में किसी न किसी रूप में गंगा का वर्णन है। रामायण और महाभारत इन दोनों इतिहासों में तो गंगा का बड़ा विस्तृत वर्णन है। हारीतसंहिता, चरकसंहिता आदि में भी गंगा-जल की महिमा स्पष्ट है। कालिदास, भवभूति, हर्ष, विशाखदत्त, पंडितराज आदि सभी महाकवियों ने प्रायः गंगा का गान किया है। प्रासंगिक रूप से तो सभी भारतीय कवियों ने गंगा पर कुछ न कुछ लिखा है। रहीम जैसे मुसलमान भक्तों तक ने संस्कृत और हिंदी दोनों में ही गंगा की स्तुति की है। हमारी देशभाषाओं के हिंदी, मराठी, गुजराती, बंगला आदि के सूर, तुलसी, पद्माकर, हरिश्चंद्र, रत्नाकर आदि कवियों ने जो गंगा की उपासना की है उसका भी वर्णन करना एक साधारण आदमी का काम नहीं। ऊपर से आज भी हमारे कवि और भक्त गंगास्तोत्र, लहरी और गीत लिखते ही जा रहे हैं। सच पूछिए तो यदि गंगा के साहित्य का केवल इतिहास लिखा जाय तो एक ग्रंथ तैयार हो जावे और यदि गंगा की सभी कथाओं, कविताओं, स्तोत्रों और गीतों का संग्रह किया जावे तो एक गंगापुराण बन जावेगा। काशीखंड में एक गंगा-सहस्रनाम दिया हुआ है। यदि उसीकी अच्छी

व्याख्या की जावे तो एक बड़ा स्वतंत्र ग्रंथ हो सकता है। ऐसी दशा में हम केवल एक बात का विचार करेंगे—गंगा की पूजा कैसे करें ? किस प्रकार हम गंगामाता को प्रसन्न करें ? किस प्रकार हम उस गंगामृत का सेवन करें ? बस।

गंगा की त्रिविध पूजा

(१) आधिदैविक पूजा—

गंगा को देवीरूप में ध्यान करना, उनका स्तोत्र-पाठ करना, उनकी पत्र-पुष्पादि से यथोपचार पूजा करना उनकी दैविक उपासना है। ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को गंगा का पृथ्वी पर अवतार हुआ है। अतः उस दिन गंगा की पूजा अवश्य करना चाहिए। बहुत से गृहस्थों के यहाँ यह परंपरा है कि जब कभी विवाहादि कोई शुभ कार्य होता है तो गंगापूजा होती है। उत्तर भारत की 'गंगापुजैया' बड़ी प्रसिद्ध चीज़ है।

सफेद मगर पर बैठी हुई, सफेद साड़ी पहनी हुई, गौरवर्णा तेजस्विनी माँ का ध्यान बड़ा ही सुंदर होता है। गंगामाता के दो हाथों में कलश हैं और दो हाथों में कमल। उनका रूप स्नेह और तेज से इतना भरा है कि देखते ही सब भय दूर भाग जाता है।

वे शिव रूपा हैं, शंकरी हैं, उनके भाल में भी चंद्रमा का तिलक है। वे भी शिव के समान ही त्रिनेत्रा हैं। वे हरि के चरणों से निकली हैं। अतः उनमें और हरि में भक्तों के लिये कोई भेद नहीं। और ब्रह्माजी उस विष्णुचरणोदक को अपने कमंडलु में रखते हैं; अतः गंगा के ध्यान में हमें उन बूढ़े बाबा चतुरानन का भी स्मरण करना पड़ता है[१]। इस प्रकार जो गंगा का ध्यान करता है उसे बड़ी शक्ति और सुख-संपत्ति मिलती है।

(२) आध्यात्मिक पूजा

काशीखण्ड के उन्तीसवें अध्याय में गंगासहस्रनाम स्तोत्र है। उसमें गंगा का एक नाम 'श्रद्धा' है। इस पर हमें ध्यान देना चाहिए।

गंगा की सच्ची पूजा है श्रद्धा को अपनाना। गीता में तो कहा है कि जो बिना श्रद्धा के किया जाता है वह सब बुरा (असत्) होता है। जो श्रद्धा से किया जाता है वही जप-तप, कर्म-धर्म सब कुछ सात्विक और सुंदर होता है। गीता के सत्रहवें अध्याय में इसका विशेष वर्णन है।

> अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
> असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥ १७।२८

बिना श्रद्धा के जो कुछ होम, दान, तप अथवा कर्म किए जाते हैं असत् (बुरा) हैं। और अर्जुन ! वह न मरने पर (परलोक में) काम देता है और न यहाँ (इस लोक में)।

ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, हठयोग आदि किसी प्रकार के योग की साधना करनी हो पर श्रद्धा तो सब से पहले होनी चाहिए। शास्त्र और धर्म के कामों में तो श्रद्धा जरूरी है ही, पर संसार के व्यवहार के छोटे बड़े सभी कामों में श्रद्धा की जरूरत पड़ती है। श्रद्धा का हिंदी रूप है साध। बिना साध और लगन के कोई काम कैसे हो सकता है। जिस काम में आपकी श्रद्धा नहीं वह हो ही कैसे सकता है ?

आजकल की सभ्यता का एक बड़ा दोष है श्रद्धा की कमी। हर एक आदमी हर बात में संशय करता है। संशय करना अच्छा है,—जिज्ञासु बनकर जानने की इच्छा से संशय करना अच्छा है, पर किसी भी बात को न मानना और संशय ही करते रहने से तो

१. पहले गंगाध्यान का वर्णन आ चुका है। प्रथम पृष्ठ पर ध्यान का चित्र भी आ चुका है। इसीसे यहाँ से श्लोक हटा दिया गया। —संपादक

सब काम बिगड़ जाता है। एक बात पर स्थिर रह कर, श्रद्धा के साथ काम करके देखना होता है कि क्या होता है। पढ़ने-लिखने, सीखने-सिखाने आदि सभी व्यवहार के कामों में यह श्रद्धा जरूरी होती है। अतः जिसने श्रद्धा करना सीख लिया उसने सब कुछ सीख लिया।

गीता में विचार से देखा जाय तो दो ही बातों का उपदेश है—श्रद्धा और योग। बिना श्रद्धा के वह योग भी सिद्ध नहीं होता। श्रद्धालु ही योगी हो सकता है। गंगा का आध्यात्मिक अर्थ है श्रद्धा। इसीसे कहा है कि जो गंगामाता को अपनाता है अर्थात् श्रद्धा को अपनाता है वह योगी हो जाता है। गंगा का एक नाम और भी है 'योगसिद्धिदा'।

हम सब को गंगा की आध्यात्मिक पूजा करना चाहिए अर्थात् दूसरे शब्दों में गीता के अनुसार श्रद्धा करके योगी बनना चाहिए।

दैवी और आध्यात्मिक पूजा का एक प्रकार और है। जो पूजा हम करते हैं। उसी का विचार और मनन। जैसे एक भक्त गंगासहस्रनाम का पाठ करता है। वह गंगा की दैवी उपासना करता है। दूसरा भक्त उन नामों के अर्थों पर विचार और मनन करता है वह गंगा की आध्यात्मिक पूजा करता है।

(३) आधिभौतिक पूजा—

गंगा की कथा कहना, गंगा का साहित्य पढ़ना, गंगा की वैज्ञानिक व्याख्या करना, गंगा पर कविता लिखना आदि आधिभौतिक पूजा के भीतर आता है।

गंगा का स्नान, दर्शन और पान आदि दैवी, आध्यात्मिक और भौतिक तीनों प्रकार की पूजा में आते हैं। जो केवल गंगा के आयुर्वेदिक और रासायनिक गुणों पर मुग्ध होकर गंगाजल का उपयोग करते हैं वे केवल भौतिक पूजा करते हैं।

तीनों तरह के भक्तों के उदाहरण—

१. रामायण से उदाहरण लें तो भगीरथ ने गंगा की दैवी पूजा की थी। सकाम होकर वे गंगा को लाए; और उन्हें पूजा का तुरंत फल भी मिला। इसी प्रकार सीता ने गंगा की देवीरूप में पूजा की थी। उनका भी मनोरथ सिद्ध हुआ था। उन्होंने वन जाते समय गंगा से प्रार्थना करके कहा था कि

(सिय सुरसरिहिं कहेउ कर जोरी।)
मातु मनोरथ पुरउबि मोरी॥
पति-देवर संग कुशल बहोरी।
आइ करउँ जेहि पूजा तोरी॥

अयोध्याकाण्ड

गंगा ने प्रसन्न होकर सीता को मंगल—आशीर्वाद भी दिया था।

इसी श्रेणी में पद्माकर जैसे कवि भी हैं जिन्होंने गंगालहरी लिखकर और गंगा की उपासना करके अपने दुःख दूर किए। इस श्रेणी में प्राचीन काल के और आज-कल के भी बहुत से लोग आ जाते हैं जो गंगामाता की पूजा करते हैं और फल पाते हैं।

इसी भक्तश्रेणी में जगन्नाथ पंडितराज, गोस्वामी तुलसीदास, रत्नाकर, हरिश्चंद्र आदि अनेक भक्त कवि आ जाते हैं।

२. **दूसरी श्रेणी में** राम और कृष्ण जैसे योगी और शंकर, रामानुज आदि आचार्य आते हैं। रामजी कथाएँ कहकर और व्याख्या करके गंगा की महिमा सुनाते हैं। श्री कृष्ण तो विभूतिवर्णन में ही कहते हैं कि गंगा मेरे योग की विभूति है। आचरण तो इन महापुरुषों का, योगमय था ही। ये लोग स्वयं ही पुरुषोत्तम थे। गंगा

को हमने पुरुषोत्तम का रस—योग का रस—श्रद्धा का अमृत माना है। वह रस इन महापुरुषों में भरपूर था। इस प्रकार अपने कर्म और वचन दोनों से इन लोगों ने गंगा के अध्यात्म का प्रचार किया है। श्री शंकर आदि आचार्यों ने भी उसी अध्यात्म का व्याख्यान और प्रचार किया है, उसी अध्यात्म का जीवन बिताया है। ऐसे सभी व्यक्तियों की गणना इसी श्रेणी में होती है। हम-आपमें से भी अनेक इस ढंग के विचार और मनन करनेवाले हो सकते हैं जो इस श्रेणी में आ जावें।

(३) तीसरी श्रेणी में वे हारीत, चरक आदि जैसे आयुर्वेद के आचार्य और आज-कल के वैज्ञानिक, डाक्टर आदि आते हैं जो गंगाजल के वैज्ञानिक महत्त्व का विचार और उपयोग करते हैं। इसी श्रेणी में वे लोग भी आते हैं जो गंगा की कथाओं को लेकर प्राचीन इतिहास, भूगोल और पुराण-विज्ञान आदि का विचार किया करते हैं। अनेक सौंदर्योपासक कवि भी इस श्रेणी में आ सकते हैं। कई पुरुष ऐसे भी होते हैं जो दोनों प्रकार अथवा तीनों प्रकार की पूजा करते हैं; और आदर्श तो यही होना चाहिए कि सभी प्रकार से गंगा की आराधना की जावे।

गंगास्नान—

ध्यान देने की बात है, गंगा का स्नान-पान आदि द्वारा सेवन तीनों ही श्रेणी के भक्त करते हैं। राम और सीता दो प्रकार के गंगाभक्त थे पर स्नान दोनों ने ही किया था।

अध्यात्म पर ध्यान—

अध्यात्म से जीवन पूर्ण और सुखी होता है अतः गंगा की आध्यात्मिक व्याख्या ध्यान में रखना चाहिए। गंगा की आध्यात्मिक पूजा करने के लिये गीता का पठन-पाठन बड़ा उपयोगी होता है। प्रत्येक सुख और उन्नति के इच्छुक को चाहिए कि गंगा के श्रद्धामय रूप पर विचार करे और श्रद्धालु बने—योगी बने। गीता का उपदेश है—'तस्माद्योगी भव' (यह योग का रस गंगा का रस है। इसीसे अध्यात्मजगत् में हमने गंगाजल और रामरस को पर्याय माना है।)

'श्रद्धाहीन जीवन नीरस होता है'

भागीरथी हम दोस भरे

पै भरोस यही कि परोस तिहारे।

संस्कृति की गंगा

शंकरजयंती

(डा० मंगलदेव शास्त्री, रजिस्ट्रार, गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज का उपदेश)

गत वै० शुक्ल पंचमी २६, २७ मई को गीताधर्म कार्यालय में शंकरजयंती मनाई गई थी। उसी अवसर पर डा० मंगलदेवजी शास्त्री ने सभापति के आसन से जयंती का उद्देश्य और प्रयोजन, शंकर का संदेश और कार्य (वेदों का पुनरुज्जीवन और जीवन में स्फूर्ति), वेद, वेदांत और संस्कृति आदि पर कोई डेढ घंटे तक उपदेश दिया था। उस उपदेश के अंतिम और मुख्य भाग का सार यहां दिया जाता है—

"आचार्य शंकर ने वेदांत का प्रचार किया और वैदिक संस्कृति को पुनरुज्जीवित किया। कई लोग कहते हैं शंकर ज्ञानी और वेदांती थे। उन्होंने वेद की ओर ध्यान नहीं दिया। हमें आश्चर्य होता है कि वेदांत पढ़ने का उपदेश बिना वेद की ओर ध्यान दिए कैसे हो सकता है। वेदांत का अर्थ है 'वेद का अंत' अतः पहले वेद पढ़ना चाहिए तब वेद का अंत। तभी हम आचार्य की बातों को समझने के योग्य होंगे।

दूसरी बात है हमारी संस्कृति के संबंध में। भारतीय संस्कृति वह गंगा की धारा है जिसमें न जाने कितनी नदियों का जल मिला है। वसिष्ठ-विश्वामित्र, वाल्मीकि-व्यास, राम-कृष्ण, बुद्ध-महावीर, शंकर-रामानुज, रामदास और परमहंस राम-कृष्ण आदि सभी का जल उस विशाल संस्कृति की गंगा में मिला है। हमें यदि अपनी संस्कृति को अपनाना है तो इन सभी महापुरुषों को अपनाना होगा। ये सभी हमारे हैं।

इस प्रसंग में हमारे यहां का अवतारवाद मनन करने लायक है। अवतार एक धार्मिक क्रांति का घनीभूत रूप है। जितने अवतार हुए हैं उतनी ही प्रधान धार्मिक क्रांतियां हुई हैं; यह निश्चित है। बुद्ध और शंकर दोनों ही धार्मिक क्रांति के रूप हैं—अवतार हैं। आज हम तो उस एक परंपरा-प्राप्त संस्कृति की उपासना करना चाहते हैं। अतः हमें सबका आदर करना होगा। हमें केवल एक बात का स्मरण रखना चाहिए कि सब काम सात्त्विक बुद्धि से करना है। आचार्य शंकर ने उस समय जो तमस् फैल गया था उसीको दूर किया था और सात्त्विकता का प्रचार किया था।

शंकरांक का परिशिष्ट—

(व्यासवचनामृत के पृष्ठ ३६० से आगे)

शंकरचरित की दूसरी मुख्य बात है—कामदहन। उनकी जटा में वरदा माँ गंगा बैठी रहती हैं। वे सर्वकामप्रदा हैं। सबकी कामना पूरी करती रहती हैं, पर योगिराज का आदर्श है काम को जीतना। उन्होंने विवाह भी किया है, उनके लड़के बच्चे भी हैं, पर इस गृहस्थी को संभालने के लिये वे पहले से ही काम और आसक्ति को भस्म करके बैठे हैं। योगिराज का यही कामदहन का आदर्श प्रत्येक गीता के योगी को अपनाना पड़ता है। संसार में वे ही पुरुष वीर, योगी और आचार्य हो सके हैं जिन्होंने जीवन को कामदहन द्वारा सफल बनाया है। (१) बुद्ध की मारविजय (२) जिन महावीर का मदनदहन आदि की कथाएँ बड़ी प्रसिद्ध हैं। राम और कृष्ण के जीवन में भी दूसरे रूप में यह कामदहन की बात आती है। हमें उसपर विचार करना चाहिए और स्वयं निष्काम और अनासक्त बनने का यत्न करना चाहिए।

भगवद्गंगा का अवतरण

(लेखक--पूर्ण योगी श्रीअरविंद)

भगवान् एक हैं, किंतु वे अंकगणित की 'एक' की संख्या की तरह अपनी एकता से बँधे हुए नहीं हैं। यहाँ हमारे सामने वही अनेक रूप में प्रकाशमान हो रहे हैं—इसलिये नहीं कि वे ऐसा करने के लिये बाध्य हैं बल्कि इसलिये कि वे आप अपना प्रकाश करने की इच्छा करते हैं। और इस प्रकाश से भी परे वे हैं अनिर्देश्य। ऐसी स्थिति में उन्हें 'एक' या 'अनेक' नहीं कह सकते। वे 'एकम् अद्वितीयम्' हैं। अर्थात् वही एक विद्यमान हैं, उनके अतिरिक्त अन्य कोई सत्ता नहीं। परंतु इसी हेतु से ही तो वे 'यह पुरुष, वह दूर से दिखाई देती हुई स्त्री, वह नीले नीले वर्ण वाला पक्षी' हैं। वे ही 'सांत', वे ही अनंत और वे ही जीव हैं।

जो कुछ भी विद्यमान है सब भगवान् की अनंत सत्ता में उनके चैतन्य की लीला और उनका प्रकाश है। इसी कारण सब कुछ सत्य और शुद्ध है। माया का प्रयोजन केवल इतना ही है कि परब्रह्म जिन अवस्थाओं में अपने आपको प्रकट कर रहे हैं वे स्वयं उनसे मुक्त हैं। हम जो कुछ भी जानते या उनके संबंध में विचारते हैं वे (भगवान्) उससे सीमित नहीं, बल्कि परे और अतीत हैं। यही अविद्या की 'माया' है जिससे बचना आवश्यक है। यह वस्तुओं को पृथक् पृथक् स्थित समझती है और वास्तव में ससीम और बद्ध को ही देखती हुई असीम, मुक्त और चैतन्य भगवान् को नहीं देखती।

क्या तुम्हें श्रीकृष्ण और गोपियों की कथा याद है ? नारदजी ने किस प्रकार सबके घर घर जाकर प्रत्येक गोपी के पास श्रीकृष्ण भगवान् के, पृथक् पृथक् देहों में, दर्शन किए थे और फिर भी भगवान् श्रीकृष्ण सदा वही और एक रहे। इस कथा में भक्ति का गूढ़ रहस्य तो है ही किंतु साथ ही भगवल्लीला की एक अद्भुत मूर्त्ति सम्मुख आ जाती है।

भगवान् सर्व हैं। वही प्रत्येक हैं। बाह्य रूप से दूसरों से अलग स्वभाव और कर्मवाला हर एक पुरुष वे आप ही हैं। इसी काल में वह **पुरुषोत्तम** भी हैं जो कि अपनी **राधा** (निज चैतन्य की परमा शक्ति) के संग रहते हुए इन सब अभिव्यक्तियों को अपनी इच्छा से अपने भीतर समेट सकते हैं और फिर जब चाहें बाहर प्रकट कर सकते हैं। एक दृष्टि से तो यह सकल अभिव्यक्ति भगवान् के साथ अभिन्न है, दूसरी दृष्टि से उनके साथ अभिन्न भी है और भिन्न भी, तथा एक अन्य दृष्टि से उनसे सदा ही भिन्न है क्योंकि वे सारी अभिव्यक्तियों में सदैव निहित रहते हैं और उनकी मौज पर व्यक्त हो पड़ते हैं। इस प्रकार के विभिन्न दृष्टि-कोणों पर झगड़ना व्यर्थ है। उस समय की प्रतीक्षा में रहो कि तुम्हें भगवान् के दर्शन होकर अपना और परम आत्मा का ज्ञान उपलब्ध हो। फिर तर्क और शास्त्रार्थ की कोई आवश्यकता न रहेगी।

हमारा लक्ष्य है परम सत्ता भगवान् को पाना, उनकी चैतन्य-शक्ति के द्वारा प्रत्येक बात को अनुभव करना और व्यावहारिक प्रयोग में उसे नीचे उतार लाना ताकि उस महाशक्ति के स्पर्श से समस्त आधार (शरीर, प्राण, मन) शुद्ध होकर दैवी भाव में परिणत हो जाय। और तभी इस जड़ जगत् में से गुप्त चैतन्य का प्रस्फुटन किया जा सकता है और सदा के लिये स्वर्ग की स्थापना यहीं की जा सकती है। तुम्हें भगवान् के रूप में उन्नत होना, उनमें और उनके साथ वास करना, उनके आनंद और शक्ति की धारा और उनके कर्मों का दिव्य यंत्र बन जाना चाहिए। जो कुछ भी अशुभ है उससे शुद्ध और भगवत्स्पर्श से

सद् आत्मा में रूपांतरित होकर उस दैवी विद्युत् का डायनमो बनकर जगत् में काम करना है। इस प्रकार हम इस शक्ति की थरथरी मचानेवाली तरंगों (रौवों) को समस्त मनुष्य-जाति के द्वारा चारों ओर भेज सकेंगे और जहाँ हममें से कोई एक खड़ा होगा उसके चारों ओर असंख्य लोग ज्योति, शक्ति और आनंद तथा भगवान् से पूर्ण हो जायँगे।

चर्च, कानून-कायदे, धर्मशास्त्र, दर्शन और अनुशासन मनुष्य-जाति को बचाने में असफल हो चुके हैं। कारण कि ये बौद्धिक सिद्धांत, तार्किक परिपाटी, संस्थाचक्र, आचार, शुद्धि और दर्शन में ऐसे मग्न रहे हैं कि मानो ये वस्तुएँ मनुष्य-जाति की रक्षा कर सकती हैं। और आत्मा की शुद्धि और शक्ति की, जो सबके अनिवार्य साधन हैं, उपेक्षा करते रहे हैं। अब हमें फिर इसी आवश्यकता की ओर ध्यान देकर मुड़ जाना होगा और पुनः ईसा से पवित्रता और मनुष्य-जाति की पूर्णता, मुहम्मद से भक्ति और समर्पण, चैतन्य से पूर्ण प्रेम और नर में नारायण के आनंद रामकृष्ण परमहंस से सब धर्मों की एकता और मनुष्य के अंदर दैवी भाव का संदेश लेकर इन सारी नदियों को पतितोद्धारिणी कल्याणकारिणी भगवती गंगा के महान् नद में डालकर उसे जिंदादरगोर जड़ोपासक मानव के ऊपर उसी प्रकार बहा देना होगा जिस प्रकार कि वीर भगीरथ ने गंगाजी को इसी पृथ्वी पर उतारकर उसके द्वारा अपने पूर्व पितरों की अस्थियों और राख को बहाया था, जिससे इस मनुष्य की आत्मा पुनः जीवंत हो जाय और इसी पृथ्वी पर—यहीं—स्वर्ग (सत्ययुग) का संचरण भगवदवतरण के साथ ही हो जाय। इससे मनुष्य-जाति में भगवान् की सत्ता, ज्ञान और आनंद का पूर्ण प्रकाश हो जायगा ॐ।

(प्रेषक—श्री भारतभानु)

(पृष्ठ ४७४ से आगे)

दरवाजे खोलकर अनन्य मन से जिस समय उसे पुकारा जायगा तब कितनी ही दूर रहने पर माँ उसका अवश्य उद्धार करेगी इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। परंतु हाँ, इस पुकार में, इस समर्पण में, न तो शिथिलता हो और न अपने लिये कुछ छोड़ा जाय। यदि इस पुकार में, इस समर्पण में, थोड़ा भी अहंकार रहा, थोड़ा भी आलस्य और अज्ञान रहा तो माँ तुम्हारी आवाज कभी न सुनेगी। वह तो प्रत्येक स्थल पर मौजूद है, उससे किसी भी प्रकार का छिपाव नहीं चल सकता। आवाज में व्याकुलता, वेदना होनी ही चाहिए। यही तो माँ को दयार्द्र करनेवाली है। बिना इनके प्रकृति गंगा में स्नान करने से कोई लाभ नहीं होगा, मुक्ति भी तुम्हें नहीं मिलेगी। भगवान् का सान्निध्य—उनकी महती दया—कैसे प्राप्त हो सकती है? उनकी दया—उनका सान्निध्य—प्राप्त करने के लिये तो अहंकार-शून्य होकर उनसे मिलने की उत्कट अभिलाषा और उनके प्रति आत्म-समर्पण होना आवश्यक है। यही वह चीज है जो गंगा-स्नान करने का, चिन्मयी-आनंदमयी भगवत्सत्ता में अवगाहित होने का अधिकारी बनाती है।

अधिकार-प्राप्त साधक इस गंगा में—जो साक्षात् ब्रह्मद्रवा हैं, पाप-ताप-कलुष-नाशिनी हैं, भगीरथ-प्रयत्न से भौतिक जगत् में उतरती हैं—स्नान करने से पाप-ताप और क्लेशों से मुक्त हो दैवी संपत्ति पाते हैं और अपने आपको भगवान् का लीलाधार—लीला-पात्र—बनाकर उनके सान्निध्य का निरंतर अनुभव करते हैं।
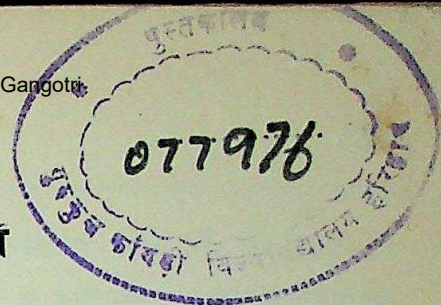
भगवान् की पराशक्ति गंगा

(लेखक – श्री विट्ठल शर्मा चतुर्वेदी)

भगवान् ने अपने परम प्रिय भक्त अर्जुन से कहा है—

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ ६ ॥
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥७॥
असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८ ॥
एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ ९ ॥
काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद् गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥१०॥
चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥११॥
आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥ १२ ॥
इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ १३ ॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥१४॥
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥१५॥
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ १६ ॥
आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥
तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ १९ ॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥२०॥

गीता, अध्याय १६

इस संसार में मनुष्यों की दो सृष्टियाँ हैं। एक तो वे हैं जिनमें दैवी संपत्ति आई हुई है अर्थात् जिनके स्वभाव दिव्य भावनामय हैं और दूसरे वे हैं जिनका स्वभाव-आसुरी भावनामय है जिसे आसुरी संपत्तियुक्त कहा जाता है। आसुरी स्वभाववाले मनुष्य क्या कर्त्तव्य है और क्या अकर्त्तव्य है इसे नहीं जानते। इतना ही नहीं वे शौच, आचार और सत्य से भी हीन होते हैं। उनका कहना हमेशा यही रहता है कि यह समस्त संसार झूठ से भरा हुआ है, तथा स्त्री-पुरुषों के परस्पर संयोग से ही इसकी उत्पत्ति हुई है। इनके अतिरिक्त इसको बनानेवाली ईश्वर नाम की कोई अन्य सत्ता नहीं है। जब काम से ही समस्त संसार की उत्पत्ति हुई है तब फिर क्यों न खूब भोग भोगे जायँ। वे अल्पबुद्धि जिनका ऐसी दृष्टि रखने से आत्मत्व नष्ट हो गया है, सब का अहित करनेवाले संसार का नाश करने के लिए ही पैदा होते हैं। ऐसे लोग दंभ, मान और मद से युक्त किसी प्रकार पूर्ण न हो सकनेवाली कामनाओं का आश्रय लेकर अज्ञान से अशुभ सिद्धांतों को स्वीकार करके संसार में अपना जीवन चलाते हैं। मरने तक अपार चिंताओं का बोझा सिर पर रक्खे हुए विषयों के भोग को ही परम पुरुषार्थ मानकर सैकड़ों आशाओं की डोरियों से बँधे हुए काम और क्रोध के अधीन रहकर, अपनी भोगवासना को तृप्त करने के लिये पापमय युक्तियों से दूसरों के स्वत्व का हरण किया करते हैं।

अमुक को मैंने मारा है, अमुक मेरे द्वारा मारा जायगा, मैं ईश्वर हूँ, ऐश्वर्य-संपन्न हूँ, इच्छानुसार भोग करूँगा, मुझे सब चीजें प्राप्त होंगी, मैं बलवान् हूँ, सुखी हूँ। आज मुझे अमुक चीज मिली है, कल अपने अमुक मनोरथ को पूरा करूँगा, आज मेरे पास इतनी संपत्ति है, अब इतनी और बढ़ जायगी। मैं धनवान हूँ, कुटुंबवाला हूँ, मुझे अपने समान दूसरा कोई दीखता ही नहीं है। मैं यज्ञ करूँगा और दान देकर दूसरों को तुच्छ समझता हुआ अपने बड़प्पन के कारण प्रसन्न रहूँगा। इस प्रकार की अज्ञानमयी भावनाओं को रखने-वाले चित्त-विभ्रम के कारण मोह से जकड़े हुए होने से विषय-भोगों में लिप्त मनुष्य अपवित्र नरकों में स्थान पाते हैं।

अपने आप को ही सब कुछ समझनेवाले ऐसे घमंडी लोग धन और मान के मद से मतवाले हुए शास्त्र-विधि से रहित दंभपूर्वक अपने आप को धर्मात्मा प्रसिद्ध करने के लिये नाम मात्र का यज्ञ किया करते हैं।

अहंकार, बल, दर्प, काम और क्रोध से युक्त दूसरों की निंदा करनेवाले वे मेरे द्वेषी हैं। मैं इन द्वेष करने-वाले पापाचारी क्रूरकर्मी नराधमों को उनके कर्मों के कारण बार बार आसुरी योनियों में गिराता रहता हूँ। इस तरह से वे मूढ़ बार बार आसुरी योनियों को पाने के कारण मुझसे बहुत दूर चले जाते हैं।

भगवान् से कथित इस आसुरी स्वभाव के होने का कारण क्या है यह भी उन्हीं के शब्दों में—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

१६।२१

आत्मा को नाश करनेवाले—उसे भगवत्सत्ता से दूर हटा ले जानेवाले—तीन प्रकार के दोष नरक-प्राप्ति के द्वार हैं। इनके कारण मनुष्य अपना ज्ञान खो बैठता है। ये तीनों हैं काम, क्रोध और लोभ। जो लोग भगवत्-सामीप्य की अभिलाषा करते हैं उन्हें इन तीनों को त्याग देना चाहिए। इन तीनों के त्यागने पर ही—

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्॥

१६।२२

मनुष्य अपने श्रेयस्वरूप परा शक्ति को पाने की साधना में सफल होता है।

इस प्रकरण से हम जिस बात को समझे हैं उसे संक्षेप में यों कहा जा सकता है—

मनुष्य का श्रेय पराशक्ति के साथ संबंध स्थापित करने में है, जिसके द्वारा हमको भगवत्सामीप्य प्राप्त होता है परंतु इस संबंध को न होने देने में काम क्रोध, और लोभ सहायक हैं जिससे कि मनुष्य अपने वास्तविक ज्ञान को भूल जाता है और पराशक्ति को ग्रहण करने में असमर्थ रहता है। इसलिये भगवत्सामीप्य की अभिलाषा रखनेवाले को, अपने श्रेय की कामना करनेवाले को, काम, क्रोध और लोभ को त्यागकर पराशक्ति के साथ संबंध स्थापित करने की साधना करनी चाहिए।

भगवान् की दो प्रधान शक्तियाँ हैं। एक शक्ति का नाम है अपरा और दूसरी का नाम है परा। इन्हीं दोनों को उपनिषद् की भाषा में अविद्या और विद्या कहा गया है। अपरा का संबंध भूत-प्रपंच से है और परा का संबंध भगवच्चिच्छक्ति, आनंदशक्ति से है। जिस समय अपरा का संबंध परा से हो जाता है और परा शक्ति द्वारा भगवत्-शक्ति अपरा में उतरना प्रारंभ हो जाती है उस समय ही मनुष्य को भगवत्सान्निध्य का ज्ञान होता है। यही वह अवस्था है जिसमें मनुष्य को पूर्ण आनंद और पूर्ण सुख का ज्ञान होता है। यही अवस्था आत्मा के पूर्ण विकास की है जिसको प्राप्त कर लेने पर फिर पतन की संभावना ही नहीं रहती है। इसी अवस्था को

प्राप्त कर लेने की साधना मनुष्य को करनी आवश्यक होती है।

अपरा प्रकृति के दो विभाग किए जा सकते हैं। एक विभाग तो पंचभूत समष्टि का, जिसे हम शरीर कहते हैं; दूसरा विभाग मन, बुद्धि और अहंकार का। इन्हीं आठ तत्त्वों की समष्टि का नाम अपरा शक्ति है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
अपरेयम्..................................।

गीता, ७।४

पंचभूत-समष्टि, जिसका नाम कि शरीर है, में ही परा-शक्ति के संबंध कर लेने पर भगवत्-शक्ति का अवतरण होता है, इसलिये यह शरीर ही भगवान् का मंदिर कहा जाता है। भगवत्-शक्ति का उनके निज मंदिर शरीर में प्रतिष्ठित कराना ही शरीर की वास्तविक उपयोगिता है। इस शरीर-रूप मंदिर का अहंकार ही दरवान है और मन बुद्धि ही कपाट हैं। इन कपाटों का खोलना और बंद करना, किसी को इस मंदिर में प्रवेश करने देना या प्रवेश करने से रोक देना यह अहंकाररूपी दरवान का काम है। इससे यह मालूम होता है कि अपरा के साथ परा का संबंध करानेवाला और शरीर में भगवत्-शक्ति को प्रतिष्ठित करने में सहायता देनेवाला अहंकार नामक दरबान ही है। यदि इस दरबान को अपने पक्ष में कर लिया जाय तो हम शरीर-रूपी मंदिर में भगवच्छक्ति को ला सकते हैं, उनकी प्रतिष्ठा कर सकते हैं। अतः पराशक्ति के साथ संबंध करने के लिये अहंकार की साधना हमारे लिये आवश्यक हो जाती है।

अब देखना यह है कि यह अहंकार नाम की चीज है क्या और क्या क्या काम करती है?

पूर्व प्रसंग में बताया गया है कि काम-क्रोध और लोभ ही पराशक्ति के साथ अपरा का संबंध नहीं होने देते हैं और इसके बाद ही पराशक्ति का संबंध न होने देने और होने देने में अहंकार को सहायक माना गया है। इससे मालूम होता है कि अहंकार का काम, क्रोध और लोभ से घनिष्ठ संबंध है।

जिस समय अहंकार का संबंध केवल अपरा प्रकृति से रहता है अथवा शरीर से रहता है उस समय मन और बुद्धि नामक शक्तियाँ शरीर को ही "अहं" का बोध कराती हैं अर्थात् अहंकार ही शरीर का मालिक बन बैठता है जिसकी सीमा शरीर तक ही सीमित रहती है। शरीर के साथ सम्मिलित होने के कारण यह अहं प्रत्येक चीज की इच्छा शरीर के लिये ही करता है। भगव-त्पाद श्री शंकराचार्य ने अहंकार की परिभाषा की है कि—

'अहंकारम् अहंकरणम् अहंकारो देहेंद्रियादिषु तम्'

शरीर इंद्रियादि में अहंभाव करने का नाम अहंकार है। जब "शरीर ही मैं हूँ" समझ लिया जाता है उस समय इस मैं अर्थात् शरीर के लिये प्रत्येक काम होता है, प्रत्येक इच्छा होती है। इस शरीरार्थ की गई इच्छा का नाम ही काम है। शरीर के अहं बन जाने पर उसमें अभाव का खटकना स्वाभाविक है और उसी प्रकार उस अभाव की पूर्ति करने की इच्छा होना भी स्वाभाविक है परंतु इच्छा की पूर्ति न होने पर जो एक प्रकार की झुँझलाहट पैदा होती है वही क्रोध का रूप धारण कर लेती है। क्रोध के इस रूप को सर्व-साधारण प्रतिदिन ही अनुभव करते हैं। अभाव की पूर्ति के लिये संग्रह की बुद्धि होना भी स्वाभाविक है और इसी से प्रत्येक प्राप्त चीज को जोड़कर रखना तथा उसको व्यय न करना ही लोभ का स्वरूप है। इस संग्रह में सत्-असत् का ज्ञान तो रह ही नहीं सकता, न उचित और अनुचित का; क्योंकि शरीर को ही अपनी व्याप्ति की सीमा बनाकर रहनेवाला अहं अन्य किसी को अपने पास देख ही नहीं सकता। यही कारण

है कि अहं से युक्त शरीर अपना विस्तार नहीं कर पाता है और हमेशा निम्न वृत्तियों को धारण किए रहने के कारण सुख और शांति से कोसों दूर रहता है। यही अहं अपनी काम, क्रोध और लोभ की वृत्तियों द्वारा अपने उन तमाम गुणों में वृद्धि कर लेता है जिनका जिक्र पहले ही किया गया है और भगवान् ने जिसे आसुरी वृत्ति कहकर पुकारा है।

परंतु यही अहंकार शरीर में अहं की वृत्ति को स्थापित न कर जिस समय परा प्रकृति से अपना संबंध जोड़ लेता है उस समय भगवच्छक्ति का अनुभव करने के कारण इस छोटे से अहं को भगवान् में ओत-प्रोत पाता है। उस समय उसका अहं विराट् बन जाता है। तब उसे इस छोटे से शरीर के लिये न तो किसी चीज की आकांक्षा रहती है और न संग्रह करने की बुद्धि। अभाव न रहने पर, अभाव की पूर्ति न होने के कारण उत्पन्न क्रोध ही कहाँ आ सकता है। इस प्रकार काम, क्रोध और लोभ की सत्ता ही मिट जाती है। हाँ, परा-शक्ति के साथ संबंध हो जाने पर छोटा सा काम महत्काम, महदिच्छा में परवर्तित हो जाता है। उस समय विराट् के लिये ही सब कुछ इच्छा होती है; उसी के लिये सब का अर्पण होता है। यह महदाकांक्षा और समर्पण-रूप यज्ञ जिस समय होने लगता है उसी समय भगवत्शक्ति का भूत प्रपंच में अवतरण होता है। ऐसा होने पर ही हमें समझना चाहिए कि अब हमारा परा शक्ति के साथ संबंध हो गया। यही परा शक्ति—

···इतस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

गीता, ७।५

संसार का, विराट् का रूप धारण करती है। इसी के संबंध में पुराणों में कहा गया है—

ममैव सा परा मूर्तिस्तोयरूपा शिवात्मिका।
ब्रह्माण्डानामनेकानामाधारः प्रकृतिः परा।
......शिवस्य तोयरूपा परामूर्तिः।
तदेतत्परमं ब्रह्म द्रवरूपं महेश्वरि।
गंगाख्यं यत्पुण्यतमं पृथिव्यामागतं शिवे॥
गां गतेति ततो गंगा नाम्ना तस्या बभूव ह।

यह जल-स्वरूप गंगा और कुछ नहीं श्रद्धातत्त्व है जो कि अहंकार को भगवत्शक्ति से चिपका देता है। जल का गुण छितरी हुई या फैली हुई चीजों को मिला देना है। यह मिला देने का काम ही 'परा शक्ति करती है। अर्थात् गंगा की श्रद्धामयी धारा परात्पर-शक्ति के साथ अपरा का संबंध कर देती है और अपनी धारा के साथ उस शक्ति को अपरा प्रकृति में उतारती रहती है। यह पवित्र काम, यह अवतरण-क्रिया, यह पोषण और रक्षण गंगा के सिवाय और कौन कर सकता है। यह सब काम, जिसे गंगा करती है, प्रकृति में हम माता को करते देखते हैं, इसी से गंगा को गंगा माता भी लोग कहा करते हैं।

अपरा प्रकृति के साथ अहंकार का संबंध-विच्छेद कर देने पर जिस समय हम आकुल होकर पूर्ण समर्पण-पूर्वक माँ को गंगा गंगा कहकर—पराशक्ति का आश्रय लेने के लिये—पुकारते हैं ठीक उसी समय माँ हमारे पास दौड़ती हुई चली आती है और अपनी गोद में हमें उठा लेती है। माँ की गोद में, उसके आश्रय में, पहुँच जाने पर हमें कौन सा अभाव व्याप सकता है, कौन सा ताप तपा सकता है, कौन सा दुःख दुखी कर सकता है। उस समय तो हम साक्षात् भगवान् द्वारा आच्छादित रहते हैं, उनके लोक में निवास करते रहते हैं। पुराणकारों ने इसी बात को कितने अच्छे ढंग से प्रकट किया है—

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

दूसरों की आशा छोड़कर अपने शरीर के अहं को भुलाकर आत्म-समर्पण-पूर्वक माँ के आने के लिये संपूर्ण

(शेषांश पृ० ४७० पर)

गंगा का वैदिक विज्ञान

(ले०—श्री गौरीलालजी पाठक, शास्त्री)

पवित्र भारत में अधुनापि ऐसे तीर्थस्थान हैं जिनके केवल नाम मात्र से ही पातक-समूह नष्ट हो जाते हैं। किसी समय यही पुण्यप्रदेश महा-वैज्ञानिक ऋषियों से दीप्तिमान् था, जो प्रत्येक की उत्पत्ति जानकर उस पदार्थ के महत्त्व को समझते थे। जब तक किसी विषय को सम्यक् प्रकार से अवगत न कर ले तब तक उसकी आनंद-प्राप्ति असंभव है। आज वसिष्ठादि गोत्रवाले अपने महत्त्व को भूले हुए हैं, उन्हें यह भी मालूम नहीं कि वसिष्ठ-गोत्र का—जो हम स्वमुख से कह रहे हैं—तात्पर्य क्या है। इसी प्रकार हम बड़े बड़े पुण्यतम तीर्थों में जाकर स्नान करते हैं, दान-पुण्य सभी कुछ करते-कराते हैं, परंतु यह नहीं जानते कि 'गंगा' यह नाम इस तीर्थ का क्यों पड़ा। इतर जलों की अपेक्षा गंगाजल में क्या विशेषता है? गंगाजल में स्नान करने से मोक्ष-प्राप्ति किस प्रकार संभव है? किस प्रकार यही गंगा भगवती भागीरथी, त्रिपथगा, विष्णुपदी, ब्रह्मद्रवी इत्यादि शब्दों से व्यवहार में कही जा सकती है? इन सब प्रश्नों का समाधान करना दुष्कर होते हुए भी किंचित् विचार किया जाता है।

इस सप्तवितस्तिकायात्मक महाब्रह्मांड में आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक तीन मंडल हैं। इन मंडलों में आधिदैविक प्रपंच से आधिभौतिक की उत्पत्ति हुई है। आधिदैविक और आधिभौतिक दोनों के संमिश्रण-रूप से अध्यात्म-प्रपंच का विकास होता है। ऊपर कहे हुए तीनों मंडलों में प्रधानरूप मूलभूत आधिदैविक मंडल पंचमंडलात्मक है। इसलिये यह सब भी जो कुछ हम देख रहे हैं प्रपंच कहा जाता है। अधि-दैव के भीतर निम्नलिखित क्रमशः पाँच मंडल विज्ञान-जगत् में—प्राण-आप-वाक्-अन्न-अन्नाद—इन नामों से प्रसिद्ध हैं। इनमें मौलिकतत्त्व-विशेष, सर्वसृष्टि का प्रवर्त्तक, सारे संसार में व्यापक, शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध से शून्य, इसी प्रकार 'अधामच्छत्' जगह रोकनेवाला नहीं है।

उस मौलिकतत्त्व को प्राण शब्द से, किंवा ऋषि शब्द से महर्षि जन व्यवहार करते हैं, जैसा कि वाजसनेय श्रुति में कहा है—

'असद्वा इदमग्र आसीत्। तदाहुः—किं तदसदासीदिति? ऋषयो वाव तदग्रेऽसदासीदिति। तदाहुः—के ते ऋषय? प्राणा वा ऋषयः। ते यत् पुराऽस्मात् सर्वस्मादिदमिच्छन्तः श्रमेण तपसा 'अरिषंस्तस्माद् ऋषयः' इति। (श० ब्रा० ६ कां०)

श्रुति में बतलाए हुए 'इदम्' इस शब्द से ऋषि निर्देश करते हैं कि व्यवह्रियमाण सृष्टि के पहले असदात्मक सारे जगत् का प्रभव, प्रतिष्ठा-परायण, कोई तत्त्व-विशेष था। वही प्राण है। जिस वस्तु में प्राण रहता है वह वस्तु 'सत्'शब्द से कही जाती है। 'सामान्ये सामान्याभावः' इस न्याय के अनुसार जैसे मनुष्यत्व में मनुष्यत्व का अभाव, घटत्व में घटत्व का अभाव, उसी प्रकार सत्-स्वरूप-संपादक प्राण में प्राण का अभाव है। इसलिये उस प्राणतत्त्व को विद्वान् असत् शब्द से कहते हैं। यही है देवपद को प्राप्त करनेवाले विद्वानों की परोक्ष-प्रियता, जैसा कि

नैगमिक लोग कहते हैं "परोक्षप्रिया इव हि देवाः"।

इस प्रकार इस महाब्रह्मांड में असदात्म प्रथम प्राणमंडल है। उसी प्राणमंडल को वैज्ञानिक 'स्वयंभूमंडल' कहते हैं। इसी जगत् के निर्माता प्राणात्मक स्वयंभू से सबसे पहले अप् की उत्पत्ति हो जाती है। केंद्र में, विजातीय अनंत प्राणों में घर्षण होने के कारण अप् की उत्पत्ति हुई है। घर्षणाधीन इन्हीं ऋषि-प्राणों से आपोधारा चारों ओर झरने लगी। वह ऋषिप्राण आप्य प्राणवत् किसी से उत्पन्न नहीं किया गया; किंतु स्वयं उत्पन्न हुआ है, अतः 'स्वय' भवतीति' इस व्युत्पत्ति से यह ऋषिप्राण स्वयंभू शब्द से कहा जाता है। इस प्रकार सबसे पहले प्राणात्मक स्वयंभू से अप् की उत्पत्ति ही होती है—इसी को लक्ष्य में रखकर भगवान् मनु कहते हैं—

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥१॥
योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥ २ ॥
सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप् एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ ३ ॥ —मनुः।

ब्रह्मनिःश्वसित वेद, ब्रह्मस्वेद वेद, यज्ञमातृक वेद, यह वेदतत्त्व चतुर्धा विभक्त देखना चाहिए। इसी को अभिप्रेत करके कहा है—'चतुष्टयं वा इदं सर्वम्'। वहाँ स्वायंभुव वेद ही ब्रह्मनिःश्वासित वेद है। निश्चयात्मक बुद्धि से वेद ऋक्, साम, यजु, इस प्रकार से त्रिधा विभक्त है। ऋक् छंदोवेद, साम वितानवेद, यजु रसवेद कहलाता है। प्रकारांतर से ऋक् को मूर्ति, यजुर्वेद को गति और साम को तेज कहा है। जैसा कि कृष्ण-श्रुति में बतलाया है—

"ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्तिमाहुः
सर्वा गतिर्याजुषी हैव शश्वत्।
सर्वं तेजः सामरूप्य ह शश्वत्
सर्वं हीदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम् ॥"

यजु को स्थितिगत्यात्मक वेद कहा गया है। यत्-भाव गति-तत्त्व और जू-भाव स्थिति-तत्त्व को लिए हुए है। यत् और जू मिलकर यज्जूः होता है। यज्जू ही परोक्षप्रिय देवताओं के समय में यजु कहलाता था और आज भी यजु ही है। ऋक्साम को वयोनाध, यजु को वय कहते हैं। शतपथ के दशम कांड में अग्नि-रहस्य के वेत्ताओं ने कहा है कि "ऋक्सामे यजुरपीतः" यजु से ही सर्वसृष्टि का विधान किया जाता है। जैसे कि पूर्व में कहा है कि यत्-भाव गति-तत्त्व है। यही तत्त्व वायु है और स्थिति-तत्त्व आकाश है। वैसा ही श्रुति में कहा है—

अयं वाव यजुर्योऽयं पवते। एष ही यन्नेवेदं सर्वं जनयति। एतं यन्तमिदमनु प्रजायते। तस्माद् वायुरेव यजुः। अयमेवाकाशो जूः। यदिदमन्तरिक्षम्। एतं ह्याकाशमनु जवते। तदेतद्यजुर्वायुश्चान्तरिक्षञ्च। यच्च जूश्च। तस्माद्यजुः। तदेतद्यजुर्ऋक्सामयोः प्रतिष्ठितम्। ऋक्सामे वहतः ३ (श० ब्रा० कां० १०) इति।

यजुर्वेद में आकाश-भाग अमृत मृत्यु-भेद से दो प्रकार का है। अमृताकाश को इंद्र कहते हैं। उसी इंद्र को ऋक्संहिता में 'शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रम्' इत्यादि रूप से महर्षियों ने निरूपण किया है। 'नेन्द्रादृते पवते धाम किञ्चन इति' इस मंत्रवर्ण से अमृताकाशात्म यह इंद्र सर्वत्र व्यापक है। यही वैज्ञानिक जगत् में सुंदर-सुद्दर सुत्थर-सुथरा—इसी क्रमानुसार क्रमशः इंद्रः—इंदरः-इत्थरः एवंरूपेण परिवर्त्तमान 'ईथर' माना जाता

है। इसी अमृतमय इंद्र के साथ नित्य संबद्ध मर्त्याकाश वाग् नाम से प्रसिद्ध है। यही वाक् इंद्रपत्नी कही जाती है "तस्यैतस्याग्नेर्वागेवोपनिषत्" इस श्रुति से मर्त्यावाक् अग्निमयी है। यही अग्नि वेदाग्नि कहलाती है। यत् स्वरूप वायु के व्यापार से यह वाङ्मय अग्नि ही अंशात्मना द्रुत होकर अप्रूप को प्राप्त हुई है। इसी लक्ष्य को लेकर शतपथ ब्राह्मण के चयनप्रकरण में कहा है—

प्रतिष्ठा ह्येषा यद् ब्रह्म। तस्यां प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितोऽतप्यत। सोऽपोऽसृजत् वाच एव लोकात्। वागेव साऽसृज्यत। सा इदं सर्वमाप्नोद्यदिदं किञ्च। यदाप्नोत्तस्मादापः। यदवृणोत् तस्माद् वाः।—श० ब्रा० कां० ६

वेदवाक् से सबसे पहले अप् की उत्पत्ति ही होती है। वही वेदवाक् सबकी जननी 'उत्पन्न करनेवाली' है। इसी रहस्य को अभिप्रेत करके मनु कहते हैं—

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्म्ममे॥
चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भवच्चैव सर्वं वेदात् प्रसिध्यति॥ इति।

इस प्रकार यह दूसरा आपोमंडल हुआ। यही आपोमंडल परमेष्ठी कहा जाता है। जलों के घर्षण से उस आपोमय सरस्वन्नामक महासमुद्र में अप् के परमाणु यज्ञवराहमूर्त्ति से वायु के क्रम से घनीभूत होते हुए समुद्र-केंद्र में प्रज्वलित होते हुए मंडलाकार हो जाते हैं। इसी अग्निपिंड के संबंध में मनु ने कहा है 'तासु बीजमवासृजत्'। यह तीसरा वाङ्मंडल हुआ। सूर्यमंडलात्मिका इसी वाक् से ऋक्यजुःसामात्मिका त्रयीविद्या का प्रादुर्भाव होता है। यही ब्रह्मनिःश्वसित वेद से भिन्न गायत्री-मातृक वेद कहलाता है। वेदोपादानभूता यही सौरी वाक् वेदों की माता कही जाती है। कृष्णश्रुति में कहा है—

वागक्षरं प्रथमजा ऋतस्य वेदानां माताऽमृतस्य नाभिः।
सा नो जुषाणोपयज्ञमागादवन्ती देवी सुहवा मेऽस्तु॥

(तै० ब्रा०)

इसी को ब्राह्मणश्रुति में इस प्रकार कहा गया है—

सा या सा वाक्—असौ स आदित्यः। स एष मृत्युः। तस्माद्यत् किञ्चार्वाचीनमादित्यात् सर्वं तन्मृत्युनाप्तम्। यदेतन्मण्डलं तपति तन्महदुक्थम्। ता ऋचः। स ऋचां लोकः।
अथ यदेतदर्चिर्दीप्यते तन्महाव्रतम्। तानि सामानि। स साम्नां लोकः। य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः सोऽग्निः। तानि यजूंषि। स यजुषां लोकः। सैषा त्रय्येव विद्या तपति। तद्धैतदविद्वांस अप्याहुः—त्रयी वा एषा विद्या तपतीति॥

(श० ब्रा० कां० १)

सूर्य-किरणों के घर्षण से फिर द्वितीय आप् उत्पन्न होता है। सूर्यरश्मि-घर्षण से उत्पन्न आप् वेनरूप से, 'सोलर सिस्टम्' नाम से प्रसिद्ध सूर्यमंडल में व्याप्त आप् मरीची नाम से कहा जाता है। 'अंभः' इस नाम से प्रसिद्ध पारमेष्ठ्य-आप् जैसे गंगारूप में परिणत होता है उसी तरह मरीची आप् यमुना-स्वरूप में परिणत होता है। चाक्षुष-कृष्ण नाम से प्रसिद्ध सौरकृष्ण का यमुना के साथ नित्य-संबंध है। उसी प्रकार गंगा का विष्णु के साथ नित्य-संबंध है। उस सौरमंडलस्थ अर्णव नाम से प्रसिद्ध आप् के समुद्र में रुद्राग्नि के प्रवेश करने से रासायनिक प्रक्रिया के द्वारा क्रम से आपः[1]—फेन[2]—उषः[3]—सिकता[4]—शर्करा[5]—अश्मा[6]—अयः[7]—हिरण्य[8] यह अष्टव्याहृत्यात्मक पृथ्वीमंडल उत्पन्न होता है। अर्थात् अप् और अग्नि के

संयोग से—आप् के शैत्यनाश से—अग्नि के ताप-नाश से तृतीय एक अनुष्णाशीत द्रव्य उत्पन्न हो जाता है। वही पृथ्वीमंडल कहा जाता है। इसी कारण पृथ्वी अप् फेन आदि भेद से अष्टव्याहृत्यात्मिका है।

इसी लिये 'अष्टाक्षरा वै गायत्री' इस शब्द रूप-गायत्री छंद के सादृश्य होने से पृथ्वीमंडल को 'गायत्री' शब्द से वैज्ञानिक कहते हैं—जैसा कि सामिधेनि ब्राह्मण में कहा है—

'देवाश्च वा असुराश्च उभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे। तान् स्पर्द्धमानान् गायत्री अन्तरा तस्थौ। या वै सा गायत्री आसीत्—इयं वै सा पृथिवी। इयं हैव तदन्तरा तस्थौ' इति। (शतपथ काण्ड १)

पृथ्वी के गर्भ में रहनेवाली अमृताग्नि ही अंतरिक्ष में सर्वतोव्याप्त सोमात्मक अन्न को खाता है। इसी सोमाहुति-स्वरूप यज्ञ से केंद्र में प्रतिष्ठित होते हुए अमृताग्निरूप भगवान् प्रजापति इस पृथ्वीमंडल की रक्षा करते हैं। इस केंद्रस्थ प्रजापति को विज्ञान-मार्ग में रत विद्वान् ही जानने में समर्थ हो सकते हैं—साधारण मनुष्य नहीं। जैसा कि कहा है—

'तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः—
तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा'। इति।

अतः यह सिद्धांत है कि पृथ्वीपिंडस्थ अमृताग्नि-स्वरूप प्रजापति सोमरूपी अन्न को खाया करता है इसी लिये यह पृथ्वीमंडल शरीर-शारीर के भेद से अन्नादमंडल कहा जाता है। जो भोक्ता होता है वही वैदिक भाषा में अन्नाद शब्द से प्रसिद्ध है। इस प्रकार यह चतुर्थ अन्नाद-मंडल हुआ। इसके अनंतर पृथ्वीमंडल में स्थित पारदर्शित्वप्रतिबंधक अत्रिनेत्र अर्थात् अत्रिप्राण से सोम की उत्पत्ति हुई है। ब्रह्मांडपुराण में कहा है—

ऊर्ध्वमाचक्रमे तस्य सोमत्वं भावितात्मनः।
नेत्राभ्यामस्रवत् सोमो दशधा द्योतयन् दिशः॥ १॥

इस प्रकार अत्रिप्राण से उत्पन्न पंचम अन्न-मंडल हुआ। यही अत्रिपुत्र चंद्रमा कहलाता है। यही अग्नि का अन्न है। जैसे कि—

"ते देवा अब्रुवन्—न वा इममन्यत् सोमाद्धिनुपात्। सोममेवास्मै सम्भराम। तस्मै सोमं समभरत। एष वै सोमो राजा देवानामन्नं यच्चन्द्रमाः"। शत० ब्रा०, कां० १

उक्त प्रकार से क्रमशः ५ मंडल बतलाए गए। इनमें—प्राण प्रजापति स्वयंभू, आप् पर-मेष्ठी विष्णु, वाग् इंद्र सूर्य, अन्नाद अग्नि पृथ्वी, अन्न सोम चंद्रमा। यह सब देवता दर्शपूर्णमास यज्ञ से हुए। इसी को लक्ष्य में रखते हुए दर्श-पूर्णमास यज्ञ-रहस्य में बतलाया है—

"ता वा एताः प्रजापतेरधिदेवता असृज्यन्त —अग्नि-रिन्द्रः सोमः परमेष्ठी प्राजापत्यः। स आपोऽभवत्। आपो वा इदं सर्वम्। ता यत् परमे स्थाने तिष्ठन्ति—तस्मात् पर-मेष्ठी नाम। स प्राणोऽभवत्। प्राणो वा इदं सर्वम्। यद्वै किञ्च प्राणि स प्रजापतिः। सा वागभवत्। वाग्वा इदं सर्वम्। तस्मादाहुरिन्द्रो वागिति। अन्नाद एवाग्निरभवत्, अन्नं सोमः। अन्नादश्च वा इदं सर्वमन्नं च। ता वा एताः पञ्च देवता एतेन कामप्रेण यज्ञेनायजन्त"॥ इति।

तात्पर्य—स्वयंभू, परमेष्ठी, सूर्य, पृथ्वी, चंद्रमा—यह भौतिक पिंड हैं। स्वयंभू आकाश, परमेष्ठी वायु, सूर्य तेज, पृथ्वी मृत्, चंद्रमा आप् है। जैसे कि श्रुति है—

'अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि' इति श्रुतेः।

भूतपिंडों में क्रमशः ब्रह्मा-विष्णु-इंद्र-अग्नि-सोम यह पाँचों देवता प्रतिष्ठित हैं। इनमें ब्रह्मा प्राणमय, विष्णु आपोमय, इंद्र वाङ्मय, अग्नि अन्नादमय, सोम अन्नमय कहा जाता है।

पाँचों प्राण—आप् वागादि की समष्टि को शब्दांतरेण पंचभूतों की समष्टि कह सकते हैं। पुरुषों में अव्ययपुरुष का, योग में बुद्धि-योग का

प्रतिपादक विज्ञानप्रधान गीताशास्त्र में जो 'क्षर' शब्द से प्रसिद्ध है वही प्रथम पुरुष कहलाता है। इसी के आधार पर ब्रह्मा-विष्णु-इंद्र-अग्नि-सोम स्थित हैं। पंचात्मक भूतप्रपंच ही क्षर पुरुष है, यह पुरुष सांख्यदर्शन में अव्यक्त नाम से, और वेदान्त दर्शन में सेतु नाम से प्रसिद्ध, सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, सर्ववित्, अतएव सृष्टि का प्रवर्तक द्वितीय अक्षर पुरुष है। इसी को मध्यम पुरुष कहते हैं। यही सबका आधार है—इसी लिये कहा है—

'एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥

इस रूप से ऊपर वर्णित—आनंद, विज्ञान, मन, प्राण, वाग्भेद से पंचकल तृतीय अव्यय पुरुष है। यही उत्तम पुरुष है। सर्वभूत क्षर है। वही विश्व का उपादान कारण है। भूतकूट पर प्रतिष्ठित तत्त्व अक्षर है। यही निमित्तकारण कहलाता है। इन दोनों का आलंबन अव्यय-पुरुष ही है। इसी त्रिपुरुष पुरुषात्मक विज्ञान को लक्ष्य में रखकर भगवान् कहते हैं—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥ १॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥ २॥

वहाँ पंचकलात्मक क्षर की जो प्रथमा ब्रह्मकला है वह उस प्राणाक्षर से संबंध रखती है। विष्णु के साथ आप् की, इंद्र के साथ वाक् की, अग्नि के साथ पृथ्वी की और सोम के साथ अन्न की कला संबंध रखती है। इस प्रकार यह पाँच मंडल ब्रह्ममंडल, विष्णुमंडल, इंद्रमंडल, अग्निमंडल, सोम-मंडल, इन नामों से प्रसिद्ध है। ब्रह्माक्षरमय-मंडल प्राणमय, विष्णवक्षरमय परमेष्ठिमंडल आपो-मय, इंद्राक्षरमय सूर्य्यमंडल वाङ्मय, अग्न्यक्षरमय पृथ्वीमंडल अन्नादमय, इसी प्रकार, सोमाक्षरमय चंद्रमंडल अन्नमय है। इस प्रकार प्राण-आप्-वाग्-अन्नाद-अन्नात्मक,स्वयंभू-परमेष्ठी-सूर्य-पृथिवी-चंद्रमा इन पाँच मंडलों की समष्टि को ही आधि-दैविक मंडल जानना चाहिए। इसी मंडल से मर्त्यभावप्रधान पृथिवी-अप्-तेज-वायु-आकाश इनकी समष्टि आधिभौतिक की उत्पत्ति है। इन मंडलों में स्वयंभू आदि क्रम से गुहा-आप-ज्योति-रस-अमृत इन नामों से भी प्रसिद्ध होते हैं। गुहा को स्वयंभू, आप को परमेष्ठी, ज्योति को सूर्य्य, रस को पृथिवी, अमृत को चंद्रमा कहते हैं। इन्हीं आधिदैविक आधिभौतिक दोनों के सम्मिश्रण से अध्यात्म की उत्पत्ति बतलाई गई है। अध्यात्म-प्रपंच के भीतर अव्यक्तात्मा स्वयंभू, महानात्मा परमेष्ठी, विज्ञानात्मा सूर्य्य, प्रज्ञानात्मा मन, शरीर, पृथ्वी है। सबसे पहले पार्थिव भौतिक शरीर, उसके बाद इंद्रियाँ, प्रज्ञान (मन)। सूर्य्यांशभूता विज्ञानात्मिका बुद्धि, पारमेष्ठ्यांशभूता महानात्मा और स्वयंभूरूप अव्यक्त है। इनके अनंतर आत्म-क्षराक्षराव्ययरूप षोडशी पुरुष है, जिससे परे कुछ भी नहीं है। इसी आध्यात्मिक क्रमिक विज्ञान को भगवान् वेदपुरुष ने कहा है—

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥ १॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः॥ २॥

इससे यह भी सिद्ध हो गया कि जो पदार्थ अधिदैव में है वही, उसी क्रम से, अध्यात्मप्रपंच में सन्निविष्ट है। उपनिषत् श्रुति में कहा है—

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति॥

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

पदार्थ मात्र का मौलिक तत्त्व प्राण है। वही (ऋषयः) ऋषि है। तज्जन्य पारमेष्ठ्य-सौम्य प्राण पितर हैं। उससे उत्पन्न आग्नेय प्राणदेव है, 'आप्य प्राण असुर कहलाते हैं' यह एक वैदिकी सामान्य परिभाषा कहलाती है। यही पूर्वोक्त प्राण-आप्-वागादि-रूप सृष्टि-कर्म का वर्णन करते हुए भगवान् मनु ने कहा है—

ऋषिभ्यः पितरो जाता पितृभ्यो देवदानवाः ।
देवेभ्यश्च जगत्सर्वं चरं स्थाएवनुपूर्वशः ॥ मनु

पूर्व कथन से यह सिद्ध होता है कि प्राण-मंडलानंतर, शब्दांतर से स्वयंभू-मंडल के बाद दूसरा परमेष्ठिमंडल है। यह विश्वचरसत्ता से विष्णु नाम से प्रसिद्ध परमेष्ठी, भगवान् सूर्य ब्रह्मांड से भी परमस्थान में स्थित है इसलिये इसे परमेष्ठी शब्द से कहा जाता है। भिन्न भिन्न मंडलों से भिन्न भिन्न पदार्थ उत्पन्न होते हैं। उत्पन्न पदार्थों में तत्तत् मंडल की स्थिति भी होती है। इसी लिये ये पदार्थ 'मनोता' शब्द से कहे जाते हैं। उन उन पदार्थों में उन उन मंडलों का मन ओत-प्रोत रहता है अतएव वे मनोता कहे जाते हैं। जैसे कि श्रुति में कहा है—

"तिस्रो वै देवानां मनोता। तस्यामेव तेषां मनांस्योतानि। वाग्वै देवानां मनोता। तस्यां हि तेषां मनांस्योतानि। अग्निर्वै देवानां मनोता। तस्यां हि तेषां मनांस्योतानि"। (ऐत० ब्रा०)

प्रत्येक मंडल में तीन तीन मनोता उत्पन्न होते हैं। यथा:—वेदा-वेदा-सूत्रं-नियतिः यह तीन मनोता प्राणमय स्वयंभूमंडल में पैदा होते हैं। भृगु-अंगिरा-अत्रि— यह तीन आपोमय परमेष्ठि-मंडल के भीतर। ज्योतिः—गौः—आयुः यह तीन वाङ्मय सूर्य में। रेतः-श्रद्धा-यशः—यह तीन अन्न-मय चंद्रमा में। वाग्—गौ—द्यौः यह तीन अन्नादात्मक पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार पाँचों में तीन तीन करके पंचदश संपन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसलिये छांदोग्य श्रुति में बतलाया है—

यानि पञ्चधा त्रीणि त्रीणि तेभ्यो न ज्यायः परमन्यदस्ति ।
यस्तद्वेद स वेद सर्वं सर्वा दिशो बलिमस्मै हरन्ति ॥

इन मनोताओं में परमेष्ठिमंडल के जो भृगु-अंगिरा-अत्रि-भेद से तीन मनोता हैं उनका ही प्रकृति में संबंध है। घन-तरल-विरलावस्थात्रय भेद से आपः-वायुः-सोम यह तीन भृगु-संपन्न होते हैं। अग्निः-यमः-आदित्यः—यह तीन अंगिरा के भेद हैं। तृतीय—अत्रि-प्राण भृगु-अंगिरावत् तीन प्रकार का नहीं है—इसलिये 'न त्रिः' इस व्युत्पत्ति से वह अत्रि शब्द से कहा जाता है। तात्पर्य यह है की आपोमय परमेष्ठिमंडल में—भृगु-अंगिरा-अत्रि यह तीन उत्पन्न होते हैं। पूर्व में बतलाया गया है कि भृगु-प्राण अवस्था तारतम्य से आप्-वायु-सोमात्मक है। आजकल इस पदार्थ को आक्सिजन शब्द से कहते हैं। वही हमारा पहले कहा हुआ पवमान नाम का भार्गव वायु है। इसी भृग्वंगिरात्मक आपोमय परमेष्ठिमंडल को लक्ष्य में रखकर श्रुति कहती है—

आपो भृग्वङ्गिरोरूपमापो भृग्वङ्गिरोपमम् ।
अन्तरैते त्रयो वेदा भृग्वङ्गिरसः श्रिताः ॥

इस प्रकार इस परमेष्ठिमंडल में जो सोम उत्पन्न होता है वही सारे संसार के पदार्थों को पवित्र करता है। पवित्रीकरण-शक्ति (पवित्र करने की शक्ति) इसी सोम में पाई जाती है। सोम के संसर्ग से दूषित परमाणु उसी समय नष्ट हो जाते हैं। यही सोम—'तृतीयस्यां वै दिवि

सोम आसीदिति" इस श्रुति के अनुसार सूर्य्य से भी ऊर्ध्वस्थान में तृतीय द्यु में रहता है। इसी पवित्र सोम को अर्थज्ञ विद्वान्गण ब्रह्मणस्पति कहते हैं। इसी ब्रह्मणस्पति सोम को लक्ष्य करके भगवान् वेदपुरुष कहते हैं—

"पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्ततनोर्नतदामो अश्नुते श्रृतास इद् वहन्तस्तत् समाशत्"॥
(ऋ० स०)

पक्व पदार्थों में यह सोम चारों ओर से वेष्टित होता है। सोम दूषित परमाणुओं का विनाश करता है, पीने पर बुद्धि को बढ़ाता है, गौ रूप सूर्य्य-रश्मियों को उत्पन्न करता है। प्रकाश को पैदा करता है तथा औषधियों का पोषण और धारण करता है। इन सब सोम-गुणों को ध्यान में रखते हुए महर्षि कहते हैं—

'सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितेति विष्णोः॥१॥
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः।
त्वमाततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषां वि तमो ववर्थ ॥२॥
(ऋ० सं०)

यह पवित्र सोम, अंभो नाम का आप परमेष्ठि-मंडल से उतरता है (अवतार लेता है) यही गंगावतार कहा जाता है। यह अंभोमय सोम सूर्य-मंडल को छेदन करके उसी द्वार से हमारे पृथ्वी-मंडल में आकर सब जगह फैल जाता है। सूर्य्य निश्चय करके आग्नेय प्राणों का समूह है—इसलिये परमेष्ठि से आए हुए अंभोमय शैत्य-प्रधान सोम का और सौराग्नि का परस्पर विरोध होने से इन दोनों का संघर्ष उत्पन्न होता है। अंततोगत्वा सूर्यरश्म्यवच्छिन्ना आग्नेयप्राण अंभोमय पवित्र सोम को उत्तर दिशा में फेंकता है। अतएव यह दिशा सौम्यादिक् कही जाती है। सोम ही इस दिशा का लोकपाल है। इस तरह सूर्य-रश्मियों से फेंका हुआ सोम चंद्रमंडल द्वारा उत्तर दिशा में गिरता हुआ वहाँ स्थित स्थूल जलों के समूह से सम्मिश्रित हो जाता है। उत्तर-दिशा में हिमालय पर्वत से निकली हुई सोममयी नदी वही त्रिपथगा भगवती भागीरथी गंगा कही जाती है। सबसे पहले यह सोम कुटिल गति द्वारा सरल मार्ग से सूर्य में आता है। सूर्य से तिरछा फेंका हुआ उत्तर दिशा में जाता है। फिर पृथ्वी-मंडल में आता है। इस प्रकार इस भगवती गंगा का त्रिपथगात्व सम्यक्तया सिद्ध हो जाता है। परमेष्ठि विष्णु का स्वरूप पहले ही कहा गया है—यह सोम इसी परमेष्ठी विष्णु से उत्पन्न होता है—इसलिये यह गंगा विष्णुपदी कहलाती है। सूर्यमंडल को छेदन करके यह आत्मा सूर्य से ऊपर परमेष्ठी-रूप में गोसव नाम से प्रसिद्ध गोलोक में जाता है। वह फिर वापस नहीं लौटता है—वह फिर वापस नहीं लौटता है (न स पुनरावर्त्तते न स पुनरावर्तते)। यही उसकी मुक्ति है। वहाँ ही मुक्तिस्थानापन्न गांगेय सोम है, जो गंगाजल में विद्यमान है। अतः उसके संबंध से आत्मा में गंगा उस प्रकार की शक्ति उत्पन्न करती है जिससे आत्मा सूर्य-भेदन में समर्थ होता है। इसी लिये मुक्ति के देनेवाले गंगाजल में आत्म-समर्पण करने से आत्मा को कृतकृत्य मानते हुए लोग धन्य कहते हैं—

'काकैर्निष्कुशितं श्वभिः कवलितं गोमायुभिर्लुण्ठितम्
स्रोतोभिश्चलितं तटाम्बुलुलितं वीचिभिरान्दोलितम्।
दिव्यस्त्रीकरचारुचामरमरुत्संवीज्यमानः कदा
द्रक्ष्येऽहं परमेश्वरि त्रिपथगे भागीरथि स्वं वपुः'॥

योग-साधना में गंगा का महत्त्व

(लेखक—ब्रह्मचारी श्री आनंद)

शरीर का आत्मा के साथ घनिष्ठ संबंध है। बिना शरीर का आश्रय लिए आत्मा की तो अभिव्यक्ति ही नहीं हो सकती और न आत्मा की प्राप्ति ही। इसी लिये ब्रह्मोपासना, आत्म-साक्षात्कार आदि के लिये शरीर की साधना अत्यंत आवश्यक होती है।

शरीर की स्थिति अन्न पर निर्भर है और आत्मा की स्थिति प्राण पर। आत्मा का स्थूल रूप जिस प्रकार शरीर है उसी प्रकार प्राण का स्थूल रूप अन्न है। आत्मा की उन्नति तथा उसकी अभिव्यक्ति होने में शरीर की जितनी आवश्यकता है, शरीर से भली भाँति काम लेने के लिये प्राण की भी उतनी ही आवश्यकता है। कहना चाहिए कि अन्न का सूक्ष्मांश ही प्राण है। और प्राण ही समस्त शरीर में आत्मारूप से व्याप्त है। अथवा इसे हम यों भी कह सकते हैं कि आत्मा की शक्ति का नाम ही प्राण है और प्राण ही अपनी क्रिया द्वारा शरीरादि रूप में व्यक्त होता है।

यह तो सभी को अनुभव है कि प्राण निकल जाने पर शरीर मिट्टी में मिल जाता है, अपने असली रूप में नहीं रहता। परंतु मिट्टी भी तो आखिर किसी में जाकर मिलती ही होगी। शास्त्रों में ऐसा पाया जाता है कि मिट्टी अपने कारण में लीन होती हुई अंत में प्राण की अवस्था प्राप्त कर लेती है। जब प्राण से ही तमाम शरीर की उत्पत्ति हुई है या प्राण का ही यह शरीर रूपांतर है तब सबका तिरोभाव प्राण में ही होगा यह स्वतः सिद्ध है। प्राण को कर्त्ता, हर्त्ता और कारण मान लेने के पश्चात् यह मानने में कभी आगा-पीछा नहीं किया जा सकता कि प्राण को वश में कर लेना ही जीवन और मृत्यु को वश में कर लेना है।

समस्त संसार में हम तीन बातें प्रत्यक्ष देखते हैं जिनमें से पहली का नाम इच्छा, दूसरी का नाम ज्ञान और तीसरी का नाम क्रिया है। परंतु यदि विज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो ये तीनों ही इच्छा का रूपांतर दिखाई देंगी।

किसी काम के करने के पूर्व मनुष्य इच्छा करता है फिर कैसे किया जाय और क्या करे इसे समझता है तब वह उसको कर डालता है। इन तीन रूपों में इच्छा का विकास स्पष्ट दिखाई दे रहा है। यद्यपि अवस्था-विशेष के कारण हम तीन रूप देख रहे हैं परंतु वास्तव में है सब एक ही।

प्राण ही तो इच्छा है। इसी को अपने-अपने स्थान पर कार्य-भेद से अनेक नाम दिए गए हैं। यही शक्ति समूह बनकर मूलाधार चक्र पर अवस्थित है। यह स्थान गुदा और शिश्न के मध्य का भाग है। यहीं से पृष्ठवंश का प्रारंभ होता है जिसके आधार से प्राण अपने अनेक रूपों में नाड़ियों द्वारा समस्त शरीर में क्रिया कर रहा है।

मूलाधार से पृष्ठवंश या मेरुदंड का आश्रय लेकर प्राण की तीन शक्तियाँ अपना अपना काम करने के लिये या अपनी अभिव्यक्ति करने के लिये सहस्रार की ओर बढ़ती हैं। यह सहस्रार ही ब्रह्मांड की समस्त शक्तियों का केंद्र है।

मूलाधार में व्यष्टिगत प्राण रहते हैं और सहस्रार में समष्टिगत। व्यष्टि और समष्टिगत प्राणों का संयोग होने पर ही प्राण की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है। अथवा इसे हम यों भी कह सकते हैं कि आत्मा अपना पूर्ण विकास कर सकता है। बात एक ही है, केवल कहने के ढंग भिन्न भिन्न हैं।

मूलाधार के समीप का प्राणपिंड सुप्तावस्था में रहता है। उसे जगाकर उसकी पृथक् पृथक् शक्तियों का सहस्रार में एकीकरण कर देना—बस यही योग का एकमात्र ध्येय है।

मूलाधार में प्राण सुप्तावस्था में रहने पर भी कुछ न कुछ काम करता ही रहता है। इस बात को हम अगर यों कहें तो अच्छी तरह समझ में आ जायगा कि व्यष्टिगत प्राण समष्टिगत प्राण से पूर्ण एकत्व अवस्था में संबंधित न रहने के कारण पूर्ण शक्ति से काम नहीं कर पाता है अर्थात् सोया सा रहता है।

पृष्ठवंश, मेरुदंड या रीढ की हड्डी का आश्रय लेकर प्रधान तीन नाड़ियाँ आज्ञाचक्र अर्थात् भ्रूमध्य तक प्रवाहित होती हैं। ये तीनों नाड़ियाँ वास्तव में प्राण-शक्ति के ऊपर जाने के मार्ग हैं।

पाठकों को अनुभव होगा—और यदि न हो तो अनुभव करें—कि कभी बाईं नाक से श्वास निकलती है और कभी दाईं नाक से। कभी कभी दाईं और बाईं दोनों ओर से एक साथ श्वास निकलती है। श्वास चलने का यह क्रम ही प्राण की तत्तत् शक्ति के प्रवाहित होने का परिचय देता है।

श्वास-प्रवाहिका इन्हीं तीनों नाड़ियों को इडा, पिंगला और सुषुम्ना कहते हैं जो कि क्रमशः ज्ञान, क्रिया और इच्छात्मिका हैं। दूसरे शब्दों में इन्हीं नाड़ियों को गंगा, यमुना और सरस्वती कहते हैं जैसा कि ज्ञान-संकलनी तंत्र में लिखा हुआ है—

इडा नाम सैव गङ्गा यमुना पिंगला स्मृता।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये सुषुम्ना च सरस्वती॥

यही तीनों नाड़ियाँ क्रमशः मेरुपृष्ठ के वाम, दक्षिण और मध्य भाग में स्थित हैं। षट्चक्रभेद में बताया गया है कि—

मेरोर्बाह्यप्रदेशे शशिमिहिरशिरे सव्यदक्षे निषण्णे।
मध्ये नाडी सुषुम्ना त्रितयगुणमयी चन्द्रसूर्याग्निरूपा॥

इसका अर्थ करते हुए व्याख्याकार लिखते हैं कि—

मेरोर्मेरुदण्डस्य बाह्यप्रदेशे बहिर्भागे सव्यदक्षे वामदक्षिणे पार्श्वे शशिमिहिरशिरे चन्द्रसूर्यात्मिकइडापिंगलानाडीद्वयमिति फलितार्थः—निषण्णे वर्तते।

अर्थात् मेरुदंड के बाह्य भाग के वामभाग में चंद्रात्मिका इडा, दक्षिण भाग में सूर्यात्मिका पिंगला और मध्य में अग्न्यात्मिका सुषुम्ना नाड़ी प्रवाहित हो रही है।

पहले लिखा जा चुका है कि मूलाधार पर एक प्राण-पिंड है—वहीं पर उसी को एक विद्युत् लहर त्रिवलययुता कुंडलिनी प्रसुप्तावस्था में स्थित है। इसी प्राण-शक्ति को, विद्युत्-तरंग-माला को प्रवाहित कर सहस्रार से संबंधित करने में उपरोक्त नाड़ित्रय की साधना करना आवश्यक होता है। इस साधना का नाम है स्वर-साधना।

मेरुपृष्ठ के मध्य भाग से सुषुम्ना नाड़ी प्रवाहित होती है। इसी नाड़ी में से कुंडलिनी को सहस्रार तक पहुँचाया जाता है। इस क्रिया में इडा और पिंगला इन दो नाड़ियों के द्वारा प्रवाहित श्वास की साधना करनी होती है।

प्रकारांतर से यह पूर्व ही स्पष्ट किया जा चुका है कि इडा ज्ञान-प्रधाना, पिंगला कर्म या क्रियाप्रधाना तथा सुषुम्ना इच्छाप्रधाना है। इच्छाप्रधाना सुषुम्ना से प्राण-शक्ति या इच्छा-शक्ति को प्रवाहित करने का अर्थ है—प्राण-शक्ति को या इच्छा-शक्ति को जाग्रत करके बलवती बनाना या सहस्रार से संबंध कराना या व्यष्टिगत प्राण को समष्टिगत प्राण से संबंधित कर देना। कुछ भी कहिए, है सब एक ही बात। इसी को दूसरे ढंग से हम कह सकते हैं कि ज्ञान और कर्म के समन्वय से समष्टि की सेवा करने की शक्ति प्राप्त करना।

ज्ञान और कर्म के समन्वय से भक्ति की सृष्टि होती है। जिस समय साधक भक्ति की साधना में होता है उस समय उसके चारों ओर पीले रंग का ज्योतिर्मंडल रहता है। कुंडलिनी का मार्ग भी पीले रंग का चमकीला है। विद्युत् भी इसी रंग की होती है। इसका हमारे पाठकों को भली भाँति अनुभव ही होगा।

बिना ज्ञान के कर्म नहीं होता और इसके बिना इच्छा भी कैसे हो सकती है ? इससे मालूम होता है कि इच्छा के गर्भ में ज्ञान पहले से मौजूद रहता है, परंतु प्रकट होता है इच्छा के बाद ही। सबके अंत में कर्म होता है, जब कि इच्छा और ज्ञान दोनों में कर्म बराबर बना रहता है। तात्पर्य यह है कि तीनों, तीनों में परस्पर ओत-प्रोत हैं। इसी प्रकार इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना परस्पर हैं तो ओत-प्रोत एक दूसरी के साथ पूर्ण संबंध रखती हुई, फिर भी जिस समय जिस शक्ति का प्राधान्य होता है उस समय उसी का रास्ता खुला रहता है। इस दृष्टि से प्रत्येक भिन्न भिन्न अपनी स्थिति रखती हुई एक दूसरी के साथ संबंधित और एक दूसरी की सहायक है।

योग-साधन में प्राणायाम का बड़ा भारी महत्त्व है, जिसकी साधना की सहायक ये ही नाड़ियाँ हैं। प्राण को लानेवाली इडा, गंगा या चंद्रनाड़ी है और अपान को ले जानेवाली पिंगला, यमुना या सूर्य-नाड़ी है। प्राण और अपान के संयम को, ज्ञान और कर्म के समन्वय को, गंगा और यमुना के संगम को ही प्राणायाम कहते हैं। यहीं सिद्धि मिलती है और यहीं मुक्ति मिलती है। पुराण-शास्त्र के साथ साथ योग-शास्त्र में भी इसी की महिमा का वर्णन है।

इडा भोगवती गंगा पिंगला यमुना नदी।
इडापिंगलयोर्मध्ये सुषुम्ना च सरस्वती।
त्रिवेणी योगः सा प्रोक्ता तत्र स्नानं महाफलम् ॥

वस्तुतः यदि देखा जाय तो ज्ञान-कर्म समन्वित क्रिया ही सच्ची त्रिवेणी है। इस त्रिवेणी में स्नान करने से ही सच्ची मुक्ति मिलती है।

जीवन की तमाम साधनाओं में सर्वत्र प्राण-साधना का ही उल्लेख दिखाई देता है; क्योंकि इसी की साधना से बल की प्राप्ति होती है। बिना बल के कभी किसी को आत्मा की प्राप्ति नहीं हुई। भगवती श्रुति ने इसी से स्पष्ट घोषणा की है—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।

प्राण की साधना का मतलब है गंगा की साधना, ज्ञान की साधना। गंगा का संबंध चंद्रमा से है, चंद्रमा का संबंध मन से है और मन का संबंध ज्ञान से है; इसी लिये इसी एक इडा नाड़ी का नाम गंगा, चंद्र और ज्ञान नाड़ी पड़ा है।

स्थूल गंगा का जल मन को शुद्ध बनाता है, यौगिक गंगा प्राण को संयमित करती है और आध्यात्मिक गंगा ज्ञान द्वारा समष्टि के प्रति आत्म-समर्पण करना सिखाती है। इस प्रकार मन की शुद्धि, बल की प्राप्ति और निःस्वार्थ मन से अपनी शक्ति को जनता जनार्दन के लाभार्थ लगाने की सच्ची साधना गंगा-सेवन से ही प्राप्त होती है।

इडा की साधना प्राण की साधना है, यह हम पहले ही लिख चुके हैं। इस साधना में श्वास को इडा द्वारा खींचकर सुषुम्ना में रोककर और पिंगला द्वारा बाहर निकालकर तथा पिंगला द्वारा ग्रहण करके सुषुम्ना द्वारा रोककर इडा द्वारा निकालकर प्राण-संयम किया जाता है। आध्यात्मिक भाव में इसी को हम यों कह सकते हैं कि ज्ञान से कर्म की उत्पत्ति की और भक्ति के साथ उसका प्रयोग किया, तदनंतर ज्ञान में ही उसको लीन कर दिया। प्राणायाम का यही तो रहस्य है।

आध्यात्मिक और आधिदैविक प्राणायाम के साथ आधिभौतिक प्राणायाम द्वारा जब मनुष्य सच्ची साधना करता है तब उसे नाड़ी-सिद्धि होती है। अकेली इडा से ही समस्त दिन श्वास लेते रहना या अकेली पिंगला से ही समस्त दिन श्वास लेते रहना अथवा सुषुम्ना द्वारा ही श्वास प्रवाहित करना ये सब प्राण-जय होने पर ही होते हैं। इतनी शक्ति प्राप्त हो जाने पर उस मनुष्य के समस्त काम सफल होते रहते हैं और उसके सामने किसी भी बात का अभाव नहीं आने पाता।

ज्ञान, कर्म और भक्तिमयी शक्तियाँ इडा, पिंगला और सुषुम्ना द्वारा निरंतर इस प्रकार प्रवाहित होती रहती हैं—

आदौ चन्द्रः सिते पक्षे भास्करस्तु सितेतरे।
प्रतिपत्तो दिनान्याहुस्त्रीणि त्रीणि क्रमोदये॥

पवनविजय स्वरोदय

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से तृतीया तक, सप्तमी से नवमी तक और त्रयोदशी से पौर्णिमा तक सूर्योदय से एक घंटे तक पहले बाईं नाड़ी अर्थात् इडा चलती है फिर एक घंटे तक दाईं नाड़ी अर्थात् पिंगला चलती है। इसी प्रकार कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से तृतीया तक, सप्तमी से नवमी तक और त्रयोदशी से अमावास्या तक सूर्योदय से एक घंटा तक सूर्य-नाड़ी अर्थात् पिंगला चलती है। एक घंटे के बाद दूसरे घंटे इडा चलती है। मध्य के दिनों में अर्थात् शुक्ल पक्ष की चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी, द्वादशी में सूर्योदय से एक घंटे तक पिंगला और बाद को एक घंटे तक इडा; इसी प्रकार कृष्णपक्ष में चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी तथा द्वादशी में सूर्योदय से एक घंटे तक इडा चलती है और दूसरे घंटे में पिंगला चलती है। यह एक एक घंटे का क्रम बराबर चलता रहता है। यह क्रम स्वस्थ व्यक्तियों का ही होता है। अस्वस्थ व्यक्तियों के लिये इस क्रम में उलट-फेर हो जाता है। प्राण-साधक व्यक्ति—जैसे ही उलट-फेर होना प्रारंभ होता है वैसे ही वे सीधी और नियमित गति पर प्राण को चलाकर अपने को रोगी होने से बचा लेते हैं। इस क्रम में भी उन्हें इडा की साधना ही सहायता देती है। अर्थात् गंगा हीं उन्हें रोगी होने से बचा लेती है। इसलिये इस आधिदैविकवाद में भी **औषधं जाह्नवीतोयम्** कहा जाता है।

गंगा के प्रवाहित होने पर कौन कौन से काम करने चाहिएँ इसका भी योग-शास्त्र में एक अच्छा खासा विधान है। शिवस्वरोदय शास्त्र में लिखा हुआ है कि जिस समय ज्ञान-प्रवाहिका इडा नाड़ी चलती हो उस समय मनुष्य को स्थिर कार्य ही करने चाहिएँ; जैसे अलंकार-धारण, दूर की यात्रा, आश्रम में प्रवेश, राजमंदिर या महल बनवाना, द्रव्यादि का ग्रहण करना, जलाशय तथा देवस्तंभ की प्रतिष्ठा करना, यात्रा, दान, विवाह, नया कपड़ा पहनना, शांति तथा पौष्टिक कर्म, दिव्यौषधि-सेवन, रसायन-कार्य, प्रभु-दर्शन, मित्रता-स्थापन आदि शुभ कर्म करने चाहिएँ। इसी प्रकार इन्हीं शुभ भावनाओं को रखकर—जिनसे देश और समाज का बहुकाल-व्यापी कल्याण हो सकता है—गंगा-स्नान करना चाहिए। ऐसा करने पर सिद्धि और आनंद दोनों की ही प्राप्ति होती है। हाँ, एक बात यह ध्यान देने की है। ज्ञान की अवस्था में कभी कभी क्रूर कर्म भी हो जाते हैं, जैसे इडा-स्वर के समय अग्नि आदि तत्त्वों का उदय। इसलिये इड़ा-स्वर में जिस समय जल और पृथ्वी-तत्त्व का उदय हो उसी समय उक्त कार्य करना चाहिए।

इडा की साधना से योग-शक्ति की प्राप्ति होती है। इसलिये संयम की नितांत आवश्यकता है। जो लोग बिना संयम किए ही इडा की या गंगा की साधना करते हैं उन्हें उसकी साधना का शुभ फल कभी नहीं मिलता, परंतु अनिष्ट होने की संभावना और हो जाती है। यही कारण है कि भौतिक गंगा में असंयमी और भावना-शून्य व्यक्तियों के स्नान-पान आदि करने पर भी उन्हें गगा-स्नान का फल नहीं मिलता। गंगा की चाहे आध्यात्मिक साधना हो, चाहे आधिदैविक या आधिभौतिक, संयम की सब स्थान पर आवश्यकता है। संयम से ही संपूर्ण सिद्धियाँ मिलती हैं। जिन लोगों को विश्वास न हो वे संयमपूर्वक एक बार गंगा की इस यौगिक-साधना को करके देखें। निश्चय ही भारत की इस गंगा की महत्ता का ज्ञान उन्हें हो जायगा।

त्रिपथगामिनी

(ले०—श्री लक्ष्मण नारायण गर्दे)

भगवती गंगा की महिमा अपार है। पांचभौतिक देह में बद्ध जीव अपनी बद्ध दृष्टि से संसार के यावत् पदार्थों को बद्ध रूप में ही देखते हैं। परंतु प्रत्येक पदार्थ का रूप बद्ध होने पर भी उसका तत्त्व किसी भी काल में बद्ध नहीं होता। परंतु तत्त्व को तो तत्त्वदर्शी ही जानते हैं, हम बद्ध जीव कैसे जान सकते हैं? तथापि भगवती गंगा की यह विचित्र महिमा है कि हम इस बद्ध दृष्टि से भी उसकी निर्बंध गति और उसके मुक्त स्वरूप को कुछ न कुछ देख सकते हैं।

गंगा जहाँ से निकलती और 'हर हर' की अहोरात्र गर्जना के साथ पृथ्वी पर अवतरित होती हैं, हिमालय-स्थित उस उद्गम-स्थान की कल्पना मात्र भी मनुष्य के अति क्षुब्ध अंतःकरण को क्षणमात्र में विलक्षण शांति का अनुभव करा देती है। यहाँ थोड़ी देर ठहरकर इस ग्रीष्म ऋतु में पाठक नयनों को शीतल करनेवाले उस हिम-दृश्य का मनोहारित्व हृदयंगम करें, इस झुलसाती धूप में उस दिव्य पवित्र शीतल समीर से ग्रीष्म का ताप हरण हो जाने दें। गंगा का यह उद्गम-स्थान है। पर यह उद्गम-स्थान भी एक संगम-स्थान है, क्योंकि गंगा यद्यपि यहाँ से निकलती हैं तथापि गंगा का यह जन्मस्थान नहीं है। यहाँ वे कहीं ऊपर से आती हैं, हिमनग पर आकर हिम-रूप को प्राप्त होती हैं और फिर वहाँ से तरल होकर प्रवाह को प्राप्त होती हैं। यह प्रवाह इस उद्गमस्थान से उत्तरकाशी, हरद्वार, प्रयाग, काशी आदि स्थानों से होता हुआ गंगासागर को प्राप्त होता है। गंगोत्री से गंगासागर तक गंगा-प्रवाह का एक पथ है। गंगा का यह पथ देखने और गंगा के पुण्य सलिल में स्नानादि से परम पावित्र्यलाभ करने के लिये यह संपूर्ण पथ मनुष्यों के नगरों से बसा हुआ है। मनुष्य-लोक में—इस भूलोक में—गंगा का यही पथ है जो गंगासागर में जाकर समाप्त होता है। पर क्या गंगा भी यहाँ समाप्त होती हैं? हाँ, सम्यक् रूप से अपने विराट् सागर-रूप को प्राप्त होती हैं, अल्प रूप को त्यागकर बृहत् रूप धारण करती और गंगासागर कहाती हैं। जैसे गंगोत्री केवल उद्गम-स्थान नहीं है, वैसे ही गंगासागर भी केवल संगम-स्थान नहीं है; क्योंकि यहीं से गंगा बाष्परूप से ऊपर सूर्यमंडल या द्युलोक में जाती हैं। सागर से द्युलोक तक अंतरिक्ष में गंगा का दूसरा पथ है और स्वयं द्युलोक में उसका प्रवाह तीसरा पथ है। इस प्रकार गंगा त्रिपथगामिनी हैं। जहाँ कोई भी दो पथ मिलते हैं वह संगम भी है और उसके आगे की गति का उद्गम भी। हिमालय में द्युलोक से अंतरिक्ष होकर आनेवाली गंगा का भूलोक में प्रवाहित होनेवाली गंगा के साथ संगम होता है और यहीं से भूर्गंगा का उद्गम होता है। गंगासागर में भूर्गंगा का अंतरिक्ष होकर द्युलोक जानेवाली भुवर्गंगा के साथ संगम होता तथा भुवर्गंगा का उद्गम होता है और द्युलोक में इस भुवर्गंगा का स्वर्गंगा के साथ संगम होता और

स्वर्गंगा का उद्‌गम होता है। यथार्थ में गंगा तो एक ही हैं, परंतु द्युलोक में उनका रूप भिन्न है। अति सूक्ष्म तेजोमय अंतरिक्ष में वाष्परूप है जो हिमालय में हिमरूप को प्राप्त होता है और भूलोक में यह जलरूप है। ये तीन पथ हैं और यह त्रिपथव्यापिनी गति कहीं से भी रुद्ध नहीं है। जैसे भूलोक में प्रवाह सतत है, वैसे ही अंतरिक्ष में भी प्रवाह सतत है और द्युलोक में भी प्रवाह सतत है। कहीं से भी इस त्रिपथगामिनी गंगा का पथ खंडित या रुद्ध नहीं हुआ है। इसके प्रवाह का प्रत्येक कण और प्रत्येक क्षण सतत प्रवाह रूप है--सतत त्रिपथगामी है। यह तो हम अपनी बद्ध दृष्टि से भी देख पाते हैं। कहते हैं, गंगा सकल-पाप-विनाशिनी हैं। जो गंगा बिना कुछ कहे-सुने केवल अपने उदाहरण मात्र से मनुष्य की इस बद्ध दृष्टि को भेदकर अपना निर्बंध और मुक्त स्वरूप सदा दिखाती हुई इस निर्बंध मुक्त स्वरूप का अखंड रहस्य बता रही हैं वह प्रतिक्षण अपने प्रत्येक प्रवाहशील कण से अपना त्रिपथगामी निर्बंध आप ही प्रत्येक भावुक के हृदय में भर रही हैं। गंगा के इस स्वरूप को जो गंगा से शत योजन दूर रहकर भी स्मरण करता है वह भी 'मुच्यते सर्वपापेभ्यः' अर्थात् 'विष्णुलोकं स गच्छति'—सब पापों से मुक्त होने के कारण इसी लोक में बैठा बैठा भी विष्णुलोक को प्राप्त होता है। क्योंकि विष्णुलोक से गंगा निकलती हैं और वहाँ से यहाँ तक और यहाँ से वहाँ तक उनका सतत प्रवाह है--तीनों लोकों को गंगा ने अपने अखंड प्रवाह से व्याप्त कर लिया है।

बद्ध जीव का वास्तविक मुक्त स्वरूप और मुक्त कर्म-प्रवाह भी ऐसा ही है। इस लोक में जो है वह इहजीवनरूप कर्म-प्रवाह के अंत के साथ जन्म पा नष्ट नहीं होता। यहाँ से फिर विराट् अंतरिक्ष में यही प्रवाह भिन्न रूप में है और वहाँ से वही प्रवाह और भी सूक्ष्म होकर, तेजोमय रूप से, आदित्यलोक में है। इसी लिये आदित्य का ध्यान करते हुए भूर्भुवः स्वः इन तीन व्याहृतियों का नामोच्चारण कर जीव के भूलोक, अंतरिक्षलोक और स्वर्लोक इन तीनों लोकों में एक साथ अवस्थिति का ही स्मरण किया जाता है। हम लोग उन्हीं को मुक्तात्मा कहते हैं, जो इस प्रकार एक साथ तीनों लोकों में अवस्थित रहते हैं। गंगा का यह स्वरूप प्रत्यक्ष है और अपने इस प्रत्यक्ष स्वरूप से गंगा जीवमात्र को अपने इस स्वरूप का बोध कराकर प्रतिक्षण यह नया जन्म देने को तैयार रहती हैं। इसी लिये 'मातर्गंगे!' कहकर क्षुब्ध प्राणी अपने चेतनाधिकारानुसार अल्प या अधिक ज्ञानप्रदा शांति अनुभव करते हैं। परंतु क्या यह बात उन सभी नदियों के विषय में कही जा सकती है जिनका प्रवाह सदा अखंड और सतत देखने में आता है? हाँ, 'मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते' यह बात ऐसी सभी नदियों के विषय में अवश्य कही जा सकती है। इसी लिये सभी समुद्रगत जल-प्रवाह पुण्यतीर्थ माने जाते हैं। परंतु इनके प्रभाव में तारतम्य है। प्रत्येक पुण्यतीर्थ का वैशिष्ट्य है। जिस विशुद्ध सात्त्विक जीवन से मनुष्य का अंतःकरण विमल होकर अंतःस्वरूप को प्रतिबिंबित करने में समर्थ होता है वह जीवन देने की शक्ति गंगा के ही जल में सबसे अधिक है। अस्तु। गंगा की यह जो त्रिपथव्यापिनी निर्बंध गति और त्रिलोक में नित्य अवस्थिति है, इस कारण इसके अंशभूत प्रत्येक जल-कण में भी गंगाप्रवाह का गुण-धर्म

अंशतः उपस्थित है। इसलिये गंगाजल के दर्शन, स्पर्शन, मार्ज्जन, निमज्जन से केवल भौतिक लाभ ही नहीं होता बल्कि पारलौकिक पुण्य और ब्रह्मलोक-प्राप्ति का भी साधन होता है। गंगा का यह त्रिलोकव्याप्त नित्य स्वरूप कहीं से भी च्युत न होने के कारण गंगा को तत्त्वतः ईश्वरत्व प्राप्त है और इसी लिये कहा है कि—

हरिर्नारायणो गङ्गा गङ्गा नारायणो हरिः।
हरिर्विश्वेश्वरो गङ्गा गङ्गा विश्वेश्वरो हरिः॥

ऐसी गंगा के नामोच्चारण का भी वही फल है जो श्रीहरि के नामोच्चारण का फल है। यही नहीं, श्रीहरि ही जीवमात्र के उद्धार के लिये, जीव-मात्र को उसके त्रिलोकव्याप्त वास्तविक नित्य स्वरूप का बोध कराने के लिये, गंगा-रूप से अवतीर्ण हुए हैं।

गंगा-महिमा

(ले० —गोस्वामी तुलसीदास)

देवनदी कहँ जो जन जान किए मनसा कुल कोटि उधारे।
देखि चले झगरैं सुरनारि, सुरेस बनाइ बिमान सँवारे॥
पूजा को साज बिरंचि रचैं, तुलसी जे महातम जाननहारे।
ओक की नींव परी हरिलोक बिलोकत गंग तरंग तिहारे॥

× × ×

ब्रह्म जो व्यापक बेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन ज्ञान गुनी को।
जो करता भरता हरता सुर साहिब, साहिब दीन दुनी को॥
सोई भयो द्रव-रूप सही जु है नाथ बिरंचि महेस मुनी को।
मानि प्रतीति सदा तुलसी जल काहे न सेवत देवधुनी को?

× × ×

बारि तिहारो निहारि मुरारि भए परसे पद पाप लहौंगो।
ईस ह्वै सीस धरौं पै डरौं, प्रभु की समता बड़ दोष दुहौंगो॥
बरु बारहि बार सरीर धरौं, रघुबीर को ह्वै तव तीर रहौंगो।
भागीरथी! बिनवौं करजोरि, बहोरि न खोरि लगै सो कहौंगो॥

(कवितावली)

श्री गंगादेवी

(ले०—श्री स्वामी विज्ञानहंसजी)

त्वं हि त्रिपथगे देवि ब्रह्मलोकसमक्षमे ।
सा त्वां देवि नमस्यामि प्रशंसामि च शोभने ॥

यह बात विज्ञान-सिद्ध है कि जड़ वस्तुओं में जितनी शक्तियाँ देखने में आती हैं वे सब दैवी शक्ति का ही स्थूल पदार्थ के आश्रय से विकास मात्र हैं; क्योंकि प्रत्येक जड़ वस्तु में कार्यकारिणी शक्ति तभी हो सकती है, जब उसकी संचालक कोई चेतन शक्ति हो क्योंकि प्रत्येक जड़ शक्ति चेतन शक्ति का सहारा पाकर ही सब प्रकार का कार्य करती है ।

जल, वायु, अग्नि आदि में जो कुछ शक्ति है वह कभी काम न कर सकती यदि उसको चलानेवाली उसकी अधिष्ठातृ चेतन-शक्ति न होती । चेतन-शक्ति के अधिष्ठातृत्व से ही जड़ शक्तियों का कार्य हुआ करता है, इसलिये वह देव और देवी शब्द से व्यवहृत होती है ।

गंगाजल के भीतर भी चैतन्य-रूपा श्री गंगा देवी यदि विराजमान न होतीं तो इनके स्पर्श मात्र से राजा सगर के साठ हजार पुत्र तर न जाते, इनके दर्शन स्पर्शन मात्र से अनंत जीवों का कल्याण न हुआ होता, इनकी इतनी महिमा न गाई गई होती, यहाँ तक कि इनके दर्शन के लिये हजारों कोस से इतनी जनता न दौड़ती होती ।

संसार में शक्ति की ही पूजा हुआ करती है, देह की नहीं । आज श्री गंगाजी पर अतत्त्वज्ञों द्वारा आक्षेप, निंदा आदि होते रहने पर भी जो लाखों करोड़ों मनुष्य श्री गंगाजी का नाम सुनते ही भक्ति-भाव से आकर्षित होते हैं और इनके जल में स्नान करके अपनी आत्मा को पवित्र हुआ मानते हैं, यह भी यदि श्री गंगाजल में श्री गंगादेवी विराजमान न होतीं तो कभी न होता । यह सब श्री गंगादेवी की महिमा का ही परिचय है।

सामान्य पर्व पर अत्यंत कष्ट सहन करके काशी, प्रयाग, हरिद्वार आदि स्थानों में जाकर स्नान करके समस्त पापनाश और मुक्तिपद प्राप्त करने की आशा रखते हैं ।

गंगाजल में श्री गंगादेवी के रहने ही से गंगाजल में कई तरह की शरीर को आरोग्य करनेवाली, स्थूल शक्तियाँ और मन तथा आत्मा को पवित्र करनेवाली सूक्ष्म शक्तियाँ विद्यमान हैं ।

श्री गंगाजल में जो अद्भुत स्थूल शक्ति विद्यमान है उसको इतने दिनों के बाद पश्चिमी विद्वानों ने कुछ कुछ निर्णय करके सब की आँखें खोल दी हैं ।

दुर्भाग्य का विषय है कि नवीन रोशनीवाले लोग जो पहले अपने पूज्य ऋषियों की बात को नहीं मानते थे वे ही आज पश्चिमी सायंस-वेत्ताओं के मुख से सुनकर उसे मानने लगे हैं। जब तक सायंस-वेत्ताओं ने गंगाजल के विषय में कुछ निर्णय नहीं किया था तब तक अँगरेजी विद्या का अभिमान करनेवाले लोग समझते थे कि गंगाजल और कुआँ का जल बराबर ही है । अब उनको पता लगा है कि गंगाजल, गंगा की मिट्टी और गंगा की वायु में शरीर को पुष्ट व आरोग्य करने की अपूर्व शक्ति विद्यमान है ।

बड़े बड़े विज्ञान-वेत्ताओं ने कह दिया है कि गंगाजल में शरीर की शक्ति बढ़ाने की अपूर्व क्षमता है। रोग से मुक्त होने पर दुर्बल मनुष्य को डाक्टरी "टानिक" पीने की कोई जरूरत नहीं है। केवल गंगाजल पीने और गंगा-स्नान करने से ही शरीर में पूर्ण बल प्राप्त हो सकता है। गंगाजल पीने से अजीर्ण रोग, अजीर्ण ज्वर नष्ट होता है। गंगा की मिट्टी लगाने से चर्म्म रोग आराम होता है। गंगा के जल में नहाने से मस्तक के समस्त रोग अच्छे होते हैं।

विज्ञानवेत्ताओं ने यह भी दिखलाया है कि कुएँ और तालाब वगैरह के जल दो ही चार दिन में खराब हो जाते हैं—पीने लायक नहीं रहते। गंगा-जल चाहे कितने ही दिनों तक रक्खा रहे, कुछ भी खराब नहीं होता; वैसा ही स्वादिष्ठ और पीने योग्य बना रहता है।

प्लेग, हैजा, मलेरिया आदि कठिन कठिन संक्रामक रोग खराब स्थान और खराब जल ही से उत्पन्न होते हैं; परंतु परीक्षा करके देखा गया है कि गंगाजल में कभी किसी रोग का कीट पैदा नहीं होता, बल्कि गंगाजल में रोग के कीट लाकर छोड़ने से वे भी मर जाते हैं। गंगाजल में इस प्रकार की अपूर्व शक्ति है, इसी लिये महर्षियों ने गंगाजल की इतनी स्तुति की है।

> शरीरे जर्ज्जरीभूते व्याधिग्रस्ते कलेवरे।
> औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः॥

इस शक्ति की मूलभूता श्री गंगादेवी चैतन्य-स्वरूपिणी प्रसिद्ध हैं जिनकी महिमा से ग्रंथ के ग्रंथ भरे हुए हैं।

गंगा के स्पर्श से, यहाँ तक कि स्मरण से भी पाप-राशि नष्ट होती है। श्री गंगा की जो दैवी-शक्ति मंदाकिनी-रूप से दिव्य लोक में व्यापक थी उसको ही भक्त भगीरथ ने अपनी तपस्या और भक्ति के बल से मर्त्यलोक में गंगादेवी रूप से प्रकट कर दिया।

श्री गंगाजी की उत्पत्ति के विषय में कहीं विष्णुजी से उत्पन्न होना और कहीं शिवजी के मस्तक व जटा से और कहीं हिमालय पर्वत से उत्पन्न होने का जो वर्णन मिलता है वह सब श्री गंगा देवी के आधिभौतिक आधिदैविक व आध्यात्मिक भाव के वर्णन हैं।

हिमालय पर्वत से श्री गंगाजी का निकलना आधिभौतिक भाव का वर्णन है। शिवजी के मस्तक से श्री गंगाजी का निकलना आधिभौतिक व आधिदैविक दोनों भावों का वर्णन है। श्री विष्णु के द्रव होने पर प्रकट होना इसमें अध्यात्म स्वरूप का वर्णन है।

ऋषि लोग पाश्चात्य-विद्या-प्रेमियों की सी दृष्टि-संपन्न होते तो प्रत्येक वस्तु को केवल स्थूल भाव से ही निश्चय कर उसके सूक्ष्म और आध्यात्मिक भाव को उड़ा देते। यदि गंगाजी को और दूसरे जलाशयों की तरह जलाशय मात्र ही समझते तो केवल हिमालय से ही उनकी उत्पत्ति बतलाते परंतु ऋषि लोग तो आस्तिक थे, सभी वस्तुओं में तीन तीन भाव देखते थे, इसलिये श्री गंगाजी को केवल जलाशय न समझकर वे उनको देवी समझते थे। श्री गंगाजी में दैवी शक्ति ऋषियों को देखने में आती थी। इसी दैवी शक्ति का प्रकाश श्री शिवजी के आश्रय से हुआ था; क्योंकि शिवजी महाशक्ति के पति हैं इसलिये दैवी शक्ति के आधार हैं। उनके मस्तक से निकली हुई श्री गंगाजी में अनंत दैवी शक्तियाँ भरी हैं,

जिससे श्री गंगाजी त्रिलोक-तारिणी, पतित-पावनी हैं।

जिनके स्पर्श से सगर-वंश के शापग्रस्त मनुष्यों का उद्धार हो गया था वही महान् देवता शिवजी के मस्तक से देवी गंगा प्रकट होने का रहस्य है। ऋग्वेद १०–७५–५ में और कात्यायन श्रौत सूत्र तथा शतपथ ब्राह्मण में एवं रामायण महाभारत आदि तथा पुराण-ग्रंथों में श्री गंगाजी की अलौकिक महिमा गाई गई है।

स्वर्ग से उतरने पर श्री गंगाजी शिवजी की जटा में अटक गईं, भगीरथ के फिर तप करने पर बिंदु-सरोवर में आ गिरीं। बिंदु-सरोवर से श्री गंगाजी की सात धाराएँ निकलीं। ह्लादिनी, पावनी और नलिनी नाम की तीन धारा पूर्व को, वंक्षु, सीता, और सिंधु तीन धाराएँ पश्चिम को चली गईं। एक धारा भगीरथ-प्रदर्शित मार्ग में चली जिसका नाम भागीरथी है। भागीरथी ने ही सागर में जाकर सगर-वंश का उद्धार किया।

दर्शनात् स्पर्शनात् पानात्तथा गङ्गेति कीर्तनात्।
स्मरणादेव गङ्गायाः सद्यः पापात्प्रमुच्यते॥

श्री गंगाजी के दर्शन, स्पर्श, पान तथा गंगा ऐसा नाम कीर्तन करने से तत्काल ही मनुष्य पापों से छूट जाता है।

जाह्नवीतीरसम्भूतां मृदं मूर्ध्ना बिभर्ति यः।
बिभर्ति रूपं सोऽर्कस्य तमोनाशाय केवलम्॥

गंगा-तीर की मिट्टी को जिसने शिर पर धारण किया, अज्ञान-तमोनाश के लिये उसने सूर्यदेव को शिर पर धारण कर लिया।

चान्द्रायणसहस्राणां यत्कृतं परिकीर्तितम्।
ततः शतगुणं पुण्यं गङ्गागण्डूषतो पिबेत्॥

सहस्र बार चांद्रायण व्रत करने से जो पुण्य होता है गंगाजल का गंडूष लेने से उसका शतगुण होता है।

संक्रांतिषु व्यतीपाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
पुष्ये स्नात्वा तु गङ्गायां कुलकोटिं समुद्धरेत्॥

चंद्र-सूर्य-ग्रहण के समय जिसने गंगा-स्नान किया उसने सभी तीर्थों में स्नान का पुण्य ले लिया। उसको पृथिवी घूमने की क्या आवश्यकता है?

गङ्गातीरे सदा लिङ्गं बिल्वपत्रैश्च ये नराः।
पूजयिष्यन्ति सम्प्रीतास्तेऽपवर्गस्य भाजनम्॥

गंगा-तट पर बिलवपत्र से जो शिव-पूजन करता है उसको मोक्ष का अधिकार मिलता है।

यज्ञो दानं तपो जापं श्राद्धञ्च सुरपूजनम्।
गङ्गायां च कृतं सर्वं कोटिकोटिगुणं भवेत्॥

यज्ञ, दान, तप, जप, देव-पूजा, तर्पण, श्राद्ध गंगातट पर किए जाने से करोड़ों गुना फल उत्पन्न करता है। इस तरह श्रुति, स्मृति और पुराणों में भी गंगाजी की भूरि भूरि महिमा मिलती है।

शास्त्रों में लिखा हुआ है कि श्री गंगाजी पर पहुँचने पर ये १३ बातें न करनी चाहिएँ—

गङ्गां पुण्यजलां प्राप्य त्रयोदश विवर्जयेत्।
शौचमाचमनञ्चैव निर्माल्यं मलघर्षणम्॥
गात्रसंवाहनं क्रीडां प्रतिग्रहमथो रतिम्।
अन्यतीर्थरतिञ्चैव अन्यतीर्थप्रशंसनम्॥
वस्त्रत्यागमथाघातं सन्तारञ्च विशेषतः।

पुण्यतोया श्री गंगाजी में मल-मूत्र-त्याग, मुख धोना, दंत-धावन, कुल्ली आदि करना, पूजा के फूल-निर्माल्य फेंकना, मल-संघर्षण या बदन को मलना नहीं चाहिए। जलक्रीड़ा अर्थात् स्त्री-पुरुषों

की रति-क्रीड़ा, बुढ़वामंगल आदि विलासिता-जनक क्रीड़ा नहीं करनी चाहिए। इसी प्रकार दान-ग्रहण भी नहीं करना चाहिए। गंगाजी के प्रति अभक्ति और अन्य तीर्थ की प्रशंसा नहीं करनी चाहिए। पहने हुए वस्त्र को छोड़ना, जल पर आघात करना या तैरना नहीं चाहिए।

नाभ्यंगितः प्रविशेच्च गङ्गायां न मलार्दितः।
न जल्पन्न मृषा वीक्षन्न वदन्ननृतं नरः॥

बदन में तेल मलकर या मैले बदन होकर गंगा में प्रवेश नहीं करना चाहिए। वृथा बकवाद, मिथ्या भाषण या इधर-उधर ताकना तथा कुदृष्टि नहीं करना चाहिए। (दुःख का विषय है कि फजूल बकवाद, हँसी-दिल्लगी आदि का स्थान खासकर काशी जैसे स्थान में हो गया है।)

काशीखंड के २७वें अध्याय में गंगा के माहात्म्य का बड़े विस्तार से वर्णन पाया जाता है। उपसंहार-स्वरूप यहाँ उसका संक्षेप दिया जाता है।

"वह जन समस्त तीर्थों में स्नान कर चुका, सब यज्ञों में दीक्षित हो गया और संपूर्ण व्रतों को पूर्ण कर चुका जो एक गंगा का सेवन करता है। जो कोई गंगासेवी है वह सकल तपस्याओं के आचरण, समस्त प्रकार के दान और निखिल योगाभ्यास के नियमों को प्राप्त हो चुका है। जो गंगास्नायी है वह मनुष्य समस्त वर्णाश्रम, वेदाध्यायी और शास्त्रार्थ-पारगामी लोगों से विशेष माननीय है। मन, वचन और शरीर के बहुविध दोषों से दुष्ट भी पुरुष इस लोक में केवल गंगा के दर्शन ही से पवित्र हो जाता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं।

"सत्ययुग में सर्वत्र ही तीर्थ थे, त्रेता में केवल पुष्कर ही तीर्थ था, द्वापर में कुरुक्षेत्र मात्र तीर्थ था और कलियुग में एक गंगा ही तीर्थ है।

"हे हरे! मनुष्य पूर्वजन्म के अभ्यास तथा वासना के कारण और मेरी परमानुकंपा से गंगा-तट में निवास पाता है।

"सत्ययुग में मोक्ष का कारण ध्यान ही था; त्रेता में ध्यान और तप, ये दोनों ही कारण थे; द्वापर में ध्यान, तप यज्ञ, ये तीनों कारण होते थे और कलियुग में केवल गंगा ही मोक्ष का कारण है। जो कोई मरण पर्यंत गंगा-तीर का त्याग नहीं करता वह जन वेदांतवेत्ता योगी और सदा ब्रह्मचारी है। कलिकाल में पापमय हृदय, परद्रव्य-परायण चित्त, विधिहीन क्रियाओं वाले लोगों की बिना गंगा के गति नहीं है। गंगा गंगा इस प्रकार के जप करने से दरिद्रता, कालकर्णी (अलक्ष्मी), दुःस्वप्न, दुश्चिंता निकट नहीं आ सकती। हे विष्णो, सदा सर्व जगत् की हितकारिणी गंगा—भावानुसार—समग्र भूतों को ऐहिक और पारलौकिक फल देती है। हे हरे! कलि में यज्ञ, दान, तपस्या, योग, जप, नियम और यम इत्यादि गंगा-सेवन के सहस्रांश फल को भी नहीं प्राप्त कर सकते।

"अष्टांग-योग, तपस्या और यज्ञों से कौन काम? केवल गंगा-तीर पर का वास ही ब्रह्मज्ञान का कारण होता है। गोविंद, यदि गंगा से दूर स्थित भी कोई व्यक्ति गंगा-माहात्म्य का विज्ञ हो तो उस पर भी गंगा प्रसन्न होती हैं।"

उत्तराखण्ड की एक झलक

[लेखक—श्रीब्रह्मदत्त शर्मा 'शिशु']

श्री गङ्गा दर्शन

वर्षा ऋतु

अवनी-स्तन का दुग्ध-स्रोत है
स्वर्ग-लोक का या दर्पण ?
विश्व-रचयिता प्रेम तत्त्व या—
बहा जा रहा सुर रंजन ।

हृदयांकित गंगा की प्रतिमा
देख, नयन हैं मधुमय तृप्त
देह-कोष कलि कल्मष पूरित,
हुए स्पर्श कर निर्मल-रिक्त ।

सुर सरिता के शुभ्रांचल पर
प्रकृति रंगीली का लख दृश्य,
शोक-तप्त बलहीन व्यक्ति भी
पा जाता दिव्यौषध-दृष्य ।

दिव्य-वारि में देह मग्न कर,
जो न नशें नर के त्रय ताप;
कूर्म मीनसे अधिक कहाँ वह
भाव-हीन प्रस्तर है आप ।

उस अतीत की उज्ज्वल स्मृतियाँ
हो प्रबुद्ध कहतीं यह बात—
'यही ब्रह्म-सर पुण्य कूल है'
हुआ जहाँ पर सत्य-प्रभात ।

तपो मूर्त्ति गत-शोक योगिवर
यहीं देख पाए 'शिव-रूप'
इसी वारि से सिक्त शिलापर
पाया त्रिभुवन सुन्दर-रूप ।

गंगे ! तेरा पयः पान कर,
उस अनन्त का करके जाप;
विषय-राग में बद्ध नरों का
हरते थे ऋषिवर संताप ।

चतुर्दिशा से आ परिव्राजक
देश-दशा पर दृष्टि प्रसार
मंगलमय सुखपूर्ण ज्ञान से
नित करते थे प्रजा-सुधार ।

पर मैया ! अब तेरे तट पर
तेरे हित आता है कौन ?
दास कामिनी के काञ्चन-प्रिय
देख रहा हूँ बैठा मौन ।

जय ! हे मङ्गल-मय प्रिय-जल की
अधिष्ठातृ भव-तारिणि जय !
कुन्द-इन्दु इव कान्ति धृते माँ !
पावनि ! प्रेम स्वरूपिणि जय !

हे नगेश के शिखरासीने !
तपोभूमि की जीवन-प्राण,
चतुर्भुजे जय ! शान्त-लोचने !
कर अनन्य दृढ़ भक्ति प्रदान ।

यामिनी में गंगा-दर्शन—

तारों से प्रतिबिम्बित, मानो—
तान मोतियों की चादर,
शयन कर रही पवन स्पंदित,
तरल-तरंगित झिलमिल कर।

मूक प्रकृति ने चंद्र-वदन से
हटा अविद्या-जलदांचल,
नयन खोल माँ की लहरों में
देखा अपना रूप विमल।

विजन-कूल अवलोक, स्वर्ग से
उतर रहा है भाव-विमान,
शशी-प्रभा की पहिन सारियें,
गातीं सुर-ललना मृदु गान।

दिव्य-राग से रंजित सुमुखीं
सुर-सुमनांकित-कुंचित-केश
कांति-पुंज-सी रूप माधुरी
करती इठला वारि-प्रवेश।

चंद्र-आनना विमल-सलिल में
करतीं विश्व-विमोहन केलि,
मानों पावन-प्रेम-सुधाकर
बहुल रूप धर करता खेल!

सोती थी माँ लोरी दे दे,
पिला पिला सुस्तन की धार,
जाग कभी मैं देख रहा था
मातृ-अंक में नव-संसार।

हृषीकेश के पथ में

(मध्याह्नकाल)

श्याम मेघ गरजें नभ में, या—
स्वर्ग-वाद्य यह बजते हैं?
तड़ित-दाम दमकें, या सुरगण
ज्योति-माल उर सजते हैं?

नभ-गंगा में सुर-बालायें
करतीं या पावन जल-केलि,
स्वर्ग-भुवन का मृत्यु-लोक से
अथवा यह होता मधुमेल?

केश-राशि या दिव्य-रमणियें
मृदुल करों से धोती हैं,
या नीचे आ बने वारि, ये—
कुंतल-च्युत नव मोती हैं?

सुरपति या अभिषिक्त कर रहे
प्रकृति-मोहिनी-बाला को,
ग्रीष्मकाल की तपः साधना—
से पाई वर-माला को?

प्रकृति-छबीली का यह नर्तक—
मन-मयूर क्या इठलाकर-?
ठुमक-ठुमक कर नाच रहा है
रत्न जटित पर फैला कर?

अथवा नील-गगन के टुकड़े
तारागण युत जगमग कर,
स्वर्ग दूत बन प्रकृति सजाने
उतरे हैं अवनी-तल पर?

गिरि-शृंगों से आगत निर्झर
करके पथमें कल कल गान,
तपो भूमि की रज शिर धर कर-
करने जाते सुरसरि स्नान।

शैल-शिखर पर जलद-लोरियाँ
रवि-किरणों से हो संयुक्त,
विविध वर्णमय प्रभा धार कर-
करतीं अभिनय सुर-उपयुक्त।

या हिमाद्रि पर गिरि तनया ने
आर्द्र हुई रंजित-सारी
दिव्य करों से वारि-मुक्त कर-
शोषण हित नभ में झारी।

उड़ा जा रहा 'कार' पवन सम-
या विमान सुर-पथ पर आज,
शीतल-जल-कण-मिश्रित झोंके
मुग्ध कर रहे मनः समाज।

सघन कुंज में तरल तरंगित
खेल रही शिशुवत् जल-कूल,
हरी भरी गिरि-श्रेणि मनोहर
कहीं खिले सुरभित वन-फूल।

द्रुत-गतिमान् यान में लखते
दृश्य 'सिनेमा' से अभिराम,
प्रकृति-माधुरी के उपवन में
रुके देखकर पावन-धाम।

सर्व-व्याप्त विभु,अगम अगोचर,
श्रीपति, अखिल जगद्-विश्राम,
'सत्यदेव' शिव सुन्दर वपु में
अवलोकन कर किया प्रणाम।

हृषीकेश आ, चले स्नान हित,
विमल-त्रिवेणी के उपकूल
घनाच्छन्न थे भानु, पवन था
मंद मंद बहता सुख-मूल।

हृषीकेश में

सायंकाल

लख विदेश जाते प्रणयी को
आलिंगन कर पुनः सुस्नेह,
कृष्णांचल में लगी छिपाने
विरहाकुल हो प्रकृति स्वदेह।

श्यामारुण का मिलन, व्योम में
प्रेम-उदधि को रहा उछाल,
उन्मादिनि हो दिशा नाचतीं
शून्य करों से देकर ताल।

प्रकृति-तंत्र के तभी मनोहर
बजने लगे सुरीले तार
दिव्य-स्वरों में प्रणव-मंत्र की
भरी भुवन में मृदु झंकार।

भक्ति-भाव से कल्पित,पावन-
परम रम्य पर्वत कैलाश
जगद्वंद्य गुरुदेव भवन युत
देख हुआ अज्ञान विनाश।

चंद्र-कांति सम दिव्य कलेवर
ब्रह्मचर्य्य—तप—तेज—निधान
राज रहे स्वामी श्रीशंकर
एकमेव अद्वैत महान्।

साधु वृंद ने कलित कंठ से
किया विश्व-पति का गुणगान
प्रकृत-मंच से उठ मैंने भी
किया इष्ट-चरणों का ध्यान।

श्रीलक्ष्मण-झूला की यात्रा

'उषा' बालिका हृदय लगाकर
किया बंधुगण युत प्रस्थान,
सद्यः स्नाता-निशा, कलेवर—
छिपा रही थी देख विहान।

साधु वृंद गैरिक वस्त्रावृत
लखे अग्नि-सम दिव्य स्वरूप,
प्रिय-अतीत के मार्ग-प्रदर्शक
मनोभूमि के पावन भूप।

सव्य हस्त बहती सुरध्वनि की-
'वसुधारा' का दर्शन कर
'जय जय' कह पावनि माँ गंगे!
चले मानसिक अर्चन कर।

सत्य-प्रदर्शक 'रामतीर्थ' का
देख ज्ञानमय 'रामाश्रम',
भान हुआ, मानों सम्मुख 'वह'
प्रेम-मूर्ति विलसा निर्मम।

इसी प्रेम-रवि ने भारत का
पुनः दिखाया दिव्यालोक
यहीं नहीं पश्चिमी व्योम में
चमका 'वह' निर्भय गत-शोक!

उभय-पार्श्व विलसित घन तरुगण
तने हुए हैं मार्ग-वितान,
इस गिरिवर के रम्य पंथ पर
मन विहंग भरता उच्चतान।

मंद मंद बह शीतल पावन
परम मित्र बन मिला समीर
अतिथि मान कर श्रमित जनों की
हरली सब तन मन की पीर।

सघन द्रुमों से निकल, सुविस्तृत
पार किया सुंदर भू भाग,
सव्यहस्त लख यतिवर-मंदिर,
मस्तक ली पद-पद्म-पराग।

शारदीय शशिसा सुंदर मुख
अरुण कमल-दल-लोचन लोल
दिव्य अधरपर वीर हास्य लख
लज्जित होते चारु कपोल।

विलस रहे लक्ष्मण छवि धारे
राम प्रेम में हो अनुरक्त,
भ्रातृ-भक्ति के मार्ग-प्रदर्शक
माँ सीता के शुचिपद-भक्त।

रामानुज का नाम श्रवण कर
उठा बन्धुओं में आह्लाद—
स्नानान्तर दर्शन-आशा में
चले बोल जय! जय!! श्रीपाद्।

नाच उठीं इन्द्रियें ताल दे
सुनते ही नीरव मधुतान
थिरक उठे कमनीय दृश्य पर
मुग्ध विमोहित मेरे प्राण।

झूला है यह श्रीलक्ष्मण का
या सुर-पथ का झूला है?
गंगे! तेरे उस तट पर सच,
स्वर्ग-भूमि सुख-मूला है।

स्नात-हरित द्रुम-गण से पूरित
यह विशाल हिम-गिरि शोभन
सुर-प्रसून लतिका से अंकित
चुरा रहा ऋषियों का मन।

अथवा गिरिपर उतर रहा है
छविधारी नंदन-कानन?
बाल अरुण है या नटवर वह
दिखा रहा अपना आनन?

सूर्य्य-रश्मि से द्रुम पत्रों पर
सलिल विंदु जगमग करते
विविध रंग की रत्न कांति-सम
दमक कभी नीचे झरते।

अद्भुत है सौंदर्य, विश्व के कवि की कविता का प्रासाद
कथन करे यदि इसे लेखनी, अहो हुआ है क्या उन्माद?

संस्कृत साहित्य में गंगा

(श्रीमधुसूदनप्रसाद मिश्र 'मधुर')

'संस्कृत साहित्य में गंगा' यह एक ऐसा विषय है, जिसपर इने गिने पृष्ठों में कुछ लिख सकना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। ऋग्वेद (१०।७५।५) से संस्कृत-सरस्वती की जो धारा फूटी और बड़े बड़े 'आरण्यकों' की राह होती हुई आगे बढ़ी वह गंगा की धारा से मिलकर दिन दूनी रात चौगुनी चमकती हुई बढ़ती ही चली गई। 'ब्राह्मणों' ने पुण्यसलिला के स्पर्श से अपने को धन्य माना और उपनिषदों ने उसके रहस्य बतलाए। पुराणों, स्मृतियों एवं काव्यों के अपार पारावार में वह धारा सौगुने आकार और वेग से आकर मिल गई। ऐसी दशा में इस विशाल धारा का परिचय यह तुच्छ लेखनी क्या दे सकेगी, जब यह उसकी एक बूँद में ही डूब सकती है। तो भी परखने के लिये एक बूँद काफी है। अतः मैं इस पर कुछ लिखने का साहस करता हूँ।

कथा, रूप-वर्णन, माहात्म्य, प्रायश्चित्तविधान, भक्ति-भाव, काव्यकला एवं छोटे मोटे प्रासंगिक वर्णनों के रूप में गंगाजी का समूचे संस्कृत साहित्य में दर्शन होता है। इनके संबंध की कथाओं का उल्लेख एक स्वतंत्र लेख का विषय होगा। इसलिए मैं इस पर कुछ नहीं लिखना चाहता। रामायण, महाभारत एवं सभी पुराणों में जगह-जगह पर अनेक प्रकार की कथाऐं भरी पड़ीं हैं। शेष वर्णनों के बारे में मैं थोड़ा बहुत लिखने की चेष्टा करूँगा।

राम वनवास के अवसर पर आदिकवि का गंगा वर्णन बड़ा ही सुंदर है। वहाँ आपने गंगाजी का एक सजीव चित्र खींच दिया है। वैसा विलक्षण और अपूर्व चित्र अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। १७ श्लोकों के इस छोटे से वर्णन में ही आदि कवि ने प्रासंगिक वर्णन के सिवा सब प्रकार के वर्णनों को बड़ी कुशलता से कर डाला है।

कुल चार विशेषणों में गंगाजी की सारी कथा ही कह डाली है। बानगी लीजिए—

(१) विष्णुपादच्युताम्
(२) दिव्याम्
(३) सागरतेजसा शंकरजटाजूटाद्भ्रष्टाम्
(४) समुद्रमहिषीम्

चारों का क्रमशः अर्थ होगा—

(१) विष्णु के चरण से गिरी हुई।
(२) स्वर्गलोक की रहनेवाली।
(३) सागर अर्थात् भगीरथ की तपस्या द्वारा शंकरके जटाजूट (में आकर वहाँ-) से (पृथ्वी पर) गिरी हुई।
(४) समुद्र की रानी
(अर्थात् समुद्र से मिलकर रहनेवाली)

इन्हीं चार बातों में गंगा की सारी कथा आ जाती है।

अब रूप-वर्णन देखिए—

"जलाघाताट्टहासोग्रां फेननिर्मलहासिनीम्
क्वचिद्वेणीकृतजलां क्वचिदावर्तशोभिताम्॥
क्वचित् स्तिमितगम्भीरां क्वचिद्वेगसमाकुलाम्
क्वचिद्गंभीरनिर्घोषां क्वचिद्भैरवनिःस्वनाम्॥

कहीं तो जल की टकरों के रूप में ठठाकर हँसने से (गंगाजी) उग्र मालूम पड़ रही थीं और कहीं फेनों के रूप में निर्मल हँसी हँस रही थीं। कहीं पर जल की वेणी बना रखी थी और कहीं पर (तरंगों के घूमने के कारण) भँवर से शोभित हो रही थीं।

कहीं पर प्रवाह के स्थिर होने से गंभीर और कहीं प्रवाह में वेग होने के कारण व्याकुल मालूम पड़ती थीं। कहीं तो उनका गंभीर शब्द हो रहा था और कहीं भयानक।

ऋषि निषेविताम् (ऋषियों से सेवित) देवदानव गंधर्वैरुपशोभिताम् (समीप रहकर देव, दानव और गंधर्व जिसकी शोभा को बढ़ाते थे) और विख्याताम् (अत्यंत प्रसिद्ध) ये विशेषण गंगा के माहात्म्य को बतला रहे हैं।

अब प्रायश्चित्त-विधान की ओर दृष्टि डालिए। इस पर भी कुछ विशेषण प्रकाश डाल रहे हैं।

(१) अपापाम् (पाप से रहित)

(२) पापनाशिनीम् (पापों को नष्ट करनेवाली)

(३) पुण्याम् (पवित्र अथवा पवित्र करनेवाली)

(४) व्यपेतमलसंघाताम् (मल-समूह जहाँ से दूर निकल भागते हैं)

इसमें काव्यकला का दिग्दर्शन कराना अनावश्यक है, क्योंकि इस वर्णन में एक भी ऐसी शब्द-योजना नहीं मिलेगी, जिससे काव्य के रसास्वादन में कमी हो। वैसे ही उस समूचे वर्णन को हम भक्ति भाव में भी स्थान दे सकते हैं।

महाभारत में गंगा का वर्णन प्रधानतः दो स्थानों में मिलता है। एक तो आदि पर्व मेंशंतनु की कथा के प्रसंग में और दूसरा सगर-पुत्रों के उद्धार के अवसर पर वन पर्व में। आदि पर्व वाले वर्णन को छोड़कर मैं वन पर्व वाले को ही लेता हूँ, क्योंकि वर्णन की सुंदरता जैसी इसमें है वैसी उसमें नहीं। शंकरजी अपनी जटा फैलाकर खड़े हैं। उस समय आकाश से शंकर के ललाट देश पर गंगाजी के गिरने का जो दृश्य है वही भगवान् व्यास के वर्णन का विषय है। आप लिखते हैं—

"ईशानं च स्थितं दृष्ट्वा गगनात्सहसा च्युता।
तां प्रच्युतामथो दृष्ट्वा देवाः सार्द्धं महर्षिभिः॥
गन्धर्वोरगयक्षाश्च समाजग्मुर्दिदृक्षवः।
ततः पपात गगनाद्गङ्गा हिमवतः सुता॥
समुद्धतमहावर्ता मीनग्राहसमाकुला।
तां दधार हरो राजन् गङ्गां गगनमेखलाम्॥
ललाटदेशे पतितां मालां मुक्तामयीमिव।

अर्थात् "शंकरजी को खड़े देख आकाश से एकाएक गंगाजी गिरीं। उन्हें आकाश से गिरते देख देवता, महर्षि, गंधर्व, सर्प, यक्ष सब देखने की इच्छा से वहाँ आ गये। उस समय गंगाजी में बड़े बड़े भँवर पड़ रहे थे। उनमें बहुत सी मछलियाँ और घड़ियाल खलबलाहट पैदा कर रहे थे। आकाश की मेखला सी मालूम पड़नेवाली हिमवान् की कन्या उस गंगा को शंकरजी ने सिर पर यों धारण किया जैसे मोती की माला धारण की जाती है।"

इस वर्णन में महाभारतकार वाल्मीकि के वर्णन से बहुत कुछ प्रभावित मालूम पड़ते हैं।

अब कालिदास के रघुवंश को लीजिए! उनने प्रयाग की गंगा का जो वर्णन किया है, उसे पढ़कर कोई भी पाठक मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता।

क्वचित्प्रभालेपिभिरिंद्रनीलै—
र्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा।
अन्यत्र माला सितपंकजाना—
मिंदीवरैरुत्खचितांतरेव॥
क्वचित्खगानां प्रियमानसानाम्
कादंबसंसर्गवतीव पंक्तिः।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा
भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव॥

क्वचित्प्रभा चांद्रमसी तमोभिश्—
छायाविलीनैः शबलीकृतेव ।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा
रंध्रेष्विवालक्ष्यनभःप्रदेशा
क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव
भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य ।
पश्यानवद्यांगि विभाति गंगा
भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगैः ।

रामचन्द्र सीताजी के साथ पुष्पक पर लंका से लौट रहे थे। मार्ग में प्रयाग आ पड़ा तो आपने सीता जी से गंगा-यमुना को दिखाते हुए कहा—

"सुंदरी, जरा गंगा की शोभा तो देखो, किस प्रकार यमुना जी की तरंगों से उनका प्रवाह अलग-अलग दिखलाई दे रहा है। कहीं तो ऐसी मालूम पड़ रही हैं जैसे इंद्रनीलमणियों से जड़ी हुई मोतियों की चमकती हुई छड़ी हो। दूसरी जगह सफेद कमलों की माला सी जान पड़ती हैं, जिसके बीच बीच में नील कमल गूँथे गये हों। कहीं पर मान-सरोवर के प्रेमी हंसों की कतार सी मालूम पड़ रही हैं, जिसमें नील हंस भी मौजूद रहें। अन्यत्र तगर के चिह्नित पत्रों से सुशोभित सफेद चंदन की बनी हुई पृथ्वी की भंगि रचना सी जान पड़ती है। कहीं छाया में छिपकर बैठे हुए अंधकार से चित्रित चंद्रमा की चाँदनी हो रही है। कहीं पर शरद् ऋतु के सफेद मेघों की रेखा जान पड़ती है जिसके बीच बीच से आकाश के नीले प्रदेश दिखलाई देते हों। कहीं काले साँपों को आभूषण बनाये, भस्म रमाये शंकर का शरीर जान पड़ती है।

कालिदास के इस वर्णन में कितनी सजीवता एवं मार्मिकता है।

भवभूति ने भी 'उत्तररामचरित' में राम के मुख से भगवती भागीरथी के संबंध में कहलाया है—

"देवि रघुकुलदेवते ! नमस्ते,
तुरगविचयव्यग्रानुर्वीभिदः सगराध्वरे
कपिलमहसामर्षात् प्लुष्टान् पितुश्च पितामहान्
अगणिततनूतापं तप्त्वा तपांसि भगीरथो
भगवति तव स्पृष्टानाद्भिश्चिरादुदतीतरत् ।"

अर्थात् हे रघुकुल की देवता देवि भागीरथि, मैं तुझे नमस्कार करता हूँ। सगर के यज्ञ में घोड़े को खोजने में व्यग्र, पृथिवी को खोद डालनेवाले, कपिल के भयंकर कोप से भस्म हुए पितरों को भगीरथ ने अगणित शारीरिक कष्टों को झेलते हुए तप करके तेरे जल से स्पर्श कराकर तारा था।"

अर्थगौरव के गुरु महाकवि भारवि का श्रीगंगाजी पर प्रासंगिक वर्णन सुनिये—

विततशीकरराशिभिरुच्छ्रितै-
रुपलरोधविवर्तिभिरम्बुभिः;
दधतमुन्नतसानुसमुद्धतां
धृतसितव्यजनामिव जाह्नवीम् ।

अर्थात् शिलाओं में रुकने से पीछे की ओर लौटने वाले जल के कारण बिखरे हुए जल-कण ऊपर की ओर उछल रहे थे, इसलिए ऊँचे शिखरों से टकराई हुई गंगा ऐसी मालूम पड़ती थी, जैसे चँवर डुला रही हों।

पंडितराज जगन्नाथ की गंगालहरी के साथ कई कई गंगाष्टक भी उपलब्ध हैं। उन सबसे मैं यहाँ एक एक पद्य दे देना उचित समझता हूँ।

पंडितराज की 'गंगालहरी' संस्कृत साहित्य की एक जगमगाती ज्योति है। कितना सुंदर है यह पद्य—

अपि प्राज्यं राज्यं तृणमिव परित्यज्य सहसा
विलोलद्वानीरं तव जननि तीरं श्रितवताम्

सुधातः स्वादीयः सलिलभरमातृप्तिपिबताम्
जनानामानन्दः परिहसति निर्वाणपदवीम् ।

"माँ, जो लोग सहसा अपने बहुत बड़े राज्य को तिनके की तरह छोड़कर तुम्हारे तट पर, जहाँ सदा हिलते हुए सरकंडे दिखाई पड़ते हैं, आश्रय लेते हैं और अमृत से भी बढ़कर मीठे तुम्हारे जल को छक कर पीते हैं, उन लोगों का आनंद मोक्ष की पदवी का परिहास करता है।"

एक गंगाष्टक वाल्मीकिजी का लिखा हुआ है। उसमें जो प्रांजलता, सरसता और मनोहरता है उसे अनेक अनुकरण करनेवालों ने भी नहीं पाया! बानगी लीजिए—

गांगं वारि मनोहारि मुरारिचरणच्युतम् ।
त्रिपुरारिशिरश्चारि पापहारि पुनातुमाम् ॥

विष्णु के चरण से गिरा हुआ, शंकर के सिर पर विचरनेवाला, पापों को दूर करनेवाला मनोहर गंगा-जल मुझे पवित्र करे।

श्री शंकराचार्य ने जो गंगाष्टक लिखा है, उसका रस क्या कम है!

कुतो वीचिर्वीचिस्तव यदि गता लोचनपथं
त्वमापीता पीताम्बरपुरनिवासं वितरसि;
त्वदुत्संगे गंगे पतति यदि कायस्तनुभृताम्
तदामातः शातक्रतवपदलाभोऽप्यतिलघुः

'माँ, यदि तेरी तरंगें देख ली जायँ तो फिर संसार की माया कैसी? यदि कोई तेरे जल का पान कर ले तो उसे तू रहने के लिए अंत में विष्णुलोक देती है। माँ गंगे, तेरी गोद में यदि किसी भी प्राणी का शरीर पहुँच जाय तो इन्द्र पद भी उसके लिए अति तुच्छ है।'

लेख का कलेवर बहुत बढ़ रहा है, अतः मैं अनेक उद्धरणों को इच्छा रहते भी नहीं दे सकता। अंत में पंडितराज जगन्नाथ की एक समस्या—पूर्ति और रहीम के एक गंगा संबंधी श्लोक को देकर मैं इस लेख को समाप्त करूँगा।

एकबार विषय में डूबे हुए बूढ़े पंडितराज जगन्नाथ गंगा के किनारे सोये हुए थे। दिन चढ़ आया था। लोग स्नान करने आ जा रहे थे। उसी समय अप्पय दीक्षित वहाँ आ निकले और यह आधा श्लोक कहा—

"किं निःशंकं शेषे शेषे वयसि त्वमागते मृत्यौ"

भले आदमी! क्यों निःशंक होकर सो रहे हो! अवस्था अंतिम है (मौत नज़दीक आ पहुँची है।)

ये शब्द कानों में पड़ते ही पंडितराज जग पड़े और उन्होंने चादर से अपना सिर बाहर किया। अप्पय दीक्षित की दृष्टि उन पर पड़ी और वे डर गये। पंडितराज ने तुरंत ही आधे की यों पूर्ति की-

'अथवा सुखं शयीथा निकटे जागर्ति जाह्नवी भवतः'

(सोने से कोई हानि नहीं; आपके पास ही माँ गंगा जाग रही हैं।)

रहीम ने भी मुसलमान होते हुए गंगाजी के बारे में कितना सुंदर कहा है—

अच्युतचरणतरंगिणि
शशिशेखरमौलिमालतीमाले !
मम तनुवितरणसमये
हरता देया न मे हरिता ।

माँ, तू तो विष्णु के चरणों की निकली हुई तरंगिणी ठहरी ही। उधर तू महादेव के सिर की मालती माला भी है, अतः अंत में मुझे जब शरीर देना तो शिव का ही, विष्णु का नहीं, जिसमें मैं तुझे अपने सिर पर धारण कर सकूँ।

गंगा और हिंदी साहित्य

[ले०—श्री कमलाप्रसाद अवस्थी 'अशोक' बी. ए, विशारद]

नदियों में एक अपूर्व हृदय-मोहक शक्ति होती है। उनकी वक्रगति, कलकल ध्वनि और कूलों को चूमकर लहराने की प्रवृत्ति भावुकों को बरवस विमुग्ध कर लेती हैं। फिर प्रकृति की इस सजीवता के साथ ही साथ सरिता के रूप एवं प्रवाह में भी हम सौंदर्य और शक्ति के जिन नाना अंगों को प्रतिष्ठित पाते हैं, वे अवर्णनीय हैं। यही कारण है कि अवर्ण्य का वर्णन करनेवाले 'कवियों' ने अपने काव्यक्षेत्र के लिए सारा विश्व रहते हुए भी इस प्रकार के वर्णन को एक सम्मानपूर्ण स्थान प्रदान किया है। इसके महत्व का अनुमान इसी बात से किया जा सकता है कि पाश्चात्य देशों में, अधिकांश में कवियों को इन्हीं पयस्विनियों का पयपान करके संवर्धित होते देखकर, लोगों ने ऐसे अनेक स्थानों को कवितापीठ (Seat of Muses) तक लिख डाला है।

यूरोप में जिस प्रकार 'राइन' और 'टेम्स' ने अनेक कवियों के मानस को आप्लावित किया है, उसी प्रकार भारत में भी गंगा, यमुना, सिंधु, नर्मदा आदि नदियों ने भारती के कितने ही लड़ैते लालों के भावविपिन को सींचा है। हिंदी साहित्य में भी गंगा, यमुना और त्रिवेणी के शब्द-चित्र बहुत से कलाकारों ने प्रस्तुत किए हैं। व्रजभूमि की परम-प्रिया यमुना पर व्रजवासियों का अपार प्रेम था ही, किंतु पतितपावनी जाह्नवी पर भी कम कवियों की वाणी कृतार्थ नहीं हुई है। हाँ, गद्य में अवश्यमेव, अन्य भारतीय नदियों की ही भाँति, गंगा के संबंध में भी ज्ञातव्य बातों का कोई संकलन नहीं किया गया है; यद्यपि हम आशा करते हैं कि निकट भविष्य में यह कार्य निश्चय संपन्न हो जायगा, तथापि संप्रति तो हमें गंगा-विषयक साहित्य के लिए कविताओं पर ही संतोष करना पड़ेगा। अंग्रेजी में जरूर सौ वर्ष पूर्व, एक पुस्तक गोमुख से हरद्वार तक के वर्णन की, प्रकाशित हुई थी पर वह भी संभवतः अप्राप्य है, साथ ही सर्वोपयोगी भी नहीं।

लेकिन हिंदी-काव्य में, जैसा पहले कह चुके हैं, बहुत प्राचीनकाल से ही भगवती भागीरथी का यशोगान मिलता है। किसी कवि ने गंगा पर पद लिखे, किसी ने मुक्तक तैयार किया और किसी ने प्रबंधकाव्य ही लिख डाला। एक गंगा की शोभा वर्णन करता है, तो दूसरा स्वर्ग से उसके अवतरण-काल का वेग ही मूर्तिमान करता है। कहीं सगर-सुतों की कथा से रंजित जह्नुजा की पतितपावनी शक्ति का स्मरण किया जाता है, तो अन्यत्र केवल भक्तिभाव से इसका नामोच्चार ही होता है। सारांश यह कि गंगा हमारे जीवन के अंग-प्रत्यंग से दूध और पानी की तरह मिलजुल गई है।

इस व्यापक प्रभाव के अतिरिक्त अपने साहित्य में आदिकाल के समीप से ही हम गंगा-संबंधी काव्य की एक अविच्छिन्न धारा भी अद्यपर्यंत बहती हुई पाते हैं। चंदबरदाई का समय युद्ध और राज-नीतिक विप्लव का था। उस काल में गंगा के संबंध में उद्गार पाना ही स्वभाव-विरुद्ध था। भक्ति-काल का आविर्भाव होते ही हम अनेक सगुणोपासक भक्तों की वाणी से गंगा के विषय में कुछ न कुछ अवश्य सुनते हैं। केवल गंगा के तट पर रहनेवाले

कवियों ने ही इस पुण्यसलिला का गुणगान किया हो, यह बात नहीं; वल्कि यमुना की कछारों में कृष्ण की लीला का कीर्तन करनेवाले महात्मा सूरदास तक भी अछूते न बच सके थे। भक्ति से गद्गद होकर एक बार उन्होंने कह ही डाला—

'गंग-तरंग विलोकत नैन।
अति पुनीत विष्णु पादोदक, महिमा निगम पढ़त गुन चैन।
परम पवित्र मुक्ति की दाता, भागीरथी भई वर दैन।
त्रिभुवन-हार-सिंगार भगवती, सलिल चराचर जाके ऐन।
'सूरदास' विधना के तप ते, प्रकट भई संतत सुख दैन।'

इस काल के सबसे प्राचीन कवि मैथिल-कोकिल विद्यापति ठाकुर के हृदय में भी भागीरथी के लिए अप्रतिम अनुराग भरा था। गंगा की अद्वितीय पतितपावनी शक्ति कवि के हृदय में, उससे विछुड़ते समय भी, साहस का संचार करती है। वियोग-चिंता से उद्भूत सारी व्यथा एक बार ही इस स्मृति से धुल जाती है कि गंगा का एक स्नान ही जीवन-साफल्य के लिए पर्याप्त है। इसी भाव को कवि ने निम्नांकित पद्य में व्यंजित किया है। देखिए—

'कत सुखसार पाओल तुअ तीरे।
बिछुरत निकट नयन वह नीरे॥
कर जोड़ि विनमओं विमल-तरंगे।
पुन दरसन होअ पुनमति गंगे॥
एक अपराध छमव मोर जानी।
पाये परसल मातु तुअ पानी॥
कि करब जपतप जोग धेआन।
जनम कृतारथ एकहि सनान॥
भन 'विद्यापति' समदओं तोही।
अन्तकाल जनु विसरह मोही।'

कविकुल-चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास का कहना ही क्या? उनके तो सभी काव्यों में गंगा का वर्णन किसी न किसी रूप में आ गया है। 'विनयपत्रिका' के चार पद तो बहुत ही अनूठे हैं। भाषा, भाव एवं संगीत-योजना की दृष्टि से तो उनका वर्णन करना ही वृथा है। गंगा-वर्णन में प्राकृतिक सुषमा की ओर दृष्टि, जहाँ तक किसी भी कवि की नहीं पहुँची है, इन पदों में विशेषतया लक्षित होती है। इस शक्ति का, 'जयति जय सुरसरी जगदखिलपावनी' वाले पद में—

'हरित गंभीर वानीर दुहुँ तीरवर,
मध्यधारा विशद, विश्व-अभिरामिनी।
नील पर्यंककृत-शयन सर्पेश जनु
सहस-सीसावलीस्रोत सुर-स्वामिनी।'

जैसी पंक्तियाँ लिखकर, अच्छा निदर्शन दिया है। भक्तिभाव से भी ये पद पूर्णतः ओतप्रोत हैं। तुलसी के लिए राम से बढ़कर दूसरा श्रेष्ठ आदर्श संसार में न था। अतः गंगा की शुभ्र तरंग की राम के साथ तुलना कवि को विवश होकर उपमा के अभाव में ही करनी पड़ी है। इस संबंध का पद देखिए—

'हरनि पाप त्रिविध ताप सुमिरत सुरसरित।
बिलसति महि कल्पबेलि मुद मनोरथ-फरित॥
सोहत ससि धवलधार सुधा-सलिल-भरित।
विमलतर तरंग लसत रघुबर केसे चरित॥
तो विनु जगदंब गंग कलिजुग का करित?
घोर भव-अपारसिंधु तुलसी किमि तरित?'

गोस्वामीजी के अमर काव्य 'रामचरितमानस' में भी कुछ स्थलों पर गंगा का वर्णन आ गया है। एक स्थान पर आपने गंगा की महत्ता यों कही है—

'गंग सकल मुद-मंगल-मूला।
सब सुख-करनि हरनि सब सूला॥'

लेकिन तुलसी को गंगा अथवा उसका जल केवल नाम के लिए ही प्रिय नहीं है अपितु प्रियता का

कारण उसका ब्रह्मद्रव तथा सर्वसुलभ होना है। क्योंकि—

'ब्रह्म जो व्यापक वेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन ज्ञान गुनी को।
जो करता भरता हरता सुर साहिब साहिब दीन दुनी को॥
सोइ भयो द्रव रूप सही जु है नाथ विरंचि महेस मुनी को।
मानि प्रतीति सदा 'तुलसी' जल काहे न सेवत देवधुनी को॥'

आचार्य केशवदास ने गंगा का सीधा वर्णन तो नहीं किया है, किन्तु त्रिवेणी-वर्णन के प्रसंग में लिखित निम्न दण्डक प्रधानतः गंगा के वर्णन में ही आ जाता है।

'चतुरवदन पंचवदन षटवदन,
सहसवदन हू सहसगति गाई है।
सात लोक सात द्वीप सातहू रसातलनि,
गंगाजी की शोभा सबही को सुखदाई है॥
यमुना को जल रह्यो फैलि कै प्रवाह पर,
'केशोदास' बीच बीच गिरा की गोराई है।
शोभन शरीर पर कुंकुम विलेपन को,
श्यामल दुकूल झीन झलकत झाई है॥'

केशवदास के बाद रीतिकार कवियों की एक बाढ़ सी आ गई थी। भक्तिपरक कविताओं के स्थान पर विलासी मनोवृत्ति की तृप्तिकारी कविता ने इन रीतिकारों को लुभाया। पर इस क्षेत्र में पूजनीया गंगा को घसीट लाना कोई भी भारतीय हृदय स्वीकार नहीं कर सकता था। यही कारण है कि इस काल में पद्माकर के समय के पहले हमें गंगा-संबंधी कविताएँ बहुत कम मिलती हैं। केवल एक मतिराम ऐसे हैं जिनकी गंगा पर कविता मिलती है। वह भी किसी भक्ति-भावना का परिणाम न होकर केवल रचना-कौशल का एक नमूना मात्र है। ये लिखते हैं—

'पारावार प्रीतम कौ प्यारी ह्वै मिली है गंग,
बरनत कोऊ कवि कोविद निहारि कै।
सो तो मतो 'मतिराम' के न मन माने,
निज मत सों कहत यह बचन बिचारि कै॥
जरत बरत बड़वानल सों वारिनिधि,
बीचिन के सोर सो जनावत पुकारि कै।
ज्यावत विरंचि ताहि प्यावत पियूष निज,
कलानिधि-मंडल-कमण्डल तैं ढारि कै॥

जहाँ इस काल के हिंदू कवि समय की धारा में बहे जा रहे थे वहीं कतिपय मुसलमानों को ब्रज और रामकृष्ण की माधुरी ने ऐसा अभिभूत कर लिया था कि गंगा-यमुना आदि पर उन्हीं की कविताएँ अधिकांश में प्राप्त होती हैं। गंगा पर इस युग के तीन प्रधान मुसलमान कवियों ने शुद्ध भक्त की हैसियत से लिखा है—

रहीम का सिर्फ एक दोहा—

'अच्युत-चरन-तरंगिनी, सिव-सिर-मालति-माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीन्ह्यो इन्दवभाल।'

ही मिलता है। पर भाषा, भाव और उक्ति-वैचित्र्य की दृष्टि से यह दोहा गंगा के संबंध में लिखी गई उच्चकोटि की कविताओं में से एक है।

रसखान तो वास्तव में मुसलमान होकर भी हृदय से हिंदू थे। कौन साहित्य-प्रेमी इनकी रस-वर्षिणी काव्य-कादंबिनी का आस्वाद न ले चुका होगा। नीचे के सवैये में देखिए, कवि का गंगा के प्रति कितना आत्म-विश्वास झलकता है। शिव-सदृश कुपथ्याहारी की रक्षिणी गंगा उसकी दृष्टि में संजीवनी सुधा से ही भरी है।

'बैद की औषधि खाऊँ कछू न करौं व्रत संजम री सुन मोसे।
तेरोई पानी पियौं 'रसखानि' सँजोवनलाभ लहौं सुख तोसे।
एरी सुधामयी भागीरथी, कोउ पथ्य कुपथ्य करै तऊ पोसे।
आक-धतूरे चबात फिरैं विष खात फिरैं सिव तेरे भरोसे।'

स्त्री कवि 'शेख' ने भी गंगा के संबंध में दो

कवित्त लिखे हैं। अंतर का शुद्ध प्रेम इनकी प्रत्येक पंक्तियों से टपकता है। एक कवित्त पढ़िए—

'जौंही भौंह भींजी आँखि ताकिहै सुतीजिये से,
जीवी कहे ज्याइहै अमर पद आइ लै।
अंबर पखारे ते दिगंबर बनैहै तोहि,
छलक छुआए गज-छाल तन छाइ लै।
'शेख' कहै सापी कोऊ जैनी है कि जापी बड़ो,
पापी है तो नीर-पैठि नागन लिवाइ लै।
अंग बोरि गंग में निहग ह्वै कै वेगि चलि,
आगे आउ मैल धोइ बैल गैल लाइ लै।'

मध्य प्रदेश के वर्तमान कवि श्री अमीर अली 'मीर' ने भी स्वयं मुसलमान होते हुए गंगा पर कविता लिखी है, यह हमारे लिये कम गर्व की बात नहीं; परंतु आपकी रचना में वह तन्मयता और अनुभूति नहीं है जो कि रसखान और रहीम की कविताओं में हमें प्राप्य है।

हाँ तो, मतिराम के उपरांत पद्माकर का काल आता है। पद्माकर वस्तुतः एक महान आत्मा थे। उनकी, काव्य के सभी क्षेत्रों में, अप्रतिहत गति थी। अपने जीवन का पूर्वभाग यद्यपि उन्होंने श्रृंगारिक काव्य की साधना में व्यतीत किया था, फिर भी उनकी उत्तरभाग की कृतियों में भक्ति पद-पद पर प्रतिबिंबित होती है। गंगा पर लिख कर तो उन्होंने एक नूतन मार्ग-प्रदर्शक का काम किया। जिस प्रकार संस्कृत में पंडितराज जगन्नाथ के उपरांत गंगालहरी के अनुकरण पर बहुत सी कविताएँ लिखी गईं, उसी प्रकार पद्माकर की 'गंगालहरी' के अनुकरण पर ग्वाल की 'यमुना-लहरी', लछिराम की 'सरजू-लहरी', आदि अनेक काव्यपुस्तकें इसी शैली पर प्रणीत हुईं। गंगा के विषय में लिखने का प्रचार यहाँ तक बढ़ा कि राजे-महाराजे भी इस क्षेत्र में लिखने का लोभ संवरण न कर सके। महाराज रघुवीरसिंह ने 'गंगाशतक' लिखा, जो साहित्य की दृष्टि से अपना एक अच्छा स्थान रखता है। महाराज यशवंतसिंह ने भी गंगा पर कुछ कविताएं लिखी हैं।

बाद के रीति-ग्रंथकारों पर भी पद्माकर का यथेष्ट प्रभाव पड़ा। 'लेखराज' ने यद्यपि अलंकार-निरूपण में एक ग्रंथ लिखा है, फिर भी उसके समस्त उदाहरण के छंद गंगाविषयक ही हैं। छोटे-मोटे कवियों की तो अनेक रचनाएँ मिलती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पद्माकर का हमारे साहित्य पर बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा है। उनकी कृति में यद्यपि हृदय-पक्ष की अवहेलना की गई है तथापि गंगा-विषयक कविताओं में हृदय की निष्क-पटता का अभाव नहीं है। गंगा-लहरी के छप्पन छंदों के अतिरिक्त उनके कुछ और भी छंद इस विषय के मिलते हैं। यों यह भी स्पष्ट है कि अपने सभी पूर्ववर्ती कवियों से इस मार्ग में अधिक लिखने का श्रेय सर्वप्रथम पद्माकर को ही प्राप्त है। गंगा की अतुल शक्ति पर पद्माकर के हृदय में कितना अटूट विश्वास था, देखिए—

'काम अरु क्रोध लोभ मोह मद मातसर्य,
इनकी जँजीरन को जारिहै पै जारिहै।
कहै 'पदमाकर' पसारि पुन्य चारौ ओर,
चारौ फल धामन में धारिहै पै धारिहै॥
छोभ छलछंदन को बाढ़े पापव्दंदन को,
फिकिर के फंदन को फारिहै पै फारिहै।
एकै बार बारि जिन गंगा को पियो है तिन्हैं,
तारनि तरंगिनी या तारिहै पै तारिहै।'

इसी विश्वास का फल है कि वे दूसरों को भी अनुक्षण गंगा का कीर्तन करने के लिए कहते हैं—

'योग हू में भोग में वियोग में सँयोग हू में,
रोग हू में रस में न नेकौ बिसराइए।

कहै 'पद्माकर' पुरी में पुन्य, रौरव में,
फैलन में फैल-फैल गैलन में गाइए॥
वैरिन में बंधु में विथा में बंसवालन में,
विषय में रन हू में जहाँ जहाँ जाइए।
सोच हू में सुख में सुरी में साहबी में कहूँ,
गंगा गंगा गंगा कहि जनम विताइए।'

एक स्थान पर कविवर रसखान की ही भाँति वे भी शिव के माहात्म्य का कारण गंगा को ही मानते हैं। वह कवित्त यों है—

'लोचन असम अंग भसम चिता को लाइ,
तीनों लोक नायक सो कैसे कै ठहरतो।
कहै 'पद्माकर' बिलोकि इमि ढंग जाके,
वेदहू पुरान गान कैसे अनुसरतो॥
बाँधे जटाजूट बैठि परवत-कूट माँहिं,
महाकालकूट कहौ कैसे कै ठहरतो।
पीवै नित भंग रहै प्रेतन के संगै,
ऐसे पूछतो को नंगै जो न गंगै सीस धरतो॥'

इस प्रतिभाशाली कवि के उपरांत दूसरे महाकवि भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र तथा उनके पिता बाबू गोपालचंद्र 'गिरिधारन' का समय आता है। इन लोगों ने भी गंगाविषयक कविताएँ रची हैं। पिता और पुत्र में अंतर इतना ही है कि जहाँ दूसरे की कविता अधिक वर्णनात्मक, मधुर और हृदयग्राही है वहीं पहले की शब्दालंकारों से कसी और कम वर्णनात्मक है। 'गिरिधारन' जी की निम्नलिखित कविता बहुत प्रसिद्ध है—

'जम की सब त्रास विनास करी
मुख ते निजनाम उचारन में।
सब पाप प्रतापहिं दूर दर्‌यो
तुम आपन आप निहारन में॥
अहो गंग अनंग के शत्रु करे
बहु नेकु जलै मुख डारन में।
'गिरिधारन' जू कितने बिरचे
गिरिधारन धारन धारन में॥'

भारतेंदुजी का 'नव उज्ज्वल जलधार' वाला गंगा-वर्णन विशुद्ध प्राकृतिक वर्णन न होकर यद्यपि उपमा, उत्प्रेक्षा से रंजित है, फिर भी तुलसी के 'विनयपत्रिका'-वाले पद के सिवा अन्य किसी भी रचना से यह तुलनीय नहीं है। तुलनात्मक दृष्टि से वस्तुवर्णन में इन्होंने तुलसी की अपेक्षा मनुष्य की कृति की ओर अधिक रुचि दिखाई है। कुछ अंश देखिए—

'नव उज्जल जलधार, हार हीरक सी सोहति।
बिच-बिच छहरति बूँद, मध्य मुक्तामनि पोहति।
लोल लहर लहि पवन, एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन मन विविध मनोरथ करत मिटावत।
सुभग-स्वर्ग-सोपान-सरिस सबके मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर हटावत।
श्री हरिपद-नख-चंद्रकांत-मनि-द्रवित सुधारस।
ब्रह्म-कमंडल-मंडन, भव-खंडन सुर-सरबस।
शिव-सिर-मालति-माल, भगीरथ-नृपति-पुन्य-फल।
ऐरावत-गज गिरि-पति-हिम-नग-कंठहार कल।
सगर-सुवन सठ सहस परस जल मात्र उधारण।
अगिनित धारा रूप धारि सागर संचारण।
कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई।
सपनेहूँ नहिं तजी, रही अंकम लपटाई।
कहूँ बँधे नव घाट उच्च गिरिवर-सम सोहत।
कहुँ छतरी कहुं मढ़ी, बढ़ी मन मोहत जोहत।
धवल धाम चहुं ओर फरहरत धुजा पताका।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका।
मधुरी नौबत बजत, कहूँ नारी-नर गावत।
वेद पढ़त कहुं द्विज, कहूँ जोगी ध्यान लगावत।'

स्वर्गीय पंडित अंबिकादत्त व्यास ने भी भारतेंदुजी के अनुकरण पर गंगातट का एक मनोरम शब्द-चित्र खींचा है। भारतेंदुजी सा भाव-सौकर्य न

होते हुए भी कविता वर्णनात्मक दृष्टि से अच्छी बन पड़ी है। कतिपय पंक्तियाँ पढ़िए—

'प्रात समय गंगा की शोभा नहिं कहि जाती।
देखत ही में उमगि प्रेम भरि आवत छाती॥
'बंबं हर हर' करत भीड़ आती अरु जाती।
नौका केती चलत मंद लहरनि लहराती।
केते मज्जन करत मनहुं गंगहिं आलिंगत।
केते इत उत मुदित होय जल ही में रिंगत॥'

स्वर्गीय राय श्री देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने भी पद्माकरी शैली में गंगा की लहर का सुंदर आलंकारिक वर्णन किया है। यथा—

'चामर-सी चंदन-सी चंद्रिका-सी चंद ऐसी,
चाँदनी चमेली चारु चाँदी-सी सुघर है।
कुंद-सी कुमुद-सी कपूर-सी कपास ऐसी,
कल्पतरु-कुसुम-सी कीरति-सी वर है॥
'पूरन' प्रकास ऐसी काम ऐसी हास ऐसी,
सेख के सुपास ऐसी सुखमा को घर है।
पाप को जहर ऐसी मुख की गहर ऐसी,
सुधा की लहर ऐसी गंगा की लहर है॥'

पद्माकर के बाद गंगा की सफल साधना करनेवाले स्वर्गीय बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ही हुए हैं। गंगा पर लिखा भी इन्हींने सबसे अधिक है। इनका 'गंगावतरण' नामक प्रबंध-काव्य हिंदी-साहित्य में अपना अलग स्थान रखता है। यद्यपि वस्तुवर्णन की वह विशदता और भावों का गांभीर्य जो वाल्मीकि और माघ आदि संस्कृत के कवियों में मिलता है, वह यहाँ नहीं है, फिर भी 'गंगावतरण' काव्यकला के चामत्कारिक रूप का अच्छा निदर्शन है। उदाहरणार्थ स्वर्ग से गंगा के उतरते समय का दृश्य देखिए—

'निज दरेर सौं पौन पटल फारत फहरावति।
सुरपुर के अति सघन घोर घन घसि घहरावति।
चली धार धुधकारि धरा-दिसि काटति कावा।
सगर-सुतनि के पाप-ताप पर बोलति धावा॥'
'विपुल बेग सौं कबहुँ उमगि आगे कौं धावति।
सौ सौ जोजन लौं सुढार ढरतिहिं चलि आवति।
फटिकसिला के बर बिसाल मन बिस्मय बोहत।
मनहु बिसद छद अनाधार अंबर मैं सोहत।'

मर्त्यलोक में आकर गंगा इधर-उधर लड़ती टकराती बही जा रही है। इस वर्णन में कवि ने कितनी सफलता से गंगा की घहर तक शब्दों द्वारा प्रतिध्वनित कर दी है। उदाहरणार्थ नीचे का छंद देखिए—

'कहुँ कोउ गह्वर गुहा माँहि घहरति घुसि घूमति।
प्रबल बेग सौं धमकि धूँसि दसहूँ दिसि दूमति॥
कढ़त फोरि इक ओर घोर धुनि प्रतिधुनि पूरति।
मानहु उड़त सुरंग गूढ़ गिरि संगनि चूरति॥'

'गंगावतरण' के अलावा 'रत्नाकर' जी ने गंगा पर एक अष्टक तथा और भी अनेक स्फुट छंद लिखे हैं। गंगासंबंधी सभी कविताओं से इनमें कवित्व की मात्रा भी बहुत अधिक विकसित हुई है। एक नमूना लीजिए—

'पानी कौ सुढार लसै पावक की झार लसै,
धार कौ तिहारी सार समुझि न आवै है।
कहै 'रतनाकर' सुभाव लच्छ लच्छन कौ,
रावरो प्रभाव लै बिलच्छन बनावै है।
सुकृत फरावै झरसावै झार दुःकृत कौ,
ताप सियरावै जन-पापहिं जरावै है।
गंग तव नोखो ढंग जगत उजागर है,
सागर भरावै भवसागर सुखावै है।'

जहाँ रत्नाकरजी के काव्य में कलापक्ष की प्रधानता है वहीं स्वर्गीय पंडित सत्यनारायण कविरत्न की कविताएँ सुकुमारता, सरसता और भावसौष्ठव से सराबोर हैं। यद्यपि शोक का विषय है कि ऐसे

सुकवि को अकाल में ही काल द्वारा कवलित होना पड़ा तथापि उनका स्मृति-चिह्न—उनकी कृतियों का अक्षयकोष, हमारे पास से जाने का नहीं। इनकी गंगा-विषयक कविताओं में भी कल्पना और भावना का कैसा सुंदर सामंजस्य हुआ है, यह बतलाने के लिए नीचे की दो पंक्तियाँ पर्याप्त हैं—

'किधौं भेद-पाषाण भेदि, नित द्रवत सुधा कौं।
बहति हिलोरति बोरति, सुरसरि हिय-वसुधा कौं।'

आधुनिक युग के दो सर्वश्रेष्ठ कवि पंडित अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध और श्री मैथिलीशरण गुप्त की भी गंगा पर कतिपय पंक्तियाँ मिल जाती हैं। इन दोनों ही कवियों की कविता के विषय में कुछ कहना वृथा है। भाषा, भाव और वस्तुवर्णन सभी दृष्टियों से इनकी कविता आधुनिक खड़ी बोली में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती हैं। एक बात जरूर देखने में आती है कि जहाँ 'हरिऔध'जी की कविता में कुछ प्राचीनता की झलक है वहीं गुप्तजी का वर्णन नवीन दिशा की ओर संकेत करता रहता है। इसका मूल कारण 'हरिऔध'जी का गुप्तजी से बहुत अधिक वयोवृद्ध होना मात्र ही हो सकता है। यहाँ दोनों ही महाकवियों की कविता दी जाती है।

'हरिऔध'जी कितने कलापूर्ण और हृदयहारी ढंग से गंगा के संबंध में कहते हैं—

'पूजन भजन कर कुजन सुजन बने,
भारत का जन जन जानता है इसको।
भव में भवानीपति सा ही भूतिमान किया,
भाव से भरित भावना दे जिस तिसको।
'हरिऔध' सगर-सुवन का सँवारा जन्म,
तारा उसे कोई तार पाता नहीं जिसको।
सुधा को उधार बसुधातल सहारा बनी,
सुरसरि-धारा ने सुधारा नहीं किसको।'

गुप्तजी के 'साकेत' महाकाव्य में दो स्थलों पर गंगा का वर्णन आया है। एक स्थान पर गंगा के विषय में की गई उनकी कल्पना देखिए—

'यह थी एक विशाल मोतियों की लड़ी।
स्वर्गकंठ से छूट धरा पर गिर पड़ी।
सह न सकी भवताप अचानक गल गई।
हिम होकर भी द्रवित रही कल जलमई।'

अन्यत्र गंगा से कवि कितनी भावुकता के साथ प्रार्थना करता है—

'जय गंगे आनंदतरंगे कलरवे!
अमलअंचले पुण्यजले दिवसंभवे!
सरस रहे यह भरतभूमि तुमसे सदा।
हम सबकी तुम एक चलाचल संपदा।'

इन लोगों के अलावा पंडित जगन्नाथप्रसाद 'भानु' तथा स्वर्गीय श्री अर्जुनदास केडिया ने भी अपने 'छंदःप्रभाकर' और 'भारती-भूषण' में लक्षणों के उदाहरण में गंगाविषयक छंदों को रचकर रखा है। पर कवित्व की दृष्टि से उनका कोई विशेष मूल्य नहीं आँका जा सकता।

श्री कन्हैयालाल पोद्दार ने पंडित जगन्नाथ की 'गंगालहरी' का हिंदी पद्य में समश्लोकी अनुवाद किया है पर हिंदी में संस्कृत वृत्तों के लिखने की कठिनता के कारण पूर्णतः सफल नहीं हो सके हैं।

संस्कृत के यशस्वी विद्वान् स्वर्गीय महामहोपाध्याय पंडित देवीप्रसाद शुक्ल कविचक्रवर्ती ने भी गंगा के संबंध में बीस पचीस छंद लिखे थे। उन्हीं में से एक यहाँ दिया जाता है। कवि ने प्राचीन शैली का, संस्कृत-गर्भित भाषा के साथ भी, कैसा सुंदर निर्वाह किया है यह अवलोकनीय है।

'हरिपद-पंकज को मंजु मकरंद वृंद,
शंकर को मौलिदाम उत्तम अभंग है।
पापपुंज-कानन को कठिन कुठार तीव्र,
सुरपुर-सीढ़ी को परंपरा प्रसंग है।

उदित वसुंधरा को उज्ज्वल उदार हार,
विश्व को विशेष पुण्य प्रकट उतंग है।
भूपति भगीरथ को सुयश-समूह-रूप,
अमरतरंगिणी को तरल तरंग है।'

इन लोगों के उपरांत हिंदी के वर्तमान रूप की ओर आने पर हम देखते हैं कि आजकल जो छाया-वाद (?) की काव्य-धारा बह रही है इसकी गति आत्माभिव्यंजन की ओर विशेषतया होने से इस स्कूल के कवियों ने गंगा-यमुना-विषयक कविताओं की उपेक्षा ही की है। और जब कभी इस प्रकार के प्रसंग ये लोग लेते भी हैं तो उसे अपने अंतर्द्वंद्व के प्रदर्शन का साधन ही बनाते हैं। 'प्रसाद' जी ने वरुणा पर और 'निराला' जी ने यमुना पर इसी ढंग से कविताएँ लिखी हैं। हाँ, गंगा पर अभीतक कोई कविता नहीं देखने में आई। प्रोफेसर मनोरंजन एम० ए० बद्रीनाथ-यात्रा के समय राजघाट के पुल पर से गंगा का दर्शन करके उद्वेलित हो पड़े थे, और उन्होंने एक कविता लिखी भी थी। जिसकी कुछ पंक्तियां यों हैं—

'भूल पितृगृह के सारे सुख, पगली सी हो प्रेम-विभोर,
उतावली सी सुधबुध खोकर, जाती है यों किसकी ओर?
अथवा हम संतप्तजनों के, हरने को सारे संताप,
विभवों से मुंह मोड़ दूसरों-हित भूतल पर आती आप।'

× × ×

'जाता हूँ तेरे पीहर को, कह जो कहना हो संदेश।
तेरी बातें सुनने को आकुल होगा तव पितृ-प्रदेश।
तेरी सुख-दुख की सब गाथा जाकर वहाँ सुनाऊँगा।
नानिहाल के नाते मैं भी कुछ तो आदर पाऊँगा।'

पर इस प्रकार की कविताएँ 'प्रसाद'जी के स्कूल से संबंधित न मान कर 'हरिऔध' जी तथा गुप्तजी के स्कूल में ही शामिल की जा सकती हैं।

विशुद्ध गंगा के वर्णन के अलावा शुभ्रता, पवित्रता आदि के लिए भी साहित्य में जगह-जगह गंगा से उपमा दी गई है। कवियों ने इसका नाना रूपों से वर्णन किया है। यहां तक कि 'गंग भंग दोउ बहिन' तक कह डाला है। इस प्रकार साहित्य पर दृष्टिपात करने के बाद स्पष्ट विदित हो जाता है कि जिस प्रकार हमारे जीवन के प्रत्येक अंग पर गंगा का पानी चढ़ा है ठीक उसी प्रकार हमारा साहित्य भी सुर-सरिता के पुण्य तोय से धुल कर अनुक्षण निखर रहा है। गंगा हिंदुत्व और भारतीयत्व की अमिट निशानी होती हुई भी देश और काल से आच्छन्न नहीं। वही तो सबकी समान धात्री है। आज वह देवी के रूप में, सरिता के रूप में, हमारी माता के रूप में तथा और भी अनेक प्रकार से सर्वत्र व्याप्त हो रही है। अतः साहित्य में अतीत की ही भाँति भविष्य में भी वह आदृत होती रहेगी; अपनाने का रूप, चाहे हमारे दृष्टिकोण के परिवर्तित होने के साथ, भले ही बदल जाय।
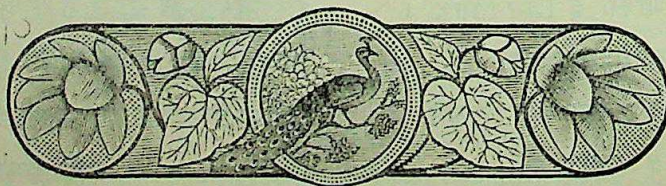
गंगा पर बंगाल के कवि

(ले०—श्री आशुतोष मुकर्जी)

बंगाल में माँ का स्थान सर्वोपरि है; क्योंकि बालक की रक्षा का ध्यान जितना माँ को होता है उतना अन्य किसी को नहीं। शताब्दियाँ गुजर गईं बंगाल को दुःख के झूले में झूलते हुए, फिर क्यों न उसमें करुणा की रागिनी उमड़े? बंगाल पुरुषार्थी है, परंतु यह पुरुषार्थ भी उसे अपनी करुणा की कृपा से ही मिला है। दुःख का स्वाद चख लेने के पश्चात् ही मनुष्य को अनुभव होता है कि दुःख में कितनी वेदना होती है। इतिहास साक्षी है कि इस वेदनामय जीवन के मार्ग पर कब से बंगाल बढ़ता चला जा रहा है। इस वेदना ने ही बंगाल को भक्ति का पाठ पढ़ाया है; इस वेदना ने ही प्रेम के मंत्र से दीक्षित किया है। आज इसी के कारण वह अपना सर्वस्व स्वाहा करके भी, जान हथेली पर लिए हुए अपनी माँ की सेवा करने को तैयार है। उसे अपने पुराने गौरव का ज्ञान है। उसी की माँ ने तो अपने प्यारे अज्ञान बालकों की रक्षा हिमगिरि से स्वयं दुग्ध-रूप धर ज्ञान-मंदाकिनी बनकर की है—महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने बंगाल की इस भावना को कितने अच्छे शब्दों में प्रकट किया है—

जाह्नवी जमुना विगलित करुना
पुण्य पियूषस्तन्यवाहिनी।

सचमुच ही यदि आज गंगा भारत में न होती और उसने अपनी ज्ञान-धारा से—प्रेम-धारा से—उसे न सींचा होता—जीवन न दिया होता—तो भारत कब का नष्ट हो गया होता। माँ गंगा ने अनेक रूप धारण किए हैं। उसने देश और काल से अतीत को भी अपने बच्चों के हितार्थ देश-काल से आबद्ध कर दिया है। जब जिस तरह से बच्चों का हित हो सकता है और अहित का निवारण किया जा सकता है, माँ को उसके करने में कभी विलंब नहीं हुआ। बंगाल ने माँ के इस रूप को भली भाँति देखा है। स्नेहमयी माँ से स्नेह पाकर क्या वह कृतघ्न बन सकता है? क्या वह उसकी उस मूर्ति को भूल सकता है? वह तो उसे महाकवि के शब्दों में बारंबार स्मरण करता हुआ हर्ष-विह्वल हो कहने लगता है—

देशे काले मुक्ति जिनि।
जटाय तोरिं घुर्णी जड़ाय देश कालेरि मंदाकिनी॥

जो देश काल से अतीत हैं उन्हीं की जटाओं में देश और काल की मंदाकिनी चक्कर काटती है।

देश और काल से अतीत पुरुष को कौन जान सकता है? कौन देख सकता है? परंतु उसे भी जानने योग्य और देखने योग्य बनाने की शक्ति—उसे सीमा में ले आने की शक्ति—माँ गंगा के सिवा किसमें है? इसी से तो उस प्रेम-रूप शिव को अपने बच्चों तक ले आने में माँ समर्थ हो पाई हैं।

माँ ने बंगाल को प्रेम-प्लावित ही नहीं किया, जीवन भी दिया है। यदि बंगाल में माँ का पाँव न पड़ा होता तो क्या वह समृद्धि, जो आज उस देश में दिखाई दे रही है और जिसका मजा और लोग ही लूट रहे हैं, कभी दिखाई देती? या वह शांति, जो त्रिताप-तापित होने पर भी बंगाल में दिखाई देती है, वहाँ रहती? बंगाल के प्रसिद्ध

नाटककार द्विजेंद्रलाल राय तो एक बार मुग्ध होकर भावावेश में नाचने तक लगे थे। उस समय उनके मुँह से निकला हुआ छंद आज हम लोगों को भी मस्त बना देता है—

पतितोद्धारिणि गंगे।
श्याम विटपि घन तट विप्लाविनी धूसर तरंग भंगे॥
कत नग नगरी तीर्थ हइल तव चुंबि चरण-युग माई।
कत नर नारी धन्य हइल मा तव सलिले अवगाहि॥
बहिछ जननि ए भारतवर्ष कत शत युग युग बाह।
करि सुश्यामल कत मरु प्रांतर शीतल पुण्य तरंगे॥
अंबर हइते सम शत धार ज्योतिः प्रपात तिमिरे।
नामि धराय ,हिमाचलमूले मिशिले सागर अंगे॥
वरिष शांति मम शंकित प्राणे वरिष अमृत मम अंगे।
माँ भागीरथि! जाह्नवी! सुरधुनि! कल कल्लोलिनि गंगे॥

गंगे, तुम पतितों का उद्धार करनेवाली हो, काले वृक्षों से आच्छादित तटों का तुम प्लावन करती हो। हे तरंगों की चोट से धूसर गंगे, माँ, तुम्हारे चरणों को चूमकर कितने ही नगर तीर्थ-स्थान हो गए। तुम्हारे जल में स्नानकर कितने ही लोग धन्य हुए। माँ अपनी पवित्र और शीतल तरंगों से बहुतेरे मरुप्रांतों को शस्य-श्यामला बनाती हुई तुम न जाने कितने युगों से इस भारत-भूमि पर बह रही हो। आकाश में शतधार की तरह, अंधकार में प्रकाश-स्रोत की तरह, हिमालय के नीचे तुम उतरीं और सागर के साथ मिलीं। माँ, संसार के सब दुःखों को छोड़कर जब अंतिम शय्या पर सोने लगूँ तो तुम मेरे शंका-पूर्ण हृदय में शांति बरसाना, अंगों में अमृत बरसाना। हे भागीरथी, जाह्नवी, देवि, हे सुरों की खान, हे कल-कल्लोलिनि गंगे!

यह है माँ की महिमा। परंतु माँ की महिमा कैसे गाई जा सकती है? उसे तो अनुभव किया जा सकता है। बंगाल ने उसका अच्छी तरह अनुभव किया है। बंगाल में जितनी श्रद्धा और भक्ति मिलेगी, जितनी भावुकता मिलेगी, वह सब तो माँ गंगा का ही प्रसाद है। कहने से क्या होता है, जिन लोगों को बंगाल के संपर्क में आने का अवसर मिला है वे इस बात को भली भाँति जानते हैं।

बंगाल को तो इस बात का गर्व है कि जिस माँ से उसने जीवन प्राप्त किया है, अपना कर्त्तव्य सीखा है, उस माँ का चित्र उसके हृदय में भली भाँति अंकित है और भविष्य में भी रहेगा।

(पृष्ठ ५१२ का शेषांश)

पदैकसहकारिणियुं, उत्कृष्टप्रतिकूलेयागियुं आनत जनानुकूले युमेनिशि विराजि सुत-मिर्दळु।"

कवि कहता है कि शिव-मस्तक से आई हुई यह गंगा मंगलमयी है। सुवासित कमलपुष्पों से भरी हुई होने के कारण भ्रमर इधर उधर भ्रमण कर रहे हैं। हंस मंदगति से चल रहे हैं। यद्यपि गंगा निम्नगा हैं, फिर भी मोक्ष-रूपी उच्च स्थान को देती हैं। तरंगों के आघात से छिन्न-भिन्न होने पर भी अच्छिन्न और अभिन्न नित्य-पद देती हैं।

अनेक कवियों ने अनेक रूप से गंगा का वर्णन किया है। इस छोटे से लेख में तो कर्नाटकी साहित्य की यह बानगी मात्र है।

कर्नाटक-साहित्य में गंगा

(ले० —श्री वागीश शिवाचार्यजी, कर्नाटक)

हिंदुओं में गंगा का विशेष स्थान है। प्रातः-काल उठकर गंगाजी का नाम लेना बहुत ही शुभ देनेवाला माना जाता है। पहले इनके नाम का स्मरण करके जो कार्य किया जाता है, वह अवश्य ही सफल होता है। तब कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो इस सहज सुलभ लाभ को पाने की चेष्टा न करे? अपने आपको इससे वंचित रखे?

कर्नाटक भले ही गंगाजी से दूर हो, परंतु है तो उसी भारतवर्ष का एक प्रांत, जहाँ भगवती भागीरथी ने प्रकट होकर उसे दैवी-शक्ति से संपन्न किया है, करुणा की धारा बहाई है, ज्ञान का कोश दिया है। प्रत्येक साहित्य-रस-रसिक भ्रमर अपने आपको इस रस से परिपूर्ण करने का प्रयत्न करता है, इसमें डूब जाना चाहता है।

भारत की संस्कृति का चाहे उत्तरी भारत में कभी अवश्य ही खूब प्रचार हुआ हो परंतु यदि आज कहीं वह अपने पूर्ण रूप में सुरक्षित है तो दक्षिण प्रांत में ही है।

सरलता से प्राप्त वस्तु के प्रयोग करने में, उसका अनुभव लेने में, किसी व्यक्ति की कोई उतनी विशेषता नहीं है, जितनी उस व्यक्ति की विशेषता कठिनता से प्राप्त होनेवाली वस्तु को प्राप्त करने में और उसके रस का स्वाद लेने में है। गंगा के रसास्वादन करनेवाले स्थानों में दक्षिण प्रांत का भी नाम है।

मनुष्य भाव-प्रधान है। कठिनता से प्राप्त होनेवाली गंगा के रसास्वादन में तन्मयता प्राप्त करनेवाले, उसमें अपने आपको डुबो देनेवाले—भावप्रधान कर्नाटकी कवियों और लेखकों की कमी नहीं है। कर्नाटकी साहित्य में गंगा का भावमय प्रवाह ऐसा चलता है कि मनुष्य मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता।

कल्लकुरकी के राजा महामाहेश्वर **मल्लरस** ने गंगाजी को मुक्ति का प्रथम सोपान मानकर अपने काव्य-ग्रंथों में अपने आपको मुक्ति-साधना का साधक बनाया है। धारवाड़ जिले के **अबलूरु** सर्वज्ञ कवि ने शिवजी की इच्छा-शक्ति को गंगा मानकर अपने को कृतकृत्य बनाया है। 'सकल प्राणियों का जीव गंगा है', की अनुभूति रखनेवाले एलंदूर के प्रसिद्ध कवि **शिवाचार्य षड्क्षर** हैं। और 'गंगा सकल लोक का प्राण है' ऐसा समझने-वाले श्री **हरिहर राघवांक** कवि पंपाक्षेत्र के रहनेवाले हैं। पाठकों को विदित होगा कि यह दक्षिण का वही स्थान पंपाक्षेत्र है, जहाँ से भगवान् राम ने सीता की खोज का प्रबंध किया था, सुग्रीव से मैत्री की थी, हनूमान् को अपना अनुचर बनाया था। गंगा को कलिमलविध्वंसिनी कहनेवाले श्री **निजगुण शिवयोगी** के विवेक-चिंतामणि का एक उद्धरण अपनी भाषा में देकर उसकी वर्णन-शैली का दिग्दर्शन कराता हूँ—

'गङ्गेयेंबुदु चिदानन्दात्मकसुकृतप्रवाहदिदं शिवभक्तियेंब वेदसारवागि महाकैलासदल्लि श्री रुद्रलिङ्ग दिव्याभिषेक तीर्थवागिरुबुदु। अदक्के केळभागदल्लिरुव चतुर्मुख कमण्डलु विनल्लि अदु अउगि, त्रिविक्रमन पादहतियिंद आकमण्डलु ओडेदु होगलु, अल्लिन्द भूकैलासक्के बंदु बळिक पुत्रार्थियागि याचिसिद हिमालय दल्लि हुट्टि

गौरिगे अक्कनेनिसि देवने गळु आनदियन्नु तावु स्वोप-योगक्कागि तेगेदु कोंडु होगलु, सगरपुत्रर सद्गतिगागि भगीरथनु प्रार्थि सलु अल्लिंदिळदु भूलोकवन्नु पावन माडुवुदक्कागि होरटु ईश्वरन जडाजूट दल्लि लीन वागि, पुनः अल्लिन्द बंदु सरोवरक्किळिदु एळु प्रवाह गळागि ओडेदु मूरुपूर्वक्कं मूरु पश्चिमक्कं हरिद, दक्षिणवाहिनि याद भागीरथियु भरद्वाजाश्रमदल्लि कालिन्दी—सरस्वति गळोडने सेरि त्रिवेणिये निसि, बंदु वाराणसियेंब अविमुक्त तारकेश्वरन सन्निधियल्लि मणिकर्णिक योडने कूडे मूरुवरे कोटितीर्थगळि उत्तरवाहिनियागि बरुवागपटलपुर प्रान्त दल्लि पदमासुरनिगागि ब्रह्मदेशवन्नु होक्कु, उळिदशुद्ध गङ्गेयु कालीखण्ड क्षेत्रदल्लि शतमुखवागि हरिदु पूर्वसागरवन्नु सेरितु। ई तीर्थ पुण्यनदियु महानदि-गलल्लि मुख्य वादुदु, इदु गङ्गे, मन्दाकिनि, स्वर्धुनि, त्रिपथगे, भागीरथि, जाह्नवि येंब पुण्यनाम गलिन्द वेद प्रतिपाद्यमानवागिरुवुदु। सकलवाद निवर्तक प्रत्यक्षसिद्ध वादुदरिन्द कलितारकवागिरुवुदु।

इसका अर्थ है—गंगा चिदानंदात्मक सुकृत-प्रवाह से शिवभक्ति रूप वेद-सार होकर महा-कैलास में श्रीरुद्रलिंग का दिव्याभिषेकतीर्थ हुई हैं। इस तीर्थ की धारा ब्रह्माजी के कमंडलु में आकर गिरी, त्रिविक्रमजी का पाँव लगने पर जब वह कमंडलु फूट गया तब गंगा हिमालय के प्रार्थना-नुसार उसकी पुत्री होकर गौरीजी की बड़ी बहन हुईं। हिमालय की इस गंगाजी को देवता अपने पान-स्नान के लिये ले जाते हैं। वे सगर-पुत्रों की सद्गति के लिये भगीरथ की प्रार्थना पर वहाँ से शिवजी के जटाजूट पर होती हुई सरोवर में सप्त-प्रवाह-रूप में गिरीं। उनमें से तीन प्रवाह पूर्व की ओर गए, तीन पश्चिम की ओर गए और एक भागीरथी के रूप में भारद्वाजाश्रम में कालिंदी और सरस्वती से मिलकर त्रिवेणी नाम से प्रसिद्ध होने के अनंतर वाराणसी (काशी) में तार-केश्वर के समीप मणिकर्णिका से मिलता हुआ साढ़े तीन कोटि तीर्थों से पूर्ण होकर उत्तरवाहिनी गंगा के रूप में पाटलिपुत्र (पटना) प्रांत में होता हुआ पद्मासुर के प्रार्थनानुसार ब्रह्मदेश में गया।

अवशिष्ट शुद्धांश गंगाजी, कालीखंड (कल-कत्ता) क्षेत्र में शतमुखी होकर पूर्वसागर में लीन हुई। यह गंगातीर्थ सकल पुण्य नदी-महानदियों में श्रेष्ठ है। यह पुण्य नदी वेद में गंगा, मंदाकिनी, स्वर्धुनी, त्रिपथगा, भागीरथी, जाह्नवी, इत्यादि नामों से प्रतिपादित हुई है। सकल-वाद-निवर्तक प्रत्यक्षसिद्ध यह गंगा कलिमलविध्वंसिनी है।

गंगाजी के विषय में **लिंगण** कवि का वर्णन, जिसे उन्होंने अपने **केलदि-नृप-विजय-काव्य** में किया है, बड़ा ही रोचक है। बानगी लीजिए—

रंगत्कणिकाकलिता-
तुंग तरंग प्रसंगेयं सतत समा।
लिंगित शिवमौलि यनति।
मंगलमयि येनिप 'गंगेय' नेरे कण्डम्॥
तेरेयिंदावर्तदे वे
ळ्नोरेयिं बोब्बुळिगळोळियिं शोभिप तुं।
तुरुदुरुगलिनेसेदुदु बां
देरे विचरद्वाश्चरप्रचयादिं रयदिं॥
नळनाळिसि बळवे नीवू
गळसौरभ केळसि वळसि बंडुगळं को।
ळवळिगळ बळगगाळि मिगे।
पोळेदुदु मण्डळिसि चलिप नीरवकिक गलिं॥

मत्तमदल्लदा मंदाकिनि तानवेगतिकळागियुं अत्युच्चस्थान मार्ग सहायनियुं, भंग वितान विलुलिते आगियुं अभंग नित्य

(शेष पृष्ठ ५१० पर पढ़िये)

अँगरेज कवियों का गंगा-प्रेम

(ले०—श्री किशोरीलाल खन्ना)

गंगा का जादू केवल भारत तक ही सीमित नहीं रहा, वह सारे संसार में फैला हुआ है। आज गंगा इस देश की ही नहीं, विश्व भर की विभूति हो गई है। वह तो समस्त मानव-जाति को ही ईश्वरीय देन, ईश्वरीय वरदान है। उसके भौतिक लाभ का भी सौभाग्य भारत ने अवश्य पाया है, परंतु उसका प्रेरणा-पूर्ण संदेश तो देश और जाति की दीवारें छेदता हुआ प्रत्येक ही मानव के लिये है। हम लोग भले ही प्रकृति के टुकड़े-टुकड़े कर, अपनी अपनी अलग दुनिया बनाकर आपस में बँट जायँ और एक-दूसरे को गैर समझने लगें; परंतु इससे हम संपूर्ण प्रकृति के एकत्व को कदापि नष्ट नहीं कर सकते।

खेद का विषय है कि हम भारतीयों में इस संबंध में बड़ी संकीर्णता है। दूसरों की अच्छी वस्तुओं की उचित परख और सराहना तो दूर, हम अपनी ही वस्तुओं से अनभिज्ञ रहते हैं। इसके विपरीत अँगरेज, चाहे अन्य विषयों में उनमें ऐब हों, सराहना के विषय में बड़े ही उदार हैं। उनमें ऐसे कई उच्च कोटि के साहित्यकार और कलाकार हुए हैं और हैं, जिन्होंने बड़ी तन्मयता और सुंदरता से हमारे देश के सौंदर्य का वर्णन किया है। गंगा की मोहिनी ने भी उन पर असर किया, जिससे उसके प्रति अँगरेजी-साहित्य में बड़े सुंदर उद्गारों का सृजन हुआ और वह समृद्ध बना।

जिन सहृदय अँगरेज कवियों ने भारतवर्ष को देखा—गंगा को निरखा—उन्होंने तो श्री गंगा के सौंदर्य को अपनी कविता में बाँधा ही; परंतु उन अँगरेज कवियों पर भी गंगा की माया चली, जिन्होंने वस्तुतः भारतवर्ष के कभी दर्शन भी नहीं किए, परंतु कल्पना-द्वारा अंतर में उसके सौंदर्य की अनुभूति की और काव्य-वाणी के रूप में उसे व्यक्त किया। महाकवि शेली (Shelley) इन्हीं में से एक थे।

एच० एच० विलसन (H. H. Wilson) एक सुप्रसिद्ध कवि हुए हैं, जो अपने भारतीय-साहित्यानुराग के लिये विख्यात हैं। इन्होंने महाकवि कालिदास के मेघदूत(cloud Messenger) का सुंदर अनुवाद भी किया है। श्रीगंगाजी पर इन्होंने बड़ी भावपूर्ण और उच्च रचनाएँ की हैं। एक जगह कहते हैं—

> "Upon Gange's ample breast
> The signet is alike imprest,
> That manifests the will divine
> Ever in Nature to combine—
> The fair and good, and use and grace
> For all the haunts of human race."

"गंगा के विशाल वक्षःस्थल पर मानों एक छाप सी पड़ी हुई है, जो मानव-जाति के हितार्थ प्रकृति में 'शिवं और सुंदरं' का 'उपयोग और शोभा' के साथ संमिश्रण करने की ईश्वरीय इच्छा को प्रकट करती है।"

एक दूसरे स्थान पर भारत के प्रति अनुराग और आदर दरसाते हुए लिखा है—

> "India's simple daughters
> Assemble in those hollowed waters,

With rase of classic model laden
Like Grecian or Tuscan maiden".

"भारत की सरल बालाएँ (गंगा की) उथली जल-राशि में इकट्ठी होती हैं। वे ग्रोस या टस्कन कुमारियों की भाँति कलापूर्ण कलसों को लिए हुए होती हैं।"

एक जगह आप गंगा की जोरदार हिमायत करते हुए लिखते हैं—

"Such are the scenes the Ganges shows,
As to the sea it rapid flows,
And all who love the works to scan
Of Nature, or the thoughts of man,
May here unquestionably find
Pleasure and profit for the mind"

"ऐसे गंगा के दृश्य हैं, जब वह वेग से समुद्र की ओर बहती है। वे लोग, जो प्रकृति की कृतियों या मनुष्य के विचारों की जाँच करना पसंद करते हैं, यहाँ मन के लिये निस्संदेह आनंद और लाभ पाएँगे।"

आनंद और लाभ दोनों ही प्रदान करने में गंगा की श्रेष्ठता है। इनके अतिरिक्त पाने के लिये और है ही क्या?

श्री विलसन ने गंगा का वर्णन बड़ी बहुलता से किया है। यहाँ स्थानाभाव से सबका उल्लेख नहीं किया जा सकता। इतने पर भी वे एक जगह पर लिखते हैं—

"Many a gleam I fail to catch"

"अनेक दृश्यों को पकड़ने में मैं असफल ही रहा।" इससे श्री गंगा का सौंदर्य-प्राचुर्य ही प्रकट होता है।

रेजिनाल्ड हेबर (Reginald Heber), रैटरे (Rattray), एटकिंसन (Atkinson), एच० एम० पारकर (H. M. Parker) प्रभृति अनेक कवियों ने भी गंगा पर अपने-अपने भावनानुसार खूब लिखा है। डब्ल्यू० एफ० थांपसन (W. F. Thompson) नामक कवि की गंगा-विषयक कविताएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। यह कवि गंगा पर विह्वल-विमुग्ध है और इसने बड़ी तन्मयता से गंगा पर लिखा है। इसके लिये उसने एक रूपक का सहारा लिया है, जिसमें एक योगी—जिसका गंगा ही सर्वस्व है—उसे पाने के लिये अति आतुर है। गंगाजी के दर्शन न पाने पर वह कह उठता है—

"In every haunted spot,
I've sought thee till my spirit sunk,
For oh! I found thee not."

"प्रत्येक जन-संकुल स्थान पर मैं तुझे खोज चुका हूँ—यहाँ तक कि मेरे प्राण हार चुके हैं, क्योंकि उफ़! मैंने तुझे नहीं पाया।"

फिर भी, कवि हृदयस्पर्शी भाषा में कहता है—

For thee we burn and die,
But let us find thee first.

"तुम्हारे लिये हम जलते और मरते हैं (सब कुछ सह और सब कुछ त्याग रहे हैं!), किंतु पहले तुम्हें पा तो लें।"

एक जगह गंगा की सुषमा का कितना सुंदर वर्णन किया है—

"And when upon thy glassy stream,
Descends the glow of even,
It seems—oh does it only seem—
Thy wave to mix with heaven."

"और जब तेरी चमकीली धारा पर संध्या की छाया उतरती है, तो ऐसा जान पड़ता है कि तेरी तरंग आकाश से मिल गई।"

———

क्या समुद्र का जल गंगाजल है ?

(ले०—श्री मोहन शर्मा चतुर्वेदी)

महाभारत भारतवर्ष में इतिहास के नाम से प्रसिद्ध है। लोग इसे पाँचवाँ वेद भी कहते हैं। "इतिहासो वै वेदः" शतपथ ब्राह्मण के इन शब्दों के अनुसार वेद स्वयं इतिहास है।

जो कुछ है, ठीक है, थोड़ी भी गलती नहीं—का भान करानेवाला इतिहास ही तो होता है। उसी महाभारत नाम के इतिहास में, जिसके प्रणेता और वक्ता साक्षात् भगवदवतार महर्षि व्यास तथा उनके शिष्य वैशंपायन और सूत हैं, वन-पर्व के उपाख्यान में एक ऐसी बात कहते हुए दिखाई देते हैं जिस पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। सहसा विश्वास न किए जानेवाले प्रसंग महाभारत में अनेक उपस्थित किए गए हैं और श्रद्धालु भारतवासी उन सब पर श्रद्धापूर्वक विश्वास भी करते हैं; किंतु आज विज्ञान के इस युग में वे बातें अवश्य ही अविश्वसनीय ठहराई जाती हैं जिनकी उपपत्ति विज्ञान की दृष्टि से न बताई जा सके।

महाभारत पढ़ते समय मेरे मन में भी इसी प्रकार की शंकाओं ने घर बनाना प्रारंभ कर दिया। ज्यों ज्यों मैं महाभारत पढ़ता गया त्यों त्यों शंकाएँ बढ़ती ही रहीं। इन्हीं में की एक शंका इस प्रकार है—

आयुर्वेद में दो प्रकार के आंतरिक्षिय जलों का वर्णन है जो भूमंडल पर पाए जाते हैं। हारीति-संहिता में महर्षि आत्रेयजी ने कहा है—

"आन्तरीक्षं तु द्विविधं गाङ्गं सामुद्रिकं पयः"

अर्थात् अंतरिक्ष में स्थित जल दो प्रकार का है—(१) गंगाजल (२) समुद्र-जल। इसी सिलसिले में उन्होंने उन दोनों जलों के गुण भी बताए हैं—

तद्‌गाङ्गं सर्वदोषघ्नं गृहीताङ्गे सुभाजने।
तद्धारयेच्च मतिमान् बल्यं मेध्यं रसायनम् ॥
श्रमक्लमपिपासाघ्नं कण्डूदोषनिवारणम्।
लघु मूर्च्छातृषाच्छर्दिमूत्रस्तम्भान् विनाशयेत् ॥

गंगा का जल सब दोषों का नाश करता है, बलकारक है, बुद्धि को बढ़ाता है, रसायन है, श्रम, थकावट, प्यास, खुजली, मूर्च्छा, वमन तथा मूत्रस्तंभ (कड़क) को दूर करता है।

अविलं समलं नीलं घनं पीतमथापि च।
सक्षारं पिच्छिलं चैव सामुद्रं तन्निगद्यते ॥
सघनं कफकृच्चैव कण्डूश्लीपदकारकम्।
सवातलं च विज्ञेयं रक्तदोषार्त्तिकारणम् ॥

समुद्र का जल कफ, खाज, श्लीपद (फीलपाँव) बादी और रक्त-विकार करनेवाला होता है।

पाठक देखें कि गंगा और समुद्र के जल में कितनी भारी विषमता है लेकिन महाभारतकार ने फिर भी समुद्र को गंगाजल-पूर्ण माना है। महाभारत के इस उपाख्यान को देख लीजिए।

जिस समय वृत्रासुर इंद्र द्वारा मारा गया था उस समय उसके आश्रय में रहनेवाला कालेय नामक क्रूरकर्मी दैत्यमंडल, अपने आश्रयदाता के निधन हो जाने के कारण, समुद्र के आश्रय में जाकर रहने लगा था और यहीं से निकलकर रात को देवताओं पर धावा बोल दिया करता था। संसार की भलाई में लगे हुए देवता और ऋषि कालेयों द्वारा प्रतिदिन मारे जाने लगे

जिससे संसार की भलाई में रुकावट पड़ने लगी। एक दिन समस्त प्रजाजनों के साथ देवता लोग महर्षि अगस्त्य के आश्रम में अपनी दुःख-गाथा सुनाने के लिये पहुँचे। महर्षि की प्रशंसा करने के अनंतर अपने नाश की कहानी सुना डाली और प्रार्थना की—

एवं त्वयेच्छाम कृतं हि कार्यं महार्णवं पीयमानं महात्मन्।
ततो वधिष्याम सहानुबन्धान् कालेयसंज्ञान्सुरविद्विषस्तान्॥

वनपर्व, १०४ अध्याय

हे महात्मन्, हमारी इच्छा है कि आप इस महासागर का पान कर लें। आपके समुद्र-जल-पान कर लेने से सपरिवार देवद्वेषी कालेयों को हम मारकर अपने कष्टों से मुक्त हो जायँगे।

महात्मा अगस्त्य ने देवताओं की इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और देवता तथा प्रजाजन के साथ वे समुद्र की ओर चल दिए। समुद्र के किनारे पहुँचकर उन्होंने देवताओं से कहा—

अहं लोकहितार्थं वै पिबामि वरुणालयम्।
भवद्भिर्यदनुष्ठेयं तच्छीघ्रं संविधीयताम्॥ २॥

वनपर्व १०५ अध्याय

मैं लोक-हित के लिये महासागर को पिए जाता हूँ। समुद्र के सूख जाने पर आप लोग जो कुछ करना चाहते हैं उसको करने के लिये शीघ्र ही तैयार हो जाइए।

और, ऐसा कहकर, उन्होंने—'महार्णवं निःसलिलं चकार'—समुद्र को जलहीन कर दिया।

इधर समुद्र को जलहीन देखकर देवताओं ने अपने अस्त्र-शस्त्रों से कालेयों को मार गिराया। अपने कार्य में सफल-मनोरथ होकर उन लोगों ने अगस्त्य मुनि की स्तुति करते हुए प्रार्थना की—

पूरयस्व महाबाहो समुद्रं लोकभावन।
यत्त्वया सलिलं पीतं तदस्मिन्पुनरुत्सृज॥ १५॥

वनपर्व, १०५ अध्याय

हे महाबाहो, हे लोकभावन, आपने जिस प्रकार समुद्र को पीकर हम लोगों की रक्षा की है उसी प्रकार उसे जलपूर्ण करने की कृपा कीजिए।

इस पर महर्षि अगस्त्य ने देवताओं से कहा—

जीर्णं तद्धि मया तोयमुपायोऽन्यः प्रचिन्त्यताम्।
पूरणार्थं समुद्रस्य भवद्भिर्यत्नमास्थितैः॥ १६॥

वनपर्व, १०५ अध्याय

जिस जल को मैंने पिया था वह तो पच भी गया अब आप लोग समुद्र को जलपूर्ण करने के लिये किसी अन्य उपाय का आश्रय लीजिए।

महर्षि की ऐसी बातों ने देवताओं को बड़े आश्चर्य में डाल दिया। विष्णु को आगे करके वे लोग प्रजापति ब्रह्मा के पास गए और समुद्र को भरने की प्रार्थना की। इस पर ब्रह्माजी कहने लगे—

गच्छध्वं विबुधाः सर्वे यथाकामं यथेप्सितम्॥ १॥
महता कालयोगेन प्रकृतिं यास्यतेऽर्णवः।
ज्ञातींश्च कारणं कृत्वा महाराज्ञो भगीरथात्॥ २॥

वनपर्व, १०६ अध्याय

ठहरिए, समुद्र भरने में अभी देर है। बहुत समय के बाद जब भागीरथ इस भूमंडल के राजा होंगे तब वे अपने पूर्वजों का उद्धार करने के लिये स्वर्ग से गंगाजी को पृथ्वीलोक में लाएँगे। उन्हीं गंगाजी से समुद्र भर जायगा। अभी आप लोग इच्छानुसार अपने-अपने स्थान को जाइए।

पितामह की आज्ञा पाकर देवता लोग अपने अपने स्थानों पर लौट गए और भागीरथ के पैदा होने की प्रतीक्षा करने लगे।

(शेषांश पृ० ५४१ पर)

गीता-धर्म

राम-रस

(ले० — लोक-संग्रही स्वामी विद्यानंदजी)

[देखो गतमास का अंक, पृष्ठ – ४५६]

राम-चरित जे सुनत अघाहीं।
रस-विसेष तिन जाना नाहीं॥

गई वखते आपणे यज्ञनी चर्चा करी हती। ते वखते अमे कह्युं हतु के, यज्ञथी उत्पन्न थता भारतना संबंध वाङ्मयनी कईक झलकने अमारा पाठकोने परिचय करावीशुं। पण आज राम-जीनी वात कहीशुं। गया अंकमां अमे कही गया छीए के यज्ञना आराध्य पुरुषोत्तम मोटा छे। तेथी ज्यारे पुरुषोत्तमनी वात आवेछे त्यारे अमे अने तमे सर्व पोतानां बधां कर्म, धर्म, यज्ञ आदि छोडीने पुरुषोत्तमना गुणानुवाद गावा मंडी जईए छीए। भारतना साहित्यनो परिचय आगळ आपीशुं। आ वखते राम-रसनी कथा कहीशुं।

राम मर्यादा-पुरुषोत्तम हता—(१) रामनो रस मर्यादानो रस छे, (२) पुरुषनो रस छे (३) पुरुषोत्तमनो रस छे, (४) उत्तम रस छे तथा (५) एथी पण मोटी वात ए छे के राम-रस एटलामांज समातो नथी पण ते उपरांत बीजु पण कांई छे। जेने जेटलु मालम पडेछे अथवा मळी जायछे ते तेटलो अधिक राम-रस पीएछे। पण ते कदी धरातोए नथी अने पार पण पामतो नथी। पूछतां जवाब मळछे। 'नेति नेति' नही नही!!

आवो, हवे आपणे क्रम प्रमाणे, आ पांचे वातोनो विचार मनन करीए। रामनु जीवन मर्यादानुं जीवन हतु। ए पुरुषोमां उत्तम हता, परंतु पुरुषोनी मर्यादानी अंदर हता। जीवनमां सर्वथी मोटी वस्तु छे मर्यादा। जे मर्यादानी अंदर रही शकेछे, ते ज सुखी थई शकेछे, अने बाजाने सुखी करी शकेछे। तेनु जीवन रसमय थायछे अने बीजानां जीवन रसमय करी शकेछे।

एक सर्व कोईना अनुभवनी वात छे के— 'राम-रस'नो अर्थ हिंदी तेमज बीजी घणी प्रांतिक भाषाओमां थायछे, मीठु। बस, आज मीठोनी मर्यादा समजी लेवी। मीठु जो कमी होय तो बधा रस फीका, अने जो वधारे होय तोपण बधा स्वाद फीका। अर्थात् जे कांई छे ते मीठाना सम

(१) गीताना शब्दोमां 'मर्यादा'ने योग, समत्व, युक्तत्व अथवा स्थितप्रज्ञत्व कही शकायछे।

प्रमाण—उचित मात्रामां पडवा—उपर छे। तेज प्रमाणे जीवनमां रस त्यारेज आवेछे के ज्यारे सर्व कांई ठीक मर्यादानी अंदर करवामां आवे। मर्यादा तोडवी ए जीवनने निरस बनाववा बराबर छे।

मर्यादानो अर्थ, वगर विचारे चालतो आवेलो चीलो न छोडवो, एवो नथी। एकज रस्ते जवुं तेनुंज नाम मर्यादा नथी। 'बिना लीक (स्वतंत्र रीते) तीनों चलैं सायर (कवि) सिंह सपूत' समजदार लोको पोतानुं काम अने रस्तो पोतानी मेळेज नक्कि करीलेछे। पोतानो नवो मार्ग कहाडवो ए ठीक छे, पण जे मार्गे जवुंछे तेनी मर्यादा—तेनी सीमा—नी बहार जवुं ए ठीक नथी। जे घरमां रहेवुंछे, जे समाजमां रहेवुंछे, जे देशमां रहेवुंछे, जे धर्ममां रहेवुंछे, तेनी मर्यादाने तोडवी ए ठीक नथी। आ ज महापुरुषोनी नीति छे। गीतानो उपदेश पण ते ज छे—

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः'।

राम मर्यादामां मानवा वाळा हता। ए मर्यादा-पुरुषोत्तम हता। एमनु जीवन, अभ्यास अने मनन करवा लायक छे। वाल्मीकि अने तुलसीए एमना जीवननो अभ्यास करेलो हतो तेमज मनन पण करेलु हतु। आपणे पण जो इच्छा होय तो ते प्रमाणे अभ्यास अने मनन करी शकीए तेम छे। राम संबंधी घणुं विशाळ साहित्य आपणी पासे छे।

राम-रस पुरुषनो रस छे। राम पुरुष हता। पुरुषना चार अर्थ थायछे। पुरुषना जीवनना चार उद्देश होय छे। धर्म, अर्थ, काम अने मोक्ष। आ चारे पुरुषार्थोनो जे रस छे, सुस्वाद छे, सुख छे, ए ज राम-रस छे। रामे सर्वमां रस लीधो हतो। आपणे पण सर्वमां रस लई शकीए छीए। कोई चीज निरस नथी। जो आपणे रस लेवानी कळा जाणता होईए तो सर्वमां रस मळी शके तेम छे।

हजी जरा आगळ वधिए। राम-रस पुरुषोत्तमनो रस छे। पुरुषनो रस जीवनने सिंचेछे। त्यारे पुरुषोत्तमनो रस शुं करेछे? ए प्रश्न भक्तोने पूछतां तओ कहेछे के 'अमने मुक्ति नथी जोईती, केवळ रामनी रसभरी भक्ति जाईए छीऐ।

'चारि पदारथ करत मजूरी मुक्ति भरत तहँ पानी'।

× × ×

'वृज वहालु रे वैकुंठे नथी जावुं'।

× × ×

माई मैंने गोविंद लीन्यो मोल।
कोई कहे छानी, कोई कहे चोरी, लियो है बजंता ढोल॥
कोई कहे कारो, कोई कहे गोरो, लियो है मैं आँखो खोल।
कोई कहे हलको, कोई कहे भारी, लियो है तराजू तोल॥
ननका गहना सब कछु दीन्हा. दीन्हा बाजू खोल।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर, जनम जनम का कौल॥

मीराँनी समान, आ प्रकारे जे पुरुषोत्तम रामना रसमां लीन थई जायछे, तेनी आगळ राजपाट सर्वकांई तुच्छ छे। एने तो प्रतिक्षण भगवान् दर्शन दीधाज करेछे। एना आनंदना तो वातज शी? एनी छायामात्रथी ज जगत सुखी थई जायछे।

× × ×

एज पुरुषोत्तमनी उपासना ऋग्वेदना पुरुष-सूक्तमां छे।

एज पुरुषोत्तमनी भक्तिनो उपदेश गीतामां छे।

एज पुरुषोत्तमनो प्रेम तुलसी-रामायणमां छे।

एज पुरुषोत्तमनी पूजा याज्ञिक यज्ञ वडे करेछे।

„ ,, „ ज्ञानी ज्ञान „ ,,

„ „ „ भक्त भक्ति थी ,,

× × ×

पण ए रस लेवानी विधि छे। तेमां पहेली वात, मर्यादानी अंदर रहेवु—युक्त रहेवु, सम रहेवु, योगी थवु। रामनुं जीवन वांचो तो गीताना योगीनु जीवन मळशे। रामायण ए योगी रामनी जीवन-कथा छे। गीताना बीजा अध्यायमां जेने समज न पडती होय तेणे रामचरित वांचवु, तेथी सर्ववातो दीवा जेवी स्पष्ट थई जशे।

एक वात सदा स्मरणमां राखवी जोईए के—गीताना कहेवावाळा 'कृष्ण' योगेश्वर हता अने रामायणना नायक 'राम' योगी हता। कृष्णे कह्यु छे 'योगी बनो'। रामे करीने देखाड्यु—'हुं योगी छु'[१]। आज योगनो रस रामना जीवननो रस छे। प्रत्येक पुरुषे आ रसनुं पान करवुं जोईए। जीवन सफळ अने धन्य थशे।

अनुवादक—मणीभाई जशभाई देसाई

(क्रमशः)

(१) गीतानु ज्ञान प्रथम भगवाने सूर्यने आपेलु हतुं। 'राम' सूर्यवंशी हता तेथी रामनो कुळधर्म 'गीता-धर्म' हतो।

लोक-संग्रह

(ले० —मणीभाई जशभाई देसाई)

न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्मणि॥
यदि ह्यहं न वर्त्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

गी० अ० ३, २२-२३

स्वराज्यनी कामनाथी अथवा मातृभूमिने संसारमां सर्वविध वैभव अने शक्तिथी संपन्न करवानी कामनाथी, जे लोको कांग्रेस, हिंदु महासभा आदिमां काम करी रह्याछे, तेमना काममां सनातनधर्मे दखल करवानुं शुं प्रयोजन छे? आ प्रश्ननो उत्तर, जे लोको जाणता नथी, पण जेमने जाणवानी इच्छा छे तेवा लोकोए जाणवो जोईए। 'सनातनधर्म' ए नामथी ज स्पष्ट बोध थायछे के—जे धर्म सनातन पुरुषथी निकळेलो छे ते, जे सनातन पुरुषनी सत्ताथी व्याप्त छे ते, तथा जेनु लक्ष्य पण सनातन पुरुषनी प्राप्ति तथा तेना मूळ संकल्पनी पूर्ति छे ते।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

आ वचनो द्वारा स्वधर्म अगर स्वकर्मनां लक्षण पण भगवान् सूचित करेछे—जेनाथी अर्थात् जे सनातन पुरुषथी, सर्वप्राणियोनी प्रवृत्ति थायछे तथा जे आ सर्वप्रवृत्तिओमां व्याप्त छे, ते (सनातन पुरुष) ने सारू, पोताना स्वभाव नियत कर्म करवाथी, मनुष्य छेवट ना ध्येयने अर्थात् सनातन पदवीने प्राप्त थायछे। परंतु कोई पण कामनाथी

प्रेराएलो पुरुष-पछी ते कामना उंचामां उंची केम न हो—जो तेमां सनातन पुरुषनी विस्मृति थाय, के जे विस्मृतिनु 'कामना' पूर्वरूप छे—एवो होय तो ते सनातनधर्म मांथी भ्रष्ट थायछे। आ वात शास्त्रज्ञोथी छुपी नथी। अने तेनी विस्मृतिथी मनुष्यनो नाश थायछे।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।

परंतु मनुष्य स्वयं कामनामय ज होय छे, कोई साधन एनी पासे एवु नथी के जेना वडे तेनाथी बची शके तेथीज भगवान् कहेछे के—

उत्सीदेयुः इमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्याम् उपहन्यामिमाः प्रजाः॥

सनातन पुरुष, के जेने त्रणे लोकमां कोई पण वस्तु अप्राप्त नथी, के जेने कांई पण प्राप्तव्य नथी, ते जे कर्म करेछे तेनुं कारण ए छे के जो ते कर्म न करे (मनुष्योना कर्ममां दखल न करे) तो लोकनो नाश थईजाय अने सनातनथी नियत जेनां जे कर्म छे ते, कामने वश थई लोको छोडी दे, सर्वत्र कर्म संकर थईजाय अने ए सर्वेलोको नष्ट थईजाय। सर्वनी रक्षा-रूप आ सनातन पुरुषना सनातन कर्मनेज सनातन धर्म कहेछे। सनातन धर्मनां आ सर्वकामोमां जे दखल करेछे ते सनातन पुरुषने दखल करताछे।

सनातनधर्मनुं आ दखल जो न होय तो शुं परिणाम आवे तेनुं अनुमान, ऊपरनां श्री भगवद्वचनोना मननथी स्पष्ट थई शके तेम छे। जेने अमे लोको 'श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त सनातनधर्म' कहीए छीए, ते, तेज सनातन पुरुषनो, अने तेना अंगमां समायेला प्रत्येक जीवनो, लोक-रक्षण कर्म-रूप, शास्त्र-विहित, स्वधर्म छे। शास्त्र-विहित एटला माटे के, श्री भगवान् अगर श्री भगवाननां कर्म तथा तेमनां अंगमां समावेश थतां 'स्वकर्मो' जाणवानो बीजो कोई उपाय नथी।

सक्ताः कर्मणि अविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वाँस्तथासक्तः चिकीर्षुः लोकसंग्रहम्॥

जे शास्त्रज्ञो छे तेमने श्री भगवाननु ए ज कहेवुंछे के "तमे, कामनाप्रेरित लोकोमां रहीने तेमनां कर्मोमां दखल करो अने तेमने एवा रस्ता उपर लावो के जेथी सनातन यज्ञचक्र साथेनो तेमनो संबंध छुटो पडीजई तेमनो नाश न थाय"।

श्रीभगवाननी कृपाथी ज ए प्रमाणे थई शकेछे[1]।

(१) पंडित पत्रना संपादकीय लेखउपरथी उद्धृत।

ईश्वरनु स्थान

(ले०—साधु पंडित रामस्नेही श्रीनिश्चलदासजीना हिंदी व्याख्यानानुसार मणीभाई जशभाई देसाई)

[अनुसंधान शंकरांक पान –४४४]

जो कहोके उपादान अने निमित्त एक होइशके नही एनो उत्तर एवो छे के—उपादान अने निमित्त एक ज होई शकेछे। आ ज सिद्धांतने श्रुति कहेछे के—

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च।
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति॥
यथासतः पुरुषात्केशलोमानि।
तथाऽक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्॥ इति।

जेम करोळीयो जाळु बनावेछे अने ग्रहण करेछे, अने जेम पृथ्वीमां नाना प्रकारनी ओषधियो उत्पन्न थायछे। अने जेम जीवता पुरुष (ना शरीर) मां वाळ अने रोम उत्पन्न थायछे तेमज अविनाशीरूप ईश्वरथी जगत उत्पन्न थायछे। भाव ए छे के:—जेम करोळीयो पोतेज जाळानु उपादान कारण छे अने निमित्त कारण पण छे। एवीज रीते बीजां दृष्टांतोने पण समजीलेवां, तेमज जेवी रीते स्वप्नमां स्वप्नना प्रपंचनु उपादान अने निमित्त कारण एकज आत्मा छे, तेवी रीतेज ईश्वर पण सृष्टिनु उपादान अने निमित्त एकज छे।

अहीं कोई एम शंका करे के माटी घडानु कारण छे, पण वस्त्रनु होई शके नही तेवीज रीते सुतर वस्त्रनु कारण छे, पण घडानु नथी तो पछी एकज ईश्वर जड अने चेतन, एवि विलक्षण, संपूर्ण वस्तुओनु कारण शीरीते बने? परंतु एवी शंकाज थई शकती नथी। श्रुतिए एनु प्रथमथीज समाधान करेलुंछे। जेवी रीते एकज पृथिवी मांथी नाना प्रकारनी ओषधिओ उत्पन्न थायेछे ते ओषधिओना श्वेत, पीतादि रंग-पण भिन्न भिन्न होयछे, तेमज कटु, मधु आदि स्वाद पण जूदा जूदा होयछे। तथा तेमना वायु, पित्त आदिक स्वभाव पण भिन्न भिन्न होयछे। तेवीज रीते जेम (एकज पुरुषथी उत्पन्न थता) नख अने केशना स्वभाव अने रंग जूदा जूदा होवा छतां एकज पुरुषथी पैदा थायछे, तेवीज रीते देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, झाड, पर्वत इत्यादि संसार-रूप कार्य, जड, चेतनात्मक भिन्न भिन्न होवा छतां पण ते सर्व एकज ईश्वरथी उत्पन्न थायछे।

"पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।"

गी० अ० ७, श्लो० १७

अही भगवाननु पण एज वाक्य छे के:—

सर्व संसारनो धाता एटले धारण करनार तथा माता, पिता रक्षकहुँज छु तेमज

"जन्माद्यस्य यतः"।

(ब्र० सू० अ० १ पा० १ सू० २)

वेदांतना प्रधान आचार्य वेदव्यास भगवाननुं पण एज वाक्य छे के, ए ब्रह्मथीज संसारनो 'जन्म अने आदि' (ए शब्दथी पालन अने संहारपण) थायछे।

जो कोई कहे के संसारना उत्पन्न करवावाला ब्रह्मा, पालन करवावाला विष्णु तथा संहार करवावाला शिव ए प्रमाणे जूदा जूदा छे। तो पछी उत्पत्ति पालन अने संहार करवावाला एक ब्रह्मनेज केवीरीते मानोछो? एनो उत्तर ए छे के:—एकज ईश्वर रजोगुण द्वारा ब्रह्मा थईने, सत्त्वगुण द्वारा विष्णु थईने अने तमोगुण द्वारा शिव थईने उत्पत्ति, पालन अने संहार करेछे, अर्थात् एकज आत्मा अनेक रूप धारण करीने सर्वकार्यो करेछे।

"एको वशी सर्वभूतांतरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥"

इति (कठ० अ० २ व० ५ मं० १२)

एकज नियंता सकल प्राणीओना अंतरयामीरूप ईश्वर, जे पोताना एक रूपने अनेक रूप करेछे, अर्थात् जे एकज ईश्वर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देव मनुष्यादिक अनेक रूपथी थायछे, तेने जे धीर पुरुष पोतानामां स्थित देखेछे, तेने नित्य सूख प्राप्त थायछे। बीजाने प्राप्त थतु नथी।

आ उपरथी ए सिद्ध थयु के:—कार्य कारण भिन्न नथी। एज विश्वपति, विश्वरूपथी विश्वात्मा थईने विश्वनेसाक्षी विश्व ने प्रकाशी रह्योछे। जेवी रीते महाकाश घडानी बहार पणछे अने अंदर पण

छे। एवी रीते ब्रह्म बहार अंदर सर्वत्र व्यापक छे। "स बाह्याभ्यंतरो ह्यजः" इति श्रुतिनो पण एज भावछे केः—ए शुध्ध बुध्ध सच्चिदानंद आ विश्वनी अंदर बहार परिपूर्ण छे। एवुं कोई पण स्थान नथी के जे ईश्वरथी शुन्य होय।

"जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके
ज्वालमालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥"

जलमां, स्थलमां, पर्वतमां, अग्निमां सर्वत्र विष्णुज छे ए जगदात्माज जगतरूपछे।

हवे अही ए शंका थायछे केः—जो ईश्वरने जगतरूप मानोछो तो ईश्वर विकारी थायछे ? एनो उत्तर ए छे के:–उपादान त्रण प्रकारनां छे—(१) आरंभक (२) परिणामी (३) विवर्त। आ त्रण उपादान कारण छे। उपादान कारण तो ए छे के जेनु स्वरूप कार्यमां प्रविष्ट होय अने जेना विना कार्य सिद्ध थाय नहीं। तथा निमित्त कारण ए छे के, जेनो कार्यमां प्रवेश न होय परंतु भिन्न रहीने कोई अन्य वस्तु द्वारा कार्य बनावतु होय। आपैकी निमित्त कारण प्रथम कही गया छीए। हवे उपादान कारणनुं स्पष्टिकरण करिए छीएः—

आरंभक (उपादान) कारण ए छेके जे कार्यनुं आरंभकरवावालु छे। जेम माटी घडानुं आरंभक छे। परिणामी (उपादान) कारण ए छे के। जे कारण कार्यनुंज रूप बनी जाय। जेम दूधनुं दहीरूप कार्य बनी जायछे। ते परिणामी; एटलेके विकारी। अर्थात् स्वरूपथी बदलाइ जायते। तथा विवर्त (उपादान) कारण ए छे के कार्यनी कारणमां मिथ्या प्रतीति थाय, अने कारणना रूपमां, कार्यनां प्रतीति कालमां पण कांई हानी पहोंचे नहीं।

(क्रमशः)

गंगानो महिमा

(ले०—श्री मूलशंकरजी व्यास)

भगवती गंगाना संबंधमां एक साधारण मनुष्य शुं कही शके? कारण तेनु माहात्म्य अने गुणो एटला वधा छे के जेनुं यथार्थ ज्ञान, भ्रमादि दोषयुक्त पुरुषने थवुं अत्यंत कठिन छे एमतो प्राचीन पुराण आदि निबंधोनुं आलोचन करतां ९९९ सरिताओ उपलब्ध थायछे, परंतु ते वधी नदियोनी अपेक्षाए गंगाजीनुं स्थान कइक विशिष्टज छे—गंगाजीमां स्नान आदिथी जे विशिष्ट शक्ति प्राप्त थायछे, ते अन्य सरिताओना स्नान आदि थी सुलभ नथी वधारे शुं कहीए ?

ज्यां गंगा शब्द मात्रना उच्चारणथी ज मनुष्य सर्वपापथी मुक्तथई विष्णुलोकने पामेछे, तो पछी गंगामां स्नान अने गंगा-जल पान करवाथी केटलुं अधिक फल प्राप्त थाय तेनी मर्यादा बांधवी अशक्य छे।

"गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥"

हजारों गाउ दूरथी पण गंगानुं नाम स्मरण करनारनी आवातथई, तो पछी प्रत्यक्ष दर्शन अने स्नानना महत्वनुं तो कहेवुंज शुं।

'गङ्गे तव दर्शनान्मुक्तिर्न जाने स्नानजं फलम् ।'

बीजी वात ए छे के गंगाजीनु' प्रतिपादन वेदोंमां पण मलेछे, आखा भू-मंडलना साहित्यमां प्राचीनतम साहित्य वेद छे, वेद क्यारे थयो तेनु' ठीक-ठीक विवेचन हजुं सुधी थयेलुं नथी परंतु एटली बात तो हरेक विद्वानो ए मुक्तकंठे कहीछे के। सर्वथी प्रथम वेदोनी रचना थइ छे, तेमां य ऋग्वेदनी रचना प्राचीनतम छे। आ सर्व-प्रथम आविर्भूत थयेला ऋग्वेदमां गंगाजीनु' नाम आवेछे—

"इमं मे गङ्गे ! यमुने !" ऋ० १०।७५।५

तथा "गंगयां वृत्रघ्ने ववध्नात् ।"

शत० ब्रा० १३।५।४।११ ।

तथा "तवै गावो मन्दीरास्य – गङ्गाया उदकम् ।"

कात्या० श्रौ० १३, ३, २०

आ कारण थी आपणे जाणी शकिये छिएके गंगाजी अत्यंत प्राचीन छे, पुराणोमां गंगाजीनी महत्ता विविध प्रकारे वर्णवायेली छे, परंतु स्थानने अभावे तेनु उद्धरण करवामां आवतु नथी।

गंगाशब्दनो अर्थ

गंगाजीनो जप करती वखते गंगाशब्दना अर्थनु' अनुसंधान होय, तो स विशेष फलनी प्राप्ति थायछे, कारण एक वस्तुने करवा पहेलां तेनु ज्ञान होय तो ते वधारे हितावह थायछे। यद्यपि अग्निनो जाण्ये के अजाण्ये थयेलो स्पर्श दाह अवश्य करेछे। तेमज अर्थना अनुसंधान वगरपण थयेलु' गंगा शब्दनु' उच्चारण अवश्य पापने दग्ध करेछे। छतां पण अर्थानुसंधान सह थयेलो जप विशेष्य पुण्यना उत्पादन द्वारा पाप-विनाशनो हेतु सत्वरे थाय, ए वात निर्विवाद छे। गंगाशब्दनी व्युत्पत्ति—'गच्छति इति गंगा' आ प्रकारे कोशना व्याख्याकार कहेछे, तेमज निरुक्तना कर्ता यास्कमुनिए 'गमनात् गंगा' करेली छे। आव्युत्पत्तिनो भाव विविध पंडितोना अभिप्राय थी। एवो काढवामां आवेलोछे के—त्रणे लोकमां—स्वर्ग-मृत्यु तथा पातालमां—जेनु' अप्रतिहत गमन छे, अथवा जेनी अंदर श्रद्धापूर्वक स्नान करवाथी पापसमुदायनो नाश-थई जायछे, प्रथमना अर्थने लई गंगानोने 'त्रिपथगा' अथवा 'त्रिस्रोता' पण कहेछे, द्वितीय अर्थ मात्र संप्रदाय सिद्ध छे अर्थात् गंगाजी ऊपर (अनहद) भक्तिप्रेम धारावनारा श्री गंगाजीने सर्वविध पापोनी नाशकर्त्री मानेछे, अत: ते पण युक्त छे। तेथी गंगाशब्दनो जप करती वखते उपर ना अर्थनु' अनुसंधान अवश्य राखवु' गोइए।

गंगाजीनां नाम अनेक छे; परंतु गंगा, विष्णुपदी, जह्नुतनया, सुरनिम्नगा, भागीरथी, त्रिपथगा, त्रिस्रोता, अने भीष्मसू: एटलां नाम प्रसिद्ध छे, गंगा शब्द सिवाय अन्यनाम औपाधिक छे, जेमके भगवान् श्री विष्णुना चरणमांथी प्रगट थयांछे, एटले 'विष्णुपदी' नाम पड्यु' छे, भगीरथनी महत् तपश्चर्याथी भूमंडलनी अंदर अवतरित थयांछे, एटले भागीरथी पड्यु'छे, आपणे भगीरथ राजाना अत्यंत ऋणी छिये, के जेना महान् प्रयासथी भगवती पुण्य-तोया गंगा आपणने सुलभ थएलीछे।

आपणा पुराणोमां, तो भागीरथी ने साक्षात् ईश्वर-स्वरूप मानेली छे अने ते प्रमाणे अनेक स्तुतिओ द्वारा तेनु—गंगानु' स्तवन पण करेलु छे, जेवी रीते—

'सर्वतीर्थमयीं गङ्गां परमात्मस्वरूपिणीम्'

भविष्य पुराण

ममैव सा परा मूर्तिस्तोयरूपा शिवात्मिका।
सिद्धविद्यास्वरूपा च त्रिशक्तिः करुणात्मिका॥
आनन्दामृतरूपा च शुद्धधर्मस्वरूपिणी।
तामेनां जगतां धात्रीं धारयामि स्वलीलया॥

काशीखंड

उपरना वचनोनो केवल अर्थ एटलोज छे—साक्षात् भगवती भागीरथी आनंदअमृतस्वरूप परमात्माज छे, ते संपूर्ण जगतूनी उत्पादन करनारी छे। आ वातथी स्पष्ट भासेछे के पुराण, मां व्यास प्रभृतिए गंगाजीने घणुं ऊचुं स्थान आपेलुं छे, अने ते अक्षरशः सत्य छे। जगन्नाथ पंडित जेमना विषयमां लोक कहेछे के यवन-कन्यानी साथे तेमनो विवाह थयो हतो अने पोतानी ज्ञातिमां तेमनुं सम्मान न हतु, तेमनु उद्धरण गंगाजीए करेलु, एम आजसुधी पण कर्ण-परंपराए वार्ता प्रसिद्ध छे। उपरना श्लोकोथी एम पण जणायछे के आध्यात्मिक, आधिदैविक अने आधिभौतिक—त्रण प्रकारनी शक्तिओ गंगाजीमां पूर्णरूपे वर्तमान छे। अतएव गंगाजीनी उपासना त्रिविध प्रकारे यथारुचि थई शके छे।

पुराणोनी वात जरा दूर मूको, प्रत्यक्ष अनुभवथी पण गंगाजीनी महान् शक्तिनो परिचय आजकाल थयोछे; पाश्चात्य देशना मोटा-मोटा विज्ञानवादियोये गंगाजीना जलनी अनेक वार परीक्षा करी सिद्ध करूयुंछे के गंगाना जलनी अंदर एक एवो गुण छे के जेना प्रभाव थी रोगजन्य जंतुओ नष्ट थई जायछे, आपणा पूर्वजो, हजारो माइलथी गंगाजी ए आवी तेनुं जल लई गया छे, तेने सैंकडो वर्ष थया छतां पण ते एमने एम मळे छे, अर्थात् अत्यंत स्वच्छ रहेछे अने वगडेलुं जोवामां आवतु नथी। आ थी अन्य जलोना करतां गंगाजलमां प्रत्यक्ष विशेषता देखायछे। गंगाजीमां स्नान करया पछी थोडी बार सुधी मानसिक वातावरण एटलु तो शांत थई जायछे के ते वखते आपणे दुनियानु भान भूली जईए छीए अने परमात्मामां एकदम मननी वृत्ति लागी जायछे। जेमणे गंगाजीना स्नाननो लाभ मेळव्यो हशे तेमणे आ वातनो अवश्य अनुभव करेलो हशे। ज्यारे प्रत्यक्ष गंगाजीनी शक्ति आवी मालुम पडेछे, तो पछी अदृश्य शक्ति केटली हशे? तेनो ख्याल तो आपणे साधारण बाह्य दृष्टिना मनुष्यो जल्दी कळी शकिये, एम छेज नही।
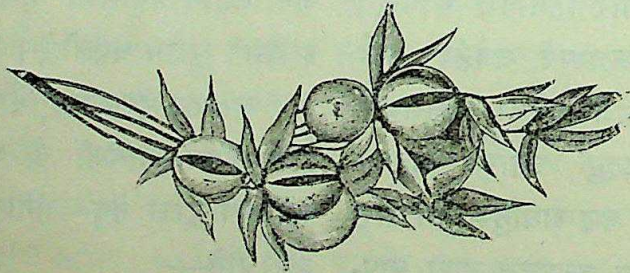
गंगा हिंदू-धर्म की ध्वजा है

(ले०—श्री गोपाल शास्त्री दर्शनकेशरी)

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं स च ता परुष्ण्या ।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥

. ऋ० १०।७५।५

इस वैदिक मंत्र में सबसे पहले गंगाजी का उल्लेख है जिससे पता चलता है कि भारतवर्ष में आज जिस प्रकार गंगाजी सर्वमान्य हैं, उसी प्रकार आज से हजारों वर्ष पूर्व भी आर्यों के हृदय-पटल पर इनकी महिमा अटूट भाव से अंकित थी। धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय प्रभृति विचार-वाला किसी भी प्रकार का पुरुष होगा, गंगा के स्वरूप का ज्यों ज्यों परिशीलन करेगा त्यों त्यों उसके अंतस्तल में इनकी महत्ता अपना प्रभाव जमाती जायगी।

गंगा का स्वरूप-परिचय देना साधारण बात नहीं है। वे तो युगों से आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों रूपों से भारत को पवित्र कर रही हैं जिसका सभी लोग अनुभव करते हैं। फिर भी उनके संबंध में यथाशक्ति चर्चा करना आवश्यक ही प्रतीत होता है।

गंगाजी का नाम त्रिपथगा है। इस त्रिपथगा शब्द का अर्थ पुराणों में आकाश-गंगा (मंदाकिनी, वियद्गंगा, स्वर्नदी, सुरदीर्घिका), पृथ्वीगंगा, पातालगंगा—इस प्रकार तीनों स्थानों में बहने के कारण गंगाजी त्रिपथगा कही जाती हैं—ऐसा बताया गया है परंतु मेरी दृष्टि में इसके साथ उपर्युक्त आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक रूप से तीन प्रकार विभक्त होने के कारण भी गंगाजी **त्रिपथगा** कही जाती हैं।

आध्यात्मिक रूप से तो इडा नाम की नाड़ी—जो मनुष्य को योगमार्ग में अग्रसर होने का साधन है—गंगा है। इसके संबंध में हठदीपिका-कार ने लिखा है—

इडा भगवती गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी।
सुषुम्ना चोभयोर्मध्ये वरराडा सरस्वती ॥

श्रीमती गंगा देवी के आधिदैविक स्वरूप का वर्णन महाभारत में भीष्म पितामह की जन्मकथा से स्पष्ट ही प्रतीत होता है। पुराणों में भी गंगाजी के दैवी स्वरूप का वर्णन आया है। पंडितराज जगन्नाथ के गंगालहरी स्तोत्र से गंगा महारानी का प्रसन्न होकर देवी-रूप में दर्शन देना यह हाल की ही घटना है। वाल्मीकि का गंगा-नवक बहुतों को कंठ होगा ही। इनके एक पद्य का भाव कितना अच्छा है इसे आप लोग विचार सकते हैं—

मातर्वञ्चितबुद्धयस्तव पदं नासाद्य देशान्तरे
यावन्तः स्वतनुं नयन्ति विफलं दिक्कालभावादहो।
स्पृष्टा स्युर्यदि ते जलैरघहरैरज्ञानतोऽपि ध्रुवम्
काले कारुणिके तवैव कृपया ते तारणीया नराः ॥

हे मातर्गंगे! जो लोग दिशा की दूरी के कारण या काल के प्रभाव से तुम्हारे पद को न पाने से वंचित हो गए हैं—जिससे उनका जन्म व्यर्थ बीता जा रहा है—अज्ञानवश भी यदि तुम्हारे जल से उनका स्पर्श हो जाय तो हे करुणामयी माँ, उनको अंतिम काल में अवश्य सद्गति दे देना। यही मेरी प्रार्थना है।

इस श्लोक का भाव आज की पाश्चात्य शिक्षा से विकृत मस्तिष्कवाले भारतीयों के हृदय

में भले न जँचे पर इसके प्रत्यक्षकर्त्ता ऋषि तो हृदय खोलकर अपनी करुणामयी गंगा से प्रार्थना कर ही गए हैं कि "माँ! उनकी भी खबर अंतिम समय में अवश्य लेना जब उनका शव या फूल तुम्हारी गोद में डाला जाय।" हा भारत संतान! गंगा के इस आधिदैविक स्वरूप को समझने के लिये आज तुममें शक्ति नहीं।

आइए, अब हम लोग गंगाजी के आधिभौतिक स्वरूप पर विचार करें—जो हिंदू-धर्म की ध्वजा-स्वरूप है और इन्हीं चर्म-चक्षुओं से देखा जा रहा है। इसके बारे में भी पुराणों में विस्तार के साथ वर्णन हुआ है। बड़े बड़े फल और माहात्म्य बताए गए हैं। दानधर्मोत्तर में लिखा है कि—

> अन्धाः क्लीबा जडा व्यङ्गा पापिनोऽप्यन्त्यजा नराः।
> गङ्गास्नानेन सततं यान्ति देवशरीरताम्॥
> तत्तोयपानतो यान्ति मन्दा अपि बहुज्ञताम्॥

गंगा-स्नान से अंधे, नपुंसक, शिथिलांगो, कोढ़ी आदि एवं चांडाल प्रभृति भी दिव्य शरीर प्राप्त कर लेते हैं। मंद बुद्धिवाले भी तीक्ष्ण बुद्धि-वाले हो जाते हैं।

इन वचनों की सत्यता के लिये वे लोग प्रत्यक्ष प्रमाण हैं जो अपने पिता, माता या मित्रों, सज्जनों की प्रेरणा से किसी प्रकार भी बाल्यकाल से ही गंगा स्नान के आदी हो गए हैं या भाग्य से जिनका मकान भगवती भागीरथी के किनारे है और नित्य भगवती का दर्शन, अवगाहन आदि करते हैं।

गंगा-जल में मधुरता, शीतलता और मनोहरता है। रोग के कीटाणुओं के नाश करने की शक्ति, स्वच्छता, मेध्यता, पवित्रता आदि गुण हैं जिनके कारण वैज्ञानिक विद्वान् गंगा के चमत्कारों को देखकर मुग्ध हो जाते हैं। हैजे के कीटाणु गंगाजल का संपर्क होते ही नष्ट हो जाते हैं यह अनुभव-सिद्ध बात है। सुप्रसिद्ध अँगरेज डाक्टर हैंकिंस के एक प्रयोग के संबंध में लिखा गया है कि—

It had long been noted as a strange thing that while Benares is often afflicted with cholera she does not spread it beyond its borders. This could not be accounted for. Mr. Hankins, the scientist in the employ of the Government at Agra concluded to examine the water. He went to Benares and made his tests. He got water at mouths of the sewers where they empty into the river at the bathing ghats; a cubic centimetre of it contained millions of cholera germs; at the end of six hours they were all dead. He caught a floating corpse, towed it to the shore, and from beside it he dipped up water that was swarming with cholera germs, at the end of six hours they were all dead.

He added swarm after swarm of cholera germs to this (Ganges) water; within six hours they always died, to the last sample Repeatedly he took pure well water which was barren of animal life and put into it a few cholera germs; they always began to propagate at once and always within six hours they swarmed and were numberable by millons upon millions. For ages the Hindoos have had absolute faith that the water of the Ganges was utterly pure, could not be defiled by any contact whatsoever, and infalliably made pure and clean whatsoever thing touched it. They

still believed it, and that is why they bathe in it and drink it. The Hindoos have been laughed at for many generations, but the laughter will need to modify itself a little from now. How did they find out the water's secret in those ancient ages? Had they germ scientists then? We do not know. We know that they had a civilization long before we emerged from savagery.

"इस बात को देखकर बहुत दिनों से लोग आश्चर्य करते थे कि काशी में तो हैजा बहुत होता है किंतु आसपास के गाँवों में प्रायः नहीं होता। आगरा में गवर्नमेंट की ओर से नियुक्त वैज्ञानिक हैंकिंस साहब इस रहस्य की जाँच के लिये काशी आए और उन्होंने यंत्रों के द्वारा गंदे जल की परीक्षा की। उन्होंने देखा कि काशी के गंदे नालों का जो जल गंगाजी में आकर गिरता है उसमें लाखों हैजे के कीड़े हैं, किंतु गंगाजल में मिलने के छः घंटे के बाद ही सब मर जाते हैं। उन्होंने एक बहते हुए मुर्दे को पकड़ लिया और उसके पास के जल की परीक्षा की तो उसमें भी हैजे के असंख्य कीड़े पाए गए किंतु छः घंटे के बाद सबके सब मर गए। तब उन्होंने लाखों हैजे के कीड़े गंगा-जल में छोड़ दिए। किंतु क्या आश्चर्य देखा गया कि छः घंटे के बाद उनमें से एक भी नहीं बचा और सबके सब मर गए। इसके बाद हैंकिंस साहब ने विशुद्ध कूप का जल लेकर उसमें हैजे के कीड़े छोड़े। वे कीड़े उसमें उसी समय से बढ़ने लगे और छः घंटे के भीतर बढ़ते बढ़ते असंख्य हो गए। आश्चर्य में आकर उन्होंने कहा—"हिंदू लोग गंगाजल को जो इतना पवित्र और गंगा को देवी मानते हैं उसके भीतर बहुत कुछ तत्त्व है। स्वेदज-कीट-विज्ञान का इतना पता प्राचीन हिंदुओं को कैसे लग गया था? क्या प्राचीन काल में भारत में भी ऐसे विज्ञानवित् पंडित थे? हमें मालूम नहीं, केवल इतना ही हमें मालूम है कि जिस समय समस्त संसार असभ्यता के अंधकूप में डूबा हुआ था, उस समय हिंदू-जाति की सभ्यता पराकाष्ठा पर पहुँची हुई थी।"

मेरे कितने मित्रों ने अपने रोगों को गंगा-स्नान करने के कारण ही दूर हुआ बताया है। एक मित्र के पाँव में एक ऐसा विषैला फोड़ा हुआ था कि वे उससे हैरान थे। डाक्टर, वैद्य तथा वैज्ञानिकों के सभी इलाज करके बैठ गए थे। एक बार उन्हें हरद्वार में कुछ दिन रहने का सुयोग प्राप्त हुआ। नित्य ही हर की पैड़ी पर जाकर गंगा के स्रोत में अपने पाँव को रखकर घंटों खड़े रहते थे। फोड़ा बिलकुल जड़ से आराम हो गया।

एक मित्र के बदन में फोड़े-फुंसी के रोग बहुत हुआ करते थे। वे नित्य नियम से गंगा-स्नान करने लगे। अब उनके शरीर से रोग हमेशा के लिये बिदा माँग गया है।

मुझे भी भगवती गंगा की कृपा से उनके जल में प्रायः नित्य स्नान करने का अवसर मिलता है। मैं तो सभी भारत-संतानों से साग्रह निवेदन करूँगा कि जिनको भगवती के आध्यात्मिक और आधिदैविक स्वरूप पर चाहे विश्वास न भी हो पर उनके आधिभौतिक स्वरूप का संपर्क सुलभ हो, वे अवश्य उससे लाभ उठावें। वे स्नान के आनंद के साथ साथ उन पौराणिक वर्णनों की यथार्थता का स्वयं अनुभव करेंगे। यदि उनको अवसर मिले तो हरद्वार या हृषीकेश में जाकर गंगा-सेवन किया करें। फिर वे देखेंगे कि हिंदू-शास्त्रों

में जो गंगा का माहात्म्य है वह अर्थवाद है या वास्तववाद।

साहित्यिक या राष्ट्रीय दृष्टि से यदि हम गंगा पर विचार करने चलें तो कौन ऐसा व्यक्ति है जिसने गंगा के महत्त्व को नहीं समझा है। संस्कृत का ऐसा कोई भी कवि नहीं है जिसने गंगा का वर्णन कर अपनी लेखनी को पवित्र न किया हो। आदिकवि वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति सभी तो अपनी लेखनी को भगवती के वर्णन से पवित्र करते पाए जाते हैं। वाल्मीकि का तो श्लोक पाठकों ने पढ़ ही लिया है। व्यासजी के सारे पुराण भरे पड़े हैं। कालिदास भी अपने रघुवंश काव्य में लिखते हैं कि अनसूया नाम की ऋषि-पत्नी ने अपने सतीत्व के प्रभाव से तपस्वियों के स्नान के निमित्त त्रिस्रोतस्विनी गंगाजी को अपने आश्रम की ओर से प्रवाहित किया—

अत्राभिषेकाय तपोधनानां सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम्।
प्रवर्तयामास किलानुसूया त्रिस्रोतसं त्र्यम्बकमौलिमालाम्॥

रघु० १३।५१

भवभूति ने भी उत्तररामचरित में कहा है कि हे भगवति गंगे! कपिल के क्रोध से भस्म हुए अपने पितरों को मुक्त करने की इच्छा से शरीरपात का ख्याल न कर अति कठिन तपस्या द्वारा भगीरथ ने तुमको इस पृथ्वी पर उतारा और तुम्हारे जल से स्पर्श कराकर उनको मुक्त किया। यह उद्गार उन्होंने रामचंद्र के द्वारा गंगा को नमस्कार कराते हुए व्यक्त किया है।

कल्पना-राज्य के बादशाह उत्प्रेक्षा-सम्राट् श्रीहर्ष को भी किसी तरह गंगा का प्रसंग बिना उठाए शांति ही नहीं मिली। तभी तो उन्होंने दमयंती के स्वयंवर में सरस्वती के मुख से वर्णन कराया है कि 'हे दमयंती! तू काशिराज को ही वरण कर; क्योंकि इनकी काशी नगरी में मृत्यु से अभय दान देनेवाले दो सत्र-यज्ञ बराबर हुआ करते हैं। एक अमृत-सत्र गंगाजी बहती हैं, दूसरा अमृत-सत्र तारक-मंत्र की दीक्षा होती है।"

ज्ञानाधिकासि सुकृतान्यधिकाशि कुर्याः
कार्यं किमन्यकथनैरपि यत्र मृत्योः।
एकं जनाय सतताभयदानमन्य-
द्धन्ये वहत्यमृतसत्रमवारितार्थि॥

नैषध ११।१२०

राष्ट्रीय जगत् में यदि विचार करें तो हिमालय के गंगोत्तरी स्थान से लेकर गंगासागर तक जाती हुई ७७८ कोस जमीन को गंगा उर्वरा बनाती है। यह वहाँ के निवासियों को विदित ही है।

लक्ष्मणझूला से लेकर हुगली तक कितने शहरों के पुण्यशाली मानवों को अपने दिव्य जल से नीरोग बनाती और सभी सांसारिक आवश्यकताओं को पूर्ण करती हैं।

हरद्वार, कनखल, प्रयाग, काशी, हरिहरक्षेत्र प्रभृति तीर्थ-क्षेत्र भी इन्हीं के किनारे हैं जहाँ पर बड़े बड़े मेले लगते और मनुष्य-समाज इकट्ठा होता है। पहले जमाने में ये सब तीर्थ और मेले राष्ट्रीय महासभा का काम किया करते थे; दैव-दुर्विपाक से आज वह दृष्टि नष्ट हो गई है। उक्त सब कारणों से ही हिंदू-संस्कृति का बड़े जोर-शोर के साथ प्रचार हुआ था और अब भी उसका बोलबाला है; इसी से इनको हिंदू-धर्म की ध्वजा कहना ठीक है।

———

आकाशगंगा

(ले०—श्री हरिशंकर शर्मा)

हमारे इस ब्रह्मांड का अधिनायक सूर्य है। यह सूर्य हमारी इस पृथिवी से एक लाख योजन दूर है। इस सूर्य से चौदह लाख योजन की दूरी पर ध्रुव की स्थिति है। ध्रुव की इस निवास-भूमि का नाम विष्णु भगवान् का तीसरा दिव्य धाम है। इसी को विष्णु का परमपद कहा जाता है।

विष्णुपद में ध्रुव की स्थिति है, ध्रुव में समस्त नक्षत्र-मंडल स्थित है। इस नक्षत्र-मंडल पर मेघ और वृष्टि अवलंबित है। यह वृष्टि ही समस्त सृष्टि का पोषण और संपूर्ण प्राणियों की पुष्टि करती है।

ध्रुव की जहाँ स्थिति है उस स्थान से लेकर उत्तर की ओर गिरगिट जैसा आकारवाला तारा-मय स्वरूप दिखाई देता है। इस तारामय स्वरूप के आधार साक्षात् नारायण हैं। शिशु-मार या इस तारामय स्वरूप के पुच्छ भाग में ही ध्रुव की स्थिति है।

विष्णुपद आपोमय है। इस आपोमंडल का ही नाम आकाशगंगा है। इन्हीं श्री गंगाजी को ध्रुव दिन-रात अपने मस्तक पर धारण किए रहते हैं।

आकाशगंगा का जल सप्तर्षि-मंडल में से होता हुआ चंद्रमंडल में पहुँचता है जहाँ से मेरु पर्वत के ऊपर गिरता है। मेरु पर्वत पर गिरा हुआ गंगाजल चार विभिन्न दिशाओं की ओर प्रवाहित होता है। चारों दिशाओं में जानेवाले इस एक ही जल को सीता, अलकनंदा, चक्षु और भद्रा कहते हैं।

अलकनंदा को भगवान् शंकर ने सौ वर्ष तक अपने मस्तक पर धारण किया था, इसी जल को भगीरथ सगर के साठ हजार पुत्रों का उद्धार करने के लिये, तपस्या से प्रसन्न करके भगवान् शिव से लाए थे। उसी अलकनंदा का भूमि-अवतरण हमारी यह भागीरथी गंगा है।

आकाश-गंगा के जल को कभी कभी सूर्य भी अपनी किरणों से ग्रहण करते हैं और भूमि पर बरसा देते हैं।

भगवान् सूर्य—नदी, समुद्र, पृथिवी तथा प्राणियों से उत्पन्न जल को अपनी किरणों द्वारा नीचे से ग्रहण करते हैं और आकाशगंगा के जल को ऊपर से। ये दोनों जल अंतरिक्ष से भूमि पर आते हैं। जो जल बादलों के द्वारा बरसता है वह नदी, समुद्र, पृथिवी तथा प्राणियों से लिया हुआ होता है। परंतु जो जल बिना बादल के ही बरसता है उसे आकाशगंगा का जल समझना चाहिए। आयुर्वेद में तो इस जल का नाम 'गांग जल' प्रसिद्ध ही है।

सूर्यमंडल, जिसमें अनेक ग्रहगण सम्मिलित हैं, ध्रुव में स्थित है। हमारा सूर्यमंडल ही नहीं ऐसे अनेकों सूर्यमंडल हैं जो कि इस ध्रुव में स्थित हैं और उसी के साथ चक्र के समान घूमते रहते हैं। इस प्रकार आकाशगंगा में—जो आपोमयी है, अनेक ज्योतिर्मंडल घूमते रहते हैं। कहना चाहिए, भगवान् के इस विष्णुपद में ही सब की स्थिति है, सब की गति है। इसका एक नाम परा भी है।

भगवान् की यह परा शक्ति ऋक्-यजुः-साम-मयी है। यही सूर्य को ताप प्रदान करती है और चंद्रमा को कांति। यह आपोमयी परा-शक्ति काममयी है—इच्छायुता है। आप्त पुरुष इसे ज्ञान-स्वरूपा भी कहते हैं।

आकाशगंगा के स्वरूप की कल्पना शिशुमार-चक्र के रूप में की है। शास्त्रों में लिखा है कि इस चक्र की ऊपर की ठोड़ी उत्तानपाद तथा नीचे की यज्ञ है। धर्म ने मस्तक पर अधिकार जमा लिया है, हृदय में साक्षात् नारायण का स्थान है, चरणों में अश्विनीकुमार रहते हैं, जंघाओं में वरुण और अर्यमा। संवत्सर इसका शिश्न है। अपानदेश पर मित्र का कब्जा है तथा अग्नि, महेंद्र, कश्यप और ध्रुव पुच्छभाग में स्थित हैं।

भगवान् विष्णु के इस मूर्त रूप जल से ही पर्वत और समुद्रादि के सहित यह पृथिवी बनी है। कहाँ तक कहा जाय—तारागण, त्रिभुवन, वन, पर्वत, दिशायें, नदियाँ, समुद्र सभी कुछ इस आकाशगंगा से बना है।

आकाशगंगा जिसे हम आकाश में देखते हैं वस्तुतः हमारे चारों ओर व्याप्त है। हम स्वयं भी उसके केंद्र में हैं।

ऊपर जो आकाशगंगा के स्वरूप की कल्पना की गई है वह एक चमत्कारपूर्ण वर्णन है, जिसका अर्थ उसके अंगस्थानीय देवताओं के स्वरूप से भली भाँति लगाया जा सकता है। स्थानाभाव से उसका साधारण वर्णन करना ही पर्याप्त समझा गयाहै*।

(१) श्री विष्णुपुराण के आधार पर लिखित।

गंगा

(गोस्वामी तुलसीदासजी की विनय-पत्रिका से)

हरति पाप त्रिविध ताप सुमिरत सुरसरित।
बिलसति महि कल्पवेलि मुद-मनोरथ-फरित ॥
सोहति ससि-धवल-धार सुधा-सलिल-भरित।
विमलतर तरंग लसत रघुवर के से चरित ॥
तो बिनु जगदंब गंग! कलिजुग का करित?
घोर भव-अपार-सिंधु तुलसी कैसे तरित?
ईस-सीस बससि, त्रिपथ लससिं नभ-पताल-धरनि।
मुनि, सुर, नर, नाग, सिद्ध, सुजन मंगल-करनि ॥
देखत दुख-दोष-दुरित-दाह-दारिद-दरनि।
सगरसुवन-साँसति-समनि, जलनिधि-जल-भरनि ॥
महिमा की अवधि करसि बहु बिधि-हरि-हरनि।
तुलसी करु बानि विमल विमल-बारि-बरनि ॥

गंगा का विस्तार

(ले०—पं० तारादत्त पन्त, साहित्याचार्य)

वैशाखी पौर्णमासी का दिन है। भगवान् दिनमणि अपने अनुपम गभस्ति-गर्भ-भर्ग से निखिल भूमंडल क्या त्रिभुवन को "तेजस आपो जायन्ते" इस वेद-वचन का यथार्थ तात्पर्य समझाने के लिये विशेष गरमाते हुए उदय-शैल से (क्षितिज से) दर्शन दे रहे हैं। काशीधाम—पवित्रगाम केशवपुर है। बिल्ववृक्ष के नीचे पूर्वाभिमुख बैठा हूँ। स्नान, संध्या-वंदन और पूजा-पाठ सब कुछ छोड़कर, कलमकर होकर, ध्यान करते लिख रहा हूँ कि—

"गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥"

गम्-गा ये दो अक्षर हैं; क्योंकि अक्षर व्यंजन सहित स्वर को कहते हैं। गंगा में पाँच वर्ण हैं; क्योंकि प्रत्येक व्यंजन और प्रत्येक स्वर को 'वर्ण' कहते हैं। प्रत्येक वर्ण का अर्थ मुझे नहीं करना है। उसे कोई तांत्रिक और नैरुक्त अपने लेख में लिखेगा। व्याकरण संबंधी अर्थ लिखा जाता है।

गम्=गणेशं गच्छति प्राप्नोति बोधयति वा गंगा। त्रिगणेश परमात्मा का नाम है। इसका अर्थ हुआ परमात्मा के पास पहुँचानेवाली, परमात्मा का स्वरूप बतलानेवाली। गंगा शब्द अधिकरण-उपपद रहते 'ड' प्रत्ययादि द्वारा यह अनेक अर्थवाली है। शाकटायन व्याकरण के अनुसार—'गच्छतीति गंगा'—जानेवाली इतना ही अर्थ है। इनके 'गन्, गम्यद्योः' इस सूत्र से 'गन्' प्रत्यय होकर टाबंत गंगा शब्द बना है। भेद इतना ही है कि शाकटायन के मत से यह योगरूढ़ है और औरों के मत से रूढ़ है। 'गङ्गगनं गच्छति, गङ्गह्वरे गच्छति', इन व्युत्पत्तियों से आकाश में विचरनेवाली, पाताल में प्रवेश करनेवाली ये दो अर्थ भी सिद्ध होते हैं। 'गाम् भूमिं गच्छति' इस व्युत्पत्ति का अर्थ सर्वजनविदित है। पृषोदरादि के आकृतिगण होने से शब्द-सिद्धि की प्रसिद्धि सब व्याकरणविद् जानते हैं। 'गाम् गान्तं गच्छति व्याप्नोति' इस व्युत्पत्ति से आध्यात्मिक गंगा का पूरा पूरा तत्त्व मालूम हो जाता है। यहाँ शब्दसिद्धि पूर्ववत् ही समझनी चाहिए।

'गाम् गायत्रीं गच्छति बोधयति प्रापयति' इत्यादि व्युत्पत्ति से समस्त आधिदैविक अर्थ सुलभ होते हैं। शब्दसिद्धि के लिये पृषोदरादि न भूलना चाहिए।

'गाम् गायन्तम् गच्छति भुक्तिमुक्तिदानार्थम् भक्तहृदयारविन्दे प्रकाशते धर्मद्रवारूपेण, ब्रह्मविद्यारूपेण च गंगा' इस व्युत्पत्ति से कौन सा अर्थ बाक़ी रह जाता है। इसी लिये कहा है—

"गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥"

भावपूर्णमानस होकर उक्त सब अर्थों का ध्यान करने से, 'गंगा गंगा' उच्चारण करनेवाले, ध्याता का कौन मनोरथ पूरा होने से शेष रह सकता है?

'गम्, गन्धवहं गच्छति' इस व्युत्पत्ति से सारे वायुमंडल में गंगा की सत्ता सिद्ध होती है।

इसी लिये भगवान् महाभाष्यकार 'स्थानेऽन्तरतमः' इस सूत्र पर "या एता आन्तरिक्ष्यः सूक्ष्मा आपः" लिखते हैं। कैयट इस पर प्रकाश डालते हैं कि 'अन्तरिक्षे सूक्ष्मः समुद्रोऽस्ति'। इससे स्पष्ट होता है कि अंतरिक्ष (वायुमंडल) में जब समुद्र है तो समुद्रपत्नी अवश्य ही होनी चाहिए क्योंकि उसके बिना उसकी पूर्त्ति नहीं हो सकती है।

'गम्, गन्धवतीम् गच्छति' इस व्युत्पत्ति से भूलोक में गंगा का अवतरण प्रतीत होता है। आकांक्षा रह जाती है कि किस स्थान पर। अतः 'गम्', गन्धमादनं गच्छति' इस विग्रह से भूलोक में उतरने के चारों स्थान बोधित होते हैं। 'गंध-मादन'—पर्वतों में से उत्तम दो पर्वतों का नाम है। एक वर्ष पर्वत, चीन मंचूरिया का विभाजक जो कि उत्तर से दक्षिण तक लंबा है। वर्तमान समय में वहाँ के लोग उसे खिङ्-गाङ् नाम से पुकारते हैं। दूसरा 'हिमालय की शाखा', जिसमें बदरीनाथ धाम है। इसमें से गंगा की प्रधान धारा अलकनंदा निकलती है।

पाठक-वृंद! अभी तक की टेढ़ी-मेढ़ी बात से शायद आपके मन में कुछ आह्लाद न आया हो परंतु ये प्रत्येक शब्द मनन के योग्य हैं। यदि इन शब्दों की ही व्याख्या की जाय तो हर एक का एक एक स्वतंत्र लेख बन सकता है परंतु स्थानाभाव से ऐसा नहीं किया जा सकता।

सृष्टि रचते हुए परमेश्वर ने 'गगन' का विकास कर पवन' बढ़ाया। उससे तेजःपुंज इकट्ठा होकर 'तपन' तारागण बने। उनके वाष्प से, ताप के वारण के लिये, जगत् की शांति के निमित्त निखिल प्राणि-पुंज-प्रसूत सकल-सलिल-जननी जगन्माता धर्मद्रवा गंगा बनी। "तदपो अजा-यंत" "अप एव ससर्जादौ" इत्यादि श्रुति-स्मृति वाक्य इसी बात को कहते हैं।

यह प्रथम सृष्टि सत्यलोक में हुई। सत्य-लोक, ध्रुवतारा—जिसे आप देखते हैं—उससे भी कई करोड़ योजन ऊपर है। भूलोक से सत्य-लोक तक एक ब्रह्मांड है। यही ब्रह्मा का कमंडलु है जो कि सूक्ष्म, नित्य, पवित्र, स्वच्छ, निर्दोष गंगाजल से पूर्ण है।

वामनावतार की कथा से मालूम पड़ता है कि वामनावतार के समय तक उस 'अप्' में भूलोक में आने की स्थूलता द्रवतापूर्ण हो गई थी; क्योंकि सारा सत्ययुग सृष्टिकाल है। वामनावतार उसके अंत में हुआ था। वामन भगवान् के पादांगुष्ठ से उर्द्ध्वकपाल-भेदन-पूर्वक वह 'अप्' विष्णु-पादाब्जसंभूता होकर जब चलने लगा तब गंगा कहा गया। यह गंगा जब चरण की एँड़ी तक पहुँची तब विष्णुपदी कही गई। ध्रुवलोक को विष्णु-पद कहते हैं। जब देवलोक में पहुँची तो सुरनिम्नगा कही गई। इस प्रकार से बहुत काम, नाम और धाम बनाती हुई जब प्रवह-वायुमंडल में पहुँची तब चार विभागों में विभक्त हुई। सीता, अलकनंदा (गंगा), चक्षुः, भद्रा, यही उनके चार नाम हुए।

विष्णुपदी

सीता' चीन को पवित्र करती हुई खिङ्-गाङ् से निकलकर पूर्व समुद्र में मिलती है। 'चक्षु' यूराल पर्वत से निकलकर पश्चिमवाहिनी होकर समुद्र में मिलती है। इसका महत्त्व जर्मनी में उससे भी बढ़कर है जितना गंगा का भारत में। 'भद्रा' दक्षिण अमेरिका में ऐंडीज से निकलकर बहुत वेग से बहती हुई समुद्र में जा मिलती है। परंतु इसका प्रवाह उत्तराभिमुख हो गया है।

पुराणों में इसको दक्षिणाभिमुख वर्णन किया है। इससे विदित होता है कि अमेरिका भूकंप आदि से उलट-पलट हो गया होगा[1]।

इस बात का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है कि जैसे भूमि में पानी के स्रोत हैं वैसे ही वायु-मंडल में वायु के, तेजमंडल में तेज के भी स्रोत हैं। वायुमंडल से अत्यंत संघृष्ट सूर्य-किरणों के घर्म से द्रवीभूत तेजःपूत गंगाजल हिम होकर जल-मंडल से पवन की प्रेरणा, पावक की पावनता को लिए हुए हिमालय के शाखा-शिखर, गंधमादन की अवांतर चोटी बदरी, केदार, गंगोत्तरी, इन तीनों पर आ बैठता है, जिससे अविच्छिन्न गंगा-धारा बहती रहती है।

यह ध्यान देने की बात है कि परमात्मा के नित्यकोष सत्यलोक से सूक्ष्मतत्व, स्थूलतत्वों को आप्यायित न करें तो क्या ये नित्य व्यय होते हुए समाप्त होने में विलंब करें। क्या हिमालय नित्य हजार भगिनियों सहित गंगाजी को वरुण के पास भेजता हुआ भी स्वयं हिम-सृष्टि करने में समर्थ है? हाँ, परमात्मा की असीम कृपा से अनेक कोटि 'खारी' हिम धारण कर शीतल जलवायु का अनवरत वितरण करने में लगा हुआ है।

गंगोत्तरी से भागीरथी गंगा, बदरीनाथ से अलकनंदा, केदारनाथ से मंदाकिनी—ये तीन स्रोत देवप्रयाग में एकत्र होकर गंगा को पूर्ण बनाते हैं। बदरीनाथ के पास अलकनंदा के किनारे नंदप्रयाग है। यहाँ विष्णुगंगा का संगम है। कर्ण (स्कंद)-प्रयाग में पिंडर नदी का संगम है। रुद्रप्रयाग में केदार से निकली हुई मंदाकिनी का संगम है। सखियों को साथ लेकर अलकनंदा, देवप्रयाग में गंगोत्तरी से निकली हुई भागीरथी नाम की धारा से मिलती है। येही सब मिलकर गंगा हो गई है।

त्रेता के आरंभ में वामनावतार के पूर्व ही से सूर्यवंशीय महाप्रतापशाली धर्मवीर-सार्वभौम भगीरथ राजा अपने पूर्वजों के उद्धारार्थ गंगोत्तरी के आश्रम पर घोर तपस्या कर रहे थे। उधर महाराज बलि ने अपने बाहुबल से देवेंद्र को जीतकर देवताओं को अधिकारहीन कर रखा था। देवताओं की प्रार्थना सफल करने के लिये कश्यप महर्षि के यहाँ भगवान् ने वामन रूप धारण कर अपने से त्रिभुवन को व्याप्त किया था। इसका फल यह हुआ कि सुरराज को शीघ्र ही स्वराज्य मिल गया। आगामी मन्वंतर में जब सावर्णि मनु के वंश से भुवन भरपूर होने लगेगा, त्रिलोक के प्रबंधाधिष्ठाता दानवीर बलि होंगे।

देवेंद्र को स्वराज्य-लाभ कराकर ब्रह्मलोक की त्रिजगत्पाविनी मंदाकिनी ने अपने चरण-नलिन-नाल द्वारा गंगोत्तरी स्थान से निविड़ संबंध करके चिरकाल-तपश्चरणश्रांत, स्वचरण-करुणा-कांची भगीरथ महाराज का मनोरथ सिद्ध किया।

हिमालय में और बंगाल में भागीरथी शब्द का ही प्रचार है। दक्षिण भारत में और हिमाचल के किसी किसी प्रदेश में 'गंगा' शब्द गंगाजी की सखियों के लिये भी 'नदी' शब्द के स्थान पर प्रयुक्त होता है। दक्षिण में गोदावरी को, मध्य-भारत में नर्मदा को, उत्तर भारत में यमुना, सरस्वती, एवं सरयू को गंगा के समान मानते हैं।

सखी

(१) भद्राश्ववर्षे सीताख्या चक्षुः स्यात्केतुमालके।
भारतेऽलकनन्देयं कुरुवर्षे च भद्रिका॥
—वृद्धवसिष्ठसिद्धांत।

वेद में "इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि" इत्यादि मंत्र में क्रम से नदियों की श्रेणी बतलाई है। पुराणों में गंगा के संबंध में जो कुछ वर्णन किया है उनका सार कवियों ने लहरी, अष्टक, गौरव के नाम से वर्णन किया है। गंगालहरी को तो सब जानते ही हैं, परंतु गंगा-गौरव नाम का ग्रंथ नूतन और अत्यंत चमत्कारी है।

वेद में

गंगा की अधिक से अधिक बाढ़ जब आ जाती है तो इंद्रद्युम्न (इंद्रदमन) का मेला लगता है। इंद्रद्युम्नेश्वर का लिंग मणिकर्णिकास्थ विष्णुपादुका से करीब दो पुरुषा ऊँचे में उसके सामने है।

बाढ़

बाढ़ में जहाँ तक जल व्याप्त हो सकता है वह सब तीर भूमि कही जाती है। इसी दृष्टि से बलिया प्रभृति मंडल (जिले) तट कहे जा सकते हैं। अतएव 'गङ्गातटे घोषः' न कहकर 'गङ्गायां घोषः' कहना पड़ता है; क्योंकि तट कई कोस तक हो सकता है। परंतु अत्यंत सामीप्य प्रतीत कराने के लिये ऐसा ही प्रयोग करना पड़ता है।

तीर

गंगोत्तरी पर्वत का नाम जह्नु भी है। एक राजा की संज्ञा जह्नु थी इसलिये गंगा का नाम जाह्नवी है। राजा से गंगाजी का कुछ संपर्क था। इस कथा को यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं है।

जाह्नवी

जह्नु-शिखर से लगभग ३० कोस पश्चिम कलिंद-शिखर है। उसके यमुनोत्तरी स्थान से यमुना का प्रादुर्भाव होता है। यह प्रथमतः पश्चिमाभिमुख बहती है। मरु भूमि के शुष्क ऊँचे कपाल पर ऐसी रेखा नहीं थी कि यमुना-प्रवाह का तिलक चढ़ सके। इसलिये लौटकर अपनी बड़ी सखी से मिलने के निमित्त यमुना पूर्वाभिमुखी हुई। ऐसी ही स्थिति में उत्तर कोण में मालव देश से सिप्रा को साथ लेकर चर्मण्वती (चंबल) कन्नौज के सामने आ मिली। इंदौर से सिंधु, टीकमगढ़ से वेत्रवती (बेतवा) जिला सार (झाँसी) होते हुए दशार्ण (धसान, दशान) यमुना से मिलीं कि सब साथ साथ मिलकर गंगाजी से मिलें। गंगाजी को इसकी सूचना अंतःसूत्र से मिल गई कि अपनी सखियों को लेकर प्रिय सखी यमुना आ रही है। धीरे धीरे अपने प्रवाह को परिवर्त्तित करती हुई गंगा भी दक्षिणाभिमुख हुई। दक्षिणाभिमुख होकर गंगा ने प्रिय सखी से संगम करना उचित न समझ 'प्रतिष्ठान' (झूँसी) के आड़ पर बड़ी उछाल देती हुई बीही में गुप्त रीति से सरस्वती को लेकर मील भर पर यमुना से मिली। यह तीनों महानदियों का तट—त्रिवेणी—प्रयागराज परम-तीर्थ (तीर्थराज) कहा जाता है। यहाँ मकरार्क में लाखों मनुष्य स्नान-दान-श्राद्ध-तर्पण करने को जाते हैं।

यमुना

प्रतिष्ठान—प्रयागराज—वैवस्वत मनु की राजधानी थी। वैवस्वत मनु के पुत्र सुद्युम्न प्रतिष्ठानपति कहे जाते हैं—

प्रतिष्ठान प्रयागराज

ततः परिणते काले प्रतिष्ठानपतिः प्रभुः।
पुरूरवस उत्सृज्य गां पुत्राय गतो वनम्॥

भागवत में लिखा है कि वैवस्वत मनु का अपत्य सुद्युम्न अपने पुत्र पुरूरवा को राज्यभार सौंपकर तपस्या करने के लिये वन चला गया जो कि महाप्रभावशाली और प्रतिष्ठान जैसे दुर्ग का पति था।

पुरूरवा से चंद्रवंश चला। वैवस्वत मनु के और पुत्र, जिनसे सूर्यवंशीय क्षत्रिय हुए, अयोध्या प्रभृति स्थानों में गए। चंद्रवंशी भी धीरे धीरे यमुना पार चल दिए। हाय! आज आर्य-जाति का मूलस्थान 'प्रतिष्ठान' झूसी बन बैठा। मैं प्रयाग में स्नान करनेवाले अपने हिंदू भाइयों से निवेदन करता हूँ कि त्रिवेणी में स्नान-दान करने के अनंतर तीन-चार पैसे में नौका करके प्रतिष्ठान की ऊँची भूमि अवश्य देख लें। प्रतिष्ठान (झूसी) सृष्टि के आरंभ का है। यही मानव-जाति का प्रथम निवास-स्थान—उत्पत्ति-भूमि—है। इसे प्रणाम करती हुई गंगा लौटकर यमुना से मिलती है। इसकी १५० फीट ऊँची भूमि के ऊपर चढ़कर तीर्थराज की शोभा देखने से चित्त प्रसन्न हो जाता है। मालूम पड़ता है कि प्रतिष्ठान और गंगा मिलकर यमुना का स्वागत करते हुए तीर्थराज निर्माण कर रहे हैं। जय गंगा! जय प्रयागराज!!

गंगा हिमाचल से हरद्वार तक दक्षिणाभिमुख है। हरद्वार से प्रयागराज तक आग्नेयाभिमुख है।

गोमती

गंगा प्रयागराज में यमुना से हाथ मिलाती हुई पूर्वाभिमुख होकर काशी-यात्रा को चली। इस शोभा को प्रतिष्ठान-शिखर पर बैठकर देखिएगा। काशी में उत्तराभिमुख होकर पूर्व को चली। उसे चार कोस के लगभग जाकर अंतःसूत्र से विदित हुआ कि नैनीताल जिले के पर्वत-प्रदेश से, पीलीभीत लखनऊ होती हुई, सखी गोमती बिचारी अकेली आ रही है तो लौटकर आधा कोस पश्चिम जाकर गोमती को अपनी गोद में लेती हुई फिर पूर्वाभिमुख चल दी। गंगा-गोमती-संगम में मार्कंडेयेश्वर महादेव हैं। यह स्थान अति उत्तम है।

अल्मोड़े जिले के हिमालय-शिखरों से पाँच धाराएँ निकलती हैं। एक तो नंदादेवी शिखर के सामने पिंडर के पूर्व भाग के

सरयू

सरयू—मूलस्थान से सरयू नदी निकलती है जिसके किनारे वागेश्वर हैं। जोहारवासिष्ठी, निस्मांडा, गौरी, काली ये धाराएँ परगने से पंचेश्वर तक मिलकर सरयू बनी हैं। यह टनकपुर से भूतल में आकर आग्नेयाभिमुख होती हुई बाराबंकी के अंत में नैपाल राज्यस्थ (घाघरा) नदी से मिलती, भरभराती हुई बलिया जिला के अंत में झट गंगाजी से जा मिलती हैं। यहाँ इतना ही भेद मालूम पड़ता है कि सरयू ने गंगाजी को अपने दहिने पार्श्व में बैठाया है और तब दोनों मिलकर पूर्वाभिमुख हो चल दी हैं।

भृगुतीर्थ

बलिया की नोक में गंगा-सरयू के संगम को भृगुतीर्थ कहते हैं। सूर्यवंशी राजा लोग प्रायः इसी का बड़ा मान करते थे। डुमरावँ के परम-हंस दुर्गादत्त द्विजराज ने इसी में छः वर्ष तपस्या की थी। इसकी परिक्रमा भी की जाती है। वस्तुतः यह महाप्रयाग है। पाँच प्रयागों का वर्णन यह है—

"नन्दं स्कन्दं तथा रौद्रं देवेन्द्रं वटमेव च।
प्रयागान् संस्मरेन्नित्यं महापातकनाशकान्॥"

चार प्रयाग गढ़वाल में हैं। पाँचवाँ प्रयागराज है। पर जब हमें छठा संगम मिलता है तो उसे भी प्रयाग क्यों न कहें? क्योंकि प्रत्येक गंगा-संगम प्रयाग कहलाता है।

नैपाल की राजधानी काठमांडू से वायव्य कोने पर लगभग १५ दिन के मार्ग पर चंपारन के सीमांत पर किनारे किनारे अंदाजन ७ दिन के

मार्ग पर पुलस्त्य पुलहाश्रम (मुक्तिक्षेत्र) नाम से प्रसिद्ध दिव्य आश्रम है। उसी स्थान पर 'सरित्प्रवरा चक्र-नदी' है। इसी

गंडकी

नदी के अगाध जलाशय में, अगम्य भृगु (प्रपात) से भक्तानुग्रहपरायण नारायण की लीला के प्रभाव से बने-बनाए शालग्राम गिरते हैं। इस स्थान का नाम शालग्राम प्रसिद्ध है। यही यथार्थ शालग्राम शिला है जिनका पूजन मानव लोग करते हैं। ये नारायण के सुलभ अवतार हैं। इस हेतु प्रकृत नदी का शालग्रामी और नारायणी नाम भी प्रसिद्ध है। यह नदी बलिया के उत्तर भाग में गोरखपुर, चंपारन की सीमा बनाती हुई गंगाजी में मिलती है। (इसमें तैरने का निषेध है।)

रीवाँ-राज्यस्थ मेकल (अमरकंटक) पर्वत से चार प्रसिद्ध नदियाँ चारों ओर बहती हैं। नर्मदा स्वतंत्र पश्चिमवाहिनी होकर

शोणभद्र

स्वयं खंभात की खाड़ी में जा मिलती है। वेनगंगा ८०° देशांतर की रेखा पर बहती हुई "सप्तगोदावर" तीर्थ की पूर्ति करती भगवती गोदावरी से मिलती है। महानदी स्वयं महती, पूर्व को बहती, २०° अक्षांश से २१ तक डेल्टा बनाती हुई उत्कल देश के पास महोदधि में मिलती है। तीनों बहिनों को भिन्न भिन्न काष्ठा से सरित्पति की शरण भेजकर स्वयं गंगाजी से संदेश कहने के लिये उत्तरवाही होकर गणेश-प्रतिमाओं से भद्र, शोणभद्र, 'हरिहरक्षेत्र' को साक्षी रखकर, गंगाजी से मिलता है।

"भागीरथीं शोण इवोत्तरङ्गः।" का० दा०।

हरिहरक्षेत्र का मेला प्रसिद्ध है। इतना बड़ा मेला भारत में अन्यत्र नहीं होता है। गंगा-सरयू-संगम (भृगुतीर्थ) से शोणभद्र-संगम पर्यंत कई कोस तक जगत्पुंज

हरिहरक्षेत्र

(जगतगंज) प्रतीत होते हुए पुरुषसूक्तार्थ विशद कर देना 'हरिहरक्षेत्र' के मेले का अद्वितीय कार्य है।

आप पशुपतिनाथ का दर्शन करके पूर्व की यात्रा कीजिएगा तो दो दिन के अनंतर आपको प्रतिदिन पर्वतव्यवहित सात

कौशिकी

दिन पर्यंत सात कौशिकी मिलेंगी। दुग्धकौशिकी, घृतकौशिकी प्रभृति नाम भी वहाँ के जनरव से श्रुतिगोचर होंगे। महाभाष्य पढ़ने का सौभाग्य होने पर 'सप्तकौशिक्यः' ऐसा प्रयोग प्राप्त होगा। सप्तगङ्गम्, सप्तगोदावरम्, पञ्चनदम्, द्वियमुनम् इतने प्रयोगों को तो आप अभी 'नदीभिश्च'[1] में पा सकते हैं। ये सातों कौशिकी-धारा मिथिला देश के पूर्वोत्तर तराई में मिलकर कुरुक्षेत्र से द्वादश देशांतर रेखा की लकीर करती हुई पशुपतिनाथ-निर्माल्य द्वारा पवित्र वाङ्मती (प्रचलित नाम बागमती है) से मिलती हुई भागीरथी से मिलती हैं।

जिसकी गोद में श्रद्धापूर्वक पितृभाग देने के लिये आस्तिक जनता गया-यात्रा करती है वही फल्गु नदी है। यह अमर-

फल्गु

कंटक से कई कोस पूर्व, उसी पूर्व के एक शिखर से निकलकर, पटना में भागीरथी से मिलती है। यहाँ स्मृति है कि "बभौ हरजटाभ्रष्टां गङ्गामिव भगीरथः" जब गंगा विष्णुपद

हरजटा

(ध्रुवलोक) से नीचे उतरने लगी तब उसका गौरव करने के निमित्त सप्तर्षिमंडल ने अभ्युत्थान किया

(१) यह एक पाणिनि का सूत्र है।

प्रवह में आई तब नक्षत्रगणों ने अभ्युत्थान किया और नीचे उतरी तब ग्रहगणों ने अभ्युत्थान किया। आवह पवन में जब पहुँची तब पृथ्वी थरथराई कि कैसे गंगागौरव सहूँगी। भूमि की प्रार्थना से ईशान ने अपनी जटाएँ, भूमि के बाहर बारह योजन दूरी तक फैला दीं, जिससे सूर्य-किरणों से तप्त धर्मद्रवा होती हुई जटा-जूट में रक्षित रहकर धीरे धीरे आवश्यकतानुसार भूमि का ताप-पाप-रोग-शोक दूर करती रहे। अभी तक हरजटा नहीं समझे? भागवत पढ़िए—'ईशस्य केशान् विदुरम्बुवाहान्'—मेघमंडल अष्टमूर्त्ति शिव का केश-समूह है। उसमें सारे

ईशकेश

ब्रह्मांड की धर्मद्रवा बैठी रहती है। नीचे से हिमाचल की बेटी हिमानी गौरी भवानी देखती रहती हैं। मनन कीजिए। ध्यान करने का अवसर है—'हर गंगे पापम्'।

गंगोत्तरी के ठीक उत्तर में मानसरोवर है। भूगर्भ द्वारा इसका संबंध गंगा, यमुना से है।

ब्रह्मपुत्र

सरयू का तो स्रोत भूगर्भ-द्वारा साक्षात् मानसरोवर से वेद-पुराण बतलाते हैं। शतद्रु (सतलज) प्रत्यक्ष दौड़ती हुई, मरुभूमि से मुख फेरकर, पंजाब भागी। ब्रह्मपुत्र ब्रह्मपुत्री से भगिनी का नाता समझकर भारत में आने के लिये बहुत भ्रमण करता हुआ किसी प्रकार त्रिपुरा राज्य के पास से दाहिने कर-कमल से भागीरथी की संभावना करता हुआ कामरूप देश, सुह्म देश की सीमा करता हुआ आबुत्त के घर जाकर बुत्त हो बैठा। यह नद है, नदी नहीं। और भी नद हैं।

"शोणसिन्धुहिरण्याख्या कोकलोहितघर्घराः।
शतद्रूश्च नदाः सप्त पावनाः परिकीर्त्तिताः"॥

भागीरथी की एक धारा हुगली है। इसके तट पर कालिघट्ट नगर बसा है। बंग में जाकर

हुगली

भागीरथी की हजारों धाराएँ हो गई हैं। कालिघट्ट का कालिकट्टा, उसका कलकत्ता शब्द सौ वर्ष पूर्व हो गया था। गुमानी कवि—

सिन्धोरुत्तरतस्त्रियोजनमिते गाङ्गे तटे पत्तनम्।
कलकत्ताऽभिधमस्ति यत्र वरदा काली करालानना॥

कहकर, वर्णन करते हैं। हिंदी में भी—

अपने घर से चले फिरंगी पहुँचे पहिले कलकत्ते।
अजबटोप बनातीकुर्त्ते, ना कपड़े ना लत्ते॥
सारा हिंदुस्तान् किया वश बिना लड़ाई कर फत्ते।
कहे गुमानी कलियुग ने यों सुब्बा भेजा अलबत्ते॥

गंगा-धारा की पार्श्ववर्त्ती उस भूमि का नाम सुंदरवन है जहाँ गंगा कलकत्ते से चलकर गंगासागर में मिलती है।

सुंदरवन

यहाँ मकर-संक्रांति को गंगा-सागर-संगम का मेला होता है। इसी अवसर पर वहाँ की यात्रा भी होती है। कृष्णा, कावेरी प्रभृति जो स्वतंत्र नदियाँ सरित्पति में मिलती हैं, उन सब नद-नदियों में श्रेष्ठ गंगा हैं। इसी लिये गीता में 'स्रोतसामस्मि जाह्नवी' कहकर भगवान् कृष्ण ने गंगा को अपनी विभूति माना है।

गंगाजल से हैजे आदि का इलाज

युरोपीय डाक्टरों के सफल प्रयोग

(ले०—श्री 'गंगाशरण')

भारत की आत्मा तो प्राचीन काल से ही देवसलिला गंगा की आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक विशेषता तथा चमत्कारिता का प्रत्यक्ष अनुभव करती आ रही है। इस आश्चर्य-जनक नदी में शरीर के, प्राण के और मन के समस्त दोषों और विकारों को दूर करने की अद्भुत शक्ति है। अन्य देशों से भारतवर्ष की महत्ता और गुरुता के जो उज्ज्वल प्रमाण अब तक मिलते जाते हैं उनके जन्म देनेवाले महापुरुषों और ऋषियों को निर्भ्रांत ज्ञान और प्रकाश की प्राप्ति का मुख्य कारण गंगाजल ही है। गंगा-तट की तपस्या, गंगा-तट का निवास, गंगा-जल का सेवन—ये ही उनकी सिद्धि के विशेष सहायक होते थे। आज पश्चिमी शिक्षा और सहवास के कलुषित प्रभाव से विचार-शक्ति और बुद्धि के ऊपर काला पर्दा लटक गया है—भौतिक चमक-दमक से आँखें ही चौंधिया गई हैं। नास्तिकता ने विश्वास-बल और सूक्ष्म अंतर्दृष्टि (Psychic Vision) को कुंठित कर दिया है। हमें अपनी सभ्यता, अपने देश, अपनी भाषा और खास अपने आपसे इतनी घृणा हो गई है और अपने उज्ज्वल आदर्श को हम अज्ञानांधकार में पड़े हुए इतना भूल बैठे हैं कि विदेशियों एवं विधर्मियों द्वारा 'उठो और जागो' के डंडे खाए बिना हम आँख खोलना ही नहीं चाहते। मैक्स-मूलर (Max müller) ने हिंदू-धर्म-संबंधी उपनिषदों इत्यादि का अँगरेजी में अनुवाद करके संसार के सामने भारत की प्राचीनता तथा उसके ऋषियों और अद्भुत विद्याओं की पूर्णता एवं विशेषता को जब तक नहीं रखा तब तक इस देश के अँगरेजी-शिक्षा-प्राप्त नास्तिक एवं भूले हुए मनुष्यों की आँखें नहीं खुलीं। यहाँ की उत्कृष्टता के संबंध में विदेशी का प्रमाण प्राप्त होने पर ही लोगों ने इस देश की प्राचीन बुद्धिमत्ता को स्वीकार किया, यद्यपि विदेशी विद्वानों के वे अनुभव धुँधली और टिमटिमाती रोशनी की एक-आध किरण को ही लिए हुए हैं। क्योंकि वे लोग जड़भावापन्न (Materialist) होने के कारण उन बातों के अंदर पूर्णता के साथ प्रवेश नहीं कर सकते जो इंद्रिय एवं मन के विषयों से परे हैं और जिनका ठीक ठीक निर्णय सूक्ष्म बुद्धि और अंतर्दृष्टि (Intuition) से ही किया जा सकता है। फिर भी वे लोग स्वाधीन हैं, स्वावलंबी हैं, पुरुषार्थी हैं। जान को हथेली पर उछालते हुए वे इस जगत् की बड़ी बड़ी समस्याओं को हल करते हैं। दुर्ज्ञेय विषयों को छान-बीन करके उन्होंने जगत् के सामने रखा है, भले ही वे बातें भौतिक (material) हैं। हम material investigation को हेय या त्याज्य नहीं कहते, जीवन का वह भी एक अंग है। Matier में पूर्ण सिद्ध होकर ही spirit (अध्यात्म-भाव) की ज्योति को अधिक सामर्थ्य के साथ धारण किया जा सकता है।

जगत् की प्रत्येक वस्तु तीन सत्यों को लिए हुए है—स्थूल, सूक्ष्म और कारण। स्थूल का संबंध जड़ (matter) से है, सूक्ष्म का संबंध जड़ चीजों को चलाने और उनके पीछे रहनेवाली सूक्ष्म शक्तियों (subtle forces) से है और कारण का संबंध है इन सब की जान या Spirit से। यही Divine element है। यही मनुष्य का लक्ष्य है। जिस वस्तु में ये तीनों भाव जितनी मात्रा में विराजमान होते हैं वह वस्तु उतनी ही मात्रा में पूर्ण होती है। गंगा में तीनों ही चीजें मौजूद हैं। उसकी कारण और सूक्ष्म विशेषता क्या है इस बात को आजकल का materialist (जड़वादी) ठीक ठीक अपनी स्थूल बुद्धि में नहीं बैठा सकता। हाँ, गंगा के स्थूल प्रवाह में ऐसी क्या विशेषता है जिसके कारण हिंदू लोग प्राचीन काल से अनेक कष्टों को झेलते हुए भी कल्याण की कामना से स्नान करते और श्रद्धाभाव से इसके जल को पात्रों में भर भरकर अपने घर को ले जाते हैं और वर्षों तक उसको रखे रहने पर भी जल में किसी प्रकार के कीटाणु (Germs) पैदा नहीं होते ? भारतवर्ष से तो पराधीनता आदि दोषों के कारण किसी प्रकार की विशेष छानबीन नहीं हो पाती और यदि हो भी जाय तो उसकी बात को विदेशी चश्मा चढ़ाए हुए नास्तिक लोग मानने के लिये तैयार नहीं होते। हाँ, उससे भी कम मात्रा में वही बात यदि किसी पाश्चात्य विदेशी विद्वान् द्वारा घोषित की जावे तो नतमस्तक होकर स्वीकार कर लेंगे। गंगा के महत्त्व के संबंध में इसी प्रकार का एक पुष्ट प्रमाण हम नीचे उद्धृत करते हैं जिसके पढ़ने से स्पष्ट रूप से यह ज्ञात हो जायगा कि गंगाजी का जल इतना ही नहीं कि केवल सड़ता नहीं है, बल्कि उसमें हैजे आदि भयंकर महामारियों के कीटाणुओं (Germs) को नष्ट करने की तथा हैजे आदि रोगों को दूर करने की अद्भुत शक्ति है। विदेशी डाक्टरों की ताजी खोज इस प्रकार है—

"गंगा को हिंदू पवित्र समझते हैं और उनका कहना है कि गंगाजल शुद्ध है और कभी दूषित नहीं होता। हम लोग गंगाजल को अब तक दूषित ही समझते आए हैं क्योंकि काशी में लाखों मनुष्य प्रतिदिन गंगा में स्नान कर उसे गंदा सा करते देखे गए हैं। नालियों के गंदे जल, लाश और कूड़ा-कर्कट भी इसमें बहाए और फेंके जाते हैं। परंतु एक अद्भुत बात है कि कलकत्ते से इँगलैंड जानेवाले जहाज हुगली शाखा का मैला जल लेकर चलते हैं। यह जल इँगलैंड तक बराबर ताजा बना रहता है। इसके विरुद्ध जो जहाज इँगलैंड से भारत को प्रस्थान करते हैं उनमें लंडन से भरा हुआ पानी बंबई पहुँचने के समय तक खराब हो जाता है। इँगलैंड से जहाज कलकत्ते की अपेक्षा बंबई में एक सप्ताह पहले ही पहुँच जाते हैं और इनको पोर्ट सईद, स्वेज नहर और ईडेन पर फिर ताजा पानी लेना पड़ता है।

"भारत में जब हैजे और आँव के रोग व्यापक रूप से फैले थे और इन रोगों से मरे मनुष्यों की लाशें गंगा में फेंक दी गई थीं तब एक फ्रांसीसी डाक्टर 'डेरेल' ने इन लाशों के कुछ ही फुट नीचे जल की परीक्षा करके देखा कि **जहाँ हैजे और आँव के लाखों कीटाणुओं के होने की आशा थी, वहाँ वास्तव में एक भी कीटाणु नहीं था।** उक्त डाक्टर ने फिर इन रोगों से आक्रांत रोगियों से रोग-कीटाणु पैदा किए और **उनमें गंगा-जल डाला।** उनके

आश्चर्य की सीमा न रही जब कुछ समय के बाद उन्होंने देखा कि रोग के उत्पन्न किए हुए सारे कीटाणु मर गए हैं। गंगा-जल से मरे हुए इन कीटाणुओं को फिर जब उन्होंने पैदा किए हुए कीटाणुओं में डाला तो कुछ घंटों में वे कीटाणु भी मर गए।

"डाक्टर डेरेल ने फिर हैजे से अच्छे हुए उस रोगी के मल का प्रयोग किया। उसके मल को उन्होंने एक ऐसे छन्ने में छाना जिससे रोग के कीटाणु बाहर न निकल सकते थे। इस प्रकार छानने से जो द्रव्य वस्तु प्राप्त हुई उसकी एक बूँद को रोगों के सजीव कीटाणु में डाला। इस बूँद से रोगों के सारे कीटाणु उसी प्रकार मर गए जैसे वे गंगाजल से मरे थे।

"इस नए आविष्कार से यह संकेत मिला कि **हैजे और आँव के रोगियों के लिये गंगाजल औषध के रूप में इस्तेमाल हो सकता है।** उन्होंने आँव और हैजे के रोगी के मल से गंगाजल में करोड़ों कीटाणुओं को उत्पन्न किया। इन कीटाणुओं के द्वारा रोग के कीटाणुओं को मारकर उसे आँव के रोगियों को दिया और **वे २४ घंटे में बिलकुल अच्छे हो गए। इस अद्भुत दवा का नाम उन्होंने 'बैक्टीरियो फैज' रखा है जिसका वर्तमान समय में ही ऐसे रोगों की चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है।**

"अँगरेजी के 'Statesman' नामक प्रसिद्ध पत्र में निकला था कि **गंगाजल में दुष्ट व्रण-नाश करने की भी अद्भुत शक्ति है।**

"गंगाजल में उपर्युक्त गुण वर्त्तमान वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा सिद्ध किए गए हैं। यह बात अब अनुभव-सिद्ध है कि **गंगाजल में हैजा, अतिसार, संग्रहणी इत्यादि के जीवाणुओं को मारने की और भयंकर फोड़े को भरने की सफल शक्ति मौजूद है।** इसलिये गंगा-जल की पवित्रता केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र की दृष्टि से भी मानना अनिवार्य है।"—'गुड हेल्थ' नामक अँगरेजी पत्र में मिस्टर C. E. Nelson M. D. का लेख।

उपर्युक्त प्रयोगों को पढ़कर, आशा है, विदेशी भावों में पले हुए लोग अपनी आँखें खोलकर गंगाजी की पवित्रता तथा रोगों के कीटाणुओं को नष्ट करने की अद्भुत शक्ति को स्वीकार करने की चेष्टा करेंगे। कलकत्ते की अपेक्षा हरद्वार का जल अधिक निर्मल है किंतु दुःख की बात है कि वहाँ के डाक्टर (Health Officer) हैजे के दिनों में यह निराधार घोषणा निकालकर यात्रियों की धार्मिक भावना में ठेस पहुँचाते हैं कि "गंगा-जल में हैजे के कीड़े पैदा हो गए हैं, इसको मत पीओ।" गंगा-जल से तैयार की हुई 'बैक्टीरियो फैज' तो हैजे को दूर करती है, पर इनको गंगा-जल में हैजे के दर्शन होते हैं! हैजा गंगा-जल से नहीं फैलता, अँगरेज गुरु तो उसे हैजा-कीटाणु-नाशक (Germicide) प्रमाणित कर रहे हैं। हैजे के फैलने का कारण है हरद्वार जैसे सीमित स्थान को ऊँचे ऊँचे भवनों की दीवारों से और भी अधिक सीमित और दमघुट बना देना, स्वास्थ्य-संबंधी नियमों का ठीक ठीक पालन न होना। आशा है इस पर स्वास्थ्य विभाग के अधिकारी भली भाँति ध्यान देंगे।

फ़ारसी कविता में गंगा का महत्त्व-वर्णन

(ले०—विद्यासागर श्री देवीनारायणजी बी० ए०, एल्-एल० बी०, एडवोकेट, बनारस)

संस्कृत, हिंदी आदि भाषाओं में तो गंगाजी के महत्त्व का विशेष रूप से वर्णन है ही परंतु फ़ारसी भाषा के अनेक विख्यात हिंदू तथा मुसलमान कवियों ने भी गंगा पर अत्यंत मनोरम, भक्तिपूर्ण एवं हृदयग्राही कविताएँ लिखी हैं।

फ़ारसी भाषा के परम प्रसिद्ध कवि एवं फ़क़ीर शेख़अली हज़ीं जब ईरान से काशी आए और यहाँ रहने लगे तो वे काशी और गंगा के अत्यंत भक्त हो गए। उन्होंने लिखा है—

परीरुख़ाने बनारस बसद करश्मः व रंग,
बराये करदन अश्नान चूँ कुनन्द आहंग।
कुनंद सिज़्दह ब महदेव तन देहन्द ब आब,
ज़हे शराफ़ते संग व ज़हे लताफ़ते गंग॥

अप्सराओं जैसी मुखाकृतिवाली काशी की सुंदरियाँ वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर जब गंगा-स्नान के लिये जाती हैं, तब पहले महादेवजी के सामने सिर झुकाती और जल में गोते लगाती हैं। अहा! उस समय महादेव की मूर्ति की महिमा

(पृष्ठ ५१६ से आगे)

बहुत समय के बाद जब सगर इस भूमंडल के अधिपति हुए थे और उनके अश्वमेध के घोड़े को इंद्र चुराकर ले गया था उस समय उस घोड़े की खोज में गए हुए उनके साठ हजार पुत्र महर्षि कपिल की कोपाग्नि से भस्मीभूत हो गए थे। उन ब्रह्मद्रोही अपने पूर्वजों का उद्धार करने के लिये सगर के कुल में महात्मा भगीरथ का जन्म हुआ था। यह सत्ययुग के अंत और त्रेता के आदि-वाला समय था। इसी संधि-वेला में महाराजा भगीरथ ने गंगाजी को भूमंडल पर लाने के लिये भगीरथ-तप किया था। इनके तप से प्रसन्न होकर स्वर्गस्थित गंगाजी शिव की सहायता से इस भूमि पर अवतरित हुई थीं और भगीरथ का अनुसरण करती हुई उस स्थान पर पहुँची थीं जहाँ उनके पूर्वज कपिल-कोप से जलकर भस्म हो गए थे। भगीरथ के उन तमाम पूर्वजों का उद्धार करती हुई गंगाजी भगीरथ के साथ समुद्र के समीप पहुँचीं और वेगपूर्वक उस खाली समुद्र को उन्होंने जलपूर्ण कर दिया।

समासाद्य समुद्रञ्च गङ्गया सहितो नृप॥ १७॥
पूरयामास वेगेन समुद्रं वरुणालयम्॥ १८॥
वनपर्व, १०९ अध्याय

इस प्रकार से—

पूरणार्थं समुद्रस्य पृथिवीमवतारिता।
समुद्रश्च यथा पीतः कारणार्थं महात्मना॥ २०॥
वनपर्व, १०९ अध्याय

समुद्र के खाली होने तथा गंगाजी द्वारा समुद्र के भरे जाने की कथा महाभारत के वनपर्व में कही गई है।

आयुर्वेद और महाभारत के उक्त प्रकरणों का अंतर ही, हम अल्पबुद्धि लोगों की शंका का विषय बना हुआ है। हमें आशा है कि विद्वन्मंडल इस पर प्रकाश डालेगा।

और गंगाजी के जल की लोकप्रियता का वर्णन कौन कर सकता है!

फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि शेख़ सुभानी, जो प्राय: औरंगज़ेब के समय में हुए थे, काशी का वर्णन करते हुए गंगाजी पर भी लिखते हैं—

खुशा गुलज़ारो बुस्ताने बनारस,
खुशा अज़हारे रैहाने बनारस।
किनारे गंगो संगीं फ़र्श हायश,
सफे खूबाँ दर अश्नाने बनारस॥

अर्थात् बनारस के बाग़, फूल, कलियाँ, तुलसी के वृक्ष आदि क्या ही सुंदर हैं। गंगा के किनारे पत्थर की सीढ़ियों पर भक्तों की टोलियाँ स्नान कर रही हैं।

उर्दू-फ़ारसी के प्रसिद्ध कविसम्राट् दिल्ली-निवासी ग़ालिब ने काशी की प्रशंसा में एक मस्नवी लिखी है, जिसका नाम 'चिराग़े दैर' अर्थात् मंदिर का दीपक है जिसके कुछ पद्यों में बतलाया गया है कि गंगा के कारण ही काशी की यह अपार महिमा है—

सु.खुनरा नाज़िशे मीनो क़माशी,
.जेगुलबाँगे सितायश हाय काशी।
तआलल्लह बनारस चश्म बद दूर,
बिहिश्ते .खुरम्मो फ़िरदैास मामूर।
बनारस रा कसे गुफ़्ता चुनीनस्त,
हनोज़ अज़ गंग चीनश बर ज़बींनस्त।
मगर गोई बनारस शाहिदे हस्त,
.जे गंगश सुबह वो शाम आईन दर दस्त॥
ब गंगश अक्सता पर तो फगन शुद,
बनारस .खुद नज़ीरे खेश्तन शुद।

अर्थात् काशी की प्रशंसा से कविता को भी अपनी सुंदरता पर गर्व हो जाता है। परमात्मन्! बनारस क्या ही मनोरम और आनंदायक स्वर्गस्थान है। बनारस पर किसी ने कटाक्ष किया कि ऐसा है, इस कारण से अब तक उसके मस्तक पर गंगा-लहर-रूपी सिकुड़न पड़ी हुई हैं। अर्थात् जब कोई आदमी किसी पर क्रोध करता है तब उसके ललाट-पट पर सिकुड़न पड़ जाती है। बनारस पर किसी व्यक्ति ने कटाक्ष किया इसलिये उसके मस्तक पर गंगाजी की लहर-रूपी सिकुड़न अब तक बराबर पड़ी हुई है।

यदि काशी की उपमा एक सुंदरी स्त्री से दी जाय तो गंगा-जल सबेरे-साँझ उसके देखने का आईना है। जैसे कोई सुंदरी जब प्रात:-सायं श्रृंगार करने को बैठती है तब वह हाथ में दर्पण लेकर अपने रूप, यौवन और श्रृंगार को उसमें देखकर प्रसन्न होती है। उसी प्रकार काशी भी अपने सौंदर्य को सबेरे-साँझ हमेशा गंगाजी के जल में देखा करती है।

काशी का प्रतिबिंब जिस समय गंगाजी में पड़ता है उस समय उसकी कोई दूसरी उपमा नहीं दी जा सकती।

फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि लाला मित्तनलाल, जिनका तख़ल्लुस 'आफरीं' था और जो इलाहाबाद के रहनेवाले थे, अपनी प्रसिद्ध मस्नवी में लिखते हैं—

बिहिश्ते गंग गर मीनू सरिश्तस्त,
कुजा मानिन्द ईं गंगे बिहिश्तस्त।
बहारश रा कशे गुलज़ार मोनू,
कि अज़ गंगास्त आँरा आबदरजू।
ज़े बरना ता असी शक्ले कमानस्त,
चो चिल्लह आबे गंगा दरमियानस्त।
बिनायश आँ चुना नज़दीक गंगस्त,
कि बाहम मुत्तसिल चूँ आबो रंगस्त।

दर औवल सैर ईं गुल्ज़ार राना,
चो आबज़ सर रवाँ शौसूये गंगा।
कि वर दरिया दिलाने पाके किरदार,
सफ़ा शर्तस्त दर आगाज़ हरकार।
बेह कि ज़नम ग़ोतः बदरियाये गंग,
ता गोहरे फ़ैज़ दर आरम बचंग।
मफ़र्स अज़ फ़ैज़ ग़ुस्लश ऐ ख़िरदवर,
चो लबरा बा नमे आबश कुनीतर।
न बाशी तिश्नदर बहराये महशर,
न गरदी तफ़्तः दर गरमाये महशर।
ख़ुदावन्दा न दानम ताचे आबस्त,
कि अज़ वै अब्रे रहेमत कामयाबस्त।

अर्थात् यदि स्वर्ग की गंगा की प्रशंसा इस बात में है कि वह स्वर्ग में है तो वह इस गंगा की कदापि बराबरी नहीं कर सकती। क्योंकि यह गंगा तो स्वयं स्वर्ग-प्रदान करने की शक्ति रखती है।

गंगा के तट का सौंदर्य स्वर्ग के सौंदर्य के समान है; क्योंकि स्वर्ग में भी जो नहरें बह रही हैं उनका संबंध इस गंगा से है।

वरुणा से असी तक बनारस का आकार धनुष जैसा है और बीच में गंगा की धारा प्रत्यंचा (धनुष की डोरी) जैसी सुशोभित होती है।

गंगा के तट पर विशाल भवन इस प्रकार आपस में सटे हुए हैं कि जैसे पानी और रंग आपस में मिल जाते हैं।

यदि गंगास्नान का पूर्ण रूप से फल प्राप्त करना हो तो पहले श्रद्धा सहित गंगा जी को सिर झुकाना चाहिए, जैसे गंगाजी स्वयं हिमालय से काशी नमस्कार करती हुई आती हैं, क्योंकि पहले पुण्यात्मा लोगों को प्रत्येक कार्य में शुद्धता अपेक्षित है।

क्या ही अच्छा है कि गंगाजी में गोता लगाया जाय, ताकि पुण्य का मोती हाथ लगे।

गंगा-स्नान का माहात्म्य मुझसे न पूछो। यदि तुम अपने होठों को उसके पानी से तर कर लोगे तो महायात्रा (मृत्यु) के वन में प्यासे न रहोगे और प्रलय के भयंकर ताप में पड़कर न जलोगे।

हे परमात्मन्, इस गंगा के पानी में कहाँ से ऐसी विलक्षणता आई कि दया धर्म के मेघों ने भी इसी से उदारता का जल ग्रहण किया।

गीत

गंगा किनारे बरुआ फिरैं केऊ पार उतारइ हो।
पठइ दे आजा नवरिया बरुआ चढ़ि आवइ हो॥
न मेरे नाव न नवरिया नाहीं घर केवट हो।
जेकरे जनेऊ के साथ पवरि दह आवइ हो॥

नवनीत

तुलसी

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सबकर हित होई ।।

(रामचरितमानस से)

पद्माकर

कहै 'पदमाकर' सुदान वह माँगे देत,
ये तौ बिन माँगे सबै देत सरबस है।
आछो अभिराम कहै पूरन सकल काम,
गंगाजू को नाम कामतरु तें सरस है ।।

× × × ×

इंदिरा के मंदिर में सुनिए अनंद-भरे,
बीधे भव-फंद तहाँ कैसे जाइयतु है।
बेदन के बृंद में न पैए छीर-सिंधु में,
सु गंगाजल-बिंद में गुबिंद पाइयतु है ।।

× × × ×

दगादार दोष दीह दारिद बिलाइ गए,
फिकिरि के फंद बिन छोरे छुटि छुटि गे।
जौ लौं आउँ आउँ तेरे तीर पर गंगा तौ लौं,
बीच ही में मेरे पाप-पुंज लुटि लुटि गे ।।

(गंगालहरी से)

रत्नाकर

कहत बिधाता सौं बिलखि जमराज भयौ,
अखिल अकाज है हमारी रजधानी कौ।
सुरसरि दीनी ढारि भूप के भुलावे माहिँ,
कीन्यौ नाहिँ नैँकुहूँ बिचार हित-हानी कौ ।।

निज मरजाद पै कछू तौ ध्यान दीजै नाथ,
कीजै इमि प्रगट प्रभाव बर बानी कौ।
पावैं नर नारकी न रंचक उचारि क्यौं हूँ,
गंगा कौ गकार औ चकार चक्रपानी कौ॥

× × × ×

तारे साठ सहस कुमार जे सगरवारे,
तिन अपराधनि की गनना न भारी है।
कहै रतनाकर उधारे जन जेते और,
तिनमैं न कोऊ ऐसौ बिदित बिकारी है॥
याही हेत देत हैं चिताए गंग चेत धरौ,
धसकि न जाइ धरा धाक जो तिहारी है।
लीजै करि सँभरि तयारी मनवारी सबै,
पारी अबकैं तौ अति बिकट हमारी है॥

(गंगाविष्णुलहरी से)

× × × ×

पापिनि की मंडली लुकाए देति जानैं कहाँ,
धाए तिहुँ लोक पै न पावति पतीजियै।
कहै रतनाकर बिधाता सौं पुकारै जम,
खाता खीस होत सबै याही दुख छीजियै॥
पूछैं उठै गाजि तापै हँसत समाज सबै,
लाजनि कहाँ लगि लहू की घूँट पीजियै।
कै तौ कैद कीजियै कमंडल मैं गंग फेरि,
कै तौ यह साहबी हमारी फेरि लीजियै॥

(गंगा-गौरव से)

पद्माकर

काम अरु क्रोध लोभ मोह मद मातसर्य,
इनकी जँजीरन को जारिहै पै जारिहै।
कहै 'पदमाकर' पसारि पुन्य चारौ ओर,
चारौ फल धामन में धारिहै पै धारिहै॥

छोभ छल छंदन को बाढ़े पाप-द्वंदन को,
फिकिर के फंदन को फारिहै पै फारिहै।
एकै बार बारि जिन गंगा को पियो है,
तिन्हैं तारनि तरंगिनी या तारिहै पै तारिहै॥

× × × ×

योग हू में भोग में बियोग में सँयोग हू में,
रोग हू में रस में न नेकौ बिसराइए।
कहै 'पदमाकर' पुरी में पुन्य, रौरव में,
फैलन में फैल फैल गैलन में गाइए॥
बैरिन में बंधु में बिथा में बंसवालन में,
बिषय में रन हू में जहाँ जहाँ जाइए।
सोच हू में सुख में सुरी में साहिबी में कहूँ,
गंगा गंगा गंगा काह जनम बिताइए॥
जैसे तैं न मोसों कहूँ नेकहू डरात हुतो,
तैसो अब तोसों हौं हूँ नेकहू न डरिहौं।
कहै 'पदमाकर' प्रचंड जो परैगो तौ,
उमँडि करि तोसों भुजदंड ठोंकि लरिहौं॥
चलो-चलु चलो-चलु बिचलु न बीच ही तें,
कीच-बीच नीच तो कुटुंब को कचरिहौं।
ए रे दगादार मेरे पातक अपार तोहि,
गंगा की कछार में पछारि छार करिहौं॥

× × × ×

सारमाला सत्य की बिचारमाला बेदन की,
भारी भागमाला है भगीरथ नरेस की।
तपमाला जह्नु की सु जपमाला जोगिन की,
आछी आपमाला या अनादि ब्रह्मवेस की॥
कहै 'पदमाकर' प्रमानमाला पुन्यन की,
गंगाजू की धारा धनमाला है धनेस की।

ज्ञानमाला गुरु की गुमानमाला ज्ञानिन की,
ध्यानमाला ध्रुव मौलिमाला है महेस की ॥

गंगा-यमुना-संगम

सितासिते सरिते यत्र सङ्गथे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति ॥
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासोऽमृतत्वं भजन्ते ॥

—ऋग्वेद (परिशिष्ट)

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयीयष्टिरिवानुविद्धा ।
अन्यत्र माला सितपङ्कजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ॥
क्वचित्खगानां प्रियमानसानां कादम्बसंसर्गवतीव पङ्क्तिः ।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव ॥
क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव ।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभःप्रदेशा ॥
क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य ।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः ।

—कालिदास

देव कहैं अपनी अपनी अवलोकन तीरथराज चलो रे ।
देखि मिटै अपराध अगाध, निमज्जत साधु-समाज भलो रे ॥
सोहै सितासित को मिलिबो, 'तुलसी' हुलसै हिय हेरि हलो रे ।
मानों हरे तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे ॥

—तुलसीदास

एक पार्स्व सौं बढ़ति गंग उत्तंग तरंगति ।
इक तैं जमुना आनि मिलति सुख-संग उमंगति ॥
× × × ×
मनहु सितासित चमर ढुरत दुहुँ दिसि तैं आवत ।
तीर्थराज पर हिलत मिलत सुखमा सरसावत ॥
उभय कछारनि बीच बिसद अच्छयबट राजै ।
मरकत मनि कौ अटल छत्र मानौ छबि छाजै ॥

—रत्नाकर

गंगा-सुत भीष्म की प्रतिज्ञा

आजु जो हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ ।
लाजौं दूध जननि गंगा कौ, संतनु-सुत न कहाऊँ ॥
स्यंदन खंडि महारथ खंडौं, कपिधुज सहित डुलाऊँ ।
इती न करौं सपथ मोहिं हरि की, छत्रिय-गतिहि न पाऊँ ॥
पांडव-दल-सनमुख ह्वै धाऊँ, सरिता-रुधिर बहाऊँ ।
'सूरदास' रनभूमि विजय बिनु, जियत न पीठ दिखाऊँ ॥

—सूरदास

× × × ×

सुरसरि की समदर्शिता

समदरसी है नाम तिहारो चाहौ तो पार करौ ।
एक नदिया एक नार कहावत मैलौ नीर भरौ ।
जब दोऊ मिलि 'एक बरन' भौ सुरसरि नाम परौ ।

—सूरदास

निधानं धर्माणां किमपि च विधानं नवमुदां
प्रधानं तीर्थानाममलपरिधानं त्रिजगतः ।
समाधानं बुद्धेरथ खलु तिरोधानमधियां
श्रियामाधानं नः परिहरतु तापं तव वपुः ॥

(गंगालहरी १८,)

माँ, तुम्हारा शरीर सभी धर्मों का निधि है । नये नये आनंद-प्रमोदों का ऐसा विधान है, जिसका वर्णन नहीं हो सकता; तीर्थों में श्रेष्ठतम और तीनों लोकों के पहिनने के लिये एक निर्मल वस्त्र है; साथ ही बुद्धि को संतोष देनेवाला, अज्ञान को दूर करनेवाला और शोभा से संयुक्त है; वह मेरे सारे तापों को हरण करे ।

———

प्रश्नोत्तर

गीता भारतसौरभम्

(गीतानंदजी के विचार)

प्रश्न(२८)--प्राचीन वैदिक सप्त सिंधुओं में गंगा का नाम नहीं है। उस समय सरस्वती ही की महिमा थी। क्या कारण है कि गीताकार ने जाह्नवी को "स्रोतसामस्मि जाह्नवी" कहकर इतना मान दिया।

उत्तर--अर्जुन यह जानना चाहते थे कि--

"कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन् मया॥
विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्॥

गीता अ० १०, श्लो० १७-१८

अर्थात् हे योगेश्वर, मैं किस प्रकार निरंतर चिंतन करता हुआ आपको जानूँ? हे भगवन्, आप किन किन भावों में मेरे द्वारा चिंतन करने योग्य हैं? हे जनार्दन, अपने योग को और अपनी विभूति को फिर भी विस्तारपूर्वक कहिए क्योंकि आपके अमृतमय वचनों को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती।

इस प्रकार अर्जुन के पूछने का कारण यह है कि भगवान् ने दूसरे अध्याय में कहा था कि अंतकाल में **ब्राह्मी स्थिति** में स्थित होना चाहिए। इसी में स्थित होकर मनुष्य ब्रह्मनिर्वाण को प्राप्त करता है। और इसी प्रकार से आठवें अध्याय में कहा है कि—

अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

गीता अ० ८, श्लो० ५

जो पुरुष अंतकाल में मुझे ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूप को पाता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। नहीं तो दूसरे भावों (पदार्थों) के स्मरण करने से मनुष्य उन्हीं उन्हीं भावों को पाता है।

और यह भी कह डाला कि—

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

गीता अ० ८, श्लो० ६

अर्थात् अर्जुन! अंतकाल में यह मनुष्य जिस जिस भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागता है उस भाव से भावित (तद्रूप) होकर उसी उसी भाव को प्राप्त होता है। अंत-समय के दूसरे भावों से हम भावित न हों—केवल भगवान् की ही भावना करें--इसके लिये भगवान् ने हमें बतलाया कि--

"तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्धय च।"

गीता अ० ८, श्लो० ७

अर्थात् हे अर्जुन, इसलिये तुम निरंतर मेरा स्मरण करो और (अपना कर्तव्य) युद्ध भी करते जाओ। यहाँ अर्जुन को ऐसा संदेह उठ सकता था कि हरदम ब्रह्म का चिंतन करना और युद्ध भी करते जाना ये दोनों कैसे हो सकते हैं? वहाँ (युद्ध अर्थात् स्वधर्म-पालन में) सैकड़ों व्यवहार में आनेवाली वस्तुओं का ध्यान करना ही पड़ेगा। जो व्यवहार में लगे हुए हैं उन्हें तो संसार की जितनी चीज़ें हैं, उन सबसे सदा संबंध रखना ही होगा। अर्जुन की यही आशंका दशम अध्याय में विभूति-वर्णन का कारण हुई है।

'कथं विद्यामहं योगिन्' इस श्लोक में अर्जुन की आशंका स्पष्ट है। उनकी आशंका का असल अर्थ यह है कि "व्यावहारिक संबंध तो छूट सकता नहीं इसलिये किस 'योग' में किस 'विभूति' अर्थात् किस वस्तु में किस 'गुण' का ध्यान करूँ, जिससे हे योगिन्, आपके समत्व-रूप योग का मुझे स्मरण रहे। यदि किसी क्षण अचानक काल (मृत्यु) मुझे आकर पकड़ भी ले, तो भी मैं सदा **तद्भाव-भावित**--समत्वभाव-भावित--रहने से आपका ही स्मरण करते करते देह-त्याग करूँ और ब्रह्म-निर्वाण को पा सकूँ। मन की चंचलता के कारण, कौन जाने, किसी दिन मैं नदियों के विषय में ही बातचीत करता रहूँ और उसी क्षण इस जीवन का अंत उपस्थित हो जाय और मुझे इस लोक से बिदा होना पड़े; ऐसी दशा में नदी की चिंता करने के कारण मेरी अधोगति निश्चित है।"

भगवान् ने अर्जुन को इन सारी आशंकाओं को दूर करने के लिये अपने विस्तृत विभूति-योग का वर्णन किया। जब नदियों की बात आई तो आपने कहा—

"स्रोतसामस्मि जाह्नवी"।

अर्थात् जितने जल-स्रोत हैं उनमें जाह्नवी (गंगा) मैं हूँ। स्रोत की गति नीचे की ओर होती है पर जाह्नवी में एक ही समय अधोगति और ऊर्ध्वगति दोनों ही गतियाँ पाई जाती हैं। जह्नु के उदर में जाकर कान से होकर बाहर निकली थीं, इसलिये उनमें ऊर्ध्वगति है और स्रोत का स्वभाव होने के कारण अधोगति है। यदि एक काल में अर्जुन के मन में दोनों ही गतियों की भावना रहेगी, तो उसके वास्ते वहाँ भी ब्राह्मी स्थिति होगी और उसे ब्रह्म-निर्वाण मिलेगा। यही 'जाह्नवी' कहने में भगवान् का तात्पर्य था। क्योंकि—

'निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः।'

गी० अ० ५, श्लो० १६

अर्थात् ब्रह्म समत्व का मूर्ति-रूप और निर्दोष है (इसलिये जिनका मन समता में स्थित है, वे ब्रह्म में ही स्थिर हुए हैं)।

× × ×

एक दूसरा उत्तर यह हो सकता है कि जैसे सब नदियाँ समुद्र से मिलकर अपना नाम-रूप खो देती हैं, वैसे गंगा नहीं खोती। अब तक उस स्थान को 'गंगा-सागर' ही कहते हैं। उसका सागर से संगम हो चुकने पर भी व्यक्तिगत अस्तित्व अक्षुण्ण ही रहा है। यह जो गंगा का योग-कौशल है, वह ब्रह्म-चिंतन के लिये उत्तम आलंबन है। यह भी एक कारण है, जिससे गीताकार ने जाह्नवी को मान दिया।

गंगाजी का उल्लेख ऋग्वेद १०।७५।५ में है। सरस्वती की तटभूमि यज्ञवेदी के लिये उत्तम मानी गई है, अतः वेदों ने उसके माहात्म्य को गाया है।

प्रश्न (२६)—क्या गंगा-स्नान से ज्ञानी को भी कोई लाभ होता है?

उत्तर—यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि दूसरी नदियों की अपेक्षा गंगा के जल में सत्त्वगुण की अधिकता है। अब देखना यह है कि प्रश्नकर्ता का 'ज्ञानी' से क्या तात्पर्य है। यदि उनका अभिप्राय 'कृतकृत्य आत्मरति' से है, तो उसके लिये यह कहना उचित होगा कि कोई लाभ नहीं होता; किंतु यदि आत्मज्ञान का अभ्यास करनेवाले से है, तो उसे लाभ क्यों न होगा? कारण यह है कि गंगाजल में अधिक मात्रा में सत्त्वगुण रहता है और गीता कहती है कि 'सत्त्वात् सञ्जायते ज्ञानम्' अर्थात् सत्त्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है। अतः आत्मज्ञानाभ्यासी के लिये गंगाजल सत्त्व की प्रवृद्धि के द्वारा ज्ञान

का करानेवाला होता है। जो आत्मरति हैं उनके ज्ञान की आग तो पाप-पुण्य दोनों को जला ही डालती है; इसलिये उन्हें कोई फायदा नहीं।

प्रश्न (३०)—गीता के अनुसार ब्राह्मण की जीविका क्या होनी चाहिए?

उत्तर—भगवान् ने जो कुछ कहा है, वह अर्जुन के प्रश्नों के उत्तर रूप में कहा है। अब एक जिज्ञासा होती है कि भगवान् ने गीता अ० ३, श्लो० ३५ में जो "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः" (मरते दम तक **अपने धर्म** में रहना भला है; दूसरे का धर्म भय को देनेवाला है) यह वचन कहा, वह अर्जुन से किस बात के उत्तर में कहा है? इस बात का पता लगाने के लिये हमें गीता के दूसरे अध्याय के प्रारंभ में अर्जुन के वचनों की परीक्षा करनी चाहिए। अर्जुन ने ब्राह्मणों की तरह राज्य से अपनी विरक्ति ही नहीं प्रकट की बल्कि दूसरे अध्याय के पाँचवें श्लोक में उन्हीं लोगों की सी अपनी जीविका की भी इच्छा प्रकट की—

"श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके"।

अर्थात् भिक्षा के अन्न को भी खाना भला समझता हूँ।

यह भिक्षा-वृत्ति ब्राह्मण के लिये तो स्वधर्म है पर क्षत्रिय के लिये परधर्म। जो दूसरे की जीविका थी, उसी को अर्जुन अपनाने को कह रहे थे। उनकी इस परधर्म-प्रियता को देखकर भगवान् ने चेतावनी दी—

"स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।"

क्षत्रिय का स्वभावज कर्म दान देना है, किसी से लेना नहीं।

दानं .... क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।

गी० अ० १८, श्लो० ४३।

इससे सिद्ध होता है कि अर्जुन के लिये 'भैक्ष्य' का 'भोग' 'श्रेय' नहीं था; क्योंकि वह ब्राह्मण का धर्म होने के कारण परधर्म था।

गीता में, एक प्रकार से और देखने पर यह विदित होता है कि ब्राह्मणों के लिये भिक्षा-वृत्ति मानी गई थी। ज्ञान किन किन उपायों से मिलता है, इस पर भगवान् कहते हैं—

"तद्विद्धि प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन, सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥"

गीता अ० ४, श्लो० ३४।

अर्थात् "इसलिये तत्त्व के जाननेवाले ज्ञानी पुरुषों से भली भाँति दंडवत्-प्रणाम तथा **सेवा** और निष्कपट भाव से फिर किए हुए प्रश्न द्वारा उस ज्ञान को जानो। वे मर्म के जाननेवाले ज्ञानी जन तुझे उस ज्ञान का उपदेश करेंगे।" इससे ज्ञान-प्राप्ति के तीन उपायों में एक सेवा भी सिद्ध होती है। अब हमें आगे के श्लोक से यह साफ साफ जाहिर हो जाता है कि ज्ञान के गुरु ब्राह्मण ही हैं—

"ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।"

गी० अ० १८, श्लोक ४२।

(ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता ब्राह्मण के स्वभावज कर्म हैं।)

जब ब्राह्मण सब वर्णों का ज्ञानदाता गुरु ठहरा तो उसे शिष्य की **सेवाओं** को स्वीकार करने का अधिकार है। यद्यपि ब्राह्मण से इतर वर्ण भी ज्ञानी, विज्ञानी, तत्त्वदर्शी हो सकते हैं तो भी ब्राह्मण स्वभावतः इस उच्च भूमिका पर आरूढ़ है। उसके लिये जीविका **'भैक्ष्यम्'** है।

भिक्षा का अन्न पचाना और कालकूट विष पचाना बराबर हैं। अतः ब्राह्मणों को भिक्षा पचा सकने के लिये पाचन-शक्ति को तप द्वारा बढ़ाना चाहिए, यह ध्यान देने की बात है।

अपनी बात

(संपादक-मंडल में से एक)

'स्रोतसामस्मि जाह्नवी'—सरणशील, गति-वालों, में मैं गंगा हूँ। यह भगवान् ने अपनी विभूतियों की गिनती गिनाते समय अर्जुन से कहा था। तब तो गंगा भगवान् की विभूति हुई।

भगवान् ने अर्जुन से कहा था कि समूचे संसार को मैंने ही बनाया है। मेरी ही भावना—मेरी ही इच्छा-शक्ति इस संसार में काम कर रही है। तू इस बात का अनुभव कर। इस समूचे संसार में रहनेवाली और रहकर काम करनेवाली जो मेरी शक्ति है उसको जानकर और अनुभव करके जो व्यक्ति अपना काम करता है वही मुझको अच्छी तरह जानता है। उसी को सच्चा ज्ञानी कहना चाहिए। भगवान् की इस बात को सुनकर अर्जुन ने उनसे पूछा था कि भगवन्, मैं तो आपकी उपासना करना चाहता हूँ। आप अपने को समस्त संसार में व्याप्त बतलाते हैं। आपके इस व्यापक भाव की मैं किस तरह उपासना कर सकता हूँ, यही बात आप मुझको बतलाइए। अर्जुन की बात का उत्तर देने के लिये उन्हें विभूति-योग नाम का दसवाँ अध्याय ही उसे सुनाना पड़ा था।

भगवत्पाद शंकराचार्य ने विभूति का अर्थ विस्तार किया है—विभूतिं विस्तारम्। विभूति-योग के उपसंहार में भगवान् ने कहा है कि—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ॥१०।४१॥

जिस चीज को विभूति और श्री से युक्त तू देखे, समझ ले—वह मेरी शक्ति से ही प्रकाशित है।

विभूति-योग के अध्याय में बहुत कम विभूतियों के नाम गिनाए गए हैं। इतने में ही भगवान् प्रकाशित हो रहे हैं, औरों में नहीं—ऐसी शंका उठने के पूर्व ही भगवान् ने उसका समाधान करने के लिये कहा है कि—

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥१०।४२॥

मेरी विभूति तो बहुत है, कहाँ तक गिनाई जाय और इस गिनाने से लाभ ही क्या? सब का मूल-मंत्र—बस एक बात याद रख कि यह सारा जगत् मेरे एक अंश से प्रकाशित हो रहा है; अथवा इस समस्त जगत् में मैं एक अंश से स्थित हूँ; या इस जगत् में मैंने अपने आपको पूरा पूरा नहीं व्यक्त किया है, मैं जितना व्यक्त हुआ हूँ वह मेरा एक अंश है। वेद में इस एक अंश के लिये 'पादोऽस्य विश्वाभूतानि' एक पाद बताया है और शेष तीन पाद 'त्रिपादस्यामृतं दिवि' इस जगत् से ऊपर—दिवि—अमृत या अव्यक्त के रूप में प्रकट किया है।

विभूति शब्द का अर्थ समझने के लिये ऊपर जितना लिखा गया है उससे अच्छी मदद मिल सकती है। हम सब इस बात को अच्छी तरह जानते हैं, चाहे अनुभव न किया हो कि संसार में भगवान् के अलावा और कोई चीज नहीं है। गीता में भी 'जगदव्यक्तमूर्तिना' द्वारा संसार को भगवान् की मूर्ति माना है। भगवान् की शक्तियाँ अपने अलग अलग रूप बनाकर संसार के रूप में प्रकट हो रही हैं। हर एक चीज में भगवान् अपनी विशेष शक्ति से प्रकट हुए हैं। उनकी यह विशेष शक्ति ही उनकी विभूति है। हर एक में उनकी इस शक्ति को जानना, उसके दर्शन करना—यही उनकी विभूति की उपासना है।

किस चीज में भगवान् की कौन सी शक्ति व्यक्त हुई है, इसके जानने से कोई लाभ नहीं। उपासक को तो इतना जानना ही काफी है कि भगवान् प्रत्येक में व्यक्त हुए हैं। संसार में भगवान् आए हैं और हमारे बीच खेल रहे हैं इतना समझकर और भगवान् के खेल का खिलौना—गीता की भाषा में यंत्र—बनकर रहने से ही साधक का कल्याण होता है।

मनुष्य को साधना की इस सीमा के पास पहुँचने पर ही अभ्युदय और निःश्रेयस् की प्राप्ति का मार्ग मिलता है। इस मार्ग को पाकर अपने जीवन को तथा अपने आचार को अभ्युदय और निःश्रेयस्-प्राप्ति के अनुकूल बनाने की साधना गीता-धर्म की अपनी साधना है। गंगा भगवान् की विभूति है इसलिये गंगा से संबंध रखनेवाली तमाम बातों की जानकारी गीता-धर्म के साधकों के लिये आवश्यक प्रतीत हो रही है। इसलिये गंगा-दशमी के दिन हमने गीता-धर्म का गंगांक निकालने का आयोजन किया है।

गंगा इस पृथ्वी पर हिमालय-शिखर से ज्येष्ठ शुक्ला दशमी के दिन आई हैं। इसलिये इस दशमी का नाम ही गंगा-दशमी हो गया है। यों तो भगवान् के चरण से या ब्रह्मा के कमंडलु से शिवजी के मस्तक पर गंगाजी वैशाख शुक्ला तृतीया को आई हैं, इसी दिन त्रेता का आरंभ हुआ था। भगवान् ने वामनावतार धारण कर इसी दिन अपने तीन पाद से समस्त त्रिभुवन को नापा था। ब्रह्मा के कमंडलु में भी इसी दिन भगवान् विष्णु का यह चरणोदक भरा गया था। यह सब बातें इस एक ही दिन में हो गई थीं।

मैंने ऊपर जो-कुछ लिखा है, सबका आधार पुराण है। पुराणों में आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों भावों का वर्णन है। अपनी इस कथा में भी तीनों भाव भरे हुए हैं। आधिभौतिक शिव कैलास पर्वत पर निवास करते हैं, जिसका एक नाम गंधमादन भी है। भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर उन्होंने इसी स्थान पर स्वर्ग से आनेवाली गंगा को अपनी जटाओं में अक्षय-तृतीया के दिन धारण किया था; और यहीं से गंगा-दशमी के दिन गंगा को भूमि पर बहाया था। आज भी गंगाजी का प्रवाह, जो गंगोत्री से चलता है, कैलास से ही आता है।

आधिदैविक में शिव का नाम **व्योमकेश** है—अर्थात् आकाश ही शिव की जटाएँ हैं। यह आकाश ही ब्रह्मा का कमंडलु है और वहीं से भूमि तक भगवान् **विष्णु का एक पाद** है इसलिये भगवान् विष्णु का पादोदक आकाश में—जो कि शिव की जटा और ब्रह्मा का कमंडलु है—स्थित है। इस पादोदक का ही नाम गंगा है।

अध्यात्म में यही गतिशील चित्शक्ति है जो बराबर सत, रज और तम में उतरती रहती है और परा शक्ति के नाम से विख्यात है।

गंगांक में इन तीनों भावों पर अलग अलग स्वतंत्र रूप से लेख प्रकाशित हो रहे हैं। इसलिये यहाँ उन पर विचार नहीं किया जा रहा है। इसी प्रकार गंगा की उपासना पर भी इस अंक में लेख छपा है।

गंगा के संबंध में हमें एक बात और कहनी है। गीता में गंगा को स्रोत बताया गया है। सभी नदियाँ स्रोत हैं। स्रोत का अर्थ होता है सरणशील या गतिमान्। आकाश में जल है, इस जल की सर्वतोमुखी गति है। यही जल जब पृथिवी पर आता है तब पंचभूत से मिलकर अपनी किसी एक ही गति को व्यक्त कर पाता है।

अपनी अपनी व्यक्त गतियों के आधार पर ही उनके नाम रखे हुए हैं।

वेद में 'सप्तसिन्धवः' का नाम आया है। इस स्थान पर इस आकाशीय जल की सात गतियाँ बतलाई गई हैं। यहाँ पर 'सिन्धवः' का अर्थ सिंध नदी नहीं है। निरुक्तकार ने 'स्रवणात् सिन्धुः' की व्युत्पत्ति से सरणशील या गतिमान् जल को सिंधु माना है। जल में यह गति प्राण से पैदा होती है; और आकाशीय जल स्वयं है भी प्राणरूप ही। प्राण सात गतिवाला है इसलिये आकाशीय जल भी सात गतिवाला होता है। प्राण की ये सातों गतियाँ जैसी की तैसी गंगा में पाई जाती हैं, इसलिये गंगाजल का गुण भी वही है जो आकाशीय जल का है। हाँ, कहीं कहीं इस गुण में थोड़ी बहुत कमी आ गई है। इसका कारण देश और काल भेद के अलावा और कुछ नहीं है। आकाशीय प्राण के गुणों का वर्णन और उसके स्वरूप का परिचय एक लेखक महोदय ने अपने एक लेख में कराया है जो इस अंक में छपा है।

जो जल गंगा में है, वही सूक्ष्म रूप से आकाश में है। और उसी का अंश आकाश से अन्य दूसरी नदियों में आया है! इस दृष्टि से सब नदियों में गंगा ही मौजूद हैं। भगवान् को अपनी विभूतियों द्वारा अर्जुन को यही बात बतलानी थी। अर्थात् जिस तरह सब नदियों में गंगा का जल है उसी प्रकार चराचर जगत् में—जड़-चेतन प्राणियों में—मैं मौजूद हूँ। गंगा भी मैं ही हूँ। मैं सब तरफ हूँ, और वह सब कुछ हूँ जिसे तुम अच्छा या बुरा कहते हो—सदसच्चाहमर्जुन। भगवान् गंगा किस प्रकार हैं इसकी भी चर्चा गंगांक में आ चुकी है।

धन्यवाद

गंगा से संबंध रखनेवाली उन सभी बातों को—जिनका हमारी जीवन-साधना से संबंध है, भगवान् की उपासना से संबंध है—इस थोड़े से समय में हमने इस अंक में देने का प्रयत्न किया है। हमारे सहयोगियों ने—मित्रों ने—हमें पर्याप्त सहायता दी है। यदि वे अपना सहयोग न देते तो इतनी जल्दी में हम ऐसा अंक न निकाल सकते। इसलिये हम उनके आभारी हैं।

गंगांक में स्व० भारतेंदुजी की गंगा-संबंधी एक कविता, उन्हीं की लिपि में, प्रकाशित हो रही है। वह हमें भारतेंदुजी के पौत्र डा० मोतीचंदजी, एम० ए० के सौजन्य से प्राप्त हुई है। यह कविता अभी तक अप्रकाशित ही रही, इसलिये साहित्य-जगत् के लिये एक नई चीज है। हमने जो मूल का ब्लाक बनवाकर पत्र में छापा है उससे असल का दर्शन तो मिलेगा ही; उसके द्वारा बहुत सी बातों के ऊपर प्रकाश भी पड़ेगा। अलग से प्रकाशित करने का अभिप्राय यह रहा है कि सर्वसाधारण भली भाँति पढ़ एवं समझ सकें' डाक्टर साहब ने इस अमूल्य निधि को हमें प्रकाशनार्थ देकर बड़ी कृपा की है। इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

गंगा का सुंदर चित्र हमें श्रद्धेय राय कृष्णदासजी की पूजनीया माताजी की कृपा से प्राप्त हुआ है। इस चित्र को वे पूजागृह में रखती हैं और ध्यान करती हैं। वही चित्र गीता-धर्म में आया है। अब हम और हमारे सभी पाठक उसे अपने पूजागृहों में रख सकेंगे। जो पाठक चाहें वे इसी चित्र का तिरंगा रूप भी हमारे कार्यालय से प्राप्त कर सकते हैं।

इस गंगांक में गंगा के स्वरूप का दिग्दर्शनमात्र कराया गया है। सच्चा दर्शन तो उपासना द्वारा ही होता है।

तीन गंगांक

गीता-धर्म का यह महत्त्वपूर्ण गंगांक निकल रहा है। इसमें गंगा का पूरा वर्णन नहीं है, गंगा की एक झलक मात्र है। आज से पूर्व गंगा पत्रिका का एक गंगांक निकल चुका है और शीघ्र ही दो-चार दिनों में गीता-धर्म प्रेस से ही छपनेवाली महाविद्या नामक पत्रिका का गंगांक निकलनेवाला है।

गीताधर्म का परिशिष्ट

गंगा का अंक तो बीते युग की चीज है। उसकी चर्चा हम न करेंगे पर महाविद्या का विशेषांक हमारे गीता-धर्म का परिशिष्ट ही होगा। हमारे पास बड़ी सुंदर सामग्री, बड़े सुंदर लेख, कविता, चित्र आदि आ गए हैं। हमने गीता-धर्म को तेरह फार्म तक बढ़ा दिया। सामान्य अंक के ड्योढ़े से भी अधिक कर दिया तो भी वह सामग्री भंडार में समा न सकी। अतः हमारी समिति ने महाविद्या के ज्येष्ठवाले अंक को भी गंगांक बना दिया। जो पाठक गंगा के प्रेमी हों, वे अवश्य महाविद्या की इस झाँकी का दर्शन करें। महाविद्या हमारे प्रेस से भी मिल सकती है।

× × × ×

माँ गंगा की कथा इतनी बड़ी है कि अब हमें अनुभव हो रहा है कि उस संबंध में न जाने कितने अंक निकल सकते हैं।

संपादकीय

गंगा और गीताधर्म

गंगा और गीता में कोई भी भेद नहीं। एक जलमय है दूसरी वाङ्मय। हैं दोनों उसी योग की विभूतियाँ। गंगा को 'त्रिनेत्राम्' कहा है। तीन नेत्र हैं—सूर्य, चंद्र और अग्नि। सूर्य के कर्म का प्रतिनिधि और प्रवर्तक ऋग्वेद, गीता आदि सभी ने माना है, चंद्र सौम्यता और भक्ति के प्रतीक हैं, अग्नि ज्ञान का प्रतिरूप है। इसी ज्ञाननेत्र से शिव ने काम को भस्म किया था। गीता के समान ही गंगा में भी इस प्रकार कर्म, भक्ति और ज्ञान का योग रहता है। तो भी जिस प्रकार अर्जुनवाली भगवद्गीता का लक्ष्य कर्मयोग है उसी प्रकार हमारी पृथिवी की भागीरथी गंगा का अभीष्ट कर्मयोग ही है। त्रिवेणी से भी यही अर्थ झलकता है। वहाँ ज्ञान की सरस्वती और भक्ति की यमुना आकर मिलती हैं; किससे? कर्म की गंगा से। इसी ज्ञान, भक्ति और कर्म की योग-त्रिवेणी में स्नान करके लोग योगी हो जाते हैं अतः गंगा और गीता **दोनों का धर्म** वही एक परंपरा-प्राप्त **योग** है।

इसीसे गीता-धर्म-मंडल ने अपने स्वाध्याय-क्रम में अब की बार गंगा को रखा है। पहले हमने गीता से प्रवेश किया था, २ कुंभांक में अपनी पूर्णता का विचार किया, त्रिवेणी-तट पर खड़े होकर दिगंबर योगियों के मेले पर विचार किया, ३ तब योग और यज्ञ की ऋतु वसंत की ओर हम बढ़े। ४ वहाँ से हमने यज्ञ की सामग्री जुटाई। ५ यज्ञ की त्रेताग्नि से मर्यादा-पुरुषोत्तम राम का जन्म हुआ; उनकी आराधना की; ६ आदर्श कर्म की संस्कृति का परिपाक वेदांत के ज्ञान में होता है अतः छठवें मास के क्रम में हमने योगिराज शंकर तथा आचार्य शंकर का अध्ययन किया। अब इस सातवें मास में गंगा की उपासना प्रारंभ की है।

विषयसूची देखने से हमारे स्वाध्याय का उद्देश्य स्पष्ट हो जावेगा। एक भक्त की प्रार्थना से मंगलाचरण करके हम ध्यान करते हैं; फिर स्तुति के अनंतर व्यासजी गंगा की भावभरी कथा कहते हैं और स्वामीजी गंगा की त्रिविध पूजा का सविस्तर वर्णन करते हैं। इन दोनों ही प्रवचनों में गंगा की आधिदैविक, आध्यात्मिक तथा आधि-

भौतिक व्याख्या हुई है और गीतावाले योग तथा श्रद्धा की मीमांसा हुई है। इसके बाद पूर्ण योगी अरविंद का "भगवद्गंगा का अवतरण" वाला लेख, अन्य कई योग, विज्ञान संबंधी निबंध और साहित्यिक लेख भी दिए गए हैं। **नवनीत** के रूप में साधक भक्तों की सरस उक्तियाँ भी दी गई हैं। (भारतेंदु और रहीम की जो रचनाएँ दी हुई हैं वे तो हिंदी-संसार में पहली बार ही प्रकाशित हो रही हैं।) इतना करने में बड़ा श्रम हुआ, और पत्रिका की काया भी ड्योढ़े से कई पृष्ठ अधिक बढ़ा देनी पड़ी है तो भी हमें अभी ऐसा लगता है कि गंगा का संतोषजनक स्वाध्याय न हो सका। अनेक चित्र और लेख हमारे पास लिखे पड़े हैं जैसे १—ऋग्वेद-काल में गंगा, २—गंगा की उपासना, ३—गंगा और व्यास, ४—गंगा के घाट, ५—गंगा और नर्मदा, ६—काशी की गंगा, ७—सप्तसिंधु और गंगा, ८—उर्दू-साहित्य में गंगा, ९—गंगा के छः प्रयाग, १०—गंगा का परिवार, ११—गंगा के वीर पुत्र, १२—गंगा माता, १३—गंगा और श्रद्धा।

पद्माकर, रत्नाकर आदि की गंगा-आराधना पर पृथक् प्रबंध आदि के अतिरिक्त संस्कृत, हिंदी और गुजराती में लिखे स्तोत्र, कवित्त, पद्य आदि बहुत सी सामग्री है। वाल्मीकि, शंकर, जयदेव, चिदंबरानंद सरस्वती आदि के स्तोत्रों का अध्ययन ही एक अलग चीज हो जाती पर यह सब उपासकों और पाठकों के लिये निर्देश मात्र ही रहेगा। हमें तो मास भर में और सीमा के भीतर ही स्वाध्याय करना पड़ता है।

डा० मोतीचंद और श्री राय कृष्णदासजी तो हमारे स्वाध्याय-मंडल के सहायकों में हैं ही। उनका तो हमारे ऊपर सदा का आभार है।

गंगा पर ग्राम-गीत

मातु गंगा लागि भगीरथ बेहाल।
कोई नीपे अगुआ त कोई पछुआर ॥
भगीरथ नीपे छथ शिव के दुआर ॥ १ ॥

कोई तोड़े फूल कोई बेलपत्र।
भगीरथ तोड़ैं छथ शिव के दुआर ॥ २ ॥

कोई माँगे अन-धन कोई धेनु गाय।
भगीरथ माँगै छथि गंगाजी के धार ॥ ३ ॥

आगु आगु भगीरथ भागल जाथि।
पिछु पिछु सुरसरि पसरलि जाथि ॥ ४ ॥

गंगा माता के लिये भगीरथ विकल हैं। कोई अपना अगवार (घर के आगे का भाग) लीप रहा है, कोई पिछवाड़ा लीप रहा है। पर भगीरथ तो शिव का द्वार लीप रहे हैं ॥ १ ॥

कोई फूल तोड़ रहा है, कोई बेलपत्र तोड़ रहा है। पर भगीरथ शिव का द्वार तोड़ रहे हैं ॥ २ ॥

कोई अन्न-धन माँग रहा है, कोई कामधेनु गाय माँग रहा है। पर भगीरथ गंगाजी की धारा माँग रहे हैं ॥३॥

आगे आगे भगीरथ भागे जा रहे हैं। पीछे पीछे गंगाजी फैलती जा रही हैं।

(भारत के प्रसिद्ध शहरों में गीता-धर्म कार्यालय की शाखाएँ)

गीता-धर्म मिलने के पते

१ **काशी**, (क) गीता-धर्म कार्यालय, साक्षीविनायक। (ख) गीता-धर्म कार्यालय, शिवाला (ग) विद्यामंदिर कार्यालय, पांडेघाट, (घ) श्री शिवनारायण बी. ए., अर्दली बाजार

२ **प्रयाग**, पं वृषकेतु उपाध्याय, जार्जटाउन ३३ (गिरधारीलाल का बंगला)

३ **बंबई**, श्रीनगीनदास फूलचंद चिनाई, चिनाई बिल्डिंग, मसजिद बंदररोड।

४ **कलकत्ता**, पं० भानुदत्त व्यास, आतंकनिग्रह औषधालय बाउबाजार स्ट्रीट २१४ कलकत्ता।

५ **अहमदाबाद**, सेठ बद्रीप्रसाद, कामनाथ महादेव, रायपुर दरवाजा बाहर।

६ **बड़ोदा**, मणिभाई जशभाई, कंसारा की बाड़ी, मांडवी रोड।

७ **इन्दौर**, हीरालाल पन्नालाल, न्यू क्लाथ मारकेट।

८ **इन्दौर**, श्रीकमलाशंकरजी पंड्या M. B. E. H. प्राइवेट मेडिकल प्रेक्टीशनर पीपली बाजार।

९ **ग्वालिअर**, बाबू उमराव बिहारी, अंबानिवास नौमहला।

१० **नागपूर**, लाला नंदलाल मैकूलाल, सीतावर्डी (किराना मर्चैंट)।

११ **जबलपूर**, सेठ रामकुमार, लार्डगंज।

१२ **जबलपूर**, लाला रामचन्द्र, रईस व ठेकेदार मुकादमगंज।

१३ **गाडरवारा**, आचारीजी का मन्दिर।

१४ **नरकाटिथागंज (चंपारन)**, पंडित राधावल्लभ मिश्र, अध्यापक जानकी संस्कृत विद्यालय।

१५ **जमशेदपूर**, एम. एल. तिवारी, तिवारी बेचर एन्ड कं० लिमिटेड।

१६ **लाहौर**, सेठ शालिग्राम नरसिंहदासजी, लाहौर कैन्टुन्मेन्ट।

१७ **फरुक्खाबाद**, बाबू काशीप्रसादजी सक्सेना, मु० लोहाई।

१८ **डभोई**, सेठ चुन्नीलाल गिरधरलाल जीनवाला।

१९ **सनेखड़ा**, वक्षी जेठालाल केशवलालजी बजारमां (बड़ौदा)

२० **आनंद**, पटेल गोरधनभाई शामलदासजी मास्तर।

२१ **उदयपूर**, श्रीकृष्णानन्दजी, विद्याभवन (राजपूताना)

२२ **उज्जैन**, पं० दुर्गाप्रसादजी तिवारी, लेफ्टीनेन्ट, माधवनगर।

२३ **सिहोरा,** श्री दयाप्रसाद वर्मा, लोकल बोर्ड सेक्रेटरी-सिहोरा रोड।

२४ **गाजीपूर,** श्रीशिवमूर्ति पांडेयजी, भगवती औषधालय धानापूर।

२५ **मुल्तान,** सनातनधर्म सभा मुल्तान, (पंजाब)

२६ **खंडवा,** सिविलसर्जन श्रीनर्मदाप्रसादजी।

२७ **आगरा,** श्रीयुत राधेचरनजी रिटायर्ड डिप्युटी कलक्टर, सिव्हिल लाइन।

२८ **रावलपिण्डी,** श्रीमान् हेडमास्टर साहब, सनातनधर्म हाईस्कूल।

२९ **कानपुर,** श्रीमान् बाबू गंगानारायण खरे, म्युनिसिपल हाईस्कूल, नवाबगंज।

३० **दिल्ली,** श्रीमान् पं० गोविन्दचन्द्र पांडेय बी० ए०, सेक्रेटरी आल इण्डिया ब्राह्मणमहासभा तथा वर्णाश्रम स्वराज्य संघ, २३०३ चरखे वालान स्ट्रीट कूचा बीबीगौहर।

३१ **सिन्ध,** मेसर्स बेरहामल नन्द्रामजी, न्यू अंडरपीस गुड्समर्चेण्ट, शिकारपुर।

३२ **हैदराबाद,** श्रीमान् गोपीकिशनजी C/o सेठ सीतारामजी रामगोपालजी माता नी नगारखाना, बेगमबाजार हैदराबाद (दक्षिण)

३३ **पादरा,** श्रीमान् जेठालाल मनसुखरामजी, कापड़ नी दुकान, बजारमां।

३४ **पेटलाद,** श्रीमान् काछिया मोतीभाई जेठालाल, एजेण्ट पेटलाद बुक्सेलर ठे० वड़कुवां पासे।

३५ **रतलाम,** श्रीमान् माणिकलाल भूराभाई, C/o मगनलाल गिरिधरलाल बिल्डिंग पञ्चकण्डील।

३६ **गोधरा,** शाह माणेकलाल वृन्दावनदास, ग्राम-वीरपुर ना सरवैयर।

३७ **आजमगढ़,** पं० श्रीधर उपाध्याय, कुर्मीटोला।

३८ **हरिद्वार,** मैनेजर, महारानी अहिल्याबाई-बाड़ा।

३९ **जैपुर,** श्रीमान् लक्ष्मीशरण गंगाशरणजी माथुर, जड़ियो का रास्ता, जैपुर सिटी।

४० **भुज, (कच्छ),** श्रीमान् महेता यशश्चन्द्रभाई मोतीभाई, ज्वाइन्ट प्राइवेट सेक्रेटरी।

४१ **आफ्रीका,** Gordhan Bhai Soma Bhai Patel The Indian School, Saba Saba P. O. MARAGUA, (Kenya Colony) British East Africa

42 Fiji (Island)—S. B. Patel Bar-at-Law, Lauutka

43 Mombasa—Purashotam D. master P. 274 British East Africa

44 Java—Natwarlal Govardhan das Parikh Messers Chandulal & Co., 4, Gang Gipo, Survaya.

45 Japan—Messers R. C. Patel & Co., P. N. 339 Kove.

४६ **बलिया,** पं० श्यामसुंदरजी उपाध्याय B. A. L. L. B., सेक्रेटरी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड।

४७ **लहेरियासराय,** श्रीविश्वनाथ नारायण सिंह, B. A. L. L. B. (दरभंगा)।

४८ **पटना,** वैद्यरत्न पं० ब्रजविहारी चतुर्वेदी, रत्नाकर औषधालय भिखना पहाड़ी, बाँकीपूर।

४९ **महादेवपारा,** वसिष्ठनारायण त्रिपाठी, मु० महादेवपारा पो० मेहनगर, आजमगढ़।

५० **हटा,** श्रीहरगोविंद प्रसादजी, सिव्हिल क्लर्क मु० हटा, सागर (सी. पी.)

५१ **प्रतापगढ़,** पं० रविदत्त पांडेय B. A, L. T., असिस्टेण्ट मास्टर अजीत सोमवंशी हाईस्कूल प्रतापगढ़ सिटी (अवध)

५२ **अमृतसर,** गोस्वामी जीवनदास, महामंत्री-पंजाब प्रान्तीय वर्णाश्रम स्वराज्य संघ, दुरगियाना, अमृतसर (पंजाब)

५३ **करांची,** रतीलाल नरवेजी, कोटक, प्रागजी दामजी बिल्डिंग प्रिंसेस स्ट्रीट, नन्दकुवादा।

सूचना

इन ५३ स्थानों में गीता के प्रेमी और निष्काम सज्जनों ने ऐसी व्यवस्था कर दी है कि वहाँ से जो कोई चाहे गीता-धर्म प्राप्त कर सकता है। कलकत्ता, अहमदाबाद, बड़ौदा, पेटलाद, डभोई, सनखेड़ा, इंदौर और जबलपूर में तो ऐसा प्रबंध हो गया है कि वहीं के स्थानीय लोग ग्राहकों के घर गीता-धर्म पहुँचा देंगे। जिन लोगों को गीता-धर्म किसी कारण से अथवा भूल से न मिले वे अपने नगर के कार्यालय से पता लगाकर तब हमारे यहाँ (काशी) लिखें।

जिन नगरों में गीता-धर्म ग्राहकों के घर पर पहुँचाने का प्रबंध है उनके **नाम और पते**—

१. **नागपूर,** लाला नंदलाल मैकूलाल, सीतावर्डी (किराना मर्चेंट)।

२. **अहमदाबाद,** श्रीविद्यानंद सत्संग मण्डल, रायपुर दरवाजा बाहर।

३. **बड़ोदा,** गीताधर्म सत्संग मंडल, कंसारा नी वाडी, मांडवी पासे।

४. **इंदौर,** डाक्टर श्रीकमलाशंकरजी पंड्या M. B. E. H. प्राइवेट मेडिकल प्रेक्टीशनर पीपली बजार।

५. **जबलपूर,** लाला रामचंद्रजी रईस, मुकादम गंज।

गीता-धर्म के नियम

१—गीता-धर्म प्रतिमास चांद्रमास शुक्ल पक्ष की एकादशी से पूर्णिमा के भीतर प्रकाशित होता है।

२—इसका वार्षिक मूल्य ४) मात्र है। इसका वर्ष मार्गशीर्ष से कार्तिक तक समझा जाता है। प्रति संख्या का मूल्य।=) है। नमूने के लिये ।=) आने का टिकट भेजना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ६।।) और प्रति संख्या का ।≡) है।

३—अपना नाम और पूरा पता साफ साफ लिखकर भेजना चाहिए, जिसमें पत्र के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४—जिन सज्जनों को किसी मास का गीता-धर्म न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछना चाहिए। पता न लगने पर डाकघर के उत्तर के साथ जिस महीने की संख्या न मिली हो उसके अगले महीने की कृष्ण एकादशी तक पत्र लिखें। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर विचार करना कठिन होगा। गीता-धर्म यहाँ से दो बार अच्छी तरह जाँचकर रवाना किया जाता है।

५—पत्र के उत्तर के लिये सदा **जवाबी कार्ड अथवा टिकट** आना चाहिए, अन्यथा हम उत्तर देने में असमर्थ हैं।

६—यदि एक ही दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो अपने डाकखाने से उसका प्रबंध करा लेना चाहिए। यदि सदा अथवा अधिक काल के लिये बदलना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिए।

७—लेख, कविता, समालोचना के लिये पुस्तकें (२ प्रति से कम नहीं) और बदले के पत्र "संपादक 'गीता-धर्म', साक्षीविनायक, काशी" के पते से भेजना चाहिए। मूल्य तथा प्रबंध संबंधी पत्र "मैनेजर 'गीता-धर्म', साक्षीविनायक, काशी" के पते से आना चाहिए।

८—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने वा न करने का तथा उसे लौटाने वा न लौटाने का अधिकार संपादक को होगा। लेखों के घटाने बढ़ाने का अधिकार भी संपादक को है।

९—लेख, कविता एवं कहानियों का सरल भाषा में धर्म के अनुकूल तथा एक ही पृष्ठ पर स्पष्ट लिखित होना आवश्यक है। अधूरे वा धर्म-विरुद्ध लेख नहीं छापे जायँगे। जिन लेखों में चित्र रहेंगे वे तब तक न छापे जायँगे जब तक लेखक उनके मिलने का प्रबंध न कर देंगे।

गीता-धर्म के विज्ञापन-छपाई के रेट

	प्रतिमास
कवर का तीसरा पृष्ठ	३०) ,,
,, ,, ,, एक कालम	१६) ,,
,, ,, चौथा पृष्ठ	४०) ,,
,, ,, ,, ,, एक कालम	२१) ,,
कवर के द्वितीय पृष्ठ के सामनेवाला पृष्ठ	२५) ,,
,, ,, ,, एक कालम	१५) ,,
पाठ्य-विषय की समाप्ति के सामनेवाला पृष्ठ	२५) ,,
,, ,, सामने एक कालम	१५) ,,

१—हमारे यहाँ अश्लील, कुरुचिपूर्ण अथवा **अधार्मिक** विज्ञापन नहीं छापे जायँगे। इसका निर्णय समिति के द्वारा होता है।

२—विज्ञापन छपाई के रुपये पहले ही आ जाने चाहिएँ। नियमों की जानकारी के लिये पत्र लिखें।

मैनेजर 'गीता-धर्म',
साक्षीविनायक, काशी।

Gita Dharma—Registered No. A 2843

गीता-धर्म कहाँ मिलता है ?

कलकत्ता, बंबई, काशी, प्रयाग, अहमदाबाद, बड़ोदा, इंदौर, जबलपुर, नागपुर, गाडरवारा, नरकटियागंज, आजमगढ़, दिल्ली आदि प्रसिद्ध स्थानों में 'गीता-धर्म' के प्रेमियों ने ऐसा प्रबंध कर दिया है कि जो 'गीता-धर्म' लेना चाहें उन्हें मिल सकता है। पूरे पते भीतर देखिए।

विद्यानंद-ग्रंथमाला की

अनमोल पुस्तकें

शीघ्र ही प्रकाशित होंगी।

१—**श्रीमद्भगवद्गीता**—[नित्य पाठ के लिये]

२—**विद्यानंद भजनावली**—[इसमें नित्य-नियमों के उपदेश भी सम्मिलित रहेंगे।]

३—**श्रीमद्भगवद्गीता**—[सरल, सुबोध एवं सुंदर अनुवाद सहित। गीता के इस संस्करण को प्रत्येक दृष्टि से पाठकों के लिये उपयोगी बनाया जा रहा है। अभी से ग्राहक होनेवालों अथवा धर्मार्थ वितरण करानेवालों को विशेष सुविधा दी जायगी।]

४—**शब्दशक्ति**—[प्रकाशित हो रही है] हिंदी में इस विषय का प्रथम और अद्वितीय ग्रंथ है।

५—**कुंभ**—[प्रकाशित हो रही है]

गीता-धर्म में विज्ञापन

भी लिए जायँगे पर एक विशेष नीति के अनुसार। उस नीति का निश्चय एक समिति करती है। अतः सभी विज्ञापन न लिए जायँगे। रेट और अन्य नियम मैनेजर से पूछिए।

मैनेजर—
'गीता-धर्म' कार्यालय,
साक्षी-विनायक,
काशी

Printed by A. Bose at the Indian Press, Ltd., Benares.
Edited & Published by P. N. Acharya at the Gitadharma Karyalaya, Sakshi Vinayak, Benares.

गीताधर्म

कृष्ण चरित—

१. जन्म का [illegible];

२. वसुदेवजी बालक कृष्ण को लेकर यमुना पार कर रहे हैं;

३. योगिनी (अर्थात् शक्ति) और कंस;

४. यमलार्जुनों का उद्धार;

५. बालकृष्ण का मिट्टी खाना और यशोदा मैया को विराट् रूपदर्शन;

६. गो, गोप और गोपाल वन में;

७. मुरलीधर की वंशीध्वनि (शरद्पूर्णिमा को रास की तैयारी);

८. गोवर्द्धनधारण (और इन्द्र);

९. चीरहरणलीला की आध्यात्मिक कथा;

१०. कालियमर्दन (नागनथैया);

११. महाभारत के मैदान—कुरुक्षेत्र, में अर्जुन को गीता का उपदेश।

इतनी झाँकियों में भागवत और गीता की सभी मुख्य कृष्णलीलाएँ आ जाती हैं। जन्म (१) और युद्ध (११) के रूप का ध्यान करना चाहिए।

१२. गीताधर्म कृष्ण का ही रूप है।

शङ्ख (पाञ्चजन्य)
चक्र (सुदर्शन)
गदा (कौमोदिकी)
पद्म (लीला)

काशी

कृष्णचरित=योग=गीताधर्म

बाल मुकुन्द

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम्।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि॥

मुकुन्दं=रत्नधातमं (ऋ० १।१।१)
मुकु=१. रत्न; २. मुक्ति.

वर्ष १ सङ्ख्या ९

[संस्थापक—स्वामी विद्यानन्द] [सम्पादक—पद्मनारायण आचार्य एम० ए०

भजन और मनन

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव ॥

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढ़मते।

× × ×

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयोभूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढ़मते।

× × ×

मृद्वीका रसिता सिता समशिता स्फीतं निपीतं पयः।
स्वर्यातेन सुधाप्ययापि कतिधा रम्भाधरः खण्डितः ॥
सत्यं ब्रूहि मदीय जीव भवता भूयो भवे भ्राम्यता।
कृष्णेत्यक्षरयोरयं मधुरिमोद्गारः क्वचिल्लक्षितः ॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढ़मते।

× × ×

पातालं व्रज याहि वा सुरपुरीमारोह मेरोः शिरः
पारावारपरम्परास्तर तथाप्याशा न शान्तास्तव।
आधिव्याधिजरापराहत यदि क्षेमं निजं वाञ्छसि
श्रीकृष्णेति रसायनं रसय रे शून्यैः किमन्यैः श्रमैः ॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढ़मते।

× × ×

धन-यौवन यों जायँगे, जैसे उड़त कपूर।
मन मूरख गोविन्द भज, क्यों चाटत जग धूर ॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढ़मते।

[व्याख्या और अर्थ भीतर (सूची में देखकर) पढ़िए।]

वार्षिक मूल्य
भारत में ४) भारत के बाहर ६॥)

साधारण प्रति
भारत में ।≈) विदेश में ॥≈)

ગુજરાતી અને હિન્દી ટાઇપ

આઠ મહિનાથી અમો નાગરી (હિંદી) ટાઇપમાં ગુજરાતી લેખ આપતા આવ્યા છીએ. અમારા ગુજરાતી-વાંચકો તે પ્રેમથી વાંચે છે. હવેથી અમે કેટલાક ગુજરાતી લેખો ગુજરાતી ટાઇપમાં આપીશું. હિંદીપાઠક વર્ગને પણ ગુજરાતી અક્ષરોનો પરિચય થવો ઇષ્ટ છે. નાગરી (હિંદી) લીપીને રાષ્ટ્રીય અને સાર્વદેશિક કરવાને સારૂ અમારે પણ બીજી પ્રાંતિક લીપીઓ શિખવાનું કષ્ટ સહર્ષ વેઠી લેવું જોઇએ.

ગીતાધર્મના ગુજરાતી ભક્તો ને સારૂ, હવે સુંદર સુંદર લેખો ગુજરાતી ટાઇપમાં આવશે, તેથી તેમને વધારે સરળતા થશે.

પુરૂષોત્તમ માસમાં વિદ્યાનન્દ વિનોદ

ગીતાધર્મના પાઠકોને આવતા પુરુષોત્તમ માસમાં 'વિદ્યાનંદ વિનોદ' નું રસપાન મળશે.

× × × ×

સ્વામીજીએ હરિદ્વારમાં ગંગાને કિનારે કેટલીક વિનોદની વાતો લખી છે. તે ઘણી રસભરી છે—સ્વામીજીના હૃદયના ઉદ્‌ગાર છે. સ્વામીજીના હૃદયનો રસ છે. "વિનોદ" ને વાંચીને હૃદયનો ભાર હલકો કરો—આત્મવિનોદ કરો. "काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्".

× × × ×

ગીતાધર્મના ગ્રાહકોને આ સાહિત્યિક, સચિત્ર, રસભરેલો ગ્રંથ વિના મૂલ્યે મળશે. તે ગુજરાતી અને હિંદી બંને ભાષા તથા લીપી માં છાપવાનો પ્રબંધ થઈ ગએલો છે.

બીજાને સારૂ મૂલ્ય માત્ર આઠ આના છે.

સમ્પાદકજી અધિક અસ્વસ્થ થયાના કારણે કૃષ્ણાંક નિકળતાં થોડો વિલંબ થયો છે. ગીતાધર્મ તો સ્વાધ્યાયનું પત્ર છે. તેમાં વાર થવાથી પણ વિશેષ હાની નથી. આશા છે કે અમારી વિવશતાનો વિચાર કરી આપ ક્ષમા કરશો. કૃષ્ણાંક કેટલો વિશાળ છે, તેનો પણ વિચાર કરશો.

પૂજ્યપાદ શ્રી સ્વામીજી મહારાજની આજ્ઞા છે કે આવતા પુરૂષોત્તમ માસમાં તેઓશ્રી તરફ થી ગીતાધર્મના પ્રેમી ગ્રાહકો તથા સંરક્ષકો ને આ સાહિત્યિક, સચિત્ર, રસ પૂર્ણ ગ્રન્થ ને મૂલ્ય વગર ઉપહાર અને આશીર્વાદરૂપે આપવામાં આવે.

અમદાવાદ, વડોદરા અને નાગપુર માં આ પુસ્તક અમારી શાખાઓ તરફથી અર્પણ કરવામાં આવશે. પરન્તુ બીજા સ્થાનોમાં પોષ્ટ દ્વારા મોકલવામાં આવશે. આ ગ્રન્થની કીમત બીજાઓ પાસેથી આઠ આના લેવામાં આવશે. જે ગીતાધર્મના ગ્રાહક અથવા સંરક્ષક છે અને ઉપરની શાખાઓથી પુસ્તક પ્રાપ્ત નથી કરી શકતા, તેઓએ પોટેજ સારૂ દોઢ અનાની ટિકિટો મોકલી આપવી. જેથી તઓને પુસ્તક મોકલી આપવામાં આવેશે.

આ પુસ્તક હિન્દી તથા ગુજરાતી બન્ને ભાષામાં છપાશે, મોટે પત્રમાં સાફ સાફ લખ કે હિન્દીમાં જોઇએ કે ગુજરાતીમાં અથવા બન્નેમાં ? પુસ્તક મુદ્રિત થઈ બહાર પડવાની એકદમ તૈયારીમાંજ છે.

મૈનેજર

ગીતાધર્મ

સાક્ષીવિનાયક, કાશી

गुजराती और हिन्दी टाइप

आठ मास से हम नागरी (हिन्दी) टाइप में गुजराती लेख देते आए हैं। हमारे गुजराती पाठक बड़े प्रेम से पढ़ते आए हैं। अब हम कुछ गुजराती लेख गुजराती टाइप में दे रहे हैं। हिन्दीवालों को गुजराती अक्षरों से भी परिचित होना चाहिए, नागरी (हिन्दी) लिपि को राष्ट्रीय और सार्वदेशिक बनाने के लिये हमें भी दूसरी लिपियाँ सीखने का कष्ट सहर्ष उठाना चाहिए।

गीताधर्म के गुजराती भक्तों के लिये यह विशेष सुविधा होगी कि अब सुन्दर सुन्दर लेख गुजराती टाइप में भी आयँगे।

पुरुषोत्तममास में

विद्यानन्द विनोद

गीताधर्म के पाठकों को आनेवाले पुरुषोत्तममास में विद्यानन्द विनोद का रस पीने को मिलेगा।

❀ ❀ ❀ ❀

स्वामीजी ने हरिद्वार में गङ्गा के किनारे कुछ विनोद की बातें लिखीं। वे बड़ी रसभरी हैं—स्वामीजी के हृदय के उद्गार हैं। स्वामीजी का हृदयरस ही समझिए। 'विनोद' को पढ़कर अपना जी हलका कीजिए—आत्मविनोद कीजिए। काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।

❀ ❀ ❀ ❀

गीताधर्म के ग्राहकों को यह साहित्यिक, सचित्र, रसभरा ग्रन्थ मुफ्त मिलेगा। यह गुजराती और हिन्दी दोनों में छप रहा है।

दूसरों के लिये मूल्य आठ आने मात्र।

—मैनेजर 'गीताधर्म', काशी

गीताधर्म

गीता की व्याख्या है, यह कर्मयोग का पाठ पढ़ाता है—जीवन की साधना सिखाता है।

समस्त संसार में अनोखा आध्यात्मिक, धार्मिक और साहित्यिक पत्र है।

गीताधर्म के सम्बन्ध में सहयोगियों की राय है—

—इसमें बड़े बड़े महात्माओं एवं विद्वानों के गम्भीर तथा प्रभावोत्पादक लेख हैं।

—शिक्षा—बांकीपुर (पटना)

—इसमें रामायण और गीताविषयक लेखों की प्रधानता रहती है।

—नवशक्ति, पटना।

—यह एक धार्मिक मासिक पत्र है। गीताधर्म के प्रचारक स्वामीजी के प्रयत्न का ही फल है कि यह इतना अच्छा निकल रहा है। पत्र भक्त, भावुकों के काम का है।

—अखण्ड भारत, बंबई।

—यह गीतासम्बन्धी साहित्य का प्रचार करनेवाला पत्र है। पत्र का उद्देश्य गीताधर्म का प्रचार करना है। गीताप्रेमियों के लिये यह पत्र बहुत उपयोगी है। इससे गीताधर्म को समझने में बहुत मदद मिलेगी।

—प्रताप, कानपुर।

—उक्त मासिक पत्र का उद्देश्य 'स्वधर्म' का प्रचार करना है। इसका प्रत्येक अङ्क विशेषाङ्क होता है।

जयाजी प्रताप, ग्वालियर।

यहाँ से विद्यानन्द ग्रन्थमाला भी निकल रही है जिसमें वेद, उपनिषद, ब्राह्मण, दर्शन एवं गीता की वर्णानुक्रमणिका (Index) तथा हिन्दी भाष्य प्रकाशित होंगे। उसके स्थायी ग्राहक बनकर लाभ उठाइए।

वार्षिक मूल्य	गीताधर्म कार्यालय	एक प्रति
४)	बनारस।	।=)

नया बँटवारा १००००) रुपया

प्रवेश जल्द ही बंद हो जायगा।

पंद्रह वर्ष से निकलने वाली 'इन्दु-गल्प-माला'—विद्वान्-विज्ञ, राजा-प्रजा, सब की प्रिय—एक प्रतिष्ठित मासिक-पत्रिका है। समाज, शिक्षा, विज्ञान गल्प आदि उत्तमोत्तम लेखों से यह अपने पाठकों को खुश करती रहती है। अग्रिम वार्षिक मूल्य ३) रु० है, छ मास का १।।।) और तीन मास का १) है। लाखों हिन्दी-प्रेमियों में ज्ञान-वर्द्धनार्थ इसका और भी व्यापक प्रचार करने के लिये, इसके १६ वें साल के उपलक्ष में १) भेज तीन मास के ग्राहक होनेवाले नए ग्राहकों में इस बार १००००) रु० इनाम बाँटा जायगा। बहुत सम्भव है कि सब से बड़ा इनाम आपही के शुभ भाग्य में निकल आवे।

अतः अपना नाम-पता साफ लिख, १) मनीआर्डर से शीघ्र भेज, दोनों हाथ लाभ लें। १।।।) भेज, छ महीना के ग्राहक होनेवाले, बँटवारे में दो नामइनाम के हकदार होंगे; और ३) रु० भेज, पूरे एक साल के ग्राहक होनेवाले, बटवारे में चार नामइनाम के हक़दार होंगे। वी० पी० नहीं जायगी। नतीजा इसी पत्रिका द्वारा सब ग्राहकों को मालूम होगा। आप भी शीघ्रता करें।

पता—मैनेजर 'इन्दु-गल्प-माला' नईसड़क, बनारस सिटी।

बुलेटिन नं० २]

मैथिली काव्य-मान

अपने राष्ट्रीय कवि और काव्य का सम्मान

काशी की 'तुलसी मीमांसा परिषद्' तथा 'गीताधर्म' परिवार ने अपने राष्ट्रीय कवि श्री मैथिली-शरणजी गुप्त के प्रति श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने के हेतु मैथिली काव्य-मान ग्रन्थ भेंट करने का आयोजन किया है। यह श्रद्धा की शब्दमयी मूर्ति सभी हिन्दीप्रेमियों तथा कवि के स्नेहियों को बड़ी सुहावनी लगेगी, उनके हृदय की चीज होगी। आइए सब मिलकर तपस्या करें और उसका दर्शन करें। यह ग्रन्थ अनूठा और बड़ा रसमय होगा। इसे सभी राष्ट्रभाषाप्रेमियों को अपनाना चाहिए।

सर्व साधारण जनता, साहित्यिकों तथा कवि के स्नेहियों से सानुरोध प्रार्थना है कि वे हमारे इस कार्य में हमारा सहयोग करें। जिन सज्जनों के पास कवि से सम्बन्ध रखनेवाले चित्र, संस्मरण तथा कोई अन्य सामग्री होवे वे हमें प्रदान कर तथा अपने विचार और उद्गार लिखकर हमारी सहायता करें।

सम्पादकों से हमारी प्रार्थना है कि कवि की जयन्ती के अवसर पर जो कुछ उनके पत्र में प्रकाशित हुआ हो तथा गुप्तजी के काव्यों पर उनके पत्र में अब तक जो समालोचनाएँ प्रकाशित हुई हों उन्हें हमारे पास भेज दें; साथ ही अपने पत्र का संक्षिप्त इतिहास भी।

छपाई का सारा खर्च 'गीताधर्म' प्रेस करेगा, अन्य खर्च के लिये प्रेमियों से दान की प्रार्थना (अपील) की जाती है। साहित्यिक दानियों के लिये सुन्दर सुयोग है; देश, काल, पात्र सभी का योग जुट गया है। काशी में पुरुषोत्तम के पुण्य अवसर पर मैथिली काव्य-मान समिति (=तुलसी-मीमांसा-परिषद्) जैसे सत्पात्र को दान देना है।

१—ग्रन्थ का प्रकाशन विजया के अवसर पर होगा।

२—लेख तथा सहायता भेजने की अन्तिम तारीख ३० अगस्त सन् १९३६ है।

संयोजक

श्री पद्मनारायण आचार्य एम. ए.

सम्पादक "गीताधर्म" काशी

ध्यान देने योग्य—

१—इसमें केवल कवि और काव्य के बारे में ही सब कुछ रहेगा।

२—'मान' के प्रतिष्ठापक १००) से ऊपर,

३—'मान' के सहायक २५) से ऊपर,

४—'मान' के सम्मानित ग्राहक ११) से ऊपर,

५—'मान' के ग्राहक ५),

६—रियायती ३) जो प्रकाशन के पूर्व ग्राहक बनेंगे।

सम्पादक मण्डल—

प्रो० केशवप्रसाद मिश्र (हि. वि. वि.)

डा० मोतीचन्द एम. ए., पी. एच. डी.

कलाविद् राय कृष्णदास और

तुलसी मीमांसा परिषद्—के

कुछ सदस्य।

जिल्द; पार्सल टीकाक उनके व पर, म आज ह

सम्मतियाँ

महात्मा गांधीजी—

भाई रामनरेशजी, मेरी तो आपके अनुवाद पर श्रद्धा है।

पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी—

मैंने आजतक इस पुस्तक के कई संस्करण देखे हैं, पर मुझे यह संस्करण उन सबसे श्रेष्ठ मालूम हुआ।

पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय—

आपकी भूमिका विशेष पाण्डित्यपूर्ण है।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त—

रामायण के प्रेमी इसके लिये आपके चिरकृतज्ञ होंगे और गुसाईंजी की आत्मा आपको असीसेगी।

माननीय सर सीताराम साहब,

(युक्तप्रान्त की कौंसिल के प्रेसीडेंट)—

प्रियवर रामनरेशजी,

टीका तो सुन्दर है ही, परंतु आपने जीवनी तथा पूर्ववचन पर बड़ा ही परिश्रम किया है और अपनी सुपरिचित योग्यता तथा साहित्यप्रेम का नया उदाहरण दिया है।

प्रो० रामदास गौड़, एम० ए०—

आपने अर्थ के सम्बन्ध में मौलिक खोज की है, जो अनमोल है, मैं मानता हूँ।

मिस्टर ए० जी० शिरफ़, I. C. S.

कमिश्नर फैजाबाद डिवीज़न—

Thank you very much indeed for your magnificent volume. I very much appreciate what you say in the preface about Tulsi Das as a man and a poet, and the commonsense way in which you show that mistaken praise of him obscures his real greatness as a world poet.

C. E. A. Oldham Esq, (London)

your labour has been a labour of love and I may congratulate you upon the success with which you have performed your task.

डा० सुनीतिकुमार चटर्जी—

भूमिका विशेष महत्त्वपूर्ण है, मानों तुलसी-विषयक आलोचना की एक मणिमञ्जूषा है।

बाबू व्रजनन्दन सहाय, आरा—

गोस्वामीजी के विषय में कोई ऐसी बात नहीं है जिसका उल्लेख इस पुस्तक में न हुआ हो। 'क्रान्तिकारी काव्य' शीर्षक विषय तो एकदम नवीन है।

———

एक महत्त्वपूर्ण कार्य

अभी अभी नागपुर में सभी भारतीय भाषाओं से राष्ट्रभाषा हिंदी का परिचय बढ़ाने के संबंध में जो परिषद् करने का आयोजन हुआ था उसकी महत्ता को सब लोग अच्छी तरह जानते हैं। मुझे यह सूचित करते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है कि इस कार्य के अनुष्ठान में गीताधर्म भी काफी प्रयत्न कर रहा है। हमारे पत्र में जो लेख हिंदी में 'व्यासवचनामृत' शीर्षक से अथवा लोकसंग्रही स्वामी विद्यानंदजी के नाम से छपते हैं, उनका गुजराती रूप आगामी अंक में अन्य गुजराती लेखों के साथ अवश्य दिया जाता है। इससे गुजरातीवाले हिंदी को और हिंदीवाले गुजराती को आसानी से सीख सकेंगे। इसलिये ऐसे पत्र का जितना ही प्रचार किया जावे, लोककल्याण की दृष्टि से उतना ही भला होगा। जो धार्मिक होंगे उन्हें ज्ञानोपदेश मिलेगा और जो केवल भाषा सीखना चाहेंगे उन्हें दूसरी भाषा का ज्ञान।

आशा है; जनता हमारे इस महत्त्वपूर्ण कार्य पर ध्यान देकर गीताधर्म को अपनावेगी।

मैनेजर, 'गीताधर्म'

गीताधर्म का अनूठा और अद्वितीय कार्यक्रम

गीताधर्म का उद्देश्य है **स्वधर्म** का ज्ञान कराना—अपनी संस्कृति और अपने साहित्य का ज्ञान कराना। इसी विचार से गीताधर्म के प्रत्येक अंक में एक विशेष विषय पर लेख प्रकाशित किए जाते हैं। गत आठ महीनों में इसके आठ अंक निकल चुके हैं। **१–प्रवेशांक** (गीतांक), **२–कुंभांक, ३–वसंतांक, ४–यज्ञांक, ५–रामांक, ६–शंकरांक, ७–गंगांक ८–व्यासांक**। यह नवाँ कृष्णांक आपके हाथ में है।

लोगों को अंक इतने अधिक अच्छे लगे हैं कि ग्राहकसंख्या इस थोड़े समय में ही छ हजार हो गई है। पहला अंक दूसरी बार छपाना पड़ा है। आप भी शीघ्र ४) भेजकर ग्राहक बन जाइए। पीछे अंकों के समाप्त हो जाने पर फाइल पूरी न हो सकेगी।

देखिए आगे और भी सुंदर और शिक्षाप्रद अंक निकलेंगे—

१—विजयांक
२—दीपांक
३—दर्शनांक
४—विश्वधर्मांक

नए वर्ष का **प्रवेशांक** बड़ा विशाल अंक होगा—लगभग छ सौ पृष्ठ का एक संग्रहणीय ग्रंथ होगा। ग्राहकों को तो मुफ्त ही मिलेगा।

—मैनेजर,
गीताधर्म, काशी।

गीताधर्म का ग्यारहवां अंक

सभी मान्य लेखकों, कवियों और विद्वानों से प्रार्थना है कि निम्नलिखित लेखसूची में से किसी पर लेख लिखकर गीताधर्म के इस ज्ञानयज्ञ में यज्ञपुरुषोत्तम की पूजा करें।

१—लक्ष्मी
२—गृहदीप
३—ज्ञानदीप
४—विजयदीप
५—दीप (सूर्य चन्द्रादि भी दीप ही हैं)
६—दीपावली—
  [१] पुराण में
  [२] जैनधर्म में
  [३] बौद्धधर्म में
  [४] आर्यसमाज में
  [५] कृष्णसम्प्रदाय में
  [६] रामसम्प्रदाय में
  [७] अहिरों में
  [८] डोमों में
  [९] कायस्थ, वैश्यादि में
७—महाभारत का दीपक
८—अश्वघोष वर्णित निर्वाण दीप
९—तुलसी का दीपवर्णन
१०—युधिष्ठिर की दीपावली
११—नल की दीपावली
१२—दिया तले अँधेरा
१३—ज्ञानदीप और दिव्यचक्षु
१४—पराजित का दीप
१५—अन्नकूट की त्रिविध व्याख्या
१६—भिन्न भिन्न साहित्यों में दीप और दीपावली
१७—प्रेमदीप और भैयादूज
१८—लोकसंग्रह का दीप
१९—अखंड दीप
२०—दीपदान (षोडशोपचार में और ज्ञानकांड में)
२१—"यथादीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमास्मृता"
२२—दीप और दर्शन
२३—आदिदीप (अग्निमीडे)
२४—हृदयस्थ ज्योति (जोति में जोति मिलाए जा)
२५—धर्म का दीप (गीता)

कुछ ध्यान देने योग्य आवश्यक

सूचनाएँ

आगामी दशम अंक **विजयांक** होगा।

ग्यारहवां अंक दीपांक होगा। उसकी सूची अन्यत्र देखिए।

प्रार्थना

(१) गीतापति भगवान् कृष्ण के अनुग्रह से लोकसंग्रही स्वामी विद्यानंदजी के द्वारा गीताधर्म पत्र की स्थापना हो गई है। महात्मा और महापुरुष आशीर्वाद दे रहे हैं, भक्त और प्रेमी ग्राहक और संरक्षक बन रहे हैं। अनेक वृद्ध, युवा और बालक मिलकर इस पत्र की सेवा कर रहे हैं। अपने अपने ढंग से सभी लोग इस **ज्ञानयज्ञ** में भाग ले रहे हैं।

हमारी प्रार्थना है, आप भी इस **मासिक यज्ञ** में सहायता कीजिए। 'गीताधर्म' मासिक यज्ञ है।

गीताधर्म का लक्ष्य है आत्मकल्याण और लोकसंग्रह। इससे गीताधर्म के ग्राहक बनकर, ग्राहक बनाकर और अन्य उचित उपायों से गीताधर्म का प्रचार करके इस लक्ष्य की पूर्ति करना आपका कर्तव्य है।

'गीताधर्म' भगवान् का पत्र है। इसकी सेवा भगवान् की सेवा है।

प्रत्येक गीताधर्मप्रेमी से यह अनुरोध है कि जैसे आप स्वयं ग्राहक बने हैं, वैसे ही प्रत्येक महीने में औरों को भी ग्राहक बनावें।

(२) **लोकसंग्रही स्वामी विद्यानंदजी** कलकत्ते में हैं। पता C/o श्री मदनलाल मूंदड़ा ३२, क्रास रोड मूँगा पट्टी, कलकत्ता।

(३) **रुपया किसे देना ?**—'गीताधर्म' की शाखाओं तथा प्रचारकों का नाम अंत में दिया रहता है। ग्राहकों से प्रार्थना है कि वे इनको छोड़कर और किसी सज्जन को रुपए न दें। यदि उन्हें ग्राहक अथवा संरक्षक बनना हो तो रुपए मनीआर्डर से सीधे कार्यालय को भेज दें।

(४) हमारी समिति ने यह निश्चय किया है कि संस्कृत विद्या, भारतीय संस्कृति तथा साहित्य से संबंध रखनेवाले ग्रंथ प्रकाशित किए जायँ और इस ग्रंथमाला का नाम होगा **'विद्यानंद ग्रंथमाला'**।

(५) दो विशाल **विशेषांक**—(१) विश्वधर्मांक, (२) गीतांक। गीताधर्म के दो भाग करके दो अंक निकाले जायँगे। उनका विशेष वर्णन पीछे निकलेगा।

(६) **प्रश्नोत्तर**—जिज्ञासु लोग प्रश्न भेजते हैं; हम गुरुजनों से पूछकर उनके उत्तर भेजने का यत्न करते हैं। काशी के प्रसिद्ध गीता के आचार्य श्री गीतानंदजी ने यह वचन दिया है कि कोई भी जिज्ञासु हमसे गीता पर प्रश्न करे; उसका उत्तर यथाशक्ति अवश्य देंगे। तत्त्वबोध और सत्संग का यह अपूर्व अवसर है।

(७) **पत्रव्यवहार**—अँगरेजी या हिंदी में ही रहना चाहिए और जो लोग उत्तर चाहें उन्हें **टिकट** अथवा **जवाबी कार्ड** भेजना चाहिए।

(८) गुड्स रेलवे स्टेशन बनारस कैंट पर भेजना चाहिए।

(९) पार्सल बनारस टाउन के पते से भेजना चाहिए।

(१०) **उलहना**—कृपालु ग्राहक पत्रिका न मिलने पर शीघ्र पोस्ट में अथवा अपने स्थान के शाखाकार्यालय में जाँच कर, हमें न मिलने का उलहना पत्र द्वारा दिया करें।

मैनेजर—

'गीताधर्म', काशी

आवश्यक सूचनाएं,
विषय सूची, चित्र सूची

कृष्णाङ्क

विषय सूची

भजन और मनन कवर
के दूसरे पृष्ठ पर पढ़िए

पुरुषोत्तमाङ्क

चित्र सूची

तिरंगे चित्र

सादे चित्र

गीताधर्मपरिवार में अपूर्व समारोह

आगामी विजया पर

(सरस्वती नवमी से शरद् पूर्णिमा तक)

आप चाहे इसे मैथिलीमान सप्ताह कहिए अथवा सरस्वती संमान। इसके दो प्रधान अङ्ग होंगे (१) मान-ग्रन्थ देना (२) और मेला की धूम।

राष्ट्र के और राम के—एक शब्द में मानवता के भक्त कवि मैथिलीशरण को पांच चीजें भेंट की जावेंगी—

(१) 'मैथिली काव्यमान'

इसमें कवि और उसके काव्यों के बारे में यथासंभव सब कुछ रहेगा। तीन सौ पृष्ठ के ग्रन्थ में जीवनचरित, रसचषक, काव्यमीमांसा, मान, अभिनन्दन, श्रद्धाञ्जलि आदि जितना बन सकेगा सभी रखने का यत्न होगा। बड़े बड़े आचार्य और कलाकोविद् तु० मी० परिषत् की सहायता कर रहे हैं। (इसमें पचासों रङ्ग विरङ्गे चित्र भी रहेंगे)

(२) तुलसीकृत रामायण का सर्वश्रेष्ठ संस्करण

तुलसीघाट, भदैनी के अद्वितीय रामायणी पं० विजयानन्दजी ने अनेक अलभ्य प्रतियों से पाठ शुद्ध करके इस संस्करण का संपादन किया है। आचार्य केशवजी (प्रो० हिं० वि० वि०) और कलाकोविद् राय कृष्णदासजी ने भी उसे सर्वाङ्गपूर्ण बनाने की कोशिश की है। हमारी राय में आज तक इतनी प्रामाणिक, सुसंपादित और सुन्दर छपी रामायण निकली ही नहीं। इसीसे हमारी इच्छा है कि यह सचित्र रामायण विजया के अवसर पर तुलसी के समानधर्मा रामभक्त 'मैथिली' के करकमलों में हम सर्वप्रथम भेंट करें।

(३) गीताधर्म का विजयाङ्क—

श्री मैथिलीशरण गुप्त विजयी कवि हैं उन्होंने 'विजय का संदेश' सुनाया है। इस विजयाङ्क में विजय और श्री आदि सभी का दर्शन मिलेगा। राम, कृष्ण, बुद्ध जैसे विजयी पुरुषों का मान, गान तथा संदेश रहेगा। यह विजयी कवि के अनुरूप भेंट होगी।

(४) महाविद्या का मैथिली-अङ्क—

हमारे मित्र और कवि के प्रेमी इतना करके भी नहीं मानते। वे अपने उद्गारों तथा विचारों का संग्रह एक विशेषाङ्क में कर रहे हैं। यह हृदय की श्रद्धापूर्ण भेंट अवश्य ही सुन्दर और संग्रहणीय होगी।

(५) सरस्वती शृङ्गार—

हमारे कवि मैथिलीशरण 'सरस्वती' के शृङ्गार हैं (ऐतिहासिक दृष्टि से भी और काव्य दृष्टि से भी) इसीसे हम उनके शृङ्गार के लिए तीन लड़ों का (तिलड़ा) हार गूँथ रहे हैं—(१) इन इक्यावन वर्षों के कवियों की कविता (२) लेखकों के उत्तम प्रबन्ध (३) विविध कृतियां (निबन्ध, कहानी, गद्य काव्य आदि)।

इस प्रकार हम यह पंचपात्र कवि को समर्पित करेंगे। सात दिन तक जो अपूर्व 'मान'-मेला होगा उसे आकर यहीं काशी में देखिए—

पद्मनारायण आचार्य एम० ए०

मन्त्री—तुलसीमीमांसा परिषत्,

तथा

मैथिलीमानसमिति

संपादक—गीताधर्म, साहित्यविनायक, काशी।

प्रार्थना—जिससे जो बने वह इस उत्सव में—रामभक्ति, राष्ट्रभाषा, साहित्य और सरस्वती के अपूर्व कार्य में सहायता करें।

१००) ऊपर प्रतिष्ठापक
२५) ... सहायक
११) ... संमानित ग्राहक
८) में ग्राहक
५) में वे ग्राहक हो सकते हैं जो विजया के पूर्व हो जावेंगे।

कृष्णाङ्क

और

पुरुषोत्तमाङ्क

अगस्त

सितंबर

(दो अङ्क)

श्रावण-भाद्रपद

लक्ष्य

ज्ञातव्य को जब हम पार कर चुकते हैं, तभी हमें '**ज्ञान**' की उपलब्धि होती है। **बुद्धि** (तर्कणाशक्ति) सहायिका थी; **बुद्धि** दीवार है।

इच्छाशील चाहों से बाहर जब हम गुजर चुकते हैं, तो हमें होती है '**शक्ति**' की उपलब्धि। **प्रयास** सहायक था; **प्रयास** बाधक है।

भोग्य से बाहर जब हम गुजर चुकते हैं, तभी होती है हमको **आत्मरति** की प्राप्ति। **वासना** सहायक थी; **वासना** बाधक है।

व्यष्टीकरण से बाहर जब हम गुजर चुकते हैं, तभी होते हैं हम वास्तविक **पुरुष**। '**अहं**'**कार** सहायक था; '**अहं**'**कार** बाधक है।

मनुष्यता या मनुष्यजाति से आगे जब हम जा चुकते हैं, तभी हम होते हैं '**मानव**'। **पशु** सहायक था; **पशु** बाधक है।

बुद्धि का रूपान्तर व्यवस्थित **अन्तर्ज्ञान** में कर डाल; तू जो कुछ है सब **प्रकाश** हो जा। यही है तेरा लक्ष्य।

प्रयास को ढाल दे आत्मशक्ति के **सम** और **महनीय** उल्लावन में; तू जो कुछ है सब **चैतन्यशक्ति** हो जा। यही है तेरा लक्ष्य।

भोगवासना का कायापलट कर दे सम और निष्काम **आत्मानन्द** में; तू जो कुछ है सब **आत्मरति** हो जा। यही है तेरा लक्ष्य।

विभक्त व्यष्टि को ढाल दे विश्वमय **विराट्** सत्ता में; तू जो कुछ है सब **दिव्य** हो जा। यही है तेरा लक्ष्य।

रूपान्तर कर दे **पशु** का, गल्ले (पशुसमूह) के '**पाली**' (गोपाल) में; तू जो कुछ भी है सब—

श्री कृष्ण हो जा। यही है तेरा लक्ष्य।

महर्षि अरविन्द]

[अनुवादक—श्री भारतभानु

गीता का 'मैं'

(ले०—श्री सुमित्रानन्दन पन्त)

जो दीन हीन, पीड़ित, निर्बल,
मैं हूँ उनका जीवनसंबल।

जो अहंपूर्ण, वे अन्धकूप,
जो नम्र, उठें बन कीर्तिस्तूप।

जो मोहछिन्न, जग से विभक्त,
वे मुझमें मिलें, बनें सशक्त।

जो छिन्न-भिन्न, जलकण असार,
जो मिलें, बनें सागर अपार।

जग नाम रूपमय अन्धकार,
मैं चिर प्रकाश, मैं मुक्तिद्वार।

श्री अरविन्द

गोताधर्म प्रेस, साक्षीविनायक, काशी।

(पुरुषोत्तम की)

राधा

अरविन्द

"राधा (व्यक्त और सजीव) मूर्ति हैं भगवान् के प्रति परम प्रेम की, ('अनन्य भक्ति' की); उस परम प्रेम की, जो पर 'अध्यात्म' से लेकर 'अधिभूत' तक जीव (–सत्ता) के अङ्ग अङ्ग में पूर्ण और अखण्ड हो; उस परम प्रेम की, जो प्रेम अनन्य 'आत्मसमर्पण' और सत्तामात्र का (समस्त जीवन का) पूर्ण 'त्याग' कराकर शरीर में और जड़ से जड़ प्रकृति में उतार लावे **परमानन्द**।"

भक्ति

तुलसी

प्रीति राम सों, नीतिपथ, चलिय राग रिसि जीति।
तुलसी संतन के मते, इहै 'भगति' की रीति॥
राम = लक्ष्य

लक्ष्य

बुद्ध

अपने लक्ष्य की प्राप्ति में प्रमाद न करना।

भक्त

पद्म

भक्त जिसे कृष्ण कहता है, राम कहता है; दार्शनिक उपदेशक उसे ही लक्ष्य कहता है, पुरुषार्थ कहता है। उसी एक के चार नाम हो सकते हैं—हजार नाम हो सकते हैं–(देखो विष्णुसहस्रनाम, गोपालसहस्रनाम)

पुरुषार्थ

(सम्पादक)

१ धर्म　　२ अर्थ　　३ काम　　४ मोक्ष

योगः
एकः
(श्रीकृष्णः शरणं मम)

ॐ तत्सत्
'यत्र योगेश्वरः कृष्णः' १८।७८
'वासुदेवः सर्वमिति' ७।१९
'प्रथितः पुरुषोत्तमः' १५।१८

गीताधर्म — कृष्णाङ्क (परिशिष्ट के साथ)

संस्थापक
लोकसङ्ग्रही स्वामी विद्यानन्द

सं० पद्मनारायण आचार्य, एम० ए०
मधुसूदनप्रसाद मिश्र 'मधुर'
विट्ठलशर्मा चतुर्वेदी

भाग १ काशी, श्रावण १९९३ संख्या ९

(ध्यान)

अरविन्दाक्ष कृष्ण

उद्धव उवाच

यथा त्वामरविन्दाक्ष यादृशं वा यदात्मकम् ।
ध्यायेन्मुमुक्षुरेतन्मे ध्यानं मे वक्तुमर्हसि ॥३१॥

श्री कृष्ण उवाच

सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम् ।
हस्तावुत्सङ्ग आधाय स्वनासाग्रकृतेक्षणः ॥३२॥
प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः ।
विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः ॥३३॥
हृद्यविच्छिन्नमोङ्कारं घण्टानादं बिसोर्णवत् ।
प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत्स्वरम् ॥३४॥
एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत् ।
दशकृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग्जितानिलः ॥३५॥
हृत्पुण्डरीकमन्तस्थमूर्ध्वनालमधोमुखम् ।
ध्यात्वोर्ध्वमुखमुन्निद्रमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥३६॥
कर्णिकायां न्यसेत्सूर्यसोमाग्नीनुत्तरोत्तरम् ।
वह्निमध्ये स्मरेद्रूपं ममैतद्ध्यानमङ्गलम् ॥३७॥
समं प्रशान्तं सुमुखं दीर्घचारुचतुर्भुजम् ।
सुचारुसुन्दरग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥३८॥
समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डलम् ।
हेमाम्बरं घनश्यामं श्रीवत्सश्रीनिकेतनम् ॥३९॥
शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ।
नूपुरैर्विलसत्पादं कौस्तुभप्रभयान्वितम् ॥४०॥
द्युमत्किरीटकटककटिसूत्राङ्गदायुतम् ।
सर्वाङ्गसुन्दरं हृद्यं प्रसादसुमुखेक्षणम् ॥४१॥
सुकुमारमभिध्यायेत् सर्वाङ्गेषु मनो दधत् ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाकृष्य तन्मनः ।
बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः ॥४२॥
तत्सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत् ।
नान्यानि चिन्तयेद्भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम् ॥४३॥
तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् ।
तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥४४॥

एवं समाहितमतिर्मामेवात्मानमात्मनि ।
विचेष्ट मयि सर्वात्मन् ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम् ॥४५॥
ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युञ्जतो योगिनो मनः ।
संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानाक्रियाभ्रमः ॥४६॥

उद्धव से कृष्णजी कहते हैं—

साधक को हृदयरूपी कमल में चतुर्भुजरूप का ध्यान करना चाहिए। ध्यान करते करते जब ज्योति-में ज्योति मिल जाती है तब समझना चाहिए कि ध्यान पूरा हो गया।

[यहाँ पर मीरा का एक पद ध्यान देने लायक है—

मत जा मत जा मत जा रे योगी
जोति में जोति मिलाए जा]

ध्यानयोग के इन श्लोकों (भागवत ११।१४।३१-४६) पर विचार और मनन करना चाहिए।

ध्यान के दो रूप

(पद्म)

भगवान् का ध्यान सदा अरविन्द अथवा कमल के भीतर किया जाता है। वही बाहरी पद्म पीछे हृदय-पद्म बन जाता है। हृदय में ही भगवान् रहते हैं।

हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति

(गी० १८.६१)

यह ध्यान की मूर्ति अनेक प्रकार की हो सकती है पर प्रसिद्ध (ध्यान लायक) रूप दो ही माने जाते हैं (१) चतुर्भुज और (२) द्विभुज मानुष रूप। अर्जुन, ध्रुव, कर्दम आदि पहले चतुर्भुज रूप के उपासक थे। उद्धव के समान साधकों को भी इसी ध्यान का उपदेश दिया जाता है पर माधुर्यमण्डल में द्विभुज रूप की उपासना होती है, गोपियों के नटवर द्विभुज ही थे। मीरा के गिरधर गोपाल द्विभुज ही थे। पद्म-पुराण के निर्वाण खण्ड में वर्णन आया है कि भगवान् ने एक बार ब्रह्मा को अपने ऐसे स्वरूप के दर्शन कराए थे जो वेदगोप्य और बड़ा ही मधुर था। वह यही द्विभुज गोप वेष था। नवकिशोर नटवर कदम्ब के नीचे वंशी लिए बैठे हैं। सांवला रङ्ग, पीला डुपट्टा और गले में वनमाला। मुख पर थोड़ी मुसकान; चारों ओर गोपबालक और बालिका खड़ी हैं। ऐसे वृन्दावन-विहारी माखनचोर गोपाल का दर्शन ब्रह्मा ने किया। वे पुलकित हो उठे। यही ध्यान हमने अपने पहले पृष्ठ पर रखा है और लिखा है—लक्ष्य (अरविन्द के हृदय में कृष्ण)

हमारा लक्ष्य यही है कि हमारे हृदयारविन्द में सदा कृष्ण विराजते रहें (और हम क्या करें—

'मामनुस्मर युद्ध्य च')

गी०—

इन्हीं दोनों ध्यानों के लिये हम दो सुन्दर श्लोक उद्धृत कर रहे हैं—

गोपाल कृष्ण

(१)

वन्दे मुकुन्दमरविन्ददलायताक्षं
कुन्देन्दुशङ्खदशनं शिशुगोपवेषम् ।
इन्द्रादिदेवगणवन्दितपादपीठं
वृन्दावनालयमहं वसुदेवसूनुम् ॥१॥

भगवान् कृष्ण

(२)

सशङ्खचक्रं साकिरीटकुण्डलम्
सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम् ।
सहारवक्षस्थलकौस्तुभाश्रियम्
नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ॥

कृष्ण

व्यास वचनामृत

पिछली बार गुरु पूर्णिमा के अवसर पर हम कह आए हैं कि सम्पत्ति दो प्रकार की होती हैं—दैवी और आसुरी। आज हम इतना ही कहेंगे कि इन दोनों प्रकार की सम्पत्तियों की पहचान यही है कि जिस ओर कृष्ण रहते हैं वह दैवी सम्पत्ति है और जहाँ कृष्ण नहीं रहते वह आसुरी सम्पत्ति है। कृष्ण से सम्पत्ति की पहचान होती है। यों तो स्वभाव से ही कुछ मनुष्य देवता होते हैं और कुछ राक्षस (असुर) पर जिसे कृष्णरूपी सम्पत्ति मिल जाती है वही सच्चा मनुष्य होता है। उसी की ओर सब देवता रहते हैं, उसी की ओर धर्म रहता है। अतः जन्म से चाहे मनुष्य दैवी सम्पत्ति वाला हो अथवा आसुरी सम्पत्ति वाला, पर वह कृष्णभक्त होने पर, कृष्ण की सम्पत्ति पा लेने पर, आदर्श मनुष्य हो जाता है। उसको सब कुछ मिल जाता है।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम ॥७८॥

जहाँ कृष्ण रहते हैं वहीं श्री, विजय, भूति और नीति सदा रहती हैं।

यही व्यास और वासुदेव दोनों का मत है। यही महाभारतकार कृष्ण और गीताकार कृष्ण दोनों का मत है। **"जहाँ कृष्ण हैं वहीं सब कुछ है"** इसलिये यदि कुछ भी चाहते हो तो कृष्ण को अपने पास बुलाओ। तुम अर्जुन के समान कृष्ण के **सखा बनो**, कृष्ण तुम्हारे पास रहेंगे और फिर तुम्हें किसी चीज की चाह न रहेगी, किसी चीज की इच्छा न रहेगी। जब तुम्हारे पास सभी कुछ भरा पूरा रहेगा, तुम्हें अवश्य ही संतोष रहेगा; तुम निष्काम हो जाओगे। इससे भाइयो, निष्काम, बेपरवाह, योगी होने का एक ही उपाय है। कृष्ण को अपने पास रखो, कृष्ण को अपने हृदय कमल में बन्द करके रखो।

आज से गीता के अन्तिम श्लोक का नित्य भजन किया करो और उसके अर्थ पर नित्य मनन किया करो इस भजन और मनन से तुम्हें अपने लक्ष्य कृष्ण को पाने में पूरी सहायता मिलेगी।

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढ़मते !
यत्र योगेश्वरः कृष्णः........................
तत्र श्रीर्विजयो भूतिः........................

कृष्ण जन्म

कृष्ण-साधना का जीवन अथवा रसमय जीवन

(लोकसङ्ग्रही स्वा० विद्यानन्दजी)

कृष्णजन्म प्रत्येक अष्टमी को होता है। हम उत्सव मनाते हैं, पर एक बार कृष्ण का जन्म हुआ था और वसुदेव देवकी का सब कष्ट छूट गया था, सारा संसार सुखी हो गया था, पर आज वैसा क्यों नहीं होता, हम सुखी क्यों नहीं हो जाते; इसका एक ही उत्तर है कि हम कृष्णजन्म का नाटक करते हैं, उसका अर्थ नहीं समझते और न कृष्ण हमारे घर जन्म ही लेते हैं। भाइयो, कृष्ण जन्म लेते हैं उसके घर, उसके परिवार में, जो साधना करता है। जो परिवार वसुदेव देवकी के समान साधना का जीवन बिताता है; वह साधना का जीवन क्या है? उसीकी आज हम चर्चा करेंगे। इसी साधना के जीवन का वर्णन गीता में है, भागवत में है, बड़े बड़े सद्ग्रन्थों में है।

यह साधना दो प्रकार की होती है—एक भीतरी और दूसरी बाहरी। एक साधक भगवान् कृष्ण की साधना अपने हृदय के भीतर करता है और दूसरा पूरे संसार में; वह कृष्ण को देखता है और राधा-कृष्णमय जग की उपासना करता है। हैं दोनों ही साधक और दोनों को ही सुख मिलता है। एक हृदयपद्म का उपासक है और दूसरा विश्वप्रद्म का। हमारा जो हृदय है उसे योगी लोग कमल कहते हैं और उसके भीतर भगवान् कृष्ण का ध्यान करते हैं। हमलोगों में से हर एक अपने हृदय कमल के भीतर उस ज्योतिरूप भगवान् का ध्यान कर सकता है। जिसे इस ध्यान की विधि सीखनी हो वह भागवत के एकादश स्कन्ध का चौदहवाँ अध्याय पढ़े अथवा गीता का ध्यानयोग पढ़े।

दूसरे प्रकार की साधना का नाम है विश्वरूपदर्शन। जब मनुष्य संसार के कण कण में भगवान् का दर्शन करने लगता है तब वह संसार को ही भगवान् का रूप मानने लगता है। तब उसे हृदय-कमल में प्रवेश करने की जरूरत नहीं पड़ती, उसे तो बाहर सभी चीजों में भगवान् की विभूति दिखलाई पड़ती है, भगवान् की ज्योति दिखाई पड़ती है। वह अकेले बैठता है तो, सबके साथ रहता है तो, सभीजगह सभी दशाओं में भगवान् का दर्शन करता रहता है। उसे सभी बातों में रस मिलता है, सभी कामों में सुख मिलता है। फिर उसे व्यर्थ का सन्देह नहीं रह जाता और वह कहा करता है—

'करिष्ये वचनं तव'

वह संसार में भगवान् का निमित्त बनकर रहता है उससे भगवान् जो कुछ कराते हैं वह सब कुछ करता है। क्योंकि वह समझता है कि यह संसार भगवान् की लीलाभूमि है, उनका लीलापद्म है। [संसार को एक कमल, तो योगी और पौराणिक सभी मानते हैं।] इस दूसरे प्रकार की साधना का उपदेश रामायण और गीता में किया गया है। हम यहाँ दो प्रसिद्ध उदाहरण देंगे एक अर्जुन का और दूसरा हनुमान का। अर्जुन को भगवान् कृष्ण का विश्वरूप देखने को मिला था और विश्वरूप देखने के बाद ही उसकी बुद्धि ठिकाने आई थी। [स्थितोस्मि] विश्वरूप देखकर वह समझ गया था कि सब करने करानेवाला ईश्वर है। जीव तो उसका निमित्त मात्र होता है, अतः प्रत्येक मनुष्य को जो काम भगवान् बतावें करना चाहिए। अपने स्वधर्म

का पालन करना चाहिए। यही समझ कर उसने महाभारत का युद्ध किया भी। अर्जुन की रोमाञ्चकारी विश्वरूप दर्शन की कथा जिसे पढ़नी हो वह गीता के एकादश अध्याय को पढ़े, दूसरा उदाहरण प्रसिद्ध रामभक्त हनुमान् का है। उन्हें भी संसार सियाराम—मय दिखाई पड़ता था। भक्त और वीर हनुमान की यह कथा तो प्रसिद्ध ही है कि उन्होंने अपने शरीर के रोम-रोम में राम का दर्शन सबको कराया था। (देखो तुलसीकृत रामायण उत्तरकाण्ड राम सभा का वर्णन) हनुमान् के भक्त तुलसीदासजी भी उनके ही समान कहते थे—

सियाराम मय सब जग जानी।
करों प्रणाम सप्रेम सुबानी॥

अब विचार कर देखा जाय तो पहला मार्ग आत्म-साधना का मार्ग है, और दूसरा विश्वसाधना का; पहले से दूसरा कठिन, पर श्रेष्ठ है। यह कहना यद्यपि ठीक नहीं है तो भी इतना तो कहा जा सकता है कि आत्म-दर्शन के बाद जब विश्व-दर्शन अथवा ब्रह्म-दर्शन होता है तभी सच्चा ज्ञान होता है, धर्म का मार्ग मिलता है, साधना सिद्ध होती है। पहले साधक अपने आप में (आत्मा में) भगवान् का दर्शन करता है, पर पीछे बढ़ते बढ़ते वह अपने चारों ओर सभी चीजों में, विश्व भर में—भगवान् का रूप देखने लगता है। यही विश्वदर्शन की अवस्था साधक की सिद्ध अवस्था मानी जाती है, अतः पहली साधना अर्थात् आत्म-साधना इस विश्व-साधना का एक उपाय मात्र है। जिन लोगों ने इस विश्वरूप का दर्शन कर लिया है उन्हें कोरी आत्म-साधना से सन्तोष नहीं होता। वे या तो लोक-सङ्ग्रह करते हैं या जीवन-मुक्त के समान विश्व में विचरा करते हैं।

इन दोनों साधनों का पूरा वर्णन जिन्हें पढ़ना हो वे भगवद्गीता पढ़ें और पढ़कर पहले आत्म-दर्शन और फिर विश्व-दर्शन करें। तभी उन्हें कृष्ण-जन्म का रहस्य समझ में आवेगा। जिस दिन साधना करते करते मनुष्य को भगवान् का दर्शन हो जाता है उसी दिन उसके लिये कृष्ण का जन्म होता है, और उसी दिन उसे कृष्णजन्म का उत्सव मनाना चाहिए।

यह कृष्णजन्म की **आध्यात्मिक** व्याख्या हुई, इस पर हमारे अध्यात्म-प्रेमी गीताधर्म के श्रोताओं को विशेष ध्यान देना चाहिए।

कृष्ण-जन्म का आधिदैविक अर्थ हमारे भक्त पाठक जानते हैं ही, वे सदा देवकृष्ण की जन्माष्टमी मनाते हैं और आधिभौतिक अर्थ हमारे इतिहास और काव्य के प्रेमी जानते हैं। कृष्ण महापुरुष थे। उनके महान् चरित्र का हमें अध्ययन करना चाहिए और उससे लाभ उठाना चाहिए।

अन्त में हम तो यही कहेंगे कि यदि अपना जीवन सफल बनाना है तो कृष्णजन्म का आध्यात्मिक अर्थ समझना चाहिए और साधना द्वारा जीवन को भरा पूरा और रसमय बनाना चाहिए। इस साधना का प्रारम्भ होता है श्रवण से, अतः हम सबको भगवत् कथा का श्रवण करना चाहिए। फिर श्रवण करके उसपर मनन करना चाहिए और फिर बार बार उसी सुनी हुई बात का स्मरण कर करके इतना अधिक मनन करना चाहिए कि वह भगवान् की कथा हमारी आँखों के सामने झूलने लगे। इस प्रकार बार बार याद करने और सोचने का नाम है निदिध्यासन। ऐसा करते रहने से फिर भगवान् का ध्यान करना सहज हो जाता है और यही ध्यान धारणा के द्वारा समाधि का रूप धारण कर लेता है। सच पूछा जाय तो ध्यान के बढ़ जाने पर ही समाधि लग जाती है, अतः हम सबको भगवान् के ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। श्रवण से ध्यान तक का क्रम हम बताही चुके।

यही है कृष्ण साधना का जीवन और यही है गीताधर्म का जीवन।

श्री कृष्ण जन्मभूमि

अथवा

कटरा केशवदेव

(ले०—श्री वासुदेव शरण अग्रवाल एम. ए. एल. एल. बी. क्यूरेटर, मथुरा म्यूज़ियम)

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र की जन्मभूमि मथुरापुरी भारतवर्ष की सप्त महापुरियों में एक विख्यात नगरी है। भारतीय धर्मप्राण जनता के मन पर मथुरा नगरी का अद्भुत प्रभाव रहा है। त्रेतायुग में यहाँ मधु नामक असुरवंशीय राजा की राजधानी मधुपुरी में थी। यह स्थान आजकल महोली गाँव के नाम से वर्तमान शहर के दक्षिण-पश्चिम में करीब चार मील दूर है। साहित्यिक किंवदन्ती यह है कि जब शत्रुघ्नजी ने लवण दैत्य का दमन कर दिया तब उन्होंने मधुपुरी के नाम से एक नगर की स्थापना यमुना के किनारे पर की। यह मधुपुरी या मधुरा ही मथुरा नाम से प्रसिद्ध हुई। प्राकृत उच्चारण के नियमों के अनुसार मथुरा और मधुरा दोनों ही शब्द मान्य हैं। [देखिए माधुरिय सुत्तान्त, मज्झिम निकाय, २।४।४]।

इस नवीन स्थापना के बाद मधुरापुरी का उत्कर्ष बहुत बढ़ा। यहीं पर यमुना के तट पर महाभारत कालीन मथुरापुरी बसी हुई थी, जिस समय कि भगवान् कृष्णचन्द्र का जन्म इस पुण्यभूमि में हुआ। विद्वानों के अनुसार इस प्राचीन मथुरा नगरी का केन्द्र कटरा केशवदेव होना चाहिए। कनिंघम साहब ने स्वलिखित पुरातत्त्व विभाग की रिपोर्टों में इस प्रश्न पर विस्तार के साथ विचार करने के बाद यही सम्मति निश्चित की कि कटरा केशवदेव के उत्तर और पश्चिम की ओर फैले हुए खण्डहरों का सिलसिला ही प्राचीन मथुरा नगर है।

(1) The oldest city of the original King Madhu was at Madhupura, now Maholi.

(2) The Aryan City, after the defeat of Madhu, was built on the site of the present Katra, with the Bhuteshwar Temple as its centre.

(3) The Jumna Fort is the last city, I had already arrived at his (Growses) second conclusion as to the site of the ancient Aryan city from an examination of the ground, compared with Huen Tasang's statements as to the relative positions of the different Buddhist monuments. The people also are unanimous in their belief that the Katra was the site of the ancient city."

—Chunningham's Arch. Report Vol XX P. 31.

श्रीयुत ग्राउस महोदय मथुरा के प्रसिद्ध कलक्टर और मथुरा के अजायब घर के संस्थापक थे। उन्होंने मथुरा पर एक अमर ग्रन्थ की रचना की है। उनका भी यही मत था (Growse's Mathura, P. 216) कि कटरा केशवदेव ही पुरानी बस्ती है। कटरा केशवदेव

की भूमि के सिलसिले में ही कम से कम दो सहस्र वर्ष के पुराने स्थान जैसे चौरासी कङ्काली, चौबारा गणेशरा, पालीखेड़ा आदि का ताँता है। सैकड़ों टीले मीलों तक फैले हुए प्राचीन नगर के भग्नावशेषों का स्मरण दिलाते हैं।

कटरा केशवदेव के सम्बन्ध में जिस प्राचीनतम जनश्रुति का श्री कनिंघम साहब ने ऊपर उल्लेख किया है उसकी पुष्टि में लाखों हिन्दू जनता का सनातन काल

there can be little doubt that the great temple of Kesava had stood on this site from a very early date, although often thrown down and as often renewed, I think that *Kesopura* must be *Klisobora* or *Kaisobora* of Arrian, and the Clisobora of Pliny". (Vol. XX, P. 31).

अर्थात् वर्तमान केशोपुरा मुहल्ले में कटरा स्थान
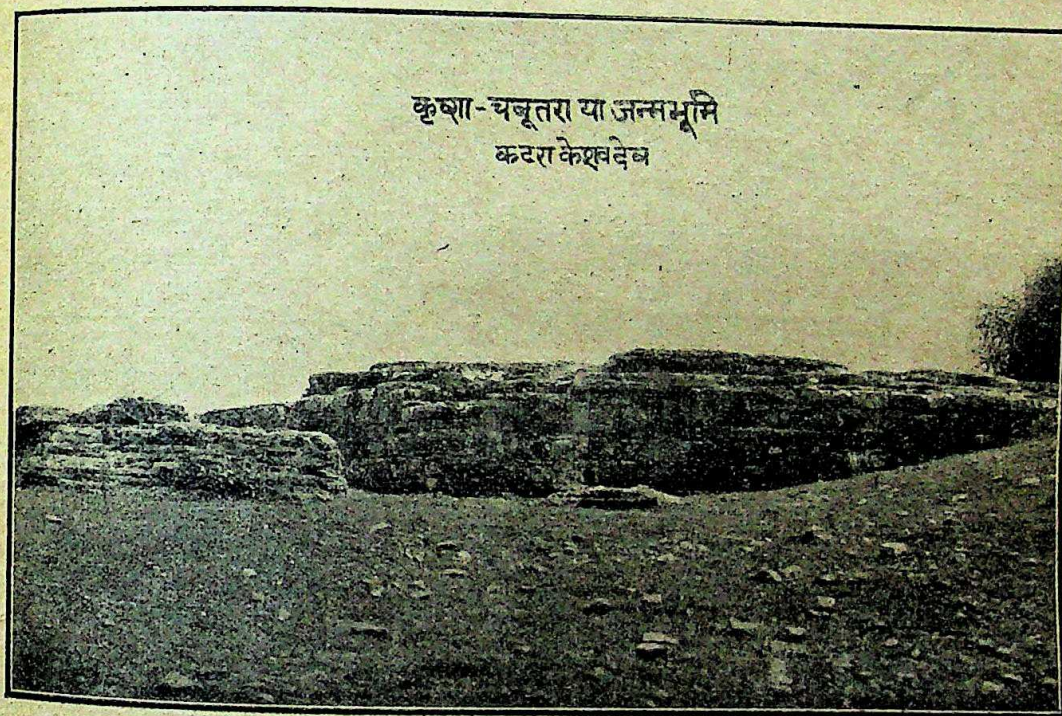
से चला हुआ यह विश्वास है कि कटरा केशवदेव ही **भगवान् कृष्ण की जन्मभूमि है।** इसी स्थान से लगा हुआ पोतराकुण्ड है। वह बहुत ही विशाल और पक्का सरोवर है। जन्मभूमि के पास ही पोतराकुण्ड का होना स्वाभाविक है। कनिंघम साहब ने कटरा के प्राचीन इतिहास पर विचार करते हुए अपनी सम्मति इस प्रकार दी है—

But the Katra stands in the Kesopura Mohalla of the present day, and, as

है। इसमें सन्देह नहीं कि केशवदेव का प्राचीन मन्दिर इसी स्थान पर बना हुआ था। यह मन्दिर कितनी ही बार बना और कितनी ही बार नष्ट हुआ। मेरे विचार में केशोपुरा ही वह स्थान है जिसका नाम एरायन ने क्लिसोबोरा या केसोबोरा और प्लिनी ने क्लिसोबोरा लिखा है।

इस प्रकार क्लिसोबोरा या कृष्णपुरा और केसोबोरा या केशवपुर ये पर्यायवाची शब्द हैं। यदि कनिंघम साहब का यह अनुमान ठीक है तो यह सिद्ध हो जाता

है कि केशवपुर का अस्तित्व यूनानियों के आगमन काल अर्थात् ईस्वी चौथी शताब्दी में अवश्य था। कटरा केशवदेव की भूमि से जो प्राचीन मूर्ति और पत्थर के टुकड़े मिले हैं उनके आधार पर भी इसी बात की पुष्टि होती है कि केशवदेव का स्थान अवश्य ही इतना प्राचीन माना जा सकता है।

१. सन् १६१८ में पुराने सिक्के ढालने के तीन जोड़ साँचे पं० राधाकृष्ण जी को कटरे की खुदाई कराते समय प्राप्त हुए थे। श्री पन्नालालजी आई. सी. एस. ने जून सन् १८ के यू. पी. हिस्टोरिकल सोसाइटी के जरनल में इन साँचों के सम्बन्ध में एक विस्तृत लेख लिखकर उनका समय निर्धारित किया है—

"These moulds, therefore, must be earlier than the 6th centure B. C." (p. 140).

अर्थात् पुराण नामक प्राचीन भारतवर्षीय सिक्के ढालने के ये साँचे कम से कम छठी शताब्दी ई. पूर्व से भी पहले के होने चाहिए। मनु, कौटिल्य और पाणिनि ने इन प्राचीन सिक्कों को पुराण कहा है। बुद्ध के जीवन काल में भी ये पालीग्रन्थों के अनुसार पुराण ही कहलाते थे। श्री दुर्गाप्रसादजी ने हाल ही में पुराण मुद्रा (Punch-marked coins) के ऊपर विशेष अनुसन्धान करते हुए उनका प्रचलन काल १००० ई. पू. तक माना है (Numismatic Supplement, No. 45)। कम से कम शुङ्ग काल के पूर्व तक अवश्य ही इन सिक्कों का प्रचार रहा। यदि उस समय भी उनके ढालनेवाले साँचे बनाए गए हों तो भी कटरा का प्राचीन स्थान तीसरी शताब्दी के आस पास अवश्य ही विद्यमान था।

२ मथुरा के अजायबघर में सुरक्षित बहिर्द्वारतोरण की सिरदल या सुहावटी का पत्थर (M. I.) या तोरण जनरल कनिंघम को १८६२ ई. की शीत ऋतु में कटरा की खुदाई कराते समय मिला था। इसके एक ओर नौ ऊँचे तोरण खुदे हुए हैं, जिनमें से स्त्री और पुरुषों की भीड़ झाँक कर देख रही है। दूसरी ओर नौ बौद्ध भिक्षु हैं जो विहार के अन्दर भोजनशाला में भोजन प्राप्त कर रहे हैं। उनके पास ही स्तम्भ स्तूप और बोधिवृक्ष अङ्कित हैं। यह तोरण लगभग द्वितीय शताब्दी ई. पूर्व या शुङ्ग काल का होना चाहिए। इससे विदित होता है कि शुङ्ग काल में कटरा की भूमि में बौद्ध विहारों का अस्तित्व अवश्य था। इसका एक अकाट्य प्रमाण यह भी है कि कटरा से महाराजा वासुष्क (कुषाण सम्राट् वासिष्क) का एक लेख मिला है जिसमें संवत् ७६ (१५४ ई.) में एक बौद्ध स्तूप के जीर्णोद्धार का वर्णन है। सम्राट् वासिष्क द्वितीय शताब्दी ई. के प्रारम्भ में हुए थे। जिस स्तूप का जीर्णोद्धार कुषाण काल में हो उसका निर्माण अवश्य ही शुङ्ग काल में हुआ होगा।

कटरा में खुदाई के अवशेषों का जो वर्तमान रूप है उनके आधार पर वहाँ एक से अधिक लगभग चार पाँच स्तूपों के अस्तित्व का अनुमान होता है। स्तूपों की शृङ्खला केशवदेव के हिन्दू मन्दिर की कुर्सी से उत्तर की ओर थी। मालूम होता है कि मन्दिर के स्थान के पास ही बौद्धों को भी स्तूप और विहार बनवाने का स्थान दे दिया गया था। उस समय की धार्मिक सहिष्णुता तो प्रसिद्ध ही है। एक ही स्थान पर बौद्ध, जैन और ब्राह्मणों के देवस्थान बनाए जाते थे। कङ्काली टीला इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। यद्यपि यहाँ जैनों का सबसे बड़ा स्तूप था तथापि वहीं बौद्धों के चैत्य और हिन्दुओं के मन्दिर भी थे जैसा कि उस स्थान से मिली हुई बौद्ध और विष्णु मूर्तियों से सिद्ध होता है। कटरा केशवदेव से भी एक जैन मूर्ति (Mathura Museum

No. 268) मिली है, जिस पर गुप्त काल की लिपि में एक लेख है। उस मूर्ति को सगर और सागरिक नामक भाइयों ने स्थापित किया था। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि कटरा केशवदेव केवल बौद्धों का ही स्थान नहीं था वल्कि यहाँ पर जैन मन्दिर भी थे, और चूंकि जैन और बौद्ध स्तूपों का स्थान वर्तमान केशवदेव के मन्दिर या कृष्ण चबूतरे से हटकर उत्तर की ओर है इससे यह भी अनुमान होता है कि ब्राह्मणधर्म सम्बन्धी मन्दिर प्राचीनकाल में अपने वर्तमान स्थान पर ही था। उस भूमि के विशेष महत्व और पवित्रता के कारण बौद्ध और जैनों ने भी उसे अपनाया। भगवान् बुद्ध भी मथुराजी में आए और हुएनसाँग के लेख के अनुसार बुद्ध भगवान् के बाद यहाँ स्तूपों का निर्माण हुआ। गुप्त काल में यह स्थान बहुत ही समृद्ध दशा में था। एक बुद्ध मूर्ति पर खुदा हुआ गुप्तकाल का प्रसिद्ध लेख इस समय लखनऊ सङ्ग्रहालय में सुरक्षित है (B.10): उससे मालूम होता है कि भिक्षुणी जयभट्टा ने गुप्त संवत् २३० (५४९—५५० ई.) में एक बुद्ध प्रतिमा यशाविहार को दान में दी। इसके अतिरिक्त चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य तक की वंशावली का उल्लेख करनेवाला एक प्रसिद्ध लेख भी कटरा से ही जनरल कनिंघम को सन् १८५३ में मिला था। (Dr. Vogel's Catalogue, Q. S. 5 and Dr. Fleet's Gupta Inscriptions, P. 26, no. 4). लेख इस प्रकार है —

पं० १ [सर्व राजोच्छेत्तुः पृथिव्‍] य [ामप्रतिरथ]
,, २ [स्य चतुरुदधि सलि] ला स्वादित य [शसो ध]
,, ३ [नद वरुणेन्द्रान्तकस] मस्य कृतान्त [परशोः]
,, ४ [न्यायागतानेकगो] हिरण्य कोटि प्रद [स्य चिरो]
,, ५ [त्सन्नाश्वमेधाहर्त्तुर्म] हाराज श्री गुप्तप्रपौत्र [स्य]
,, ६ [महाराज श्रीघटोत्क] च पौत्रस्य महाराजाधिरा [ज]
पं० ७ [श्री चन्द्रगुप्त पु]त्रस्य लिच्छविदौहित्रस्य महा[दे]
,, ८ [व्यां कुमार] देव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिरा
,, ९ [ज श्री स] मुद्र गुप्तस्य पुत्रेण तत्परिगृ
,, १० [ही] तेन महादेव्यां दत्तदेव्यामुत्पन्ने
,, ११ [न परमभागवतेन महाराजाधिराज श्री]
,, १२ [चन्द्रगुप्तेन]

गुप्त सम्राटों के अन्य लेखों के अनुसार ही यह वंशावली भी है। परन्तु इसमें मार्के की बात यह है कि महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्त के पुत्र चन्द्रगुप्त तक समाप्त करके चन्द्रगुप्त के द्वारा किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के होने का वर्णन इसमें था। परमभागवत महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त ने अपने अनुरूप कौनसा कार्य इस कटरा केशवदेव की पुण्यभूमि पर किया होगा इसका अनुमान कर लेना कुछ कठिन नहीं मालूम होता। समस्त उत्तरापथ के राजाओं का उच्छेद करके जिनमें देवपुत्र शाहि शाहानुशाही शकमुरुण्ड भी शामिल थे (देखिए समुद्रगुप्त की प्रयागवाली प्रशस्ति)। विजयी समुद्रगुप्त ने मथुरा के राजा नागसेन को परास्त करके मथुरा को भी गुप्त साम्राज्य में मिला लिया था। उनके परम भागवत पुत्र ने अवश्य ही अपने नए विरुद को चरितार्थ करने के लिये यहाँ पर कोई धर्म सम्बन्धी विशेष कार्य किया। कटरा केशवदेव स्थान ही उस कार्य के लिये चुना गया। इस बात से हमें भागवत शिरोमणि विक्रमार्क चन्द्रगुप्त के देयधर्म का अनुमान करने में सहायता मिलती है। हमारी सम्मति में हिन्दू धर्म और संस्कृति का सब प्रकार से नवाभ्युत्थान करनेवाले सूर्य के समान तेजस्वी महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने—जिन्होंने अपने पराक्रम का मूल्य देकर मानों समस्त पृथिवी को मोल ले लिया था, अपनी राजाधिराजर्षि और परमभागवत इन नवोपात्त उपाधियों को अन्वर्थ करने के लिये पुराकाल से विश्रुत श्रीकृष्ण की जन्मभूमि के स्थान पर अवश्य एक भव्य

मन्दिर का निर्माण कराया। वह देवस्थान अत्यन्त विशाल और कला का एक अद्भुत उदाहरण रहा होगा। कटरे की तत्कालीन बौद्ध प्रतिमाओं से सूचित बौद्ध कला के समान ही ब्राह्मण मन्दिर की कला भी सर्वगुणसम्पन्न और उत्कृष्ट रही होगी। शिलालेख में अवशिष्टाक्षर 'श्रीसमुद्रगुप्तस्यपुत्रेण तत्परिगृहीतेन महादेव्यां दत्तदेव्या-मुत्पन्नेन' इन तृतीयान्त पदों से निकलनेवाली जिस ध्वनि के आधार पर हमने चन्द्रगुप्त के देयधर्म की कल्पना की है, उसका समर्थन भी एक प्रकार से मिल जाता है। कटरा केशवदेव से मिली हुई मूर्तियों से उपरोक्त अनुमान की पुष्टि होती है। अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये हम दो मूर्तियों का वर्णन करेंगे जो कटरा केशवदेव से ही प्राप्त हुई हैं। ये दोनों ही निस्सन्देह गुप्तकाल की ब्राह्मण कला में हैं, पहली राय बहादुर पं० राधाकृष्ण को सन् १९११—१२ में कटरा की खुदाई करते समय मिली थी। (म्युजियम नं. के. टी. २४३.) यह एक मन्दिर के द्वार का ऊपरी भाग है जिस पर जालमार्ग, कीर्तिमुख और सिंहमुखों की शृङ्खलाएँ हैं। हो न हो यह पत्थर केशवदेव पर बने हुए किसी ब्राह्मण मन्दिर का एक भाग है। यह सब प्रकार से ठेठ गुप्त कला का नमूना है।
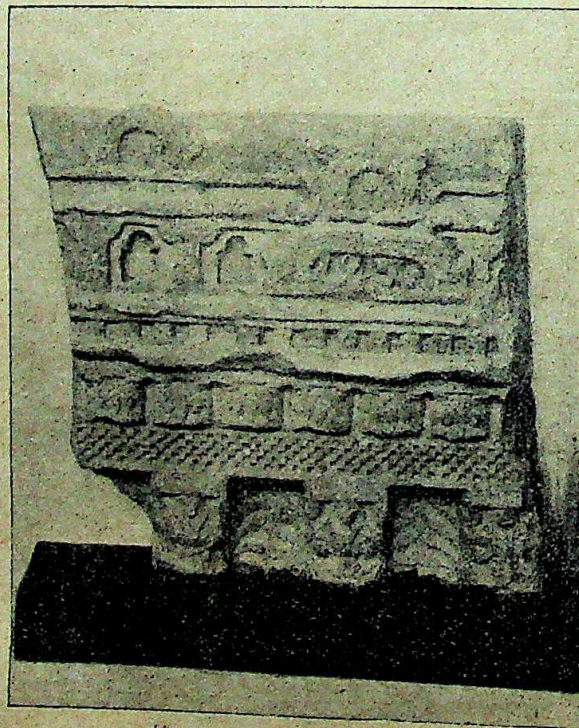
(K. T. 243)
गुप्तकालीन केशवदेव के मन्दिर का सिंहाकृति तोरण का एक भाग.

इससे भी अधिक निश्चयात्मक दूसरी मूर्ति गुप्तकालीन स्तम्भ का एक टुकड़ा है जो इसी वर्ष हमें कटरा केशवदेव के स्थण्डिल पर बसे हुए एक घर से मिली थी। (म्युजियम नं. २६५६.) यह दरवाजे की चौखट का बगली खम्भा या तमंचे का टुकड़ा है जिसके सामने की ओर कच्छप वाहन पर खड़ी हुई यमुनाजी की मूर्ति है। यमुना के दाहिने हाथ में पूर्णघट और बाँए हाथ में फूलों की डाली है। गुप्तकालीन केशविन्यास, कण्ठ में एकावली माला और सूक्ष्म विमलवस्त्र, इनसे स्तम्भ और मूर्ति के समय निर्धारण में सन्देह नहीं रहता। कच्छप वाहन पर आरूढ़ नदी की अधिष्ठात्री देवता का मथुरा से कितना घनिष्ट सम्बन्ध है यह भी अनुमान किया जा सकता है। पुरातत्त्व और काव्य दोनों इस बात के साक्षी हैं कि द्वार के पार्श्व स्तम्भों पर गङ्गा और यमुना की मूर्तियाँ चित्रित करने की प्रथा सर्वप्रथम हिन्दुत्व से अनुप्राणित गुप्तकालीन मन्दिरों में ही मिलती है। (देखिए, चन्द्रगुप्त द्वितीय की उदयगिरि गुफा का विष्णु मन्दिर) कालिदास की निम्नलिखितपङ्क्ति से इसी प्रकार का सङ्केत मिलता है—

मूर्ते च गङ्गायमुने तदानीम्
सचामरे देवमसेविषाताम्।
— कुमारसम्भवम् ७.४२

अर्थात् गङ्गा और यमुना अपने नदीरूप को त्याग कर (समुद्रगा रूप विषयेऽपि) मनुष्य विग्रह में चामर ग्राहिणी बनकर देव की सेवा करने लगीं।

उपरोक्त दोनों मूर्तियाँ इस बात के अकाट्य प्रमाण हैं कि गुप्तकाल में कटरा केशवदेव की भूमि पर एक अत्यन्त विशाल और भव्य हिन्दू मन्दिर का निर्माण हुआ। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के असमात लेख के साथ उसका सम्बन्ध दिखाते हुए हम यह दिखा चुके हैं कि गुप्त सम्राटों में भी परमभागवत महाराजाधिराज राजर्षि की यशगाथा से विश्रुत श्री चन्द्रगुप्त द्वितीय ने ही इस परमविशिष्ट धार्मिक कार्य का सूत्रपात किया होगा। हमारा विश्वास है कि भविष्य की खुदाई में इस मन्दिर के सम्बन्ध के अन्य प्रमाण भी अवश्य मिलने चाहिए। कम से कम यह तो प्रतीत होता है कि वर्तमान ऊँचे स्थण्डिल से भी नीचे जो कुर्सी है वह इसी मन्दिर की रही हो। उस कुर्सी के चतुर्दिक् नक्काशीदार गोले (Carved mouldings) दिखाई पड़ते हैं। वर्तमान कृष्ण चबूतरे से दस फीट नीची और चौड़ाई में उससे उत्तर की ओर लगभग बीस फीट निकली हुई पुराने मन्दिर की कुर्सी है, इस चौकी के चारों तरफ खुदाई करने से इस प्रश्न पर विशेष प्रकाश पड़ने की आशा है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय (३७५ से ४१३ तक) के बाद महाराजाधिराज कुमारगुप्त (४१३ से ४५५ ई० तक) और उसके बाद स्कन्दगुप्त का शासन हुआ। कुमारगुप्त के अन्तिम वर्षों में हूणों के आक्रमण प्रारम्भ हो गए थे

केशवदेव के गुप्तकालीन मन्दिर के द्वार का पार्श्वस्तम्भ जिस पर कच्छपवाहना यमुना की मूर्ति है।

पर गुप्तों की विजयिनी सेना के समक्ष वे ठहर न सके। स्कन्दगुप्त ने तो हूणों से समराङ्गण में लोहा लेकर अपने भुजदण्डों से मेदिनी को कम्पायमान कर दिया था।

हूणैर्यस्य समागतस्य समरे
दोर्भ्यान्धरा कम्पिता।
—भीतरी शिलालेख

गुप्तवंशक वीर सेनानी ने अपने विपुल पराक्रम से हूणों की धारा को रोकने के लिये तीक्ष्ण कुन्तप्रास और भालों की एक अभेद्य प्राचीर ही खड़ी कर दी थी। फल यह हुआ कि मथुरा के देवस्थान उस काल में सुरक्षित रह गए। हूणों की आँधी छठी शताब्दी के प्रारम्भ में समाप्त हो गई। हमें सन् ५५० ई० की बुद्ध मूर्ति में जयभट्टा के यशाविहार का वर्णन मिलता है, जिससे यह प्रगट होता है कि हूणों के बाद तक यहां बौद्ध विहार और मन्दिर अक्षुण्ण बने रहे। फाहियान ने मथुरा में (४०० ई०) तीन हजार भिक्षु, बीस विहार तथा छः स्तूपों को देखा है। उसके सवा दोसौ वर्ष बाद हर्ष राजा के राज्य काल में चीनी यात्री हुएनसाँग (६३०..६४५) भी मथुरा आया। उसने यहाँ दो हजार भिक्षु और पाँच ब्राह्मणधर्म सम्बन्धी बड़े देवालय देखे। हमारा अनुमान है कि इन मन्दिरों में एक मन्दिर कटरा केशवदेव का गुप्त कालीन मन्दिर भी होगा जो हूणों के बाद भी सुरक्षित रह गया था; परन्तु भिक्षुणी जयभट्टा की मूर्ति गुप्तमन्दिर से लगे हुए उत्तर पश्चिम के कोने में स्थित कुएँ में पड़ी मिली थी। जिससे यह ज्ञात होता है कि यशाविहार और उसके साथ के अन्य देवालय भी छठी शताब्दी के बाद किसी समय विध्वंसकारियों द्वारा नष्ट कर दिए गए।

इतिहास में मथुरा के आक्रमणों का जो वृत्तान्त मिलता है उससे तो यही मालूम होता है कि गुप्तकाल के अभ्युदय का प्रवाह महमूदगजनी के समय में आकर टूटा। १०१७ ई० में उसने केशवदेव के मन्दिर को आकर लूटा। अल्उत्वी जो महमूद का मीरमुन्शी था अपनी तारीख यामिनी में कटरा केशवदेव के विषय में लिखता है (ग्राउस साहब ने उसका अवतरण दिया है)—

"He saw a building of exquisite structure, which the inhabitants declared to be the handwork not of men but of Genii."

'अर्थात् शहर में सुल्तान ने एक इमारत देखी जिसे लोग देवताओं की बनाई हुई कहते थे।' वह आगे चलकर कहता है—

"In the middle of the city was a temple larger & finer than the rest, to which neither painting nor description could do justice. The Sultan thus wrote respecting it:—'If any one wished to construct a building equal to it, he would not be able to do so without expending a hundred million dinars, and the work would occupy two hundred years, even though the most able and experienced workmen were employed".

अर्थात् शहर के बीच में एक मन्दिर सबसे बड़ा और सुन्दर था। चित्र से या शब्द से उसका पूरा वर्णन असम्भव है। सुल्तान ने उसे देखकर लिखा कि अगर कोई ऐसी इमारत बनवाए तो लगभग दस करोड़ दीनार खर्च होंगे और बनने में दोसौ वर्ष लगेंगे।

महमूद का आँखों देखा वर्णन और उसके आधार पर किया हुआ अनुमान दोनों ही सत्य हैं। क्योंकि

महमूद और कटरा केशवदेव

गुप्तकाल से १००० ई. तक लगभग ६०० वर्षों की अवधि में केशवदेव का विराट् मन्दिर सँवारा और सजाया गया था। इस दीर्घ समय में वहाँ उसकी अतुल धन सम्पत्ति और सुवर्ण राशि एकत्र हो चुकी थी। वर्णन भी यथार्थ ही महमूद के मीरमुंशी ने किया है। बीस दिन की लूट में पाँच सोने की प्रतिमाएँ मिलीं, जिन में माणिक्य की आँखें जड़ी हुई थीं। उनका मूल्य ५० हज़ार दीनार था। एक और सोने की मूर्ति मिली जिसका वज़न ६८३०० मिष्कल या लगभग १४ मन था। इसमें करीब डेढ़ सेर का एक नीलम जड़ा हुआ था। चाँदी की सौ भारी भारी मूर्तियाँ सौ ऊँटों पर लाद कर ले जाई जासकीं। इस मेरु तुल्य राशि या कुबेर के कोष को जिसे देखकर लुटेरों की आँखें फट गई थीं और उन्होंने समझा था कि रत्नों की खान ही हाथ आगई, शनैः शनैः सञ्चय करने का श्रेय महावैभवशाली हिन्दू सम्राट् और धर्म प्राण प्रजाओं को था। लगभग छः सौ वर्षों तक वे निर्बाध रीति से मधुमक्खिका की भाँति इस कोष का सञ्चय करते आ रहे थे। अन्त में दण्ड-बल के क्षीण हो जाने से उन्हें उससे हाथ धोना पड़ा।

इसी आपत्ति काल में अनेकानेक बौद्ध और हिन्दू मूर्तियों को कुओं में फेंक दिया गया। मथुरा के कितने ही कुएँ इन मूर्तियों से पटे हुए मिले हैं। जयभट्टा की मूर्ति भी उसी समय केशवदेव के कुएँ में फेंकी गई होगी। अभी इस कुएँ में सफाई कराने से अन्य अनेक मूर्तियों के मिलने की आशा है। महमूद के कुछकाल के बाद शान्ति और व्यवस्था स्थापित होने पर मथुरा फिर आबाद हुई। गुप्तकालीन कुर्सी के ऊपर बनी हुई कुर्सी का मन्दिर महमूद के बाद किसी समय बना। उसका विध्वंस

सिकन्दर लोधी के हाथों [१४८८—१५१६] हुआ। उसके १२५ वर्ष बाद जहाँगीर के शासन काल में हिन्दुकुल के अभिमानी ओरछा के बुन्देले राजा वीरसिंहदेव ने करीब तैंतीस लाख रुपया लगाकर फिर से केशवदेव के विशाल मन्दिर का निर्माण कराया इस मन्दिर को १६५६ ई० के लगभग टेवरनियर और १६६३ में वर्नियर ने देखा था। टेवरनियर लिखता है—

बनारस और जगन्नाथ के बाद सब से प्रसिद्ध मन्दिर मथुरा का है। यहाँ का मन्दिर इतना बड़ा है कि वह छः कोस दूर से ही दिखाई पड़ता है। इसकी बड़ी कुर्सी अठ-पहल बनी है। मन्दिर के चारों ओर पत्थरों पर नक्काशी है जिनमें भाँति भाँति के जानवर खुदे हुए हैं। चित्रों की एक पट्टी जमीन से दो फीट ऊँची और दूसरी शिखर से दो फीट नीचे है। विशाल चबूतरे पर आधे में मन्दिर और आधे में जगमोहन बना है। बीच में एक बड़ा मण्डप है, मन्दिर में अनेक खिड़कियाँ और गोख हैं। मण्डप के भीतर बनी हुई जाली की दीवार के पास से टेवरनियर को पुजारियों ने मूर्ति का दर्शन कराया। उसने देखा कि मूर्ति काले पत्थर की बनी है और आभूषण वस्त्र पहने है। यही मूर्ति अभी तक नाथद्वारे के मन्दिर में स्थापित है। संक्षेप में हमारा अनुमान है कि इस मन्दिर की रचना वृन्दावन के गोविन्ददेवजी के मन्दिर के सदृश ही थी जो अकबर के समय में बना था।

यह मन्दिर १६६६ में औरंगजेब की कट्टरता का शिकार बना। उस समय मन्दिर के मण्डप और जगमोहन

औरंगजेब और कटरा केशवदेव

को विध्वंस करके सब मूर्तियाँ आगरे भेज दी गईं। मन्दिर की जो विशाल कुर्सी रह गई उसके पूर्वी भाग पर औरंगजेब ने मस्जिद बनवादी। मस्जिद के फर्श में दो देवनागरी लेख जड़े हुए हैं जिन में संवत् १७१३ (१६५६ ई.) और सं० १७२० [१६६३ ई०] खुदा हुआ है। मन्दिर का ही मसाला मस्जिद के काम में लाया गया। बहुत से खुदे हुए पत्थर अब भी उसकी चौकी में जा बजा लगे हैं। मस्जिद की पक्की चौकी १७२ फीट लम्बी और ८६ फीट चौड़ी है जिस पर मस्जिद की चौड़ाई ६० फीट तक है, पाँच फीट नीचे एक कची कुर्सी है जो लम्बाई और चौड़ाई में २६८ और २५८ फीट है। मस्जिद के पीछे करीब १७० फीट लम्बी मन्दिर की पुरानी कुर्सी पूरब पश्चिम है। उत्तर दक्षिण की सीध में उसकी चौड़ाई ६६ फीट है। इसमें दोनों तरफ १६-१६ फीट चौड़ा पुश्ता है जिसे सिकन्दर लोदी से पहले की कुर्सी की सीध में राजा वीरसिंहदेव ने बढ़ाकर परिक्रमापथ का काम देने के लिये बनवाया, इससे करीब दस फुट नीची गुप्त कालीन मन्दिर की कुर्सी है जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है।

औरंगजेब के बाद कटरा केशवदेव मराठों की अमलदारी में आया। किंवदन्ती है कि मराठों ने केशवदेव के प्राचीन मन्दिर को कृष्ण जन्मभूमि की मान्यता के कारण कृष्ण चबूतरे पर फिर से बनवाना चाहा। मथुरा के पण्डितों ने उसके लिये अपनी सम्मति भी दे दी; परन्तु काशी के पण्डितों के मतभेद के कारण वह विचार स्थगित हो गया। सन् १८०३ में मराठों की पराजय के बाद मथुरा अंग्रेजी राज्य में आया उस समय कटरा केशवदेव की भूमि को ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने नीलाम पर चढ़ा कर राजा पटनीमल के नाम तमाम-कटरे की बोली छोड़ दी। कृष्णजी की जन्मभूमि या कृष्ण चबूतरे का अधिकार पाकर राजा पटनीमल की जन्म पर्यन्त यह अभिलाषा रही कि फिर से केशवदेव के मन्दिर का निर्माण करावें परन्तु अपने जीवनकाल में वे इसे पूर्ण नहीं देख सके, तब से अबतक उस भूमि पर राजा पटनीमल के वंशजों का अधिकार चला आता है। कई बार सरकारी अदालतों से भी इसी प्रकार के निर्णय हुए हैं।

इसी वर्णन से यह ज्ञात हो जाता है कि कटरा केशवदेव का स्थान पुरातत्त्व की दृष्टि से लगभग ढाई हजार वर्ष प्राचीन अवश्य है। साहित्यिक सामग्री के आधार पर कृष्ण को जन्म लिए हुए ५००० वर्ष हुए। स्थानीय परम्परा इस बात को सदा से मानती रही है कि कटरा ही प्राचीन कृष्ण जन्मभूमि है। उसका समर्थन इस बात से होता है कि ऐतिहासिक काल में अनेक बार कृष्ण या विष्णु के विशाल मन्दिरों का बारम्बार इसी स्थान पर निर्माण हुआ।

E. 6. चतुर्भुजी गुडाकेश विष्णु की गुप्तकालीन मूर्ति
(मथुरा सङ्ग्रहालय)

'It is certain that an earlier shrine, or series of shrines, on the same site & under the same dedication, had been famous for many ages'

(Growse, p. 84).

अर्थात् कई युगों से केशवदेव के अनेक मन्दिरों का निर्माण इसी भूमि पर हुआ। चन्द्रगुप्त द्वितीय के मन्दिर का उल्लेख हम कर ही चुके हैं। गुप्त समय की कई सुन्दर मूर्तियाँ इस समय मथुरा के सङ्ग्रहालय में सुरक्षित हैं। उनमें से एक चतुर्भुजी विष्णु की मूर्ति है जो सुन्दरकिरीट, मकरिका, कुण्डल, अङ्गद, वैजयन्ती, यज्ञोपवीत, स्थूलमुक्ताकलाप, चन्द्रहार, मेखला, और सूक्ष्म परिधानीय धोती पहने हुए है। यह मूर्ति गुप्तकालीन विष्णु मूर्तियों में सर्वोत्तम कही जा सकती है। दुर्भाग्य से इसके प्राप्ति स्थान का कुछ उल्लेख अजायबघर के पुराने रजिस्टर या रिपोर्टों में दर्ज नहीं मिलता। इस मूर्ति का नम्बर ई० ६ है। डा० वोगल ने अपनी सूची में इस पर यथोचित प्रकाश नहीं डाला। इस मूर्ति से बिल्कुल मिलती हुई विष्णु की एक मूर्ति कटरे की पूर्वी दीवार के सहारे एक चबूतरे पर स्थापित है। बहुत सम्भव है कि अजायबघर वाली मूर्ति भी कटरे की पुराई खुदाई में या उसी स्थान पर किसी जगह मिली हो। उस हालत में इस मूर्ति का सम्बन्ध गुप्तकालीन मन्दिर के साथ ही रहा होगा।

विष्णु की मूर्तियाँ

विष्णु की मूर्तियों का आदि रूप हमको कुषाण काल में मिलता है। कुषाण काल से पहले की एक भी विष्णु मूर्ति अभी तक मथुरा या भारतवर्ष में अन्यत्र कहीं नहीं मिली है। ऐसा मालूम होता है कि मथुरा के भक्ति प्रधान क्षेत्र में ही सर्वप्रथम विष्णु मूर्तियों का निर्माण हुआ। पुरातत्त्व विभाग की साक्षी भी इसीके अनुकूल है। कुषाणकाल में शिव मूर्तियों की भी अधिकांश प्रतिष्ठा हुई। वेम कैडफाइसिज कनिष्क

कुविष्क आदि सम्राट् परम माहेश्वर थे। उनके सिक्कों पर शिव और वृष की मूर्तियाँ पाई जाती हैं। अन्तिम सम्राट् वासुदेव के नाम से ही विदित होता है कि उसके राज्यकाल में विष्णु वासुदेव की पूजा प्रबल हुई। सम्भव है कुषाण युग अर्थात् ईस्वी प्रथम और द्वितीय शताब्दियों में कोई नया विष्णु मन्दिर बना हो। अभी तक कुषाण काल के एक शिलापट्ट पर वसुदेव के कृष्ण को लेकर यमुना पार करने का दृश्य अङ्कित पाया गया है। (मथुरा संग्रहालय न. १३४४.) यह शिलापट्ट कुषाणकालीन किसी ब्राह्मण मन्दिर में लगा हुआ होगा।

भगवान् वासुदेव के चतुःशाल महास्थान का तोरण जिस पर सुदास महाक्षत्रप के समय का (1st cent B.C.) लेख है।

इससे पहले प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व में महाक्षत्रप सुदास के समय में मथुरा में भगवान् वासुदेव का एक महास्थान अवश्य था। उसके प्रमाण-स्वरूप सुदास का तोरणलेख मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। भारतवर्ष में अब तक के मिले हुए संस्कृत लेखों में भगवान् वासुदेव के महास्थान से सम्बन्ध रखनेवाला यह लेख सबसे पुराना है—

पङ्क्ति ६. वसुना भगव (तो वासुदे)
७. वस्य महास्थान···(चतुः शा)
८. ···लं तोरणं वे (दिकाः प्रति)
९. ष्ठापितो प्रीतो भ (वतु वासु)
१०. देवः स्वामिस्य (महाक्षत्र)
११. पस्य शोडास (स्य)
१२. सम्वर्तयाताम्।

अर्थात् भगवान् वासुदेव के महास्थान में चतुः शाल तोरण और वेदिका वसु के द्वारा स्थापित की गई। वासुदेव प्रसन्न हों, स्वामी महाक्षत्रप सुदास [शोडास] का राज्य स्थायी हो।

इस तोरण लेख का प्राप्ति स्थान भी सन्दिग्ध है। यह नगर से पूर्व की ओर एक कुएँ में से पं० राधाकृष्ण को मिला हुआ बताया जाता है। करीब ८ फीट लम्बे तोरण का कुएँ में गिरकर साबित रहना सम्भव नहीं मालूम होता। हमारा अनुमान यह है कि भगवान् वासुदेव का महास्थान कटरा केशवदेव में ही होना चाहिए। शुङ्ग काल में और उसके आसपास नगरी में वासुदेव और सङ्कर्षण के मन्दिरों का लेख और बेसनगर में गरुडध्वज सम्बन्धी लेख मिल चुके हैं। मथुरा में भी उसी प्रकार के लेख की प्राप्ति बहुत स्वाभाविक है। चूंकि कटरा ही अत्यन्त प्राचीन काल से कृष्ण जन्मभूमि की तरह प्रसिद्ध रहा है अतएव कृष्ण मन्दिर का पुरातन स्थान यहीं होना चाहिए। इस प्रकार सम्भावना यही है कि रायबहादुर पं० राधाकृष्ण को यह महत्वपूर्ण लेख कटरे से ही प्राप्त हुआ था। शुङ्गकाल में मथुरा एक अत्यन्त समृद्धिशाली नगरी थी। भाष्यकार पतञ्जलि ने लिखा है—

'सांकाश्यकेभ्यश्च पाटलिपुत्रकेभ्यश्च
माथुरा अभिरूपतरा' इति। सूत्र ५.३.५७

अर्थात् सांकाश्य (वर्तमान संकिसा) और पाटलिपुत्र

(पटना) के निवासियों से भी मथुरा के रहनेवाले अधिक सुन्दर और समृद्ध हैं। इस समृद्धि काल में ब्राह्मणत्वा-भिमानी शुङ्ग नृपतियों के साम्राज्य में मथुरा सम्मिलित थी। जब अन्यत्र वासुदेव के मन्दिर बने तब मथुरा में भी उनका बनना अनुमान किया जा सकता है। विशेषतः जब कि यही स्थान भागवत सम्प्रदाय का प्राणभूत केन्द्र था। वराहपुराण में— न केशव समो देवः न माथुर समो द्विजः केशव के समान और कोई देव माहात्म्ययुक्त नहीं है और माथुर ब्राह्मणों के समान और ब्राह्मण नहीं हैं। कृष्ण-जन्मभूमि होने के कारण ही केशवदेव को यह गौरव प्राप्त हुआ समझा जा सकता है। इस प्रकार ढाई सहस्र वर्षों का इतिहास कटरा केशवदेव का प्राप्त होता है। इतिहास और पुरातत्त्व दोनों की सम्मिलित साक्षी से हमारे अनुमानों की पुष्टि होती है कि यह स्थान ही पुरातन कृष्ण जन्मभूमि है और उसका वर्तमान कृष्ण चबूतरा नाम ठीक (अन्वितार्थ) है।

[कृष्णभूमि की वर्तमान अवस्था—

राजा पटनीमल पटना के महाराज ख्यालीराम बहादुर के पौत्र थे। यह महाराज ख्यालीराम विहार के नायब सूबेदार थे। इनका सविस्तर वृत्तान्त बङ्गाल और विहार के इतिहासों में मिलता है। प्रतापी नायब महाराज बहादुर के सुयोग्य पुत्र राजा पटनीमल भी बड़े प्रतापी थे। छोटेपन में ही वे अपने पिता से अप्रसन्न होकर लखनऊ चले गए थे और राजनीतिक कामों में भी बड़ा भाग लिया था। उन्होंने मथुरा वृन्दावन में दीर्घ विष्णु का मन्दिर, शिव तालाब, कुञ्ज आदि आगरे में शीश महल, पीली कोठी आदि, दिल्ली में आलीशान मकानात, काशी में कीर्त्तिवासेश्वर का मन्दिर, हरतीर्थ, कर्मनाशा का पुल आदि सैकड़ों ही कीर्ति के अतिरिक्त एक करोड़ की सम्पत्ति छोड़ी; और इनका पुस्तकालय तथा औषधालय भी बहुत प्रसिद्ध था (भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित "पुरावृत्त सङ्ग्रह" देखो।)†

इन्हीं प्रतापी राजा साहब की कीर्ति मथुरा की कृष्ण-जन्मभूमि है और उस कीर्ति की रक्षा उनके यशस्वी वंशधरों ने आजतक की है। राजा पटनीमल बहादुर के पौत्र थे राय नृसिंह दास। और उनके पौत्र (तथा राय प्रह्लाददासजी के पुत्र) हैं काशी के प्रसिद्ध कलाविद् और कवि राय कृष्णदासजी। वह कृष्णजन्मभूमि अब आपही के अधिकार में है। आप प्राचीन संस्कृति और कला के अनन्य उपासक हैं। आप उस पुण्यभूमि पर फिर भी कृष्ण का ही स्मारक देखना चाहते हैं।

हम भी कृष्ण के प्रेमी हैं, उन्हीं की गीता और उन्हीं के गीताधर्म की उपासना करते हैं। हमारी इच्छा है कि वहाँ कृष्ण का मन्दिर बने और उस परमधाम का नाम हो **गीतामन्दिर।**

क्यों? क्योंकि गीता भगवान् का हृदय है। गीता भारतीय साहित्य का हृदय है। गीता हमारा हृदय है। गीता में ही हमारा हृदय रहता है। गीता में ही हमारे कृष्ण रहते हैं। 'हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति'।

हम और हमारे विश्व के सभी बन्धु उस विश्ववाणी गीता को मानते हैं अतः गीतामन्दिर कृष्ण का मन्दिर होगा। सरस्वती का मन्दिर होगा, विश्वभारती का मन्दिर होगा।

गीता भगवान् का आत्मचरित है। उस जन्मभूमि में उसी आत्मचरित सम्बन्धी सम्पूर्ण उपलब्ध साहित्य का संग्रह रहेगा। आशा है, सभी कृष्ण और गीता के प्रेमी इस ओर ध्यान देंगे और हम लोगों से पत्र व्यवहार करेंगे।

उत्तर की प्रतीक्षा में—सं०, गीताधर्म काशी।
तथा मंत्री अखिल भारतीय गीतासम्मेलन।]

† देखो भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द का जीवन चरित्र (श्रीराधाकृष्ण दास द्वारा लिखित) पृ० २८-२९

PLAN. OF KRISHNA CHABOTRA AT KATRA KESHVA DEVA.
25'
22'
30'
21'
7'
21'
7
21'
WELL
OLD PLINTH OF GUPTA PERIOD TEMPLE WITH CARVED MOULDING
OPEN PLATFORM OF THE MOSQUE
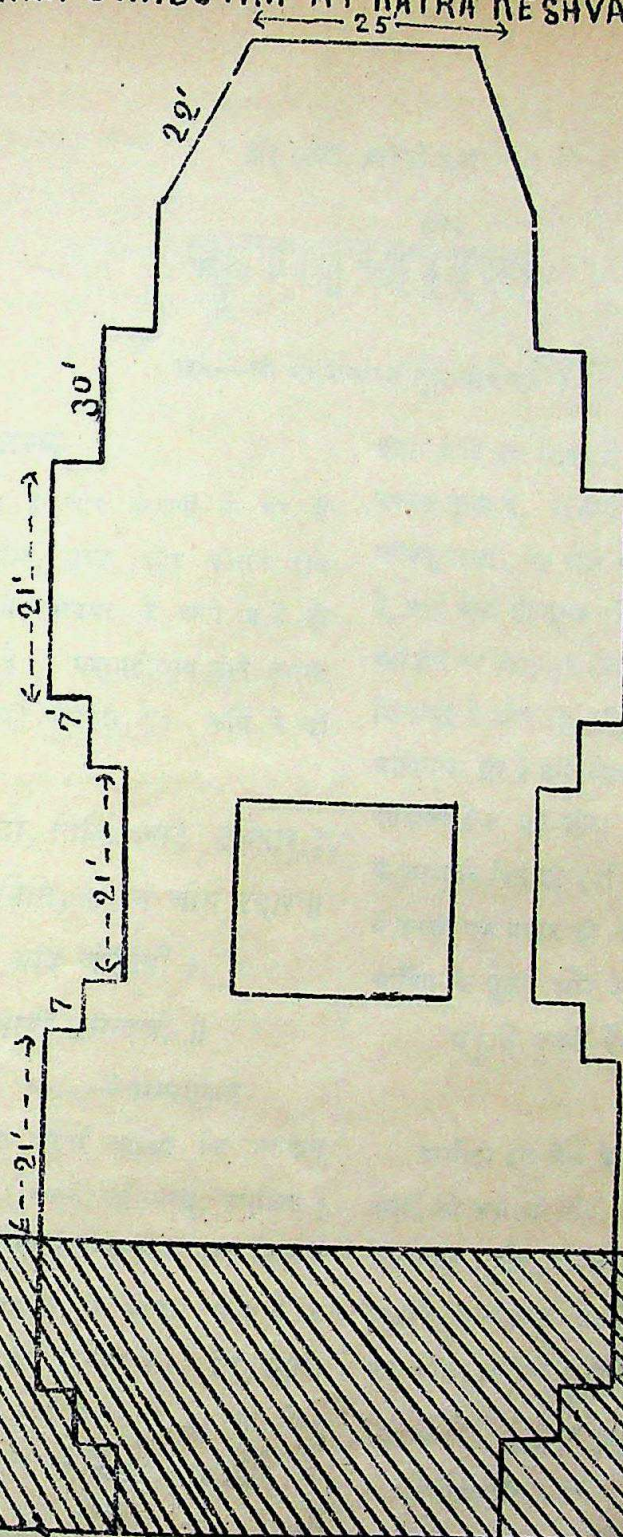
श्री कृष्णः शरणं मम

कृष्णचरित

(ले०—श्री भगवान्दास गुप्त बी० ए०)

जन्म

भादों का महीना आता है और वैष्णवों के घर में बधाई होने लगती है। झाँझ, मृदङ्ग, और कीर्त्तन होने लगते हैं। 'कृष्ण पक्ष' में चन्द्रमा के आधे होते ही चारों तरफ धूम मच जाती है। महामहोत्सव होने लगता है। यह कृष्णपरमात्मा की जयन्ती है। कवि ने यों वर्णन किया है

संवत्सरिक सुहावन भादों, तिथि आठैं रविवार।
कृष्णपक्ष रोहिणी अरध निसि, हर्खन जोग उदार॥
नन्दजी तुम्हारे घर को आद जोतिषी।
पुत्र भए सुनि आयो नन्दजी॥

—परम्पराप्राप्त

संवत्सर का प्रमाण यों करना चाहिए कि भगवान् के जन्म की तीन पीढ़ी बाद (अर्जुन, अभिमन्यु, परीक्षित) कलियुग आया था; इन तीन पीढ़ियों के लिये मोटे हिसाबों १०० वर्ष रखिए। और पञ्चाङ्ग से मालूम होता है कि कलियुग के ५०३७ वर्ष अब तक हो चुके हैं। इस प्रमाण से लगभग ५१०० वर्ष श्री कृष्णजन्म को हो गए हैं। "विरोधी" १ नाम के संवत्सर को आपके जन्म होने से प्रतिष्ठा मिली है।

श्री कृष्ण का जन्म कारागार (जेल) में हुआ था, पर इस दुर्घटना से इनके कार्य में कोई विघ्न न पड़ा—यह हमारे लिये एक शिक्षा है। दिव्यात्माओं के लिये संसारी बन्धन तुच्छ हैं, वे उनके कार्य को रोक नहीं सकते, उनकी जन्मकुण्डली, जो पहले से तैयार रहती है, वह पूरी होती है, चाहे कैसा ही दुःख पड़े। पाठक देखेंगे कि भगवान् के आगमन का दृश्य हमें शिक्षा देता है, उनके गमन का समय शिक्षाप्रद है और इस मणिमाला का एक एक दाना (सूत्रे मणिगणा इव) हमें शिक्षा, शान्ति, ज्ञान और हृदयबल देनेवाला है। एक छोटा सा उदाहरण लीजिए। भगवान् के जन्म के दिन ही दुर्गा या शक्ति ने जन्म लिया था। वे उनकी एक प्रकार की बहिन भी थीं। इससे समझना चाहिए कि पुरुष और शक्ति का चोली-दामन का साथ है।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।

—गी० १३।१९

इसलिये इस लेख में हम कृष्णजीवन के केवल उन्हीं प्रसंगों को लेंगे जो हमें आगे बढ़ानेवाले हैं, ज्ञान, विज्ञान सिखानेवाले और मन को शुद्ध और दयावान् करनेवाले हैं; क्योंकि कृष्णकथा लिखनी अनावश्यक है। उसे एक एक बच्चा जानता है, बल्कि उसकी अति सी हो गई है।

कृष्णनाम

अब कुछ कृष्णनाम पर विचार करना चाहिए। कृष्ण शब्द का अर्थ आकर्षण करने का है। जो अपनी और दूसरों को आकर्षित कर सके या खींच सके वही कृष्ण है। यह भी एक भगवान् के जीवन का उपदेश है। जो उनको देखता था मोहित हो जाता था। इस आकर्षण में सहायता देनेवाला संगीत है। भगवान् की वंशी थी तो छोटी, पर उसकी ध्वनि मनुष्य तो

१ कृष्णजन्म के संवत्सर का नाम किसी के मत से 'विरोधी' है और किसी के मत से 'प्रजापति' है।

क्या पशु-पक्षी तक पर प्रभाव डालती थी। और सबसे बड़ा आकर्षण तो यह था कि भगवान् काम, क्रोध, लोभ, मोहादि दोषों से रहित थे। इस विषय में उचित स्थान पर लिखेंगे। पाठक जान लें कि कृष्ण शब्द का अर्थ जो "काला" समझा जाता है यह तो इसलिये है कि भगवान् काले थे; इसी से कृष्ण शब्द का अर्थ संग के प्रभाव से "काला" हो गया। यहाँ तक कि—

संग प्रभाव न छूटत कबहूँ श्याम के संग करे।
गौर रङ्ग की बनी राधिका श्यामा नाम परे॥

राग का वृत्तान्त तो वंशी कह रही है, अब रङ्ग की कथा सुनिए—

भगवान् का रङ्ग काला नहीं था। बल्कि नीला, आकाश का था। यह रङ्ग पृथिवी के ऊपर—अन्तरिक्ष के भी ऊपर आकाश या शून्यत्व का है, जो काम, क्रोध, लोभ, मोह पक्षपात के प्रभाव से, मेघों की हलचल से बदलता नहीं, यह इन बादलों से बहुत ऊँचा, उदासीन, उदासीन है।

यह रङ्गवृत्तान्त प्रसंगतः आ गया था, अब नाम पर विचार कीजिए—

राम न सकहिं नामगुन गाईं।

नाम की महिमा बड़ी है, पर कृष्णनाम जप-भजन आदि में कुछ कठिन पड़ता है। इसमें दोनों युक्ताक्षर होने से और अन्त में "ण" होने से साधारण लोग ठीक उच्चारण नहीं कर सकते और देश देश में इनके अनेक रूप हो गए हैं। हमारे देशवाले "किसुन", पंजाबी—कश्मीरवाले "किशन", बंगाली "किष्टो", गुजराती "करसन", द्राविड़ी, तिलंगी "कृशनन" इत्यादि। हाँ, दक्षिण में उच्चारण पर विशेष ध्यान होने के कारण "कृष्ण" ही चलता है। यही नहीं, बल्कि जप के लिये कृष्ण के दूसरे नाम "हरि, माधव, नारायण, गोविन्द, भगवान्" विशेष काम में लाए जाते हैं।

कृष्णचरित्र के ग्रन्थों में भी, जिनका वर्णन आगे चलके किया जायगा, ऐसा ही है। विष्णुसहस्रनाम के हजार नामों में मानों कृष्णनाम का कोष तैयार है।

सुगम नाम

मुझे तो सबसे सुगम राम नाम है। यह दो एकहरे अक्षरों का है जो जपने में सहज है। मैंने श्वास प्रश्वास के संग इसको मिला दिया है, साँस लेते जप चलता है, जब साँस नीचे जाती है तब "राम", फिर जब ऊपर आती है तब भी "राम"। मुझे तो माला-सुमिरनी की आवश्यकता भी नहीं पड़ती, बल्कि माला की गति द्वारा नाम से ध्यान बँट जाता है। फिर माला हुई तब उसके लिये गोमुखी चाहिए और इसी तरह गीता आदि का परिवार बढ़ता है। भाई सीतारामजी कहते हैं कि बिना माला का जप तामसिक होता है, पर मेरा अनुभव तो ऊपर दिए अनुसार है। आशा है कि पाठक इस जप का अभ्यासकर इससे लाभ उठावेंगे।[१]

अवतार

अवतार शब्द का अर्थ है उतरना। विष्णुलोक से उतरकर भगवान् का इस लोक में मनुष्यदेह में आना—यही अवतार है। "सम्भवामि युगे युगे" मैं युग युग में जन्म लेता हूँ।" "तब प्रभु लेहिं मनुज अवतारा।"

इस सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। विष्णुपुराण में लिखा है कि कृष्ण, विष्णु के एक बाल थे, भागवत में भी लिखा है कि कृष्ण, विष्णु के सिर के एक बाल थे और बलराम दूसरे बाल। एक सफेद, दूसरा काला "सितकृष्ण केशौ।" विष्णु के बाल बुढ़ापे से नमक-मिर्च हो गए थे, और दूसरी जगह लिखा है कि "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" कृष्ण विष्णु के पूर्ण अवतार थे। यों तो ये वाक्य भी हैं—

"सृष्टि के पहले सारा संसार शून्यमय था। उस

१ यह 'अजपाजप' का ही एक रूप है। सन्त लोग ऐसे जप को सबसे बड़ा मानते हैं। इसकी महिमा तो करने से ही मालूम हो सकती है—सं०।

समय श्री कृष्ण सृष्टि करने के लिये उद्यत हुए।" "यह सारा संसार श्री कृष्णमय ही है", "कृष्ण का शरीर नित्य है और उसमें से ज्योति निकलती है।" "उपनिषदों में जिसका ब्रह्मरूप से वर्णन किया गया है, वह कृष्ण के शरीर की ज्योतिमात्र है"। इस वाक्य में कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जिसका जो इष्टदेव है वह उसके लिये सर्वोत्तम शिरोमणि है, "जिसका ब्याह उसका गीत" कहावत ही है। और सच तो यों है कि यह अवतार सिद्धान्त का विषय बड़ा जटिल ही नहीं, बल्कि कण्टकमय है और इस पर विशेष ध्यान देना निरर्थक है। मैं इस कथा को ऐसी रीति से लिखूँगा कि सब पक्षवाले इससे लाभ उठावें—जो लोग कहते हैं कि कृष्ण नाम का कोई पुरुष हुआ ही नहीं वे समझें कि कथासरित्सागर पढ़ रहे हैं, जो लोग कृष्ण को एक ऐतिहासिक व्यक्ति समझते हैं, वे जान लें कि "शिवाजी की जीवनी" पढ़ते हैं। अवतार माननेवाले श्रद्धा और भक्ति से पढ़ें—

जाकी रही भावना जैसी।
हरि मूरति देखी तिन तैसी॥

कृष्णचरित्र के ग्रन्थ

अब चलते चलते कृष्णचरित्र के ग्रन्थों का अवलोकन कर लेना चाहिए; क्योंकि आगे चलके उन्हीं का प्रमाण लेना पड़ेगा—यों तो इस विषय पर साहित्य अथाह है। भला जहाँ शृङ्गार रस भरा हो (कुछ लोग तो कहते हैं कि शृङ्गार रस ही कविता है), तिस पर परकीया नायिकाओं का जमघट हो, भक्ति का सहारा हो, मोक्ष की आशा हो (दोनों हाथ लड्डू), तो फिर क्यों न तद्विषयक साहित्य लिखे जायँ! प्रायः प्रत्येक कवि, भक्त, साधु, महात्मा, भिक्षुक, ने इस पर कहा और याद रखा है, पर

श्रीमद्भागवत

इसका सब से प्रसिद्ध और प्रचलित ग्रन्थ है। इसकी कथा, सप्ताह इत्यादि सभी जगह बड़ी श्रद्धा-भक्ति से होती है—द्रविड़ देश में तो कथा कहनेवाले व्यासों को भागवतावतार ही कहते हैं—इसमें प्रायः २४००० श्लोक हैं और वेदव्यास के कहे हुए हैं, जिनके विषय में पूर्वार्द्ध में लिख चुके हैं। कथा यों है कि व्यासजी पुराण और इतिहास लिख गए, पर उनको शान्ति और आनन्द न हुआ—तब नारदजी ने उन्हें सलाह दी कि आपने जितने प्रसंग लिखे हैं उनके भीतर का जो तत्त्व है, जिसके यह सब रूप रूपान्तर हैं, उस ईश्वर के अकेले चरित्र का एक ग्रन्थ लिखिए, तब आप को शान्ति होगी। तब व्यासजी ने भागवत लिखकर शान्ति प्राप्ति की।

आजकल के विज्ञानशास्त्रियों की भी ठीक यही दशा होती है। विज्ञान के तत्त्वों में (कोई पाँच मानता है, कोई पचास) और घटनाओं की भूलभुलैया में भटकते रहते हैं; तब अन्तर्यामी ब्रह्मरूपी नारद उन्हें सुझाता है कि इन सब अनेकरूपी सिनेमा चित्र में कोई एक अनादि, अक्षर, अनन्त तत्त्व है, तब उनको शान्ति होती है।

पर व्यासजी को तो हृदय की दाह ठंढी करनी थी, इसलिये उन्होंने भक्ति का श्रोत (सोता) जितना नारदजी ने कहा था, उससे अधिक वेगवान् कर दिया और ऐसा स्नान किया कि कभी कभी जल उनके सिर के ऊपर ही हो गया।

श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध (कृष्णावतार) का भाषानुवाद पहले प्रेमसागर के नाम से श्री लल्लूजी लाल ने करके छपाया था। अब तो पूरा ग्रन्थ कई जगह छपा है। कोई सुखसागर, कोई शुकसागर, कोई शुभसागर नाम धरकर अदालतों की आँख में धूल झोंकते हैं। इनसे हिन्दी प्रेमियों को सुविधा तो हुई है पर सबों ने अपनी ओर से कुछ न कुछ बढ़ाया है, जो अनुचित है।

कृष्णचरित्र का आध्यात्मिक रूप गीता है। वह भी व्यास की कही है। जैसे रामावतार का आध्यात्मिकरूप योगवासिष्ठ है। कृष्ण का कुलवर्णन हरिवंश में है, जैसे रामचन्द्र का कुल वर्णन रघुवंश में। व्यास के कहे विष्णुपुराण और देवीभागवत में भी कृष्ण की कथा आई है और

गर्गसंहिता नाम का एक ग्रन्थ है, उसमें भी है। पर अद्भुत ग्रन्थ इस विषय का जयदेव कवि का गीतगोविन्द है। इसकी ध्वनि तो सुननेवाले को मुग्ध कर देती है। ऐसा जान पड़ता है कि आपके सामने झाँझ, मृदङ्ग, सितार बज रहे हैं और कीर्तन हो रहा है, संगीत भी ऐसा जो सब को प्रसन्न करे, सामवेद के ऐसा प्राचीन नहीं जो यदि मैं सुनूँ तो यह जान पड़े कि भैंस के आगे बीन बजी। अब एक उदाहरण पढ़िए—

धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली।
गोपपीनपयोधरमर्दनचंचलकरयुगशाली॥

इसका अर्थ न दिया जायगा; क्योंकि गीतगोविन्द में श्रृङ्गाररस ऐसा कूट कूट कर भरा है कि उसका अर्थ थोड़ी अवस्थावाले लोगों को समझने का निषेध है। हाँ, पुस्तक के अन्त में दसों अवतारों का वर्णन बड़े ही मधुर स्वर में दिया है जिसका मूल और अर्थ दोनों हर्ष और लाभ दायक हैं।

उदाहरण—*निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्।*
सदयहृदयदर्शितपशुघातम्।
केशव धृतबुद्धशरीर।
जय जगदीश हरे।

हे केशव, तुम बुद्ध का शरीर धरकर यज्ञ का विधान करनेवाली श्रुतियों (वेदों) की निन्दा करते हो; क्योंकि तुम्हारे सदय हृदय ने उनमें पशुओं की हिंसा दिखलाई है। हे जगदीश, हे हरि, तुम्हारी जय हो।

अब भाषा में देखना चाहिए, शुकसागर, सुखसागर तो आ ही चुके हैं। चौथा लीजिए सूरसागर, सूरदास भक्त का नाम किसने न सुना होगा—इन्होंने भगवान् का चरित्र फुटकर भजनों में गाया है। कहा जाता है कि वे एक लाख हैं। साठ हजार उनके लिखे हैं और चालीस हजार कृष्ण ने स्वयं लिख दिए थे। इनकी कविता शक्ति दैवदत्त थी। इनके पद को पढ़कर ऐसा कौन है, जो मुग्ध न हो जायगा। ये तुलसीदास के समकालीन थे और उनके मित्र और मिलनेवालों में थे—इन दोनों की तुलना भी की जाती है। दो महानुभावों की तुलना करना—कौन बड़ा है कौन छोटा इस पर विचार करना, तुच्छबुद्धि का काम है, पर दोनों को कैसे अवसर मिले थे, इस पर अवश्य विचार करना चाहिए। कहाँ राम मर्यादास्वरूप धनुष-बाण हाथ में लिए—

'एक बार कालहुं सन लरहीं।'

"ल" की जगह "म" भी ठीक रहेगा।

'जिन सपने परनारि न हेरी॥'

और पातिव्रत का अवतार—सीता, सत्याग्नि में प्राण हवन करनेवाली—

"मिलइ न पावक मिटहिं न शूला।"

यह तो तुलसीदासजी के नायक और नायिका हुईं अब सूरदासजी को उन्हीं के शब्दों में पढ़िए—

'आज हरि नैन उनींदे आए।
अञ्जन अधर ललाट महावर नैन तंबोल खवाए॥'

पाठक देखेंगे कि सोने-तांबे का अन्तर है, सोना पाकर उसके सुन्दर सुन्दर भूषण बना देना कठिन तो है, पर तांबें में दिव्यशक्ति का रसायन मिलाकर पहले उसको सोना बनाना और फिर उसके मुग्ध करनेवाले गहने बनाना सूरदास ही का काम है।

इनका उद्धव-गोपी-प्रसंग बड़ा ही मनोहर है। पाठक जानते हैं कि उद्धव बड़े ज्ञानी और कृष्ण के भक्त थे और इस बात का उन्हें घमंड भी था—कृष्ण को घमंड से बड़ी घृणा थी और गोपियों को संदेश भी भेजना था सो उन्होंने "एक पंथ द्वै काज" किया। उद्धव को दूत बनाकर गोपियों के पास योग सिखाने को भेज दिया। वहाँ जाकर उन्होंने गोपियों की ऐसी अविचल भक्ति देखी कि उनका सारा ज्ञान और भक्ति का गर्व भूल गया—"चौबे चले छब्बे होने आओ दूबे जी पालागें" हो गया—यही

नहीं, गोपियों ने उनको ऐसा बुद्धू बनाया कि मुँह बंद हो गया। सूरदास की कविता इस प्रसंग पर अद्वितीय है। एक उदाहरण दिए बिना जी नहीं मानता।

उद्धव कारे सबै बुरे।
कारेन की परतीति न कीजे, बिष के बुझे छुरे।
काली त्रास खाइ खगपति की, जमुना आइ दुरे॥
जब हरि कृपा कीन काढ़न की, तब फन फूँकि खरे।
(५) कोयल के सुत परम प्रीति करि, पाले अंक भरे॥
(६) जाइ मिले परिवार आपने, एहि विधि काग छरे।
मधुकर गूँज करैं कमलन पर, माते मदन भरे॥
लै सुवासि अनतै उड़ि बैठे, ऐसे कुटिल खरे।
हमकों जोग भोग कुबरी कों ऐसी मतिहि हरे।
'सूर' श्याम मधुपुरी सिधारे ब्रजवासी बिसरे॥

देखिए (५) और (६) पङ्क्तियों में कृष्ण का ब्रज-जीवन और त्याग कैसा दिखाया है।

कृष्णसमय की व्यवस्था

अब देखना चाहिए कि कृष्ण के समय में संसार की क्या दशा थी। सतयुग और त्रेता पितृलोक को सिधार गए थे और द्वापर वाणशय्या पर पड़ा था। प्रत्येक युग का धर्म, रहन-सहन, उपासना जुदा जुदा थे।

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे।
अन्ये कलियुगे नॄणां युगह्रासानुरूपतः॥

—मनु १।८५

इन युगों का वर्णन बड़ा ही सुन्दर तुलसीदास के शब्दों में नीचे लिखे अनुसार है—

कृतयुग सब योगी विग्यानी। करि हरिध्यान तरहिं भवप्रानी॥
त्रेता विविध यज्ञ नर करहीं। प्रभुहिं समर्पि करम भव तरहीं॥
द्वापर करि रघुपति पदपूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा॥
कलियुग केवल हरिगुनगाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥
कलियुग योग न जतन न ज्ञाना। एक अधार रामगुन गाना॥
कलिकर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुण्य होहि नहिं पापा॥
दोहा—कलियुग सम युग आन नहिं जो नर कर विस्वास।
गाइ राम-गुनगन-विमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

इसके पहले तुलसीदास ने दस दोहा कथा में कलियुग के नाम कल्पध्वनि की है। इन्हीं पर क्या, यह तो एक धार्मिक समाज का स्वभाव हो गया है कि बीते तीन युगों की प्रशंसा करना और कलियुग को मनभर गाली देना। मेरी समझ में तो यह भ्रम है। दूर के ढोल सुहावने हैं। देखिए उपासना ही ले लीजिए, पिछले युगों में इस मार्ग में कैसी कठिनाइयाँ थीं वह "कृपान कै धारा" था। अब केवल भजन ही साधन है, मानसिक पाप का कोई दण्ड नहीं।

फिर देखिए, सतयुग में ऐसी अव्यवस्था थी कि उसको ठीक करने के लिये भगवान् को चार बार आना पड़ा, त्रेता में तीन बार, द्वापर में दो बार, कलियुग में केवल एक बार।

सतयुग में ऐसे दुराचारी थे कि सारी पृथिवी चुरा ले गए। त्रेता में ऐसे पापी हुए कि ब्राह्मणों के रुधिर तक का कर लेने लगे। द्वापर में समाधिस्थ ब्राह्मण गुरु को मारना, मनुष्य के रुधिर से स्नान करना, योद्धाओं का गर्भ के बच्चों पर वार करना इत्यादि। और हिंसा, मांसभोजन, व्यभिचार तो सभी युगों में थे और पाप नहीं समझे जाते थे।

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला।

—मनु ५।५६

मांसभक्षण, मद्यपान और सम्भोग यह सब मनुष्य की प्रवृत्ति के गुण हैं। पर इनसे बचना महाफल है।

अब कलियुग की महिमा सुनिए, इस युग का निर्माण कृष्ण ने अपने हाथ से किया, फिर यह निन्दित कैसे हो? जैसे इसने संसार में पैर रखा, कानून बन गए, पाँच कर्म पाप हो गए। (पहले पाप नहीं थे)। जुआ, मदिरा, वेश्या, जीवहिंसा, सोना—परीक्षित ने इन्हीं जगहों में कलियुग

को स्थान दिया था। और भी कलियुग का धर्म सुनिए—

अश्वालम्भं गवालम्भं संन्यासं पलपैत्रिकम् ।
देवराच्च सुतोत्पतिः कलौ पञ्च विवर्जयेत् ॥

अश्वमेध, गोमेध, संन्यासग्रहण और मांस का पिण्ड देना, देवर से पुत्र उत्पन्न करना ये पाँचों कलियुग में विवर्जित हैं, अर्थात् और युगों में प्रचलित थे। और उपासना का मार्ग तो ऐसा सरल है कि बेचारे तुलसीदास को भी मानना पड़ा—'केवल जप से सिद्धि'। चाहे दो पैसे की माला लीजिए चाहे वह भी नहीं, न मन्दिर की आवश्यकता, न मूर्ति की, न भोग, न राग, न अग्नि, न होता, न बलि, न पशु, न समाधि। आज कल जो लोग बड़े बड़े मन्दिर बनवाते हैं वह द्वापर की प्रतिध्वनि है। जैसे द्वापर में यज्ञ करना त्रेता की, और त्रेता में समाधि लगाना, सतयुग की प्रतिध्वनि थी।

कृष्णधर्म-वैष्णवधर्म-अहिंसा

ऊपर के लेख में इस युग का संक्षेप में दिग्दर्शन हुआ है, जिसमें महात्मा कृष्ण का आगमन हुआ था। अब इस लेख का मुख्य प्रसंग चलता है। पाठक ध्यान देकर विचार करें, कृष्ण के इस संसार में आने का प्रयोजन क्या था? वे किस धर्मसंस्थापनार्थ आए थे, उनके जीवन की मणिमाला का सुमेरु क्या था—नहीं नहीं, सुमेरु तो एक जगह रहता है, इस मणिमाला का सूत्र क्या था? कौन धागा इन सब मणियों को धरे हुए था (धर्म का अर्थ धरना)। निस्संदेह यह मन्त्र—

'अहिंसा परमो धर्मः'

था। यदि यह मन्त्र ध्यान में रखा जायगा तो कृष्ण के जीवन में और गीता में जो बहुत सी बातें समझ में नहीं आतीं उनका पता लग जायगा और हमारे बुद्धिचक्षु खुल जायँगे।

लोग कहेंगे (और सम्पादकजी १ अवश्य कहेंगे) कि कृष्ण का सब से बड़ा धर्म तो वही है जो गीता में उपदेश किया है। अर्थात्

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

यह ठीक है, पर यह बड़ा कड़ुआ प्याला है और लोहे का चना है। सिद्धों और (अर्जुन तथा उद्धव ऐसे) परम भक्तों के लिये है, और इन्हीं दो को कृष्ण ने यह धर्म सिखाया भी था। कृष्ण ने अर्जुन से स्वयं कहा है कि यह साधारण जनता के लिये नहीं है। यही नहीं बल्कि दोनों इस धर्म को भूल गए। इसको कृष्ण की जीवनमणिमाला का सुमेरु कह सकते हैं; क्योंकि यह एक ही स्थान पर मिलता है।

पर अहिंसा धर्म भगवान् के अङ्ग-अङ्ग से अमृतस्रोत की तरह टपक रहा है। देखिए क्षत्रियकुल में जन्म लेकर भी लड़कपन में वैश्य वृत्तिवाले घर में वास किया। क्योंकि ब्राह्मण को देवार्पण के लिये वध करना पड़ता है२, क्षत्रिय वीरत्व के लिये मारकाट करता है, शूद्र बेचारा तो समाज की तलछट हई है, कुछ जिह्वा का स्वाद भी न ले ले तो जिए

१ सम्पादकजी तो अभी भी यही कहते हैं कि कृष्ण का धर्म 'गीताधर्म' है। गीताधर्म में भगवान् के दोनों रूप हैं—१ उग्र और सत्य (Sublime) और २ सौम्य और मधुर (Beautiful)। लेखक महोदय गोपियों के समान मुरली की मधुर ध्वनि को ही कृष्ण का सर्वस्व समझते हैं। ठीक है। अनन्य भक्त की आँखों में दोनों रूप कैसे समा सकते हैं। (जामें दो न समाहिं) पर सम्पादक का स्वाध्याय बताता है कि भगवान् कृष्ण पाञ्चजन्य भी फूँकते थे और वंशी भी बजाते थे। गीताधर्म समझनेवाले को कठिन नहीं। इससे बढ़कर सरल मार्ग दूसरा नहीं। —सं०।

२ लेखक की भावना बड़ी पवित्र है तौ भी शब्द मीठे नहीं हैं और हम इन विचारों से पूरे सहमत भी नहीं हैं। अहिंसा पर हम विजयाङ्क में लिखने का यत्न करेंगे। समय मिला तो —सं०

कैसे ? केवल वैश्य ही अहिंसाधर्म का पालन कर सकता है।

"कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।"

फिर गौओं की रक्षा और पालन तो उसका कर्म ही है। गो शब्द का अर्थ है (जैसा पूज्य भगवान्दासजी किया करते हैं)—जो चलें या चरें (To go माने जाना) इसमें सारा चर जगत् आ जाता है। फिर कृष्ण भगवान् की गोमाता सचमुच गऊ माता थीं। वे उनके साथ वन में स्वयं जाते थे और उनको खिलाते-पिलाते और रक्षा करते थे। आज कल की गोमाता को तो हम लोग सौतेली माता और उनके पुत्रों को सौतेले भाई की तरह रखते हैं। उनकी सारी सम्पत्ति दुह लेते हैं और दरिद्र करके निकाल देते हैं। इतना ही नहीं, मरवा भी डालते हैं। कृष्ण को गोरस-दूध, दही, मक्खन, घी-से इतना प्रेम था कि चोरी करके भी खा लेते थे।

जिसका जीवनमन्त्र अहिंसा और दया होनेवाला था, उसका "श्री गणेश" ऐसी ही पाठशाला में होना उचित था।

एक बात ध्यान देने की है कि कृष्ण का दयामय जीवन समता और शान्तिमार्ग का था। जैनियों और बौद्धों की तरह 'अति' नहीं थी, 'अति सर्वत्र वर्जयेत्', 'समत्वं योग उच्यते'। कृष्ण ने गीता में बुद्धि की बड़ी महिमा गाई है, 'बुद्धौ शरणमन्विच्छ' उसी बुद्धि से वे हिंसा-अहिंसा का निर्णय करते थे। 'लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्' यही उसकी कसौटी थी, लोकसंग्रह की बुद्धि से ही वे खरे-खोटे को परखते थे। कहावत भी है कि—

'हनते को हनिए, दोष पाप नहिं गनिए।'

'क़तलल मूज़ी क़बलल ईज़ा।'

—कहावत

यदि हम इस बात पर ध्यान रखेंगे तो कृष्ण के सारे युद्धों का रहस्य मिल जायगा। वे जब लड़े बचाव के लिये लड़े। विजय की उमंग तो उनमें थी ही नहीं। थी क्या? अपरिमित दया और शान्ति। और उनके पास लड़ने की सामग्री भी न थी।

अब इस दयामय मणिमाला को फेरिए। कृष्ण को कोई युद्धशास्त्र और धनुर्वेद की शिक्षा भी नहीं मिली थी[1]। सान्दीपन गुरु भी कोई योद्धा न थे। "द्विज देवता घरहि के बाढ़े" थे। (रामचन्द्र को क्षत्रियसिंह विश्वामित्र ने स्वयं धनुर्वेद सिखाया था।) कृष्ण के समय में इस विद्या का बड़ा विकास हो चुका था—बड़े मर्मभेदी अस्त्र-शस्त्र और शक्तियाँ महाभारत में चली थीं, पर इनके पास कोई भी न थी। इनकी भुजाएँ दो थीं, पर यदि चार भी मानिए तो इनमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किए रहते थे पहला नाम शङ्ख का है। देखिए, पहले शङ्ख गीता में इन्हीं का बजा था "पाञ्चजन्यं हृषीकेशः"। द्रोणाचार्य की मृत्यु के समय भी कृष्ण का ही शङ्ख बजा था। तात्पर्य यह कि शङ्ख फूँकना इनको बड़ा प्रिय था। चक्र इन का मुख्य शस्त्र था—जैसे लड़के चकई[2] खेलते हैं वैसे ही यह भी सदा चलता था और दैवी शक्ति से पूर्ण था। अचूक था। कौमोदिकी गदा तो सदा सुषुप्ति की अवस्था में रही, शायद बलदेवजी की प्रतिष्ठा के लिये कृष्ण इसको लिए रहते थे। पद्म तो फूल ही था। इनका एक शार्ङ्गधनुष भी था, पर इसको तो सदा अष्टमी-चतुर्दशी रहा करती थी। इसके चलने की कथा कहीं मिली नहीं। और इन सबका प्रयोजन? गोपाल तो केवल रक्षक है। उसके लिये आत्मा की शक्ति ही सब कुछ है।

१ हम यह नहीं मान सकते। जो ऋषि योद्धा नहीं थे वे भी युद्ध विद्या जानते थे। सान्दीपिन ने तो कृष्ण को साङ्गोपाङ्ग धनुर्वेद पढ़ाया था। देखिए श्रीमद्भागवत १०।४५। और कृष्ण योद्धा न थे, इसका न तो हमें विश्वास होता है और न कोई प्रमाण ही है।—सं०

२ चकई की उपमा से यह समझना चाहिए कि भगवान् उस चक्र को खेल ही खेल में चला सकते थे। उसमें कोई कष्ट न होता था।—सं०

व्रजवासी लोग प्रति वर्ष इन्द्र की पूजा किया करते थे। यह एक प्रकार का यज्ञ था—इन्द्र भगवान् पशुमांस के बिना प्रसन्न होनेवाले नहीं। बालपन में ही कृष्ण ने इसको उठाकर इसके बदले गोवर्धनरूपी भगवान् अर्थात् वह परमात्मा जो गो (जिसका अर्थ सारे जीवधारियों से है) का पालन और वृद्धि करने वाला है, उसकी पूजा स्थापित की।

मामा कंस बड़ा "जालिम" था, व्रज की प्रजा, सरदारों और मुखियों को पकड़-पकड़कर मनमाने कर वसूल करता था।

"जो कंसराय सुनि पैहैं।
बाबा नन्दहि पकरि मँगैहैं।"

दुधमुँहे बच्चों को मरवा देता था, लोगों की जान आजिज थी। इन सब आपत्तियों को दूर करने के लिये कृष्ण मामा से मिलने को मथुरा चले। लड़ने या मारने के लिये चले थे इसमें बड़ा संदेह है; क्योंकि दोनों भाई अकेले गए थे। हाथ में एक लाठी भी न थी। संयोग था, कंस मारा गया।

दामाद का मारा जाना ससुर को कैसे सहन हो। उसका शत्रु भी जीता न रहे इस विचार से जरासंध ने मथुरा पर चढ़ाई की। कृष्ण ने पहले तो मथुरा की रक्षा की, पर दयामय को रुधिरपात की रुचि न थी, इससे उन्होंने मथुरा छोड़कर बहुत दूर काठियावाड़ में शान्ति के लिये अपनी द्वारकापुरी बसाई। तभी से कृष्ण का नाम "रणछोड़" पड़ा। बड़े लोग हीन काम करें तो उसमें भी यश होता है। दूसरे लोग भागें तो भगू कहलावें। जरासंध के युद्ध में कृष्ण घायल भी हुए थे। जब मैं द्वारका में था तो वहाँ के पुजारी भगवान् की मूर्ति में घाव के चिह्न भी दिखा रहे थे।

इसी समय से कृष्ण और पाण्डवों की घनिष्ठता हुई। नातेदारी तो दूर की थी, पर विचार एक होने से मेल बढ़ गया। –लोग कहते हैं कि कृष्ण ने महाभारत कराकर सारे देश को मरवा डाला–इससे बढ़कर भ्रम दूसरा नहीं। कृष्ण का प्रवेश तो इस नाटक में उस समय होता है, जब सारा प्रपञ्च हो चुका है, कृष्ण स्वयं कहते हैं इस युद्ध को प्रकृति ने कराया। उन्होंने तो अन्त समय तक इसे बचाना चाहा और अपने को जानजोखिम में डालकर संधि का संदेश लेकर दुर्योधन के पास गए। हाँ, यह अवश्य है कि गीता में उन्होंने अर्जुन को लड़ने के लिये तैयार किया है। जब सारी तैयारी हो गई—दोनों पक्षों में धनुषों पर तीर चढ़ गए, तब "समरभूमि भा दुर्लभ प्राणा।" अपना हो या नातेदारों का; तब नेवते हुए योद्धाओं से कहना कि 'तुम खाते हुए आए और पीते हुए अपने घर जाओ' यह कहाँ का धर्म है? "सर्व्वारम्भपरित्यागी" होना उचित है, पर आरम्भ करके पीछे हटना, संसार के संचालन को नष्ट करना है। युद्ध छिड़ जाने पर भी कृष्ण का वही हाल था जैसे सरोवर में कमल का होता है। चारों ओर घातक आयुध चल रहे थे, पर उन्होंने एक कंकड़ी भी न फेंकी, यदि फेंकी भी तो भक्त का मान रखने के ही लिये।

आजु जौ हरिहिं न शस्त्र गहाऊँ।
तौ लाजौं गङ्गाजननी कों संतनुसुत न कहाऊँ॥

—सूर

कौरवों और यादवों के नाश तो प्रकृति ने ही किए। नए युग के जन्म के लिये पुराने युग का संहार होना चाहिए। पुराना कदलीवन काट दिया जाता है तब नए अङ्कुर निकलते हैं।

यज्ञ

यज्ञ करने की प्रथा त्रेता से चली—यह शब्द "यज्" धातु से बना है जिसका अर्थ है "भक्ति से भजन, प्रतिदिन की उपासना, प्रतिदिन का दान।" और कदाचित् यही

शेषांश पृष्ठ ७६२ में

उपास्य कृष्ण

(ले०—श्री विट्ठलशर्मा चतुर्वेदी)

मेरे कृष्ण, मुझे याद है, ब्रज में बाँसुरी की तान से तुमने सबको एकतान कर दिया था। तुम्हारे शब्द ने दुनिया को मोह लिया था। उस समय किसकी मजाल थी, जो तुम्हारी बात को न माने; किसकी हिम्मत थी, जो तुम्हारे विरुद्ध आवाज उठावे ! तब तुमने इन्द्र की पूजा रुकवाकर गोवर्द्धन की पूजा कराई थी। इन्द्र के कोप से ब्रज की रक्षा की थी। अपने घमंड में चूर इन्द्र के मद को चूर चूर कर दिया था।

मेरे कृष्ण, मुझे याद है, जब अत्याचारी कंस ने प्रजा को पीड़ित कर रखा था, तुम्हारे मातापिता को जेल में डाल दिया था, ब्रज के अनाथ और निरीह शिशुओं को मरवा डाला था—उस समय तुमने कंस को—अपना सम्बन्धी–मामा होते हुए भी, राजा होते हुए भी, बात की बात में मार डाला था। प्रजा को सुखी किया था, मातापिता को बन्धनमुक्त।

मेरे कृष्ण, मुझे याद है, अत्याचारी कंस को मार डालने पर उस राज्य के सिंहासन को तुमने कंस के पिता उग्रसेन के चरणों में अर्पण कर दिया था और उनकी आज्ञा में रहना ही स्वीकार किया था, जब कि उस राज्य पर सोलह आने तुम्हारा ही अधिकार था।

मेरे कृष्ण, मुझे याद है, संसार में तुम्हें कोई नहीं जीत सकता। लेकिन मगध के राजा जरासन्ध ने अपनी तपस्या से भगवान् शिव को प्रसन्न करके वरदान पाया था कि कृष्ण को अपनी आँखों युद्ध से भागते हुए देखूँ; इसलिये उसे सत्रह बार हराकर भी तुम भगवान् शंकर के वरदान की रक्षा करने के लिये युद्ध के मैदान से भाग गए थे। उस समय तुम्हें अपने मान और अपमान का तनिक भी ख्याल नहीं आया था।

मेरे कृष्ण, मुझे याद है, अपने प्रजाजनों की रक्षा करने के लिये तुमने अपनी प्यारी ब्रजभूमि भी छोड़ दी थी और उनके साथ द्वारका में जाकर रहने लगे थे। तुम्हें अपनी प्यारी भूमि के लिये—जहाँ तुम पले, खेले-कूदे और बड़े हुए थे, आँसू बहाना मंजूर था, परन्तु प्रजा को दुःखी बनाकर रखना स्वीकार नहीं था।

मेरे कृष्ण, मुझे याद है, तुम अनाथों के नाथ हो। तुमने अपने किसी भी भक्त को नहीं छोड़ा, नहीं त्यागा। स्वयं सङ्कट सहकर अपने भक्तों को सङ्कट से मुक्त किया। रुक्मिणी को शिशुपाल के पंजे से छुड़ाया। दुःखी और अनाथ पाण्डवों को सनाथ और सुखी बनाया।

मेरे कृष्ण, मुझे याद है, तुमने अत्याचारियों को अत्याचार करते कभी नहीं रहने दिया। उन्हें किसी न किसी प्रकार नष्ट कर ही दिया। जरासन्ध को जिस नीति से मारा था, क्या वह भुला देनेवाली बात है ? कौरवों के नाश का इतिहास क्या कभी भुलाया जा सकता है ? और तुम्हारे ही वंश का नाश—उसे तो कोई कभी भूल ही नहीं सकता।

मेरे कृष्ण, मुझे याद है, तुम उस समय द्वारका के भाग्यविधाता थे। तुम्हारे प्रास तुम्हारा एक बालसखा—जो अत्यन्त दीन था, दुःखी था, मिलने

के लिये आया था, अपना दुख दर्द सुनाने के लिये आया था। तुम अपने ऐश्वर्य को भूलकर उससे छाती खोलकर मिले थे। उसकी अदना सी भेंट—तीन मुट्ठी चावल—बड़े प्रेम और आग्रह से स्वीकार किया था और उसे अपने समान सुखी तथा ऐश्वर्य-सम्पन्न बना दिया था। क्या सुदामा का यह मिलन भुलाया जा सकता है ?

मेरे कृष्ण, मुझे याद है, राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था। उस यज्ञ में सर्वप्रथम तुम्हारी ही पूजा हुई थी, तुम्हें ही अर्घ दिया गया था, तुम्हीं सर्वश्रेष्ठ माने गए थे; परन्तु फिर भी तुमने वहाँ ब्राह्मणों के चरण धोने का काम किया था। गर्व-प्रहारी, तुम में किसी ने गर्व नहीं देखा।

मेरे कृष्ण, मुझे याद है, दुर्योधन के तीखे वचन कहने पर कुरुक्षेत्र के मैदान में जब तुम्हारे भक्त पितामह भीष्म ने प्रतिज्ञा की थी—

'आजु जो हरिहिं न शस्त्र गहाऊँ।
लाजौं दूध जननि गंगा कौ संतनु सुत न कहाऊँ॥'

उस समय तुम अपनी-'युद्ध में शस्त्र ग्रहण न करने की' प्रतिज्ञा को भूलकर, अपने भक्त भीष्म की प्रतिज्ञा रखने के लिये, रथ का पहिया ही हाथ में लेकर भीष्म की ओर दौड़े थे।

मेरे कृष्ण, मुझे याद है, जिस समय पितामह भीष्म वाण की शय्या पर पड़े हुए तुम्हारा ध्यान कर रहे थे उस समय तुम भी हस्तिनापुर में बैठे हुए भीष्म के ध्यान में तल्लीन थे।

मेरे कृष्ण, मुझे याद है, तुम प्रेम की मूर्ति हो और संहारकारी काल भी। तुम अर्जुन के सखा हो, भीष्म के उपास्य हो और कंस के काल हो। कुरुक्षेत्र के युद्ध में तुमने अर्जुन को अपना प्रेममय सौम्य रूप भी दिखलाया था और संहारकारी कालरूप भी। तुम्हारी पूर्णता, प्रेम और संहार के मिलने पर ही है। इस पूर्णता की उपासना करने पर तुम प्राप्त होते हो। इसीलिये तो कंस, अर्जुन और भीष्म तुम्हें अपना सके हैं, पा सके हैं! तुम्हारी उपासना प्रेम और संहार की उपासना है। दोनों की प्रतिमूर्ति बनने पर ही तुम्हारी उपासना का उपासकों को अधिकार मिलता है। और अधिकार पाने पर ही तुम्हारी उपासना की जा सकती है।

मेरे देवता, 'देवो भूत्वा देवं यजेत्'—देवता बनकर देवता की अर्चना करने के लिये, प्रेम और काल की प्रतिमूर्ति बनकर—प्रेम और कालस्वरूप तुम्हारी—उपासना करने के लिये बल दो, साहस दो, जिससे तुम्हारी उपासना की जाय, तुम्हें उपास्य बनाया जाय और तुम्हारी ही तरह स्वामी राम के शब्दों में कहा जा सके—

No sin, no grief, no pain
Safe in my happy self,
My fears are fled, my doubts are slain;
My day of triumph come.

मेरे पास पाप नहीं, सन्ताप नहीं, दुःख नहीं। मैं आत्मानन्द (कृष्ण) में सुरक्षित हूँ। मेरे भय भाग गए हैं, मेरी शङ्काएँ मिट गई हैं, मेरे विजय के दिन आ गए हैं।

और अनुभव किया जा सके—

बसा है दिल में मेरे वह दिलवर
है आईना में खुद आईनागर।
अजब तहय्युर हुआ यह कैसा ?
कि यार मुझ में मैं यार में हूँ॥

(स्वामी रामतीर्थ)

पुरुषोत्तम कृष्ण

(ले० — श्री आर० कुमार)

कृष्ण का असली रूप जानने के लिये गीता पढ़नी पड़ेगी; क्योंकि गीता में ही उन्होंने अपने आपको खोला है। अपने सखा अर्जुन से कुछ भी छिपाकर रखने की उन्हें आवश्यकता नहीं थी। सखा से कभी कोई बात छिपाई भी नहीं जाती। गीता में अनेक बार—गुह्य, गुह्यतर और गुह्यतम बातें कृष्ण ने कही हैं। इसलिये गीता भी गुह्य-शास्त्र है।

गीता में कृष्ण ने अपने सम्बन्ध में कहा है—

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥

—१५।१८

मैं क्षर से पहले का हूँ और अक्षर से उत्तम हूँ। इसलिये लोक और वेद में पुरुषोत्तम कहलाता हूँ।

गीता में पुरुषोत्तम शब्द के अर्थ को प्रकट करने-वाले अनेक वाक्य हैं—

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥

—१५।१७

उत्तम पुरुष क्षर और अक्षर (१५।१६) से परे है। लोग उसे परमात्मा कहते हैं। वह तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर उसका धारण करता है। वह अव्यय है—ईश्वर है।

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥

—गी० ९।१८

वही सब प्राणियों की गति है; सबका भर्ता, प्रभु, साक्षी, निवास (बिभर्ति), शरण, सुहृद्, प्रभव, प्रलय, स्थान, निधान, बीज और अव्यय है।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

—गी० १८।६१

वही—सब भूतों का ईश्वर, हृदय (केन्द्र) में स्थित है और सब भूतों को कठपुतलियों की तरह (दारुयोषित की नाईं) घुमा रहा है (खेल या लीला करा रहा है—सबै नचावत), प्रेरणा दे रहा है।

पुरुषोत्तम क्षर से ऊपर का है। गीता में क्षर—का अर्थ—

क्षरः सर्वाणि भूतानि

—गी० १५।१६

सब भूत है। ईश्वर इन्हीं भूतों के हृदय (केन्द्र) में बैठा हुआ उन्हें घुमा रहा है (१८।६१)। वह इन भूतों से ऊपर का है और उनका आदि, मध्य एवं अन्त है—

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।

—गी० १०।३२

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥

—गी० १०।२०

पुरुषोत्तम अक्षर से उत्तम है। अक्षर का अर्थ-

कूटस्थोऽक्षर उच्यते

—गी० १५।१६

कूटस्थ है। कूट पर्वतशिखर को कहते हैं। पर्वत-शिखर की तरह निर्विकारभाव से रहनेवाला

कूटस्थ कहलाता है। निर्विकार तृप्तात्मा ही होता है, इसलिये ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थ (६।८) कहलाता है।

क्षर का अर्थ गीता में सर्वभूत है और अक्षर का अर्थ कूटस्थ, निर्विकार, ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा। क्षर का अर्थ और अधिक स्पष्ट करने के लिये गीता में कहा गया है—

अधिभूतं क्षरो भावः

—गी० ८।४

अधिभूत क्षरभाव है। यद्यपि सब भूतों को क्षर बताया गया है, परन्तु सब भूत क्षर न होकर क्षरभाव मात्र हैं। क्षरभाव विकारयुक्त है, नाशवाला है। इसलिये एक ही तत्त्व जब क्षर में समा जाता है तब वह क्षर भाववाला हो जाता है, सविकार हो जाता है। इसी का नाम जीव है। परन्तु वही एक तत्त्व जब क्षर में नहीं आता, विकारी नहीं बनता; अक्षर, निर्विकारी, ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा या कूटस्थ कहलाता है। गीता में इसका दूसरा नाम अव्यक्त है—

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तः।

—८।२१

इसी को परमब्रह्म, अक्षरब्रह्म, ब्रह्म, ॐ या आत्मा कहते हैं—

अक्षरं ब्रह्म परमम्,

—गी० ८।३

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म।

—गी० ८।१३

उस एक तत्त्व की व्यक्तावस्था क्षर कहलाती है और अव्यक्तावस्था अक्षर कहलाती है। परन्तु जो अपने अव्यक्तभाव को व्यक्त करता है उसका नाम पुरुषोत्तम है। इसलिये उस एक ही तत्त्व की तीन अवस्थाएँ हैं—क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम। अकेला पुरुषोत्तम ही अपने आपको तीन रूपों में व्यक्त करता है। अतः गीता में कहा गया है—

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥

—१३।२२

वह उपद्रष्टा है, अनुमन्ता है, कर्त्ता है, भोक्ता है, महेश्वर है। वह परपुरुष इस शरीर में भी रहता है। उसे परमात्मा कहते हैं।

गीता के क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम—जीव, ब्रह्म और परब्रह्म कहलाते हैं। परब्रह्म की निर्गुण अवस्था ब्रह्म है और सगुण अवस्था जीव। सृष्टि की अवस्था, सगुण अवस्था और जीव की अवस्था ये तीनों एक ही हैं। ये अवस्थाएँ परब्रह्म की ही हैं। इसलिये परब्रह्म इनसे ऊपर का है। परब्रह्म ही क्रमशः नीचे उतरता है और अपने को व्यक्त करता है। व्यक्तीकरण क्षरभाव है। और इससे पहले की अवस्था अव्यक्त अवस्था है। इसलिये वह ब्रह्म की अवस्था है। व्यक्तीकरण में परब्रह्म का अंशांशरूप से विकास होता है, इसलिये व्यक्तिभाव से वह क्षरणशील या नाशवान् समझा जाता है। ब्रह्मभाव में यह अपने आप में लीन रहता है, इसलिये इस समय वह कूटस्थ कहलाता है। परन्तु जिस समय समष्टिभाव से यह विकसित होता है उस समय पुरुषोत्तम की अवस्था होती है। इस समय अन्तर्लीन सत्-चित्-आनन्द शक्तियाँ अपने आपको एक साथ ही व्यक्त करती हैं। यही पुरुषोत्तम का रूप है।

जीवरूप में सत्, चित् और आनन्द का विकास एक साथ मिलकर नहीं होता। किसी जीव में सत् का विकास होता है, किसी में चित् का और किसी

में आनन्द का। यह अपूर्ण और एकाङ्गी विकास ही उसे क्षरसंज्ञा देता है; क्योंकि अपूर्णता ही विकारी और नाशवान् होती है। पूर्ण का न कभी नाश होता है और न उसमें विकार होता है।

ब्रह्मरूप में विकास नहीं होता। वहाँ सत्, चित् और आनन्द एक होकर रहते हैं। इसलिये वे व्यक्तावस्था धारण नहीं कर पाते। यह अव्यक्तावस्था बोधगम्य नहीं है। इसलिये उपासना में यह कठिन समझी जाती है—इसकी कठिनता का जिक्र गीता में हुआ है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥
—१२।५

जिनका चित्त अव्यक्त की उपासना में लगा हुआ है उनको अधिक कष्ट उठाना पड़ता है; क्योंकि अव्यक्तगति देहधारियों को कष्ट से मिलती है।

परब्रह्म अवस्था पूर्ण विकासवाली है। इसमें सत्, चित् और आनन्द तीनों एक होकर एक साथ विकसित होते हैं। एक साथ व्यक्त होते हैं। इस सच्चिदानन्दमयी परब्रह्म की व्यक्तावस्था की उपासना बड़ी सरल है; क्योंकि इसमें परब्रह्म सब ओर से पूर्णरूप में अपने आपको व्यक्त करते हैं। एक ही में सत्, चित् और आनन्द व्यक्त होता है।

कृष्ण साक्षात् परब्रह्म हैं। उनमें सत् का व्यक्तीकरण हुआ है, चित् का व्यक्तीकरण हुआ है और आनन्द का व्यक्तीकरण हुआ है। 'विनाशाय च दुष्कृताम्'—से उनकी सत्सत्ता का बोध होता है। इसका दर्शन लोगों को कंसादि के वध से ही हो गया है। और अर्जुन तो विश्वरूपदर्शन में उनके दुष्टदमनकारी कालरूप का प्रत्यक्ष कर ही चुका है। चित्सत्ता का बोध जहाँ नन्द आदि को हुआ है वहाँ उद्धव को भी उनके ज्ञानोपदेश को सुनकर हुआ है। अर्जुन तो उनके ज्ञानमय उपदेश सुनकर अपने मोह पर विजय पा चुका है, अपनी क्लैब्यता छोड़ चुका है, 'धर्मसंस्थापनार्थाय' सार्थक कर चुका है। और आनन्दसत्ता का दर्शन व्रज की गोपियों को हुआ है, जो अपने-पराए का ज्ञान छोड़कर तन्मय हो गईं। व्रज की रासलीला में आनन्दसत्ता का पूर्ण व्यक्तीकरण हुआ है। साधुपरित्राण में भी इसकी आभा झलकी है। इसके अतिरिक्त पूर्वकथित पुरुषोत्तम के अन्य गुण भी इनमें पाए जाते हैं।

परब्रह्म की सत्, चित् और आनन्दसत्ताओं का प्रकृति में विकास हुआ है, परन्तु किसी एक ही में एक साथ नहीं। हाँ, एक होकर कृष्ण ही आए हैं। इसलिये समस्त विश्व पुरुषोत्तम का रूप है, परन्तु श्री कृष्ण स्वयं पुरुषोत्तमस्वरूप हैं। गीता में जहाँ जहाँ 'अहं', 'माम्' आदि शब्दों से उन्होंने अपना जिक्र किया है वहाँ वहाँ उन्होंने अपने आपको पुरुषोत्तमरूप से ही व्यक्त किया है—विश्वरूप का ही परिचय कराया है। इन्हीं पुरुषोत्तम अथवा विश्वरूप की शरण जाने पर मोह से मुक्ति मिलती है और परब्रह्म की अवस्था प्राप्त होती है। इस अवस्था में ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा होने पर कामसङ्कल्परहित लोकसङ्ग्रह करनेवाली, सत्-चित्-आनन्दमयी सत्ता का विकास करनेवाली क्रिया होती है। यही क्रिया, क्रिया होने पर भी निष्क्रिया है। यही जन्म, जन्म होने पर भी अजन्म है। पुरुषोत्तमस्वरूप के यही दिव्य जन्म और कर्म हैं। श्री कृष्ण के इसी प्रकार के जन्म और कर्म उनकी वास्तविकता प्रकट करते हैं—उनके पुरुषोत्तम होने का आभास कराते हैं।

योगेश्वर कृष्ण

(ले०—श्री मोहनशर्मा चतुर्वेदी)

एक ओर महाभारत का युद्ध हो रहा था; दूसरी ओर दिव्यदृष्टिप्राप्त सञ्जय हस्तिनापुर में बैठा धृतराष्ट्र को कुरुक्षेत्र में होनेवाले युद्ध का हाल सुना रहा था। अभी युद्ध आरम्भ नहीं हुआ था, युद्ध होने की तैयारी थी। अर्जुन देख रहा था कि मुझे किन किन से लड़ना है। उसने युद्ध में अपने साथी, आत्मीय और पूज्य व्यक्तियों को देखा, जिनसे कि उसे लड़ना था। इनको देखते ही उसका शरीर शिथिल हो गया, गाण्डीव हाथ से छूट गया और युद्ध करने का सारा उत्साह नष्ट हो गया। उस समय कृष्ण ने उसे समझाया और युद्ध करने के लिये तैयार किया। कृष्ण की इन तमाम बातों को सञ्जय ने धृतराष्ट्र को सुनाया और अन्त में कहा—

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम्।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम्॥

—गीता १८।७५

यह परम गुह्य योग है। साक्षात् योगेश्वर कृष्ण को स्वयं कहते हुए मैंने व्यास के प्रसाद से इसे सुना है।

इस योग को सुन लेने के बाद सञ्जय ने अपना एक मत बनाया था। इसलिये धृतराष्ट्र को वह अपना मत भी बतलाता है—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

—गीता १८।७८

जहाँ योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर अर्जुन हैं, वहाँ श्री है, विजय है, भूति है, नीति है; ऐसा मेरा निश्चित मत है।

सञ्जय ने इसी प्रसङ्ग में दो बार कृष्ण को योगेश्वर कहा है और अर्जुन तथा कृष्ण के परस्पर संवाद को—जिसे उसने सुना था, योग माना है। हमें इसकी सत्यता पर विचार करना है।

गीता का गुह्यज्ञान एक योग है। यह योग नया नहीं, पुराना है। **'योगः प्रोक्तः पुरातनः'** (गी० ४।३)। कृष्ण ने ही अपने किसी जन्म में इसे विवस्वान् को—(विवस्वते आदित्याय इति शङ्कर:) आदित्य को सुनाया था—**'इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्'** (गीता ४।१)। कृष्ण अब तक अनेक बार जन्म ले चुके हैं। उनको अपने प्रत्येक जन्म का हाल मालूम है। वे स्वयं कहते हैं—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥

—गी० ४।५

अर्जुन, मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं। मैं उन सबको जानता हूँ, तू उन्हें नहीं जानता।

इनका जन्म लेना भी इन्हीं के हाथ में है—

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।

—गी० ४।६

प्रकृति को अपने वश में रखकर अपनी इच्छा से जन्म लेता हूँ। वे जन्म लेकर लोकसङ्ग्रह के लिये काम करते हैं, जब कि वे आप्तकाम हैं—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥

—गी० ३।२२

पार्थ, तीनों लोकों में मुझे कुछ भी करना नहीं है; क्योंकि मुझे कोई अप्राप्त वस्तु प्राप्त नहीं करनी है अर्थात् मेरे लिये कोई वस्तु अप्राप्त नहीं है; सभी प्राप्त हैं, फिर भी मैं काम करता हूँ—'चिकीर्षुर्लोकसङ्ग्रहम्-' लोकसङ्ग्रह की इच्छा ही इसका कारण है। यह लोकसङ्ग्रह—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय..................... ॥

—गी० ४।८

साधुओं के परित्राण के लिये है, दुष्टों के दमन के लिये है, धर्मसंस्थापन के लिये है।

इस साधुपरित्राण, दुष्टदमन तथा धर्मसंस्थापन-रूप लोकसङ्ग्रह की अन्य लोगों को प्रेरणा देना ही उनके कर्म करने का उद्देश्य है; क्योंकि—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

—गी० ३।२१

श्रेष्ठ पुरुष जो जो कर्म करता है, अन्य लोग उन्हीं कर्मों को करते हैं; वह जिस प्रथा को प्रामाणिक मानता है, लोग उसीको प्रामाणिक मानकर चलते हैं।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।

—गी० ३।२३

पार्थ, मनुष्य सब प्रकार से मेरे मार्ग का ही अनुकरण कर रहे हैं।

कृष्ण के उक्त वाक्यों से मालूम होता है कि वे अपनी योगशक्ति से ही उत्पन्न होते हैं, उसीके आधार से काम करते हैं। प्रत्येक काम में सफल होते हैं। अपना काम करके फिर अपने आप में लीन हो जाते हैं। उनका यह योग अपना योग है। वे इसके ईश्वर हैं। वे पूर्ण हैं, आप्तकाम हैं, मुक्त हैं, पापपुण्य से ऊपर हैं। योगी हैं, योगेश्वर हैं। उनके जीवन में हम इन बातों की सत्यता पाते हैं।

व्रज की लीलाओं में—'आत्ममायया'—अपनी इच्छा से अनेक रूप धारण करते हैं। रासलीला के ही प्रकरण को लीजिए! जितनी गोपियाँ हैं उतने ही कृष्ण हैं। प्रत्येक गोपी के साथ एक एक कृष्ण रासनृत्य में मौजूद हैं। भागवतकार कहते हैं—

योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः।
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः ॥

—१०।३३।३

कालियमर्दन, ब्रह्माजी के वत्स-गोपहरण के समय अनेक बछड़े और गोपों का रूप धारण किए बहुत समय तक रहना*, रेंड़ के वन में आग लगने पर उस आग को ही पी जाना†, गोवर्द्धन पर्वत को अपने हाथ पर उठाकर इन्द्र के कोप से समस्त व्रज की रक्षा करना‡, मृत गुरुपुत्र को यमराज के यहाँ से लाना× आदि ऐसे काम हैं जिनको योगशक्ति के बिना नहीं किया जा सकता। कृष्ण ने ये काम अपने बालकपन ही में किए थे, इससे मालूम होता है कि वे योगशक्तिसम्पन्न थे।

आप्तकाम होते हुए भी हम उन्हें लोकसङ्ग्रह के लिये काम करते हुए देखते हैं। राजा कंस का वध, राजा जरासन्ध का वध, शिशुपाल का वध, कौरवों का तथा यादवों का संहार, पाण्डवों का धर्म-राज्यसंस्थापन, आर्तपुरुषों की रक्षा—यह सब उनका लोकसङ्ग्रह है। अपने इन कामों में वे अन्त तक सफल होते रहे हैं।

अनासक्त होना योगी का सर्वश्रेष्ठ लक्षण है।

---

* श्रीमद्भागवत १०।१४। † श्रीमद्भागवत १०।१९। ‡ श्रीमद्भागवत १०।२५। × श्रीमद्भागवत १०।४५।

अपने वंश का संहार करा देना, प्राप्त सम्पत्ति का स्वयं उपभोग न करना, मान-अपमान से सर्वदा दूर रहना—कृष्ण के जीवन का मुख्य अङ्ग है। वे अनासक्त हैं। इसलिये पापपुण्य से निर्लिप्त हैं, दुःख-सुख से परे हैं, द्वन्द्वातीत हैं। समतायुक्त हैं। उनके शब्दों में यह समता ही योग है—**'समत्वं योग उच्यते'** (गी० २।४८)। इसलिये योगयुक्त हैं। योगी हैं, योगेश्वर हैं।

परमधाम जाने के समय भी उन्होंने अपनी इच्छा से ही इस लोक को छोड़ा था। इच्छामरण योग-शक्ति के आधार के बिना नहीं हो सकता। अतः हमें उनके दिव्य जन्म तथा कर्म देखकर यह मानना ही पड़ता है कि कृष्ण साक्षात् योगेश्वर थे। सञ्जय ने दिव्यदृष्टि द्वारा देखकर कृष्ण को योगेश्वर माना है, यह सर्वथा ठीक है। और इसीलिये उसकी भविष्यवाणी भी सत्य हुई। महाभारत के युद्ध की जीत का सेहरा जिधर कृष्ण और अर्जुन थे उधर ही बँधा।

गीता ज्ञान अमृत

(कृष्णजन्म के समय शुभ सन्देश)

मेरा विचार गीता ज्ञानामृत द्वारा गीताप्रेमियों के लिये, चाहे वह किसी भी मत और सम्प्रदाय के क्यों न हों, एक प्रचारकेन्द्र या Common Platform स्थापित करने का है। मेरा यह निश्चय है कि जब तक हम सबसे पहले अपने विचारों को गीता पर केन्द्रित करके जनता को उसके अनुकूल अपना जीवन बनाने का सुमार्ग न दिखाएँगे तब तक हमारा कोई भी प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। गीता पर अपने विचारों की नींव दृढ़ करके फिर हम वेद, उपनिषद्, पुराण, तन्त्र जिधर भी चाहें सुगमतापूर्वक जा सकते हैं। कारण **गीताधर्मी को द्वेष तो रह ही नहीं सकता।**

——*शान्तिनारायण* सम्पादक 'गीता ज्ञान अमृत' (**मासिक**) लाहौर।

गीता के कृष्ण

महात्मा गान्धी

गीता के कृष्ण मूर्तिमान शुद्धसम्पूर्ण ज्ञान हैं, परन्तु काल्पनिक हैं। यहाँ कृष्ण नामके अवतारी पुरुष का निषेध नहीं है। केवल सम्पूर्ण कृष्ण काल्पनिक हैं, सम्पूर्णावतार का पीछे से आरोपण किया हुआ है।

अवतार यानी शरीरधारी पुरुष विशेष। जीवमात्र ईश्वर का अवतार है, परन्तु लौकिक भाषा में हम सब को अवतार नहीं कहते। जो पुरुष अपने समय में सबसे श्रेष्ठ धर्मवान है उसीको भावी प्रजा अवतार रूप से पूजती है।

सन् १८८८-८९ में जब गीता का प्रथम दर्शन हुआ उसी समय मुझे ऐसा लगा कि—यह ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है, किन्तु इसमें भौतिक युद्ध के वर्णन के बहाने प्रत्येक मनुष्य के हृदय के भीतर बराबर होते रहनेवाले द्वन्द्वयुद्ध का ही वर्णन है।

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

(ले०—श्री आनन्द)

लड़ाई के मैदान में कृष्ण अर्जुन को समझा रहे थे और बार बार कह रहे थे—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

—गीता, ९।३४

मेरा चिन्तन कर, मेरा भक्त बन, मुझे ही नमस्कार कर। मुझ में आत्मा को लगाकर, मेरा परायण होकर तू मुझे ही पाएगा।

मामनुस्मर युद्धय च ।

— गीता, ८।७

मेरा ही स्मरण करता हुआ युद्ध कर।

यह सभी जानते हैं, एक समय में एक ही काम होता है। युद्ध के समय युद्ध और स्मरण के समय स्मरण। परन्तु कृष्ण कहते हैं, युद्ध तो कर; लेकिन मेरा स्मरण करता हुआ। इसलिये अर्जुन ने इस झमेले को सरल करने के लिये पूछा—

केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ।

—गीता, १०।१७

भगवन्, किन किन भावों में मुझे आपका चिन्तन करना चाहिए ?

भगवान् के चिन्तन किए जाने के छः भाव हैं। इन्हीं छः भावों के कारण वे भगवान् कहलाते हैं—

वैराग्यं ज्ञानमैश्वर्यं धर्मश्चेत्यात्मबुद्धयः ।
बुद्धयः श्रीर्यशश्चेति षड्वै भगवतो भगः ॥

वैराग्य, ज्ञान, ऐश्वर्य, धर्म, श्री और यश—भगवान् के ये छः भग हैं।

उत्पत्ति और प्रलय के जानने पर असली तत्त्व का बोध होता है। तत्त्वबोध का नाम ही ज्ञान है। तत्त्वबोध के कारण ही वैराग्य होता है। माया से प्रीति नहीं होती; उससे द्वेष भी नहीं होता। प्रीति और द्वेष का न रहना ही सच्चा वैराग्य है।

सृष्टि भगवान् से होती है और प्रलय भी भगवान् से। जो सृष्टि और प्रलय का करनेवाला है वह तो उसे भलीभाँति जानता है। इसलिये वह ज्ञानी है। उसमें ज्ञान है; क्योंकि सृष्टि और प्रलय के साथ ज्ञान की भी उससे उत्पत्ति होती है। सृष्टि, प्रलय और ज्ञानादि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भगवान् स्वयं कहते हैं—

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥
महर्षयः सप्तपूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥

—गीता, १०।४, ५, ६

बुद्धि, ज्ञान, असम्मोह, क्षमा, सत्य, दम, शम, सुख, दुःख, भव-उत्पत्ति, अभाव—प्रलय, भय, अभय, अहिंसा, समता, तुष्टि, तप, दान, यश, अयश ये तरह तरह के भाव मुझसे ही हुए हैं। इसी प्रकार सप्तर्षि, सनकादि चार महर्षि और मनु—ये सब मेरी ही भावनावाले हैं। इन्हें मैंने अपने मन से उत्पन्न किया है। यह समस्त प्रजा इन्हीं की है।

वैराग्य के सम्बन्ध में भगवान् का कहना है—

न मे द्वेष्योस्ति न प्रियः ।

—गीता, ९।२९

मेरा किसी से न द्वेष है और न प्रेम ही।

भगवान् का किसी से न प्रेम है न द्वेष। वे वीतराग हैं। वैराग्यशील हैं। ज्ञान उनसे उत्पन्न हुआ है। अतः वे ज्ञानघन हैं। मूर्तिमान् ज्ञान हैं। अर्जुन को अपनी तमाम विभूतियों को उन्होंने सुनाया है और अन्त में कहा है—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥
अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥

—गीता, १०।४१-४२

'जो जो पदार्थ विभूतियुक्त, श्रीमान् और शक्तिमान् हैं, उनको तू मेरे ही अंश से उत्पन्न हुआ जान। अधिक क्या कहा जाय, यह सारा जगत् ही मेरे एक अंश से स्थित है।' यह सारा जगत् उनकी विभूति ही है, उनका ऐश्वर्य ही है। इस समस्त जगत् की वे ही धारणा हैं, यह उन्हीं के आधार पर स्थित है। इसलिये वे साक्षात् धर्म हैं। श्री तो वे हैं ही। उन्हीं की शक्ति तो विश्वरूप से दिखाई देती है। और उन्हीं की महत्ता, उन्हीं का यश सब गाते हैं। अर्जुन ने स्वयं भगवान् से कहा है—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः............... ॥

गीता, १०।१२-१३।

'ऋषि, देवर्षि, नारद, असित, देवल, व्यास सभी कहते हैं कि आप परमब्रह्म हैं, परमधाम हैं, परमपवित्र हैं, शाश्वत पुरुष हैं, दिव्य हैं, आदिदेव हैं, अज हैं, विभु हैं। आपका यश सभी गाते हैं।'

यशयुक्त होने के कारण भगवान् यशस्वी हैं।

कृष्ण ने अपने मुँह से अपने छः भग स्पष्ट गिना दिए हैं। इन छः भगों के कारण ही उन्हें भगवान् कहा जाता है। कृष्णलीला में भी इन सबका आभास मिलता है—

कृष्ण के ऐश्वर्य और उनकी प्रभुता की उस समय के जगत् में अच्छी धाक थी। द्रौपदीस्वयंवर में सब लड़ते हुए राजाओं ने उनकी बात मानी थी। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उनकी सर्वप्रथम पूजा हुई थी। वृष्णि वंश उनके इशारे पर चलता था। यह सब उनका ही ऐश्वर्य था।

उनके वैराग्य का लक्षण जरासन्ध और कंस के मारने से ही प्रतीत हो जाता है। फिर दुर्योधन और अर्जुन दोनों को युद्ध के लिये सहायता देने में तो उनके राग-द्वेष की कहीं झलक ही नहीं मिलती।

ज्ञान के तो वे आचार्य थे। मोहग्रस्त अर्जुन को उन्होंने ही कर्त्तव्यपरायण बनाया था। गीता का शास्त्र सब शास्त्रों से बढ़कर माना जाता है। यह उन्हीं के ज्ञान की साकार मूर्ति है।

धर्म तो उनका प्राण है। उनका प्रत्येक कार्य धर्म ही था। वे 'धर्मसंस्थापनार्थाय' उत्पन्न ही हुए थे। आचार में, नीति आदि सब में उनके कार्य, उनके वाक्य—धर्म की आज्ञा और धर्म के—आचरण समझे जाते हैं।

उनकी श्री, उनकी शक्ति, उनकी लक्ष्मी तो सुदामा को अपने ही समान श्रीसम्पन्न बना देने से मालूम हो जाती है।

यश के सम्बन्ध में तो कुछ कहना ही नहीं है। हम सभी लोग उनके गीत गाते हैं। कौरवों की सभा में द्रौपदी ने भी उनका गीत गाया था—

गोविन्द द्वारिकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय,
कौरवैः परिभूतां मां किन्नजानासि केशव।

हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन॥
कृष्ण कृष्ण महायोगिन्विश्वात्मन्विश्वभावन।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम्॥

—महा०, स०, ६८।४१, ४२, ४३.

इस प्रकार श्री कृष्ण स्वयं भगवान् हैं, भागवत में तो स्पष्ट ही कहा है—

'वसुदेव गृहे साक्षात् भगवान् पुरुषः परः'

वसुदेव के घर में साक्षात् परमपुरुष भगवान् ने श्री कृष्णरूप से अवतार लिया है। इसीलिये महर्षि व्यास उच्चस्वर से कहते हैं—

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

—श्रीमद्भागवत १।३।२८

स्वप्न में

(श्री वृषकेतु उपाध्याय 'शुक' बी० ए)

अरे कभी से बैठा बैठा
था अनुरागगीत गाता।
नाथ नहीं फिर भी आते क्यों;
बात हुई क्या समझ न पाता॥

× × ×

तोड़ तोड़कर प्रति तन्त्री को
नव तारों से साज सजाया।
अतुल भावनामिश्रित लय से
फिर अनुराग राग गाया॥
गूँज उठा नभमण्डल सारा
हुआ प्रकम्पित बाल समीर।
मैंने गगन मार्ग से आते
देखी द्युतिमय एक लकीर॥
आतुर हो मैं लगा निरखने
अन्तराल में नैन गड़ाकर।
धीरे धीरे अभिनव श्री वह
बड़ी हुई विकसित होकर॥
किसी अदेखे हाथों ने तब
दिया खींच ओंकारस्वरूप।
प्रगटित हुआ मध्य में उसके
कृष्णराय का साँवल रूप॥
अर्ध चित्र था खिंचा वहाँ पर
घुँघराली अलकावलि काली।
बिखर रही थी नील वदन पर
भँवरों की ज्यों टोली काली॥
वङ्किम नैन विशाल कमल से
तिलक लाल उन्नत मस्तक पर।
झूल रही थी सित वनमाला
श्यामज्योतिमय वक्षस्थल पर॥
योगिराज सा रूप बना था
कंधे पर पीताम्बर डाले।
रक्त अधर पर मुरली रखकर
फूँक रहे थे मुरलीवाले॥
सतृष नयन में मोहन छवि को
रहा निरखता स्वत्व मिटाकर।
मुरलि, बजाती रागनि क्या है ?
इसी चाव से कान लगाकर॥
बजी भैरवी रागिन सहसा
भनक पड़ी कानों में ध्वनि की।
लगा झूलने वनमाला में
बेसुध प्राण भूल सुध तन की॥

× × ×

मधुरतान की स्वरलहरी से
निकल पड़ी तब अमृतसरिता।
पान कर रहा बैठा बैठा
अन्धकार रे! छँटता जाता॥

वासुदेव कृष्ण

(ले० — श्री व्योमविहारी)

जगत् में दो प्रकार के तत्त्व हैं—सम और विषम; स्थिर और चल; ऊर्ध्वाम्नाय और पादाम्नाय। दोनों के दोनों ही परमतत्त्वरूप भगवान् के अनादि और नित्य अङ्ग हैं। हैं दोनों ही सत्य। उनमें से एक 'अस्ति' रूप है, दूसरा 'भवति' रूप है। 'अस्ति' रूप से भगवान् शान्त, स्थिर, सर्वतोमुखी, सहस्रशीर्षा, एक, समब्रह्म हैं। ये सब जगह, सब कुछ, स्वप्रतिष्ठ हैं। येही अव्यक्त, अनिर्देश्य और निष्क्रिय हैं। दूसरे जो 'भवति' रूप से श्रीयुक्त भगवान् हैं ये सर्वत्र, सबमें व्यापक होते हुए सबसे ऊपर रहते हैं। ये 'विषम' ब्रह्म-रूप से 'सहस्रपात्' होकर अपनी परमा, अपार्थिव शक्ति के सहित नीचे इस अवनितल पर विपुल कर्मों की दिव्यता को धारण किए हुए उतर आते हैं; बहुरूपता को प्राप्त करते हैं और परिदृश्यमान् पृथिवी की जड़ता में से सुप्त-चैतन्य को प्रकट करते हैं। ऊँचे और नीचे को काट-छाँटकर यथातथ्य करते हैं। प्रत्येक वस्तु की ठीक-ठीक नाप-तौल करते हैं। उनको ठीक तन्त्र में सुव्यवस्थित कर देते हैं। ये सकल कर्मों के प्रभु, मायापति, श्रीपति हैं। अपने दिव्य ऐश्वर्य और सामर्थ्य से—कर्मकुशलता से—ये समस्त योगों के ईश्वर होकर नित्य ही अपनी अनन्तता में से नवतत्त्व को प्रकट करके नया सृजन, पालन और परिवर्त्तन करते हैं। ये असल में सम, शान्त, ब्रह्म के भी ऊपर हैं; और नित्य के प्रचण्ड कर्मों की अत्यधिक तेज गति के कारण स्थिर से मालूम पड़ते हैं। अत्यन्त प्रकाशयुक्त होने से आँखों को चौंधिया देते हैं और दिखाई नहीं पड़ते। वे 'हैं' और अवश्य दीखने ही चाहिए; इसका प्रमाण वे अति दयावश स्थूल-रूप होकर—'भवति' रूप होकर देते हैं। पृथिवी की पार्थिव जड़ता को अपने कंधों पर उठाए हुए वे अपने को व्यक्त कर देते हैं। सब पदार्थ चैतन्य हैं और मेरी सत्ता से सत्तावान् और सत्य हैं—यह इन्हीं आंखों से दिखा देते हैं, मानवी मन में पूरा पूरा अनुभव करा देते हैं। इसीलिये हम मानवों के सुबोध और सुभीते के प्रयोजन से वे मानवी विग्रह धारण करते हैं; ताकि मनरूप मनुष्य अपने मन से, अपने प्राण से, अपने शरीर से उनके साथ ठीक ठीक सम्बन्ध स्थापित करने में समर्थ हो और उनके अंदर की विलक्षण चेतनता और अलौकिक ऐश्वर्य को देख और अनुभव करके अपनी सीमा को भी इसी प्रकार विस्तृतकर असीम में परिणत कर दे, जो कुछ रुद्ध और बद्ध है उसे मुक्त और प्रवाहित कर दे। अन्धकार और संशय से पूर्ण प्रकाश और अभ्रान्त लक्ष्य पर आसीन हो जाय। भगवान् अपने जिस कौशलद्वारा यह महत्कार्यसम्पादन करते हैं, वह है उनका योग! और योगस्थ होकर दिव्य कर्मों के प्रभु को ही श्री-विजय-नीतियुक्त, योगेश्वर कृष्ण कहते हैं। भगवान् पूर्णरूप से 'कृष्ण' बनकर ही व्यक्त हुए हैं। गीता के अन्तिम सञ्जयवाक्य इस बात को भली प्रकार परिस्फुट कर गए हैं। यह हुआ सच्चिदानन्द, योगेश्वर, कर्मेश्वर, व्यक्तेश्वर, बहुरूप पुरुषोत्तम के 'भवति' का रहस्योद्घाटन।

उन्हीं भगवान् का दूसरा रूप 'अस्ति' है वह अव्यक्त, शान्त, अचल, सम और एक है। ये सबको अपने अन्तर्गत किए हुए हैं और सदा किए रहते हैं। इसी हेतु ये अधिक गम्भीर, निस्पन्द और निष्क्रिय-रूप हैं। कारण, ये अचलभाव से सर्वत्र व्याप्त हैं,

ऊपर के आकाश की तरह। ये 'केवल मात्र' हैं, अपने सत्स्वरूप में नित्य अवस्थित हैं—अचल, शान्त, अव्यक्त, अगोचर हैं। मानवों से यह स्वरूप छिपा रहता है। केवल रूप की ही अभिव्यक्ति होती है; स्वरूप की नहीं। इन रूपाभिव्यक्तिकरणों को अवतरण के परिमाणानुसार 'राम'-'कृष्ण' आदि नामों से गोचर किया गया है। श्री कृष्ण सच्चिदानन्द पुरुषोत्तम हैं, भगवान् की पूर्ण अभिव्यक्ति हैं; और इसीलिये उन्होंने अपने अव्यक्तस्वरूप समब्रह्म का परिचय भी अपने श्रीमुख से स्वयं दे दिया है। प्रकृति के क्रमिक विकासपद में मन का अवतरण उस युग में हो चुका था। मन का मालिक मनुष्य गुप्त रहस्यों को हृदयङ्गम करने को समर्थ हो गया था। भगवान् ने भी अपना सर्वतोव्याप्त अव्यक्तस्वरूप प्रकट कर दिया—'वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि', 'वासुदेवः सर्वमिति'। यह 'वासुदेव' स्वरूप व्योमवत् सर्वत्र व्याप्त है। 'श्री कृष्ण' उनका व्यक्तरूप है, उसीको संसार ने जाना और पुकारा। वह पृथिवीगत कल्लोलमय जलधि-रूप हैं। व्यापक होने से नील वर्ण दोनों ही हैं, फिर भी ऊपर का व्योम है सूक्ष्म, दूरस्थ, शान्त और अचल (यद्यपि सकल ध्वनिपुञ्ज का जनक वही है)। नीचे का सागर है स्थूल, गोचर, उछलता-नाचता हुआ। निःशब्दता और गम्भीरता उसके तल में हैं, ऊपर की सतह ही तरङ्गायित रहती है। आकाश में विविध वर्ण-रञ्जित अनेक नक्षत्रादिकों की नित्य क्रीड़ा होती है, प्रकाश-पूर्ण लोकों की अवस्थिति रहती है; नीचे का महासागर भी नानातरङ्गनृत्यों को अपने ऊपर धारण किए हुए है, अपनी गहराई में छिपे हुए बहुमूल्य उज्वल रत्नराशि को तरङ्गरूप हस्त से उछाल उछालकर बाहर प्रकट करता रहता है। दोनों ही महिमायुक्त हैं। ऐश्वर्य-वैभवशाली हैं। एक मानों उत्तरी ध्रुव है, दूसरा नीचे का दक्षिणी ध्रुव। दोनों के मिलने से ही गोला पूर्ण बनता है।

आकाश की शोभा को नक्षत्रजटित रात्रि में देखिए और इससे भी अधिक देखकर आनन्दलाभ कीजिए—पूर्णिमा की चन्द्रिका-यामिनी को, जिसमें भगवान् चन्द्रदेव चतुर्दिक् व्याप्त छोटे-मोटे नक्षत्रपुञ्जों को अपनी व्यापक, स्निग्ध चन्द्रिका में लीन करता हुआ, मस्त चाल से झुकता हुआ पार्थिव महासागर को अपने अवरोहालिङ्गन और प्रकाशस्पर्श से ऊपर उठा लेता है; जिससे सागर की पृथ्वीबद्ध सीमा उन्मुक्त होकर गुप्त रत्नराशि को, हृदय-कपाट खुल जाने पर बाहर बिखेर दे और संसार को माला-माल कर दे।

भगवान् भी केवल ऊपर ही नहीं हैं; एक ही नहीं हैं। वह यहाँ नीचे भी हैं; 'बहु' रूप से सर्वत्र बिखरे पड़े हैं। परन्तु नीचे पृथ्वी में वह बँध से गए हैं—उनका वैभव और गुण; उनका प्रभाव तथा रहस्य यहीं पृथ्वी के गर्भ में छिपा हुआ है। जीव की पुकार से द्रवीभूत होकर ऊपर के परम प्रकाश भगवान् का जब अवतरण होता है तब उसके दिव्य स्पर्श और आलिङ्गन से आनन्द की उछाल के साथ ही दिल के बंद कपाट खुल पड़ते हैं और अन्तर्निहित भगवज्ज्योति बाहर फूट निकलती है। जड़ता ढल पड़ती है—तरलता में। अन्धकार का परदा हट जाता है। जीव ईश होकर भगवदंश बनने का आनन्दलाभ करता है; और हो जाता है सच्चिदानन्द योगेश्वर के अभ्रान्त सतत दिव्य कर्मों का शुद्ध यन्त्र, पूर्णयोगी।

श्री कृष्ण से पहले के सब अवतारों में भगवान् के एक ही रूप—सच्चिदानन्द 'भवति' का ही वर्णन विशेष-रूप से पाया जाता है। उनके दूसरे अव्यक्त, सर्व-व्यापक, सम, 'अस्ति' रूप का व्यक्तीकरण हुआ है गीता में 'वासुदेव' रूप से। 'अस्ति' और 'भवति' का समुच्चय ही पूर्णत्व है। और इसलिये श्री कृष्ण पूर्ण परमात्मा हैं। वह 'अवतार' में नीचे उतरकर कृष्ण रहते

हुए अचल, शान्त, सर्वव्यापक 'अस्ति' परब्रह्म भी हैं। योगेश्वर श्री कृष्ण हैं, योगीश्वर वासुदेव हैं। हमें केवल योगेश्वर ही बनना नहीं है, योगीश्वर भी होना है। ऊपर के महदाकाश के साथ ही साथ पार्थिव उदधि की असीमता भी होना है; 'एकं', 'अहं' के साथ ही साथ 'बहु', 'इदं' भी होना है; अचल के साथ सचल भी होना है; शान्त, निष्क्रिय के साथ प्रचण्डकर्मा भी होना है; और मूल सत्ता की नींव पर अभिव्यक्तिरूप जगती के परिवर्त्तनशील नए नए खेल भी खेलना है।

जगदीश्वर की ही अभिव्यक्ति यह जगती है। वासुदेव का ही यह 'वास्य' [रहने का स्थान] है। पूर्ण पुरुषोत्तम परमात्मा के चित् तपस् ने अपने सत्-स्वरूप 'वासुदेव' के अव्यक्त रहस्यों को कृष्णरूप से—आनन्द से आन्दोलित होकर बाहर जगत् की अनन्तता में स्थूलरूप से खूब ही अभिव्यक्त कर दिया है। अगोचर दृग्गोचर हो रहा है। इस हिसाब से जडता, व्यावहारिकता, संसारभोग को घृणापूर्वक फेंक देने के बजाय उसको ऊपर के दिव्य प्रकाश से प्रकाशितकर कायापलट कर देना चाहिए। सुन्दरता को देखकर पतन के भय से आँखें फोड़ने की आवश्यकता नहीं है; आवश्यकता है सुन्दरता का अनुभव करनेवाले मन के दिव्य रूपान्तर करने की। फिर जगत् की प्रत्येक वस्तु प्रकाश, पूर्ण, शुद्ध और सुन्दर इसलिये दीखेगी कि जगदीश्वर—परम सुन्दर, परम प्रकाश और सब कुछ है। जगत् और उसकी प्रत्येक गति तथा वस्तु में, प्रत्येक व्यवहार में परमार्थ-रूप श्री भगवान् को प्रकट कर देना है। फिर व्यवहार और परमार्थ, त्याग और भोग में कोई विरोध नहीं होगा। अन्तःशक्ति परमात्मा शरीर के ढाँचे में ढलकर उसे पूर्ण, शुद्ध, अमर और सिद्ध बनायेंगे, जागतिक प्रत्येक कर्म उनका प्रकाश और स्पर्श पाकर, परम शक्ति के साथ एक होकर दिव्यता के साथ चालित होगा और जियेगी परम सत्ता के महाश्वास में भौतिक जड़ता पिघलकर।

कृष्णस्तवन

(महात्मा तुलसीदास)

गोपाल गोकुलबल्लभीप्रिय गोप-गोसुतबल्लभं।
चरनारबिन्दमहं भजे भजनीय सुर-मुनिदुर्लभं॥
घनश्याम काम अनेक छबि, लोकाभिराम मनोहरं।
किञ्जल्कबसन, किसोर मूरति, भूरि गुन करुनाकरं॥
सिर केकिपच्छ बिलोल कुण्डल अरुन बनरुहलोचनं।
गुञ्जावतंस बिचित्र, सब अँग धातु भवभयमोचनं॥
कचकुटिल, सुन्दर तिलक भ्रू राकामयङ्कसमाननं।
अपहरन तुलसीदासत्रास बिहार बृन्दाकाननं॥

गोपाल कृष्ण

(ले० —श्री ब्रह्मदत्त शर्मा 'शिशु')

आर्यों का वह ज्ञानपूर्ण स्वर्णकाल जो विश्व में सबसे प्रथम ज्ञानसूर्य का दर्शन कराता है गोधन के साथ है। गौ के दूध में ही वह पूर्ण पावनी शक्ति है, जो मनुष्य के मस्तिष्क और बुद्धि का पुनीत और पूर्ण विकास कर सके। भारतहृदय की यह आवाज —"ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणान् परित्यजेत्" राष्ट्रीय जीवन की मूलशक्ति है। ब्राह्मणरूप, राष्ट्र का सत्य ज्ञान है; और गौरूप राष्ट्र का सत्य जीवित धन है। यह भारतीय आर्यजीवन का प्राण-सूत्र है। जिस दिन यह न रहेगा भारतीय आर्य जाति की समाधि है, उसके स्वर्णप्रभ दिव्यालोक का तिरोभाव है।

ब्राह्मणरूप ज्ञान की प्रतिष्ठा और नित्यरक्षण के लिये राजा और प्रजा क्या महादान देते थे? गौ! एक एक लक्ष गाय। आर्यजीवन का इतिहास इसका प्रबल साक्षी है। इसमें क्या रहस्य है? एक मात्र यही कि ज्ञानोद्भव के लिये पवित्र, सात्त्विक ओज-बल-पुष्टिकारक योग्य, आहार की नितान्त आवश्यकता है, क्योंकि उस आध्यात्मिक सत्य और ज्योति के अवतरित होने के लिये शरीर ही तो एक मात्र आधार है, रङ्गमञ्च है। अविकसित, निर्बल शरीर और अदृढ़, निर्बल मन की भूमि पर उस शक्तिमान् सत्य का उदय हो ही कैसे सकता है। ज्ञान-शक्ति हिमालय के उत्तुङ्ग शिखर से यह शङ्खनाद कर रही है—"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"। फिर निर्बल आधार पर वह कैसे टिकेगा? सात्त्विक ज्ञानशक्ति सात्त्विक भूमि पर ही उद्भूत हो सकती है। इसलिये आधारभूमि को निर्माण करनेवाला द्रव्य भी सात्त्विक ही होना चाहिए, अन्यथा उसको पुष्ट और दृढ़ करनेवाली वह वस्तु जो तामसिक या राजसिक हो, उस पावन सत्य के उदय में अनुकूल नहीं हो सकती। मांसभक्षण शरीर को दृढ़ और पुष्ट कर सकता है पर वह तामसिक और रजःप्रधान ही होता है। वह प्राकृतिक और नित्य पावन ज्ञान के उदय में सहायक नहीं हो सकता। परन्तु गाय के दुग्ध और घृत आदि में वे सब दिव्य गुण हैं, जिनकी उस सत्य की भूमि के लिये नितान्त आवश्यकता है। गौ के दुग्ध में शरीर को सबल और पुष्ट करने के साथ ही मन को शान्त, स्थिर और पवित्र करने की प्राकृतिक शक्ति है। वह मस्तिष्क के ज्ञानतन्तुओं को विकसितकर बुद्धि को सूक्ष्म, विषयग्राहिणी बनाता है। पाश्चात्य के उन्नत डाक्टरों ने इसका वैज्ञानिक विश्लेषणकर सिद्ध कर दिया है कि शरीर और मस्तिष्क तथा जीवनी शक्ति को प्रवर्द्धित और परिपुष्ट करने के लिये उसमें समस्त तत्त्व हैं। उन्होंने गाय के दुग्ध और मक्खन के लिये अपने देशवासियों को प्रतिष्ठित सम्मति दी है और गउओं की नस्लें बढ़ाने का पूरा प्रयत्न हो रहा है। परन्तु इधर भारत के प्रधान नेता तक की आवाज निराली है। वे गाय को अन्य पशुओं जैसा साधारण पशु कहते हैं। उनके जीवन के लिये पथ्य है बकरी का दूध। भला बकरी का दूध पीकर बलिदान का बकरा बनने के सिवाय और बना ही क्या जा सकता है।

आर्यजीवन की विश्व में प्रतिष्ठित मौलिक पवि-

त्रता और उसके नित्यपावन मौलिक ज्ञान की मूल भित्ति एक मात्र गौ है। भारतीय आर्यत्व गौ पर प्रतिष्ठित है, जीवित है। शरीर के जीवनविकास के लिये गौ की प्राकृतिक देन के समान संसार में और कोई वस्तु नहीं है। उसके तो तक्र के लिये भी आयुर्वेद पुकार रहा है कि वह मर्त्यलोक का अमृत है; महान् जटिल रोगों के विनाश की उसमें शक्ति है—"न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः" यह आयुर्वेद का वाक्य है। इन्हीं बातों को लक्ष्य में रखते हुए भगवान् कृष्ण ने अपने इह जीवनलीला की प्राथमिक नींव में मक्खन, दही, दूध का ही सीमेंट भरा है और बतलाया है कि देश में इतना मक्खन और दूध कर दो कि उसकी लुटाई भी किसी को न अखरे। तब यदि भारत अपने विश्ववन्द्य अतीत गौरव और स्वर्णिल दिव्य काल के साथ विश्वगुरु के आसन पर फिर प्रतिष्ठित होना चाहता है तो उसको भगवान् ही की तरह गउओं के पीछे विश्वविमोहन मुरली की तान सुननी पड़ेगी और ऊँचे से ऊँचा विद्वान् होने पर भी आवश्यकता पर गउएँ चराने के लिये तैयार होना पड़ेगा और बनना पड़ेगा ग्वाला। भगवान् फिर साथ हैं और इस संसाररूपी कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि से विजय के साथ वह निकाल ले जायँगे, इसमें क्या सन्देह है! जिस प्रकार भगवान ने विश्वज्ञानरूपी दुग्ध का नवनीत हमारे लिये गीता के रूप में प्रदान किया है, उसी प्रकार गोमाता के दुग्ध से मन्थनकर प्राण, मन, शरीर का परिपोषक वीर्य-बल-ओज-शक्ति-पूर्ण परम पावन मक्खन हमारे सामने रख दिया है। यह शरीररूपी रथ को दृढ़ बनाने का महातत्त्व है। भगवान् कह रहे हैं कि गोमाता के इस दिव्य प्रसाद से देश को परिपुष्ट कर दैविक राज्य की प्रस्थापना करो, भारत को क्षीरसागर बना दो; फिर मैं विश्व की लक्ष्मी सहित तुम्हारे मध्य हूँ। और तभी तुम मेरे उस पूर्ण ज्ञान को धारण करने में समर्थ हो सकोगे, जिसको मैंने गीता में प्रस्तुत किया है।

निःसन्देह यदि हम गोपाल के होना चाहते हैं तो हमें ग्वाला बनना ही पड़ेगा। और तब हमारी भुजाओं में आसुरी बलप्रध्वंसक अटूट बल, आँखों में दिव्यज्योति, हृदय में अथक उत्साह, मन में तथ्यग्राही विचार और प्राणों में आसुरी शक्ति-उन्मूलक प्रकम्पन तथा आत्मा से विश्वप्रसारक शान्ति का अबाधरूप से वर्षण होगा, भगवान् हमारे और हम भगवान् के होंगे।

गोपाल महिमा

(महात्मा सूरदास)

करी गोपाल की सब होइ।
जो अपनो पुरुषारथ मानत अति झूठो है सोइ॥
साधन मन्त्र यन्त्र उद्यम बल यह सब डारहु धोइ।
जो कुछ लिखि राखी नँदनन्दन मेटि सकै नहिं कोइ॥
दुख-सुख लाभ-अलाभ समुझि तुम कतहिं मरत हो रोइ।
सूरदास स्वामी करुना मय स्याम-चरन मन पोइ॥

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि

(ले० — श्री विट्ठल शर्मा चतुर्वेदी)

युधिष्ठिर पाण्डवों में बड़े थे। लोगों ने उनसे राजसूय यज्ञ करने के लिये कहा। चक्रवर्ती बनने की इच्छावाला ही इस यज्ञ को करता है। युधिष्ठिर ने कृष्ण से पूछा—क्या मैं राजसूय यज्ञ करने का अधिकारी हूँ, अथवा चक्रवर्ती हो सकता हूँ? कृष्ण ने पुराकाल के चक्रवर्तियों की योग्यता बतलाई; उन्हों ने कहा—

यौवनाश्व, जो कुछ जीतना चाहिए उसे जीतकर सम्राट् बने, भगीरथ ने प्रजापालन करके सम्राट्पद पाया, कार्त्तवीर्य तपस्या के बल से सम्राट् बने, भरत ने बाहुबल से सम्राट् पदवी पाई, मरुत् धन-बल से सम्राट् हुए †।

कृष्ण के कहे हुए इन पाँच सम्राटों से सम्राट् बनने के पाँच ढंग मालूम होते हैं। ये पाँचों ढंग धर्म, अर्थ और नीति के सामञ्जस्य से गुँथे हुए‡ हैं। कृष्ण के समय में जरासन्ध सम्राट् था*। इसने अपना साम्राज्य बलपूर्वक बढ़ाया था। इसमें धर्म, अर्थ और नीति का सामञ्जस्य न था†। इसी कारण बहुत से राजा उससे डरते थे। अनेकों ने उसके भय से अपना स्थान ही छोड़ दिया। उत्तर देश के राजे और अठारह भोजकुल पश्चिम दिशा को भाग गए। शूरसेन, भद्रकार, बोध, शाल्व, पटच्चर, सुस्थल, सुकुट्ट, कुलिन्द, कुन्ति, शाल्वायनवंश के राजा, दक्षिण पाञ्चालदेश के राजा और पूर्व कोशल देश के राजा पश्चिम दिशा को भाग गए, मत्स्य और संन्यस्तपाद देश के राजा भी उत्तर दिशा को छोड़कर दक्षिण दिशा को भाग गए‡।

यादवों पर भी उसकी निगाह थी। यादव

† जित्वा जय्यान्यौवनाश्विः पालनाच्च भगीरथः।
कार्त्तवीर्यस्तपोवीर्याद्बलात्तु भरतो विभुः॥
ऋद्धया मरुतस्तान्पञ्च सम्राजस्त्वनुशुश्रुम।
—म० सभापर्व १५।१५, १६

‡ मन्त्रान् वश्याननुमृशन्नेवमेव सतां युगे।
नियाह्य लक्षणं प्राप्तिर्धर्मार्थनयलक्षणः॥
म० सभापर्व १५।१७

* बार्हद्रथो जरासन्धस्तद्विद्धि भरतर्षभ।
म० स० १५।१७

† न चैनमनुरुद्ध्यन्ते कुलान्येकशतं नृपाः।
तस्मादिह बलादेव साम्राज्यं कुरुते हि सः॥
रत्नभाजो हि राजानो जरासन्धमुपासते।
न च तुष्यति तेनापि बाल्यादनयमास्थितः॥
—म० सभापर्व १५।१८, १९,

‡ उदीच्याश्च तथा भोजाः कुलान्यष्टादश प्रभो।
जरासन्धभयादेव प्रतीचीं दिशमास्थिताः॥
शूरसेना भद्रकारा बोधाः शाल्वाः पटच्चराः।
सुस्थलाश्च सुकुट्टाश्च कुलिन्दाः कुन्तिभिः सह॥
शाल्वायनाश्च राजानः सोदर्यानुचरैः सह।
दक्षिणा ये च पाञ्चालाः पूर्वाः कुन्तिषु कोशलाः॥
तथोत्तरां दिशं चापि परित्यज्य भयार्दिताः।
मत्स्याः संन्यस्तपादाश्च दक्षिणां दिशमाश्रिताः॥
तथैव सर्वपाञ्चाला जरासन्धभयार्दिताः।
स्वराज्यं सम्परित्यज्य विद्रुताः सर्वतो दिशम्॥
—म० सभापर्व १४।२५–२९

इस समय मथुरा में रहते थे। जरासन्ध ने अपनी दोनों कन्यायें कंस को विवाह दीं। कंस, जरासन्ध का बल पाकर यादवों को दबाकर और अपने पिता उग्रसेन को गद्दी से उतारकर उनका प्रधान बन बैठा। यादव लोग उसकी अनीति से तंग आ गए। उन्होंने जातिरक्षा के लिये कृष्ण से कहा।

मथुरा में यादवों के अठारह कुल थे, परन्तु प्रसिद्ध दो वंश थे—(१) वृष्णि और (२) भोज। भोज भी दो वंशों में बँटे हुए थे—(१) कुकुर और (२) अन्धक। कृष्ण वृष्णिवंशी थे। यादवों के प्रधान कुकुरवंशी उग्रसेन थे। कंस इन्हीं का लड़का था।

कृष्ण की माता देवकी उग्रसेन के भाई देवक की कन्या थी। शिनि* देवकी को स्वयंवर में से वसुदेव के लिये लाए थे†। कृष्ण के पिता का नाम वसुदेव है।

शूरसेन के एक चाचा युधाजित थे। उनके लड़के का नाम पृश्नि था। पृश्नि के लड़के का नाम श्वफल्क और श्वफल्क के लड़के का नाम अक्रूर था। अक्रूर वृष्णिवंशियों के नेता थे।

कुकुरवंशियों में उग्रसेन के पिता आहुक की चलती थी। यादववंश के आहुक और अक्रूर प्रधान नेता माने जाते थे; परन्तु इन दोनों की आपस में बनती न थी। कंस ने इस फूट का फायदा उठाया। जिस यदुवंश में सङ्घशासनप्रणाली थी, कंस ने उसमें एकराट् (Monarch) होकर शासन करना प्रारम्भ किया।

कंस सङ्घ के नियम मानता न था, सङ्घ ने भी कंस को अपना प्रधान नहीं माना था, फिर भी सङ्घ का कोई आदमी उसका खुल्लम-खुल्ला विरोध न करता था। भोजवंश के कुछ वृद्धों ने कंस के कार्यों से दुःखी होकर कृष्ण को अपनी दुःखगाथा सुनाई। कृष्ण ने कंस के अत्याचारों से सङ्घ को बचाने के पहले अपनी आपसी फूट को मिटाने का प्रयत्न किया। आहुक की कन्या अक्रूर को विवाह दी। यह उग्रसेन की बहिन थी। दोनों नेता, जो आपस में लड़ते थे, इस नए सम्बन्ध से एक हो गए। इनका सम्बन्ध करादेने तथा फूट को मिटादेने के कारण यादवों में कृष्ण की धाक जम गई। अपनी इसी धाक का फायदा उठाकर कृष्ण ने कंस को मार डाला और सङ्घ के प्रधान उग्रसेन को पुनः उनके स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया। उग्रसेन सङ्घ के कायदे-कानून मानते थे, इसलिये उन्हें सब कोई चाहता था। उग्रसेन के पुनः प्रतिष्ठित हो जाने से सब प्रसन्न हुए और सङ्घ का कार्य फिर ठीक से चलने लगा।

कंस क मर जाने से जरासन्ध का भी दबदबा चला गया था। कंस की स्त्रियाँ जरासन्ध की लड़कियाँ थीं, वे भी विधवा हो गई थीं। जरासन्ध ने इसका बदला लेने के लिये तथा यादवों को अपने वश में करने के लिये मथुरा पर चढ़ाई कर दी। कृष्ण की नीति से उसे बार बार हारकर लौटना पड़ा। इधर बार बार की लड़ाई से यादवों की शक्ति को भी क्षीण होते देख कृष्ण के परामर्श से यादवों ने मथुरा ही छोड़ दिया और कुशस्थली में जाकर रहने लगे। इसी स्थान को द्वारका कहते हैं।

जरासन्ध का सम्राट् होना सब को खलता था;

* वसुदेव के पिता शूरसेन थे, शूरसेन के पिता देवमीढ़ूष। देवमीढ़ूष तीन भाई थे—सुमित्र, युधाजित और देवमीढ़ूष। सुमित्र के पुत्र का नाम शिनि था। सुमित्र, युधाजित तथा देवमीढ़ूष के पिता का नाम वृष्णी था। इन्हीं के कारण यह वंश वृष्णिवंश कहलाया।

† महाभारत द्रोणपर्व १४४।१०

क्योंकि जरासन्ध एकराट् सम्राट् था। उसे अपने मतलब से मतलब था। न उसे दूसरों की परवाह थी और न दूसरों की चिन्ता। इसके विपरीत युधिष्ठिर का सम्राट् होना सबको पसंद था। कृष्ण भी युधिष्ठिर का साम्राज्य चाहते थे।

वसुदेव की पाँच बहिनें थीं। उनमें एक का नाम कुन्ती था। कुन्ती का विवाह पाण्डु के साथ हुआ था। पाण्डव उन्हीं के लड़के थे। युधिष्ठिर पाण्डवों में सबसे बड़े थे। उनमें राजोचित सभी लक्षण थे। वे कृष्ण को मानते थे। अपनी सभी बातों में उनसे सलाह लेते थे। धर्म ही इनके जीवन का प्रधान अङ्ग था। इनके सम्राट् बनने से राजाओं की अन्तर्राष्ट्रीय नीति में खलल न पड़ सकता था और प्रजा को भी किसी प्रकार के कष्ट मिलने की सम्भावना न थी। कृष्ण को ऐसे ही सम्राट् की ज़रूरत थी। परन्तु जरासन्ध के रहते युधिष्ठिर सम्राट् हो ही नहीं सकते थे। इसलिये जरासन्ध के नाश करने की सलाह कृष्ण ने युधिष्ठिर को दी और स्वयं भी उसमें सहयोग देने के लिये तैयार हो गए। जरासन्ध मार दिया गया। युधिष्ठिर सम्राट् बन गए। पाण्डवों के साथ और घनिष्ठ सम्बन्ध करने के लिये कृष्ण ने अपनी बहिन सुभद्रा का विवाह अर्जुन के साथ कर दिया। इस तरह वृष्णिवंशियों का सङ्घवाद या प्रजातन्त्रवाद अक्षुण्ण हो गया। यहाँ तक कि युधिष्ठिर का साम्राज्य भी इसी सिद्धान्त पर स्थापित हुआ।

हर एक मनुष्य में कुछ कमजोरियाँ रहती हैं। युधिष्ठिर में ऐसी ही कुछ कमजोरियाँ थीं; इसलिये विपक्षियों ने उसका फायदा उठाया। युधिष्ठिर अधिक समय तक सम्राट् न रह सके। कुचक्रियों के चक्र में फँस गए और अपने साम्राज्य से हाथ धोना पड़ा। कृष्ण को इसका तब पता लगा जब वे तेरह बरस के लंबे बनवास के लिये घर से चल दिए थे।

तेरह बरस समाप्त हो जाने पर जब पाण्डव विराट् के यहाँ प्रकट हुए उस समय कृष्ण युधिष्ठिर से मिले और उन्हें साम्राज्य पर पुनः प्रतिष्ठित करने के लिये तैयारी करने लगे। इस कार्य के लिये कृष्ण को दूत और सारथी तक बनना पड़ा, किन्तु सङ्घवाद का प्रचार करने के लिये उन्होंने करना न करना सब कुछ किया।

पिछली बार उन्हें अपने सङ्घवाद की प्रतिष्ठा करने के लिये अपने ही मामा को मारना पड़ा था। इसके बाद ऐसे व्यक्ति को मारने का नंबर आया जो यादवों का कोई खास सम्बन्धी नहीं था, लेकिन अब की बार का युद्ध इसके विपरीत था। यादवों का सम्बन्ध पाण्डवों से भी था और कौरवों से भी। पाण्डवों को मदद देने के कारण कृष्ण के बड़े भाई बलराम तक उनसे नाराज हो गए थे। इधर कृतवर्मा, जो अन्धकवंशी महारथी था, अपनी नारायणी सेना लेकर कौरवों की तरफ जा मिला था। कृष्ण ने अपने जातिहितकारी, समाजहितकारी, विश्वकल्याणकारी सिद्धान्त के आगे किसी की भी परवाह नहीं की। वृष्णियों से पाई हुई सम्पत्ति—सङ्घवाद—की अन्त तक रक्षा की। युधिष्ठिर के पक्ष में रहकर कृष्ण ने उन्हें पूरी सहायता दी। युधिष्ठिर की विजय हुई। वे फिर से सम्राट् बनाए गए। सङ्घवाद फिर अपने पूर्वरूप में काम करने लगा। †

युधिष्ठिर की शासनप्रणाली का आधार धर्मनीति और प्रेम था। महाभारतयुद्ध के अनन्तर युधिष्ठिर को जब सम्राट् बना दिया गया तब कृष्ण ने उन कमियों

† युधिष्ठिर कालीन सङ्घशासनप्रणाली देखने के लिये श्री चमूपति एम० ए० लिखित 'योगेश्वर कृष्ण' का 'युधिष्ठिर की राज्यप्रणाली' अध्याय देखना चाहिए।

की ओर भी युधिष्ठिर का ध्यान करा दिया था, जिसके कारण एक बार पाए हुए साम्राज्य से उन्हें हाथ धोना पड़ा था। महाभारत के स्वर्गारोहण पर्व में इसका 'कामगीता' के रूप में उल्लेख हुआ है ‡।

कृष्ण अपनी नीति और धर्म के कारण वृष्णियों के मुखिया थे ❀। उनकी धर्मनीति वृष्णियों की धर्मनीति थी। वृष्णियों की इस धर्मनीति का महाभारत में जगह जगह उल्लेख है—

'वे सर्वदा सावधान रहते हैं। अपने पराक्रम से ही सदा विजय करनेवाले हैं। वे कभी पराधीन होकर रहनेवाले नहीं हैं। वे अपनी जातिवालों का अपमान नहीं करते, बड़ों की आज्ञा में चलते हैं।

वे ब्रह्मद्रव्य, गुरुद्रव्य और जातिद्रव्य की रक्षा करते हैं। आपत्ति में रहने पर भी आपत्तिग्रस्त मनुष्यों की रक्षा करते हैं। धनाढ्य होकर भी निरभिमानी हैं। ब्रह्म की उपासना करते हैं। सत्यवादी हैं। समर्थों का सम्मान करते हैं, दीनों की सहायता करते हैं। वे सदा देवोपासना करते हैं, व्यवहार में बड़े चतुर हैं। व्यर्थ की बकवाद कभी नहीं करते। यही कारण है कि वृष्णिवीरों का सङ्घ सङ्गठित है और वे अजेय हैं †।'

सङ्घ को नष्ट करने के लिये सङ्घ के भीतर और बाहर दोनों ओर से ही उद्योग होता है। परन्तु यदि सङ्घ का सङ्गठन ठीक हो, उसके भीतर से नष्ट करने का कोई प्रयत्न न हो तो बाहर की शक्ति उसे छिन्न-भिन्न नहीं कर सकती। परस्पर का कलह और मनोमालिन्य ही सङ्घ को भीतर से नष्ट करता है। वृष्णियों के इस कलह का अनुभव कृष्ण कर चुके थे। नारद से भी उन्होंने इस कलह का जिक्र किया था और उसे शान्त करने का उपाय पूछा था। नारद ने कहा था—

'शक्ति के अनुसार नित्य अन्न देना, सहनशीलता रखना, सरलता रखना, कोमलता रखना और सम्माननीय पुरुष का सम्मान करना—यह एक शस्त्र है जो हृदय को वश में करनेवाला है। तुम मधुरवचनों के द्वारा हलके और कड़वे वचन बोलनेवाले बान्धवों के कुटिल अभिप्रायों को, दुष्ट वाक्यों को और खोटे सङ्कल्पों को शान्त कर दो। चित्त को वश में रखनेवाला व्यक्ति ही इस काम को कर सकता है। तुम समर्थ हो, इस सङ्घ के मुख्य हो, इसलिये इस प्रयोग से अपने सङ्घ को कलह से बचाओ ‡।

युधिष्ठिर के सम्राट् बन जाने पर यही उपदेश पितामह भीष्म से कृष्ण ने युधिष्ठिर को दिलवाया था। कृष्ण भी इसी आदेश का अन्त तक पालन करते रहे।

युधिष्ठिर के सम्राट् हो जाने से लोगों को नागरिक स्वतन्त्रता मिल गई। जो गणतन्त्र थे उन्हें बाहर का भय ही न रह गया। यादवों की भी यही हालत हुई। धीरे धीरे इनकी प्रवृत्तियाँ बदलने लगीं— श्री चमूपति एम. ए. के शब्दों में—

"जब तक जरासन्ध का डर था तब तक यादव-योद्धाओं में परस्पर प्रेम था, सुशीलता थी, सज्जनता थी, सुहृद्भाव था। द्वारवती में सुरक्षित होते ही

‡ प्रसिद्ध लेखक श्री बङ्किमचन्द्र चटर्जी ने भी अपने कृष्णचरित्र' में 'कामगीता' अध्याय से इसका जिक्र किया है।

❀ भेदाद्विनाशः सङ्घानां सङ्घमुख्योसि केशव।
यथा त्वां प्राप्य नोत्सीदेदयं सङ्घस्तथा कुरु॥
—म० शां० ८१।२५

† म० द्रोणपर्व १४४।२१-२६

‡ म० शां० ८१ अ०

धीरे धीरे इनका जीवन भोगमय होने लगा। निर्भीकता से आलस्य आया। युधिष्ठिर के साम्राज्य ने इन्हें और भी निश्चिन्त कर दिया। स्वतन्त्रता का जो प्रेम पहले राष्ट्र की रक्षा में उपयुक्त होता था, अब राष्ट्र की रक्षा के लिये प्रयत्न की अपेक्षा न रहने से उस स्वतन्त्रताप्रेम का उपयोग आपस के कलह, वैयक्तिक जीवन की उद्दण्डता, सामाजिक नियन्त्रण के विरुद्ध विद्रोह, राष्ट्र के नियमों के खुले अतिक्रमण में होने लगा ‡।

यादवों का अधिकांश समय रँगरेलियों में बीतने लगा। सुरा की उपासना की जाने लगी। अपनी अपनी धर्मनीति भुलाई जाने लगी। परिणाम यह निकला कि आपस की छेड़छाड़ का बाजार गरम हो गया। शब्दों से शस्त्रों का नंबर आया। सात्यकी ने कृतवर्मा का शिर काट लिया। कृतवर्मा के भाई-बेटों ने सात्यकी और प्रद्युम्न को मार डाला। बस फिर क्या था, सुरा पिए हुए लोग अपने आपको भूल गए। जिसके हाथ में जो आया उसीसे संहार-लीला होने लगी। बात की बात में सारे कुल का नाश हो गया।

‡ योगेश्वर कृष्ण पृष्ठ ३२८

वृष्णिवंश की रक्षा का मुख्य कारण था—नीति। कृष्ण साकार नीति थे। भीम ने एक बार कहा था—कृष्ण में नीति है❀। कृष्ण की नीति को सभी स्वीकार करते थे। उनकी विजय भी नीति के आधार पर ही थी। कृष्ण की नीति ही वृष्णिवंश में थी। इसीके कारण यह वंश अजेय था। पाण्डवों की ओर कृष्ण के होने के कारण ही सञ्जय ने पाण्डवों की विजय होने की घोषणा कर दी थी ‡। जब तक कृष्ण की नीति वृष्णिवंशी मानते रहे, उनका मुखिया-पन जब तक माना जाता रहा, उनके सङ्घ के नियम जब तक पाले जाते रहे तब तक वृष्णिवंशी आदर्श समझे जाते रहे; उनका सङ्घ सही सलामत रहा। परन्तु उनके हटते ही सङ्घ टूट गया, नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

कृष्ण ने अपनी इसी नीति का—सङ्घवाद का—जय× का उल्लेख करते हुए अर्जुन से कहा था कि अर्जुन, मैं अपनी नीति-सङ्घवाद-जय, के कारण वृष्णियों में प्रतिबिम्बित हो रहा हूँ—वृष्णियों में बसा हुआ हूँ—वासुदेव हूँ—वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि। गी० १०।३७

❀ कृष्णे नयः—म० स० १५।१३

‡ गीता १८।७८

× इसीकी व्याख्या 'विजयाङ्क' में दूसरे ढंग से होगी।

कृष्ण लीला

डा० कुमार स्वामी, बोस्टन

The Krishna lila is not an historical event, of which Nilakantha reminds us, but, using Christian phraseology "a play played eternally before all creatures"

कृष्ण लीला ऐतिहासिक घटना नहीं है। इसका हमें नीलकण्ठ ने स्मरण कराया है। ईसाई शब्दों का व्यवहार करें [तो कह सकते हैं कि] कृष्ण लीला वह नाटक है जो प्रत्येक प्राणी [जीव] के सामने नित्य खेला जाता है।

[वैष्णवों के शब्दों में कृष्ण लीला नित्य ही हमारे वृन्दावन में हुआ करती है। सं०]

श्रीकृष्णावतार

(ले० —श्री लक्ष्मण नारायण गर्दे)

संसार की सबसे बड़ी आशा और साथ ही सबसे अधिक रहस्यमय वार्ता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की 'युग युग में' होनेवाली अवतारलीला है। यदि संसार की समझ में यह आजाय कि सचमुच ही श्रीभगवान् बारम्बार अवतार लेकर आते हैं और सब प्राणियों के दुःख दूर करके उन्हें अपनी सर्वदैन्यापहारिणी सत्ता, सकलसंशयोच्छेदिनी चित्कला और अचिन्त्यानन्तानन्दविग्रह का परमसौख्य समास्वादन कराते हैं। किसी भी समय में उन्होंने इस संसार से अपनी दयामय दृष्टि फेर नहीं ली है। प्रत्युत संसार ही अपने अज्ञान के कारण उनके अभिमुख होना छोड़ उनसे विमुख हुआ है और जब यह बात जानकर संसार 'आओ, भगवन्!' कहकर उन्हें पुकारता है और आने की प्रतीक्षा करता है तब सचमुच ही वे आते हैं—अवतार लेते हैं और संसार को उस परम शुभ का दर्शन कराते हैं जिसके लिये संसार जाने-वे-जाने रातदिन तरस रहा है, नाना प्रकार के दुःख उठा रहा है पर फिर भी सुख से उसकी कभी भेंट नहीं होती। सब परिश्रम करके जब संसार थक जाता है और उसे यह विश्वास होता है कि परम सुखस्वरूप श्रीभगवान् ही हैं, ये सारे दुःख उन्हीं के वियोगजन्य हैं, उनके बिना संसार सुखी हो ही नहीं सकता, संसार की यह दुःखयात्रा है ही इसलिये कि संसार में श्रीभगवान् का अवतार हो और जब जब संसार में भगवदवतार होता है तब तब संसार को सच्चे सुख का रास्ता मिलता है—'सुहृदः सर्व भूतानां' स्वयं ही आकर वह रास्ता बताते हैं और वे जो रास्ता दिखा जाते हैं उस रास्ते पर जब तक संसार चलता है तब तक सुखी रहता है, पर पीछे 'दीर्घकाल के पश्चात्' वह रास्ता भूल जाता है तब फिर संसार को दुःख घेरता है, पर इस दुःख में जब संसार फिर भगवान् को याद करता और उन्हें सच्चे दिल से, उन्हीं को अपना एक मात्र आश्रय मानकर पुकारता है तब भगवान् का फिर अवतार होता है—यदि यह बात संसार की समझ में आ जाय तो इस दीन दुखी संसार में दिव्य आशा का संचार हो जाय। संसार में जो लोग इस बात को एक वास्तविक घटना मानते हैं उनके लिये तो संसार में सबसे बड़ी आशा श्रीभगवान् के पुनरवतार की ही है। और जिनके अन्दर यह दिव्य आशा है उन्हें इसके सिवाय अन्य बातें फीकी ही जान पड़ती हैं। उनकी तो एक मात्र प्रतीक्षा श्रीभगवदवतार की ही होती है। मायामय संसार का स्वरूप दुःखमय है। इसमें प्राणी केवल सुख की आशा किया करते हैं, सुख कभी पाते नहीं। सुख की आशा किया करो, और दुःख उठाए चला करो, यही इस संसार का स्वरूप है। यह स्वरूप मायामय है। इसमें सुख की आशा मृगतृष्णा है। संसार दुःखमय ही नहीं है, पर श्रीभगवान् ही इसके परम सुखस्वरूप हैं। भगवान् के बिना यह दुःखमय ही है। इसलिये दुःखमय संसार की सबसे बड़ी आशा का परम ध्येय श्रीभगवान् का अवतार ही है। यह बात यदि समझ में आ जाय तो लोग श्रीभगवान् के अवतार की प्रतीक्षा करना छोड़ अनन्त आशा पाश में बद्ध होना क्यों स्वीकार करेंगे, श्रीभगवान् के ही अभिमुख न होंगे?

परन्तु यह बात कहने-सुनने से ही समझ में नहीं आती। जब तक बुद्धि का इतना विकास नहीं होता कि परम सत्य के ही अनुसन्धान में वह प्रवृत्त हो, जब तक जन्म और मृत्यु के बीच के इस अल्प से जीवन को मनुष्य बहुत लम्बा जीवन मानता है और जन्म के पूर्व या मृत्यु के पश्चात् भी रहनेवाले अपने अमर आत्मस्वरूप की खोज नहीं करता, जब तक मनुष्य अपने आपको एक मर्त्य मनुष्य ही जानता है, जन्म में ही अपना आरम्भ और मृत्यु में ही अन्त देखता है, जब तक मनुष्य यह नहीं जानता कि मैं देह नहीं हूँ—मन बुद्धि अहंकार नहीं हूं—प्राण नहीं हूँ, प्रत्युत अमर आत्मा हूँ तब तक परमात्मा की सत्ता को वह नहीं मानता—परमात्मा की अपेक्षा संसार को ही—या अपने अल्प से जीवन को ही अधिक सत्य मानता है, जब तक असत्य को ही सत्य मानकर उसी में रमता है तब तक उसके लिये श्रीभगवान् हैं ही नहीं। फिर उनका अवतार होना क्या और न होना क्या ? इसलिये यद्यपि श्रीभगवदवतार की वार्ता दिव्यातिदिव्य आशामयी वार्ता है, पर है इतनी गूढ़, इतनी रहस्यमय कि हम अज्ञजनों में से कोई भी इस बात को नहीं जानता। जानते हैं वे जो इस संसार के श्रीभगवदतिरिक्त रूप की दुःखमयता को जान गए हैं; अथवा जिनकी बुद्धि का इतना विकास हुआ है कि उनकी दृष्टि में परमसत्य प्रकाशमान है। परमसत्य को श्रीभगवान् कहते हैं। मनुष्य की परम विकसित बुद्धि में निश्चय रूप से उनका प्रकाश अवतरित होता है। प्रच्छन्न रूप से तो इस संसार अथवा जीवमात्र के अन्तःकरण और देह में जो चैतन्य है वह परम चैतन्य के क्षुद्रातिक्षुद्र अंश का अवतार ही है। इन देहादिकों में आत्मा का अवतरण यदि न हुआ होता तो इनमें कोई चैतन्य न होता। संसार का समग्र कर्म परमात्मा का ही कर्म-रूप में अवतार है। श्रीभगवान् के ऐसे असंख्य अवतार हैं। अवतार ही संस्कार की सत्ता है। यह बात यदि हम लोगों की समझ में आ जाय, तो 'युग युग' में होनेवाले श्रीभगवान् के अवतरित होने के रहस्य को समझने का कुछ प्रयत्न कहना सम्भव हो सकेगा।

संसार के यावत् पदार्थ यद्यपि परमात्मतत्त्व के ही आश्रित हैं तथापि प्रत्येक पदार्थ में इस परमात्मतत्व का निवास 'योगमाया समावृत' है अर्थात् जिनमें भगवान् हैं या जो भगवान् में है उन्हीं को यह खबर नहीं है कि हममें भगवान् हैं या हम भगवान् में हैं। भगवान् यहाँ योगमाया समावृत हैं। ये ही योगमाया समावृत श्रीभगवान् भगवदीय विग्रह (देह) धारण करके प्रकट होते हैं। इसीको उनका 'युग-युग में' होनेवाला अवतार कहा जाता है। योगमाया समावृत प्रत्येक प्राणी और पदार्थ में जो परम सत्यत्व है वही देह धारण करके प्रकट होता है। इसका प्रकट होना निश्चय ही ऐसे कार्य के लिये होता है जो और किसी के भी द्वारा नहीं हो सकता। इस संसार का परम सत्य क्या है, इस संसार का लक्ष्य क्या है, उस लक्ष्य की ओर जाने का रास्ता क्या है ? यह वह परम सत्य—वह परम लक्ष्य स्वयं प्रकट होकर प्रकट करता है कि संसार में किसी भी प्राणी की दृष्टि इतनी व्यापक नहीं है जो उस सर्वगत, सर्वव्यापक परम तत्त्व को स्वयं देख सके। यह उसी की दया है जो वह प्रकट होकर अपने आपको प्रकट करता है। संसार में जो कोई भी मनुष्य उसके अनुसन्धान में अनन्य होकर प्रवृत्त होता है उसके सामने उसके लिये भी श्रीभगवदवतार हुआ करता है, परन्तु यह व्यक्ति विशेषगत अवतारवार्ता

है। 'युगयुग में होनेवाले' अवतार की वार्ता सारे संसार के लिये श्रीभगवान् का अवतार है। श्रीभगवान् का यह अवतार संसार को अपना रूप दिखाकर अपनी ओर खींचने के लिये होता है। संसार के उस रूप को देखने के लिये, जाने-बे-जाने अत्यन्त व्याकुल होना श्रीभगवदवतार के होने की निश्चित सूचना है। संसार के सारे दुःख एक होकर यही सूचना करने की ओर बड़े वेग से प्रधावित हो रहे हैं। यही संसार के वर्त्तमान भीषण दुःख का निदान प्रतीत होता है। इस दुःख में यदि कोई दिव्य आशा है तो श्रीभगवदवतार की ही है।

ॐ तत्सत् श्रीकृष्णार्पणमस्तु।

जन्माष्टमी का नया सन्देश

(ले०—आचार्य कालेलकर)

एक ही सूरज रोज़-रोज़ उगता है, फिर भी हर रोज नया चैतन्य, नवजीवन अपने साथ ले आता है। यह सोच कर कि सूरज पुराना ही है, पक्षी निरुत्साह नहीं होते। कल का ही सूर्य आज आया है, यह कह कर, द्विजगण भगवान् दिनकर का निरादर नहीं करते। जिस आदमी का जीवन शुष्क हो गया है, जिसकी नसों में रक्त नहीं रहा है, उसी के लिये सूरज पुराना है। जिसमें प्राण का कुछ भी अंश है, उसके मन को तो भगवान् सूर्यनारायण नित्य-नूतन है।

जन्माष्टमी भी हरसाल आती है। प्रतिवर्ष हम वही-की-वही कथा सुनते हैं, उसी तरह उपवास करते हैं, और प्रायः एक ही ढंग से श्रीकृष्ण जन्म का उत्सव मनाते हैं, फिर भी हजारों वर्षों से जन्माष्टमी हमें उस जगद्गुरु का नया ही सन्देश देती आई है—

'न हि कल्याण कृत् कश्चिद् दुर्गतिं तातगच्छाति'

भाई ! जो आदमी सन्मार्ग पर चलता है, जो धर्म पर डटा रहता है, उसकी किसी भी काल में दुर्गति नहीं होती। निराधार मनुष्य को यह आश्वासन मिला है।

कृष्ण की महिमा

(महामना मालवीय जी)

परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा कौन कह सकता है ? महाभारत और श्रीमद्भागवत इनकी महिमा से भरे हैं।

मैं चाहता हूँ, हिन्दू के घर-घर में नित्य महाभारत और भागवत का पाठ हो और संसार भर में गीता का प्रचार तथा आदर हो। श्रीकृष्ण की सच्ची महिमा इसी से जानी जा सकती है।

श्रीकृष्ण चरित्र

(प्रोफेसर श्री अनन्त शास्त्री फड़के, गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज काशी—की नोट बुक का एक पृष्ठ)

छान्दोग्योपनिषद् (३-१७-६) के अनुसार देवकीपुत्र श्रीकृष्ण के गुरु घोर आङ्गिरस हैं।

ऋग्वेद (८. ८५. ३-४) के अनुसार कृष्ण आङ्गिरस ऋग्वेद के सूक्त के द्रष्टा हैं।

अष्टाध्यायी (४।३।९८) में पाणिनि ने श्रीकृष्ण के भक्ति सम्प्रदाय का उल्लेख किया है।

वासुदेवोपनिषद् (२) गोपी-उपनिषद् (५) कृष्णोपनिषद् (८) मुक्तिकोपनिषद् (१. ३९) आदि उपनिषदों में श्रीकृष्ण का वर्णन मिलता है।

भागवत, विष्णुपुराण, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, गरुड़-पुराण, कूर्मपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, वायु-पुराण, पद्मपुराण, देवीभागवत तथा ब्रह्मपुराण में श्रीकृष्ण का वर्णन उपलब्ध होता है।

महाभारत, हरिवंश तथा जैमिनीयाश्वमेध में श्रीकृष्ण का वर्णन मिलता है।

शाण्डिल्यसंहिता, ब्रह्मसंहिता, सात्वत, गर्ग इत्यादि संहिताओं में श्रीकृष्ण का उल्लेख हुआ है।

सात्वततन्त्र, गौतमीतन्त्र में श्रीकृष्ण का उल्लेख हुआ है।

× × ×

पुराणों के अनुसार—

श्रीकृष्ण ने वसुदेव तथा देवकी से कंस के कारागृह में जन्म लिया था। इनके पूर्व के सात अपत्य कंस ने मार डाले। अग्नि पुराण में छः लड़कों के मारे जाने का वर्णन मिलता है। सप्तम बल हुए। रोहिणी के राम अलग पुत्र थे।

श्रीकृष्ण का जन्म श्रावण (भाद्र) कृष्ण-अष्टमी के दिन मध्य रात्रि में रोहिणी नक्षत्र पर हुआ। उस दिन बुधवार था †।

वायुपुराण (२. ३४, १७३, १७८) के अनुसार वसुदेव की अन्य स्त्रियों के लड़के भी कंस ने मारडाले थे।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण (४. ७.) तथा हरिवंश (२.४) के अनुसार श्रीकृष्ण देवकी के गर्भ में नहीं थे। दस मास तक देवकी के पेट में वायु मात्र थी। दसवें मास में वायु नष्ट हुआ और श्रीकृष्ण प्रकट हुए। उन्होंने चतुर्भुज रूप धारण करके वसुदेव देवकी को दर्शन दिया।

ब्रह्मपुराण (१८४) विष्णुपुराण (५-६) भागवत (१०-८, १-२०) के अनुसार श्रीकृष्ण का नामकरण वसुदेव के कुलगुरु गर्गाचार्यजी ने किया। देवीभागवत (४.२४, १-५) के अनुसार श्रीकृष्ण के पैदा होने का हाल नारदजी तथा अपने गुप्त सेवकों से कंस को मालूम हुआ। ब्रह्मवैवर्त्तपुराण (४-१०) के अनुसार पूतना कंस की बहिन थी। यह ब्राह्मणी के वेश से मथुरा आई थी।

देवीभागवत (४-२३) तथा अग्निपुराण (१२, १४-२२) के अनुसार कंस की भेजी हुई पूतना का नाश श्रीकृष्ण ने किया।

कृष्ण ने गोकुल में रहने के समय तृणावर्त (भागवत १०-७) वत्सासुर (भागवत १०-११) बकासुर (१०.११) अघासुर, कालियनाग, अरिष्ट, व्योम, केशी आदि का पराभव-नाश किया।

† निर्णयसिन्धु

श्रीकृष्ण के विलक्षण अमानुष सामर्थ्य का वर्णन—मिट्टीभक्षण प्रसङ्ग में यशोदा को विश्वरूप-दर्शन कराते समय, ब्रह्माजी को उनके गोप और बछड़े चुरालेने पर एक वर्ष तक गो-गोप स्वरूप से रहते समय तथा गोवर्द्धन धारण करते समय किया गया है।

गोपियों के साथ रासक्रीड़ा करते समय श्रीकृष्ण की आयु दस वर्ष की थी।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण (४.१५) के अनुसार राधा के साथ श्रीकृष्ण का विवाह ब्रह्माजी ने कराया था।

कंस ने श्रीकृष्णादि को अक्रूर के जरिए मथुरा में धनुर्यज्ञ के लिये बुलाया था।

मथुरा में जाने पर श्रीकृष्ण-बलराम का मल्ल-युद्ध चाणूर, मुष्टिक के साथ हुआ। कृष्ण ने इनको मारा और कंस पर भी हाथ साफ किया। इसके अनन्तर श्रीकृष्णजी ने वसुदेव देवकी का दर्शन किया। बाद को उनका उपनयन संस्कार हुआ।

श्रीकृष्ण और बलराम अवन्ती नगरस्थ सान्दीपनि ऋषि के पास अध्ययनार्थ गए। वहाँ ये धनुर्वेद और वेद पढ़े ❀। श्रीकृष्ण गुरुगृह में केवल ६४ दिन रहे थे †। ये जिस समय गुरुगृह से वापिस आए थे उस समय इनकी अवस्था बारह वर्ष की थी ‡।

❀ भागवत १०-४५।
† ब्रह्म पुराण १९४-२१।
‡ देवी भागवत ४-२४।

श्रीकृष्णजी ने जरासन्ध का सत्रह बार पराजय किया। कालयवन ने जिस समय मथुरा घेर लिया था उस समय श्रीकृष्ण भागकर मुचुकुन्द की गुफा में चले गए थे और मुचुकुन्द द्वारा कालयवन का नाश कराया था।

जरासन्ध के भय से श्रीकृष्ण ने मथुरा छोड़ दी और द्वारका नगरी में राज्य की स्थापना की। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्रविन्दा, सत्या, भद्रा और लक्ष्मणा के साथ विवाह किया † तथा नरकासुर की वन्दिस्थ १६००० कन्याओं के साथ विवाह किया ‡ कृष्ण के ८०,००० पुत्र थे ❀।

कृष्ण ने उषा अनिरुद्ध प्रसङ्ग में बाणासुर के सहस्र हाथ तोड़ दिए + श्रीकृष्ण ने पाण्डवों की अनेक प्रकार की सहायता की।

श्रीकृष्ण जी के निजधाम जाते समय उनकी उम्र १२५ वर्ष थी × श्रीकृष्ण जी के पांव में जरा नामक व्याध का शल्य घुसा। उसी समय उन्होंने योगमार्ग से शरीर का त्याग किया (१) श्रीकृष्ण के अनन्तर उनकी पटरानियों ने अग्नि प्रवेश किया (२)।

× × ×

† भागवत १०.५८। ‡ विष्णुपुराण ५.५६।
❀ पद्मपुराण, सृष्टि खण्ड १३। + ब्रह्माण्डपुराण ३.७३, ९९, १०२। × भागवत ११।६।२५।
(१) ब्र० पु० २१२. २। (२). ब्रह्मपुराण २१२. २.

कृष्ण का सन्देश

(श्री टी. एल. वास्वानी)

श्री कृष्णने गोकुल और वृन्दावन में मधुर-मुरली के मोहक स्वर में और कुरु-क्षेत्र के युद्ध-क्षेत्र में (गीतारूप में) सृजनशील जीवन का वह सन्देश सुनाया जो नाम, रूप, रूढ़ि तथा साम्प्रदायिकता से परे है।

कृष्ण का सच्चा स्वरूप

(ले० — श्री मदनमोहन विद्याधर)

महापुरुषों का जीवन प्रकाशस्तम्भ की तरह होता है। उससे कई प्रकाश लेते हैं और कई नहीं। संसार को आलोक देनेवाले उनके ज्योतिःपुञ्ज को किस तरफ से अन्धकारमय कहें; कुछ समझ में नहीं आता। श्री कृष्ण ऐसे ही ज्योतिःपुञ्ज महापुरुषों में से एक हैं। हम उनके तीन स्वरूप समझते हैं, अर्थात् उनके जीवन पर हम तीन पहलुओं से विचार कर सकते हैं।

विचारना यह है कि उनके वे तीन रूप कौन से हैं? जब हमने गीता पढ़ी तब इसका रहस्य पा लिया। श्री शङ्कराचार्य ने इसी गीता से ज्ञानयोग का प्रतिपादन किया, भगवान् तिलक ने इसी से कर्मयोग का दिग्दर्शन कराया, जिसे कि विश्ववन्द्य महात्मागान्धी ने 'अनासक्तियोग' नाम दिया। इसीसे श्री रामानुजाचार्य तथा अन्य कई भक्तिमार्ग के प्रारम्भिक आचार्यों तथा संस्थापकों ने 'उपासनायोग' निकाला। ऋषि दयानन्द ने इसी से निष्काम कर्मयोग या ज्ञान, कर्म, उपासना तीनों का समन्वयरूप एक नवीन ही 'वाद' प्रतिपादित किया। देखना यह है कि क्या कृष्ण केवल ज्ञानमार्ग के उपदेशक थे या कर्मयोग के या भक्तियोग के; या तीनों के मिश्रण को ही मनुष्य की उन्नति का साधन समझते थे? हमारे मन में तो ज्ञान, कर्म तथा उपासना इन तीनों के समन्वय के बिना मनुष्य कभी भी उच्चपद प्राप्त नहीं कर सकता। मुक्ति के लिये इन तीनों की आवश्यकता है। इसी को ऋषि दयानन्द ने स्तुति (ज्ञान), प्रार्थना (कर्म) तथा उपासना नाम दिया है। गीता में भी हम ऐसा ही सिद्धान्त देखते हैं। इसीलिये पहले तो हमें श्री कृष्ण के इन्हीं तीनों रूपों को समझना चाहिए। क्या कृष्ण का जीवन इन तीनों से सम्मिलित नहीं था? वह अपने समय के सर्वोत्कृष्ट ज्ञानयोगी, प्रमुख कर्मयोगी तथा सर्वश्रेष्ठ उपासक थे। उन्होंने संसार में जो कुछ किया उसी का औरों में प्रचार किया; और फिर उसके फल को 'इदन्नमम' करके प्रभु के लिये 'स्वाहा' कर दिया। वे हमें कुछ करते हुए, उसी को कहते हुए और 'फलेष्वनासक्तः सन्' परब्रह्म में रमते हुए दिखाई पड़ते हैं।

हम इस बात को एक दूसरे प्रकार से भी समझ सकते हैं। संसार का इतिहास पढ़नेवाले प्रत्येक विद्यार्थी के सामने इन तीनों गुणों को पृथक् पृथक् रूप से धरनेवाले महापुरुषों के जीवनचरित्र आते हैं। यदि राजनीतिज्ञों या नेताओं का एक समूह इतिहास के रङ्गमञ्च पर दाँव-पेंच करता हुआ दृष्टिगोचर होता है तथा वीरों का समुदाय रणक्षेत्र में तलवार घुमाता हुआ नज़र आता है, तो कुछ भक्त रात-दिन प्रभु की भक्ति में मस्त हुए, अपनी सुध-बुध भूले, नाचते हुए दिखाई पड़ते हैं। कुछ ज्ञानी उस परमपुरुष की ज्ञानचर्चा में रत दृष्टिगोचर होते हैं; कुछ सांसारिक कर्मशील पुरुष गरीबों के लिये रात-दिन एक किए हुए, गर्मी-सर्दी की पर्वाह न करते हुए दिखाई पड़ते हैं। हम इन्हें तीन भाग में बाँट सकते हैं।

(१) राजनीतिज्ञ (योद्धा तथा शासक)
(२) ज्ञानी (उन्नति का मार्ग बतानेवाले, मोक्ष के गुप्त, पवित्र रहस्यों को जाननेवाले)
(३) कर्मयोगी (रास्ते पर चलनेवाले)

संसार का इतिहास उठा लीजिए। वहाँ आपको इन तीनों गुणों से युक्त कोई एक व्यक्ति नहीं मिलेगा; परन्तु इसके विपरीत भारतीय इतिहास में कई व्यक्ति हम इन तीनों प्रकार के गुणों से युक्त देखते हैं। आज इस निबन्ध में तो केवल श्री कृष्ण के चरित्र को देखना है।

प्रिंस बिस्मार्क तथा अन्य कई राजनीतिज्ञ 'ज्ञानी' नहीं हैं इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वे समझदार नहीं हैं, बुद्धिमान् नहीं हैं। ज्ञानी से अभिप्राय ज्ञानयोगी से है। ज्ञानयोगी दर्शन का पारिभाषिक शब्द है। महाराणा प्रताप कर्मयोगी हैं; परन्तु अच्छे राजनीतिज्ञ नहीं। अकबर केवल कुटिल राजनीतिज्ञ है। शिवाजी यदि राजनीतिज्ञ हैं तो स्वयं ज्ञानयोगी नहीं। संसार के इतिहास में आए पुरुषों की नामावली उठाते जाइए और तुलना करते जाइए, यह मत आपको मानना ही पड़ेगा। नेपोलियन, सिकंदर, सीज़र, दारा, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त, हर्षवर्द्धन ये सब आन्तरिक जीवन अर्थात् धार्मिक दृष्टि से खोखले हैं। परन्तु इस 'गीतावाले ग्वाले, को देखिए, हमें यह तीनों गुणों से भरपूर मिलता है। चरित्र के नापने की यह दृष्टि ऐतिहासिक है।

श्री कृष्ण अपने समय के सबसे बड़े राजनीतिज्ञ थे। महाभारत पढ़नेवाले, परन्तु पाश्चात्य विद्वानों का अन्धानुकरण न करनेवाले पाठक, उनकी इस नीति से सर्वथा परिचित हैं। किस प्रकार निस्स्वार्थ-भाव से प्रेरित होकर उस महापुरुष ने महाभारत के सङ्ग्राम में असत्य पथ का पराभव कराकर सत्य को विजय दिलवाई, यह किसीसे भी छिपा नहीं है। यही कारण था कि अर्जुन ने सारी यादवसेना को छोड़कर केवल कृष्ण को ही अपनी सहायता के लिये माँगा।

इसी सङ्ग्राम में उनका कर्तृत्व छिपा है। उनका सारा जीवन सङ्घर्ष में बीता। वह स्वयं एक बड़े भारी योद्धा थे। परन्तु उनका कर्म अनासक्ति या फलेच्छा से सर्वथा शून्य था। उनके जीवन में 'न कर्म लिप्यते नरे', 'कर्मफलेष्वनासक्तः', 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँ समा', 'मा फलेषु कदाचन' पूर्णरूप से चरितार्थ हुए हैं महाभारत के सङ्ग्राम में इतना क्रियात्मक भाग लेने के बाद उनको मिला क्या? कुछ भी नहीं। आज संसार का एक देश या तो दूसरे देश की सहायता करता है या पूरा देश ही हड़पना चाहता है; अथवा अपना कोई और स्वार्थ सिद्ध होता देखता है।

गीता उनके ज्ञान का उच्च मूर्त्त रूप है। गीता द्वारा ही वह संसार के गुरु बन रहे हैं। गीता के ज्ञान पर आज सारा संसार मुग्ध है। अध्यात्म-विद्या के वे 'मोती' उस ज्ञानसागर में छिपे हैं, जिन्हें पाकर गान्धी, तिलक जैसे महापुरुष निहाल हो गए। गीतारूपी दर्पण में उस महात्मा, दरिद्र-नारायण के महान् व्यक्तित्व तथा उज्वल चरित्र का प्रतिबिम्ब देख पड़ता है।

उनका जीवन एक विप्लव का जीवन है। वह जीवन संसार के अज्ञानी प्राणियों को प्रकाश देने के लिये दीपक है। वह जीवन कर्मशील या चञ्चल होते हुए भी शान्त है—जैसे समुद्र उत्ताल तरङ्गोंवाला होते हुए भी अपनी धीरता नहीं छोड़ता। महापुरुष आते हैं, चले जाते हैं; परन्तु ऐसे कितने हैं जो उनके आलोक से अपने को आलोकित करते हैं? जो चाहे वह उनका आश्रय लेकर भवसागर तर सकता है।

श्री कृष्ण द्वारा जलाया गया 'दीपक' अब भी उसी रूप में जल रहा है। उनका कर्तृत्व अब भी हमारे सामने है। भवसागर तारने के लिये आज भी उनकी नाव किनारे पर लगी हुई है।

कृष्ण का परिवार

(ले० — श्री लालजी)

कृष्ण यदुवंशी हैं। इनके वंश का आदि चन्द्रमा से होता है। इसलिये इन्हें चन्द्रवंशी भी कहते हैं। चन्द्रमा से बुध, बुध से पुरुरवा, पुरुरवा से आयु, आयु से नहुष, नहुष से ययाति और ययाति से यदु का जन्म हुआ था। इन्हीं यदु के नाम से यादव-वंश चला है। यदु से अनेक पीढ़ियों बाद सात्वत का जन्म हुआ था। कृष्ण इनके बहुत समय बाद हुए। सात्वत भी वंश चलानेवाले थे; इसीलिये कृष्ण सात्वतवंशी भी कहलाते हैं। सात्वत के पुत्र का नाम वृष्णी था। इनके कारण कृष्ण वृष्णिवंशी भी कहलाते हैं। वृष्णि के तीन पुत्र हुए थे, जिनमें एक का नाम देवमीढ़ूष था। शूरसेन इन्हीं के पुत्र थे। विष्णुपुराण (४।१५) में शूरसेन के दस पुत्रों का जिक्र है; परन्तु कल्याण के कृष्णाङ्क में यदुवंश का जो चार्ट (Chart) दिया गया है उसमें उनके नौ ही लड़के बतलाए हैं। विष्णुपुराण के मत से वसुदेव (आनकदुन्दुभि), देवभाग, देवश्रवा, अष्टक, ककुचक्र, वत्सधारक, सृञ्जय, श्याम, शमीक, गण्डूष-शूरसेन के पुत्र हैं। परन्तु कृष्णाङ्क में जो नाम दिए गए हैं; उनमें से कुछ में भिन्नता है—उसके अनुसार वृक, श्यामक, शमीक, देवभाग, आनक, देवश्रवा, गण्डूष, वसुदेव और कङ्क शूरसेन के पुत्र हैं। दस पुत्रों के अतिरिक्त उनकी पाँच कन्याएँ भी थीं—पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा, राजाधिदेवी। इन कन्याओं में से पृथा को राजा कुन्तिभोज ने गोद (दत्तक) ले लिया था। इसलिये उसका नाम कुन्ती भी हो गया। कुन्ती या पृथा का विवाह पाण्डु से हुआ था। इसके पुत्र पाण्डव कहलाते थे। श्रुत-देवा कारूषनरेश वृद्धधर्मा (वृद्धशर्मा ‡) को विवाही गई थी, इसके पुत्र का नाम दन्तवक्र था। श्रुतिकीर्ति का विवाह केकयराज से हुआ था। उसके पुत्र का नाम सन्तर्दन ‡ था। श्रुतश्रवा चेदिनरेश दमघोष को विवाही गई। उसके पुत्र का नाम शिशुपाल था। राजाधिदेवी अवन्तिनरेश जयत्सेन ‡ को विवाही गई थी। इसके दो पुत्र थे—विन्द और अनुविन्द।

शूरसेन के बड़े लड़के का नाम वसुदेव था। विष्णुपुराण के मत से उनकी अनेक स्त्रियाँ थीं; परन्तु हम उनकी दो ही स्त्रियों को कार्यक्षेत्र में देखते हैं। ये हैं—रोहिणी और देवकी। विष्णुपुराण के अनुसार देवकी सात बहिन थीं। वे सबकी सब वसुदेव को विवाही गई थीं। इन सात बहिनों के नाम हैं—वृकदेवा, उपदेवा, देवरक्षिता, श्रीदेवा, शान्तिदेवा, सहदेवा और देवकी। कृष्ण देवकी के पुत्र हैं। रोहिणी के पुत्र का नाम बलदेव है। अग्निपुराण के मत से देवकी के पुत्र का ही नाम बल है, रोहिणी के पुत्र का नाम राम है।

पुराणों में कृष्ण के बहुविवाह की बात पाई जाती है। विष्णुपुराण (५।२८) के मत से उनकी स्त्रियों की संख्या नौ है—रुक्मिणी, कालिन्दी, मित्र-वृन्दा, नग्नजित् की कन्या सत्या, जाम्बवती, रोहिणी (कामरूपिणी), मद्रराजकी सुता सुशीला, सत्राजित-की कन्या सत्यभामा और लक्ष्मणा। परन्तु इसी

‡ ये नाम कल्याण के कृष्णाङ्क—यदुवंशप्रकरण से लिए गए हैं।

अंश के बत्तीसवें अध्याय में जहाँ कृष्ण के पुत्रों के नाम गिनाए हैं, वहाँ कुछ और ही नाम हैं—सत्यभामा, रोहिणी, जाम्बवती, नाग्नजिती, शैव्या, माद्री, लक्ष्मणा, कालिन्दी, रुक्मिणी। चौथे अंश के पन्द्रहवें अध्याय में जालहासिनी एक नया नाम कृष्ण की स्त्री का मिलता है। हरिवंश (१५) में कृष्ण की दस स्त्रियों का उल्लेख है—रुक्मिणी, कालिन्दी, मित्रवृन्दा, सत्या, जाम्बवान् की कन्या, रोहिणी, माद्री सुशीला, सत्राजित् की कन्या सत्यभामा, जालहासिनी लक्ष्मणा, शैव्या। हरिवंश के एक सौ बासठवें अध्याय में इनकी सङ्ख्या और भी बढ़ जाती है—सत्यभामा, नाग्नजिती, सुदत्ता, शैव्या, लक्ष्मणा, जालहासिनी, मित्रवृन्दा, कालिन्दी, जाम्बवती, पौरवी, सुभीमा, माद्री, रुक्मिणी, सुदेवा, उपासङ्ग, कौशिकी, सुतसोमा, यौधिष्ठिरी। इनके सिवा सत्राजित् की व्रतिनी और प्रस्वापिनी नाम की दो कन्याएँ उनकी स्त्रियां और हैं। महाभारत (मौसल० ७) के अनुसार उनकी स्त्रियों में दो नाम और नए आए हैं—गान्धारी और हेमवती।

कृष्ण की इतनी स्त्रियों के अतिरिक्त विष्णुपुराण (५।२९) के अनुसार १६१०० और स्त्रियाँ थीं। ये नरकासुर के यहाँ कैद थीं। कृष्ण ने नरकासुर को मारकर इनके साथ विवाह किया था।

पद्मपुराण (सृष्टिखण्ड १३) के अनुसार इनके ८०००० पुत्र थे। विष्णुपुराण (५।२८) के अनुसार रुक्मिणि के प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, वीर्यवान्, चारुदेह, सुषेण, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुविन्द, सुचारु और चारु नामक नौ पुत्र तथा चारुमती नाम की एक कन्या थी। (५।३२) के अनुसार सत्यभामा के भानु और भौमेरिक आदि, रोहिणी के दीप्तिमान, ताम्रपक्ष आदि, जाम्बवती के साम्ब आदि, नाग्नजिती के भद्रविन्दु आदि, शैव्या के सङ्ग्रामजित् आदि, माद्री के वृक आदि, लक्ष्मणा के गात्रवान् आदि तथा कालिन्दी के श्रुत आदि पुत्र हुए। विष्णुपुराण के इसी अध्याय में लिखा है कि कृष्ण की अन्य स्त्रियों के भी अठासी हजार आठसौ पुत्र हुए थे*।

प्रद्युम्न के पुत्र का नाम अनिरुद्ध था और स्त्री का नाम रुक्मवती।

श्रीमद्भागवत (१०।६१) के अनुसार कृष्ण की प्रत्येक स्त्री के दस दस पुत्र थे। जिनमें से **रुक्मिणी** के—प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु, चारु; **सत्यभामा** के—भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, अतिभानु, श्रीभानु, प्रतिभानु; **जाम्बवती** के—साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित, विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविड, क्रतु; **नाग्नजिती सत्या** के वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान्, वृष, आम, शङ्कु, वसु, श्रीमान्; **कालिन्दी** के—श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शान्ति, ईश, पूर्णमास, सोमक; **लक्ष्मणा** के—प्रघोष; गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज, अपराजित; **मित्रवृन्दा** के—वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, अन्नाद, महीश, पावन, वह्नि, क्षुधि; **भद्रा** के—सङ्ग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अपराजित, जय, सुभद्र, वाम, आयु, सत्यक नामक पुत्र थे।

अनिरुद्ध की स्त्री का नाम रोचना था† और

* अष्टायुतानि पुत्राणां सहस्राणि शतं तथा।
—वि० पु० ५।३२।५

† श्रीमद्भागवत १०।६१।२५

पुत्र का नाम वज्र ×। अनिरुद्ध की एक स्त्री का नाम ऊषा था जो बाणासुर की कन्या थी +

साम्ब का विवाह दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा से हुआ था ❀।

बलराम की स्त्री का नाम रेवती था और पुत्रोंका नाम—निशठ और उल्मुक †।

इस प्रकार कृष्ण के पुत्र-पौत्रादि की सङ्ख्या करोड़ों तक पहुँच गई थी। अन्त में जब यादवों का परस्पर संहार हुआ तब ये सब ही नष्ट हो गए। सिर्फ अनिरुद्ध का पुत्र वज्र बचा था, जो यादवों के नष्ट हो जाने पर यादववंश का राजा हुआ ‡

×वि० पु० ५।३२।१६ + श्रीमद्भागवत १०।६२। ❀श्रीमद्भागवत १०।६८ † वि० पु० ५।२५।१९ ‡ वि० पु० ५।३७।६३।६५.

श्रीकृष्ण का धर्मप्रचार और धर्मराज्य संस्थापन

(श्री बङ्किमचन्द्र चटर्जी)

श्रीकृष्ण के जीवन के दो ही उद्देश्य थे—धर्मप्रचार और धर्मराज्य का संस्थापन।···धर्मराज्य का संस्थापन जगत् का काम है, किंतु जब वह कृष्ण का उद्देश्य था, तब यह संस्थापन भी उन्हीं का काम हुआ।

× × ×

श्रीकृष्ण ने समाज सुधारक (Social Reformer) बनने की चेष्टा नहीं की, उनका उद्देश्य देश का नैतिक तथा राजनैतिक पुनर्जीवन (Moral & political Regeneration) धर्म प्रचार और धर्म राज्य का संस्थापन था। यह होने से समाज संस्कार आप ही हो जाता है। इसके हुए बिना समाज सुधार किसी तरह नहीं होता।······राजनीतिक उन्नति का मूल धर्म की उन्नति है।

× × ×

अपनी और दूसरे की रक्षा के हेतु युद्ध करना धर्म है। अपने तथा दूसरे के रक्षार्थ युद्ध न करना परम अधर्म है।······जहां युद्ध के बिना धर्म की उन्नति नहीं होती है वहां युद्ध न करना ही अधर्म है।

× × ×

जो अपना धर्म भूल गया है उसे धर्म की याद दिलाना और जो धर्म नहीं जानता है उसे धर्म सिखा देना ही सच्चे धर्मात्मा का काम है।

× × ×

जो धर्म की रक्षा में और पाप के दमन में समर्थ होकर भी कुछ नहीं करता वह उस पाप का सहकारी है। इसलिये इस लोक में शक्ति के अनुसार पाप रोकने का प्रयत्न न करना अधर्म है। 'मैं तो कुछ पाप करता नहीं। दूसरे करते हैं इसमें भला मेरा क्या दोष ?' जो ऐसा सोचकर निश्चिन्त रहते हैं वह भी पापी हैं। धर्मात्मा लोग भी बहुधा यही सोचकर कानों में तेल डाले बैठे रहते हैं। इसलिये संसार में जो सब महात्मा उत्पन्न होते हैं वह धर्म रक्षा और पाप निवारण का व्रत ग्रहण करते हैं।··· श्रीकृष्ण का भी यही व्रत था। जरासन्ध, कंस और शिशुपाल का वध, महाभारत के युद्ध में पाण्डवों की सहायता आदि कृष्ण के कार्य इसी मूल मन्त्र के सहारे समझ में आवेंगे। इसे ही पुराणवालों ने 'पृथ्वी का भार उतारना कहा है'।······इस पाप निवारण व्रत का ही नाम धर्म प्रचार है। धर्म प्रचार दो तरह से हो सकता है। एक तो वचनों से अर्थात् धर्मोपदेश करके और दूसरा कार्य से अर्थात् धर्माचरण करके। कृष्ण ने दोनों से ही काम लिया था।

× × ×

धर्मवीरमहावीर और कर्मवीरकृष्ण

धर्म और कर्म की तुलना

(ले०—विद्वद्वर्य पं० सुखलालजी, प्रो० हि० वि० वि० काशी)

विचार करने से मालूम होता है कि शुद्धधर्म और शुद्धकर्म, ये दोनों एकही आचरणगत सत्य के जुदा जुदा बाजू हैं। इनमें भेद है, किन्तु विरोध नहीं है।

सांसारिक प्रवृत्तियों को त्यागना और भोगवासनाओं से चित्त को निवृत्त करना, तथा इसी निवृत्ति के द्वारा लोककल्याण के लिये प्रयत्न करना अर्थात् जीवनधारण के लिये आवश्यक प्रवृत्तियों की व्यवस्था का भार भी लोकों पर ही छोड़कर सिर्फ उन प्रवृत्तियों में के क्लेश-कलहकारक असंयम रूप विष को दूर करना, जनता के सामने अपने तमाम जीवन के द्वारा पदार्थपाठ उपस्थित करना, यही शुद्ध धर्म है।

संसार सम्बन्धी तमाम प्रवृत्तियों में रहते हुए भी उनमें निष्कामता या निर्लेपता का अभ्यास करके, उन प्रवृत्तियों के सामञ्जस्य द्वारा जनता को उचित मार्ग पर ले जाने का प्रयास करना अर्थात् जीवन के लिये अति आवश्यक प्रवृत्तियों में पग-पग पर आनेवाली अड़चनों का निवारण करने के लिये, जनता के समक्ष अपने समग्रजीवन द्वारा लौकिक प्रवृत्तियों का भी निर्विषरूप से पदार्थपाठ उपस्थित करना, यह शुद्धकर्म है।

यहाँ लोककल्याण की वृत्ति यह एक सत्य है। उसे सिद्ध करने के लिये जो दो मार्ग हैं वे एक ही सत्य के धर्म और कर्मरूप दो बाजू हैं। सच्चे धर्म में सिर्फ निवृत्ति ही नहीं किन्तु प्रवृत्ति भी होती है। सच्चे कर्म में केवल प्रवृत्ति ही नहीं निवृत्ति भी होती है। दोनों में दोनों ही तत्त्व विद्यमान हैं।

एक आदर्श धर्मचक्र का है, दूसरा कर्मचक्र का। इस जगह एक धर्मवीर और एक कर्मवीर के जीवन की कुछ घटनाओं की तुलना करने के विचार में से यदि हम धर्म और कर्म के व्यापक अर्थ का विचार कर सकें तो यह चर्चा शब्दपट्ठ पण्डितों का कोरा विवाद न बनकर राष्ट्र और विश्व की एकता में उपयोगी होगी।

[प्रोफेसर सा० की इच्छा थी कि हम उनके पूरे लेख को प्रकाशित करें और तब जैनधर्म और श्रमण संस्कृति के आचार्य महावीर; और वैष्णवधर्म तथा ब्राह्मणसंस्कृति के उपास्य कृष्ण की तुलना पर हम अपने विचार प्रकट करें। समय और स्थान के अभाव से हम इस बड़े लेख को यहाँ नहीं दे सकते। जो पाठक चाहें उसे अन्यत्र गुजराती अथवा हिन्दी* में पढ़ सकते हैं। पर एक बात हम अवश्य कहेंगे कि धर्म और कर्म के सम्बन्ध में लेखक से हमारा थोड़ा मत-भेद है। इसी धर्म की परिभाषा, बौद्ध, जैन, ब्राह्मण सब अपने अपने ढंग से करते हैं। हम आगामी अङ्क में इस पर कुछ लिखने का यत्न करेंगे। विजयाङ्क में हम दोनों वीरों की चर्चा करेंगे उसी प्रसंग में धर्म विजय आदि की भी चर्चा की जायगी पर अपने पाठकों का ध्यान हम इस ओर अवश्य खींचना चाहते हैं कि तुलना करते समय भेद की अपेक्षा एकता की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। प्रत्येक धर्म और प्रत्येक महापुरुष में खोजनेवाले को वह एक सत्य अवश्य मिल जाता है। —सं०]

*मिलने का पता—**आत्म जाग्रति कार्यालय, ठि० जैनगुरुकुल, ब्यावर।**

कृष्ण का गीताधर्म

(पत्र)

देश, राष्ट्र, जाति, सभ्यता और संस्कृति—सभी प्रकार की दुर्दशा देखकर, धर्म की हानि का अनुभव करके महात्मा और महापुरुष, हमारे युगप्रवर्तक आचार्य और नेता सदा समय समय पर गीताधर्म का प्रचार करते आए हैं।

'महाभारत' के विप्लव के समय स्वयं श्री कृष्ण ने गीताधर्म का मार्ग दिखलाया था—'स्वधर्म' को समझाने के लिये इतनी बड़ी, अठारह अध्यायों की, व्याख्या की थी। बिखरते हुए महाभारत को—इस विशाल भारत को—फूट में फँसे इस बड़े राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधने के लिये उन्होंने 'योग' का आविष्कार किया था।

वह परम्पराप्राप्त योग इतना सुन्दर, इतना कल्याण-मय था कि जब जब मोह दूर करके जिस किसीने लोकसङ्ग्रह करने का विचार किया, उसने गीताधर्म को ही अपनाया। भारत के प्रसिद्ध आचार्य और सन्त (श्री शङ्कराचार्य, श्री रामानुजाचार्य, श्री वल्लभाचार्य, श्री निम्बार्काचार्य, श्री मध्वाचार्य, सन्त ज्ञानदेव आदि) सभी ने उस दिव्य और विश्वधर्म को समझने-समझाने का प्रयास किया। अभी हाल में लोकमान्य तिलक ने भी गीतारहस्य में वही काम किया।

भारत की वर्तमान छिन्न-भिन्न अवस्था में भी देखा जाय तो यह गीता ही एक सहारा देख पड़ती है। इसका किसीसे विरोध नहीं। सभी सम्प्रदायों और मतों के लोग गीताधर्म का समर्थन करते हैं।

गीता में आत्मा और परमात्मा का, व्यक्तिधर्म और लोकधर्म का अनूठा 'योग' है। उसमें ब्रह्मसूत्र का ज्ञान, उपनिषदों की उपासना और भागवतों की भक्ति-भावना सभी कुछ है।

× × ×

गीताधर्म पत्र

आज से कोई बीस वर्ष पूर्व जब स्वामी विद्यानन्दजी हिमालय से—गुरुसान्निध्य से—देश में लोकसङ्ग्रहार्थ निकले, उन्होंने गीता का घर घर में प्रचार करने की ठानी। ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग आदि की भिन्न भिन्न ढंग से व्याख्याएँ तो बहुत हो चुकी थीं। गीता का स्वाध्याय और विशेष अध्ययन भी पर्याप्त मात्रा में हो रहा था। अब स्वामीजी ने गीता के सन्देश को कथा और प्रवचन द्वारा घर घर पहुँचाने का कार्य प्रारम्भ किया। तभी से आप भारत का भ्रमण करने लगे। एक बार आप बदरीनाथ से कन्याकुमारी और रंगून से कराँची तक भ्रमण कर चुके हैं, पर गुजरात के अहमदाबाद, नडियाद, पेटलाद, बड़ौदा; ग्वालियर, इंदौर, उज्जैन, रतलाम, नासिक, नागपूर, रायपूर, जबलपूर, हैदराबाद दक्षिण आदि में आपने विशेष कार्य किया है।

कोई दो वर्ष पूर्व स्वामीजी कुछ दिन के लिये हिमालय में एकान्तवास के लिये चले गए थे। वहीं आपके मन में विचार उठा कि कथा के साथ ही गीताधर्म का प्रचार एक पत्र द्वारा भारतवर्ष भर में किया जाय तो अधिक लोकोपकार हो। काशी आकर उन्होंने गीताधर्म पत्र की संस्थापना की।

गीताधर्म कैसा है ?

(गीताधर्म के आचार्य लोकमान्य तिलक)

हमारा गीताधर्म नित्य तथा अभय हो गया है और स्वयं भगवान् ने ही उसमें ऐसा सुप्रबन्ध कर रखा है कि हिंदुओं को इस विषय में किसी भी दूसरे धर्मग्रन्थ या मत की ओर मुँह ताकने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जब सब ब्रह्मज्ञान का निरूपण हो गया तब याज्ञवल्क्य ने राजा जनक से कहा कि "अभयं वै प्राप्तोऽसि"—अब तू अभय हो गया (बृ. ४.२.४); यही बात इस गीताधर्म के ज्ञान के लिये भी अनेक अर्थों में अक्षरशः कही जा सकती है।

गीताधर्म कैसा है ? वह सर्वतोपरि, निर्भय और व्यापक है; वह **सम** है अर्थात् वर्ण, जाति, देश या किसी अन्य भेदों के **झगड़े में नहीं पड़ता,** किन्तु सब लोगों को **एक ही माप-तौल से** समान सद्गति देता है; वह अन्य सब धर्मों के विषय में यथोचित **सहिष्णुता** दिखलाता है; वह ज्ञान, भक्ति और कर्मयुक्त है; और अधिक क्या कहें, वह सनातन-वैदिक-**धर्मवृक्ष** का अत्यन्त मधुर तथा **अमृत फल** है। वैदिक धर्म में पहले द्रव्यमय या पशुमय यज्ञों का अर्थात् केवल कर्मकाण्ड का ही अधिक माहात्म्य था; परन्तु फिर उपनिषदों के ज्ञान से यह केवल कर्मकाण्ड प्रधान श्रौतधर्म गौण माना जाने लगा और उसी समय साङ्ख्यशास्त्र का भी प्रादुर्भाव हुआ। परन्तु यह ज्ञान सामान्य जनों को अगम्य था और इनका झुकाव भी कर्मसंन्यास की ओर ही विशेष रहा करता था, इसलिये केवल औपनिषदिक धर्म से अथवा दोनों की स्मार्त एकवाक्यता से भी सर्व साधारण लोगों का पूरा समाधान होना सम्भव नहीं था। अतएव उपनिषदों के केवल बुद्धिगम्य ब्रह्मज्ञान के साथ प्रेमगम्य व्यक्त उपासना के राजगुह्य का संयोग करके, कर्मकाण्ड की प्राचीन परम्परा के अनुसार ही अर्जुन को निमित्त करके गीताधर्म सब लोगों को मुक्तकण्ठ से यही कहता है कि "तुम अपनी अपनी योग्यता के अनुसार अपने अपने सांसारिक कर्तव्यों का पालन लोकसङ्ग्रह के लिये निष्काम-बुद्धि से, आत्मौपम्य दृष्टि से तथा उत्साह से यावज्जीवन करते रहो; और उसके द्वारा ऐसे नित्य परमात्म देवता का सदा यजन करो जो पिण्ड-ब्रह्माण्ड में तथा समस्त प्राणियों में एकत्व से व्याप्त है—इसीमें तुम्हारा सांसारिक तथा पारलौकिक कल्याण है।" इससे कर्म, बुद्धि (ज्ञान) और प्रेम (भक्ति) के बीच का विरोध नष्ट हो जाता है, और सब आयु या जीवन ही को यज्ञमय करने के लिये उपदेश देनेवाले अकेले गीताधर्म में सकल वैदिक-धर्म का सारांश आ जाता है। इस नित्य धर्म को पहचानकर, केवल कर्तव्य समझकर, सर्वभूत-हित के लिये प्रयत्न करनेवाले सैकड़ों महात्मा और कर्ता या वीर पुरुष, जब इस पवित्र भारत भूमि को अलङ्कृत किया करते थे, तब यह देश परमेश्वर की कृपा का पात्र बनकर, न केवल ज्ञान के वरन् ऐश्वर्य के भी शिखर पर पहुँच गया था; और कहना नहीं होगा कि जब से दोनों लोकों का साधक यह श्रेयस्कर धर्म छूट गया है तभी से इस देश की निकृष्टावस्था का आरम्भ हुआ है। इसलिये ईश्वर से आशापूर्वक अन्तिम प्रार्थना यही है कि भक्ति का, ब्रह्मज्ञान का और कर्तृत्व शक्ति का यथोचित मेल कर देनेवाले इस तेजस्वी तथा सम **गीताधर्म के अनुसार** परमेश्वर का यजन, पूजन करनेवाले **सत्पुरुष** इस देश में फिर भी उत्पन्न हों।

(गीता रहस्य का पहला हिंदी संस्करण पृ. ५०७-८, अन्तिम दो प्रघट्टक)

रासपञ्चाध्यायी की व्याख्या

(एक आचार्य)

एक शक्तिसम्पन्न, क्रान्तदर्शी कवि कुछ लिख जाता है, सहृदय भावुक उसका रसास्वादन करता है, आनन्द का अनुभव करता है।

दूसरा सत्यान्वेषक दार्शनिक उसकी समालोचना करता है उसमें अध्यात्मतत्त्वों की उद्भावना करता है, उसका समानधर्मानुयायी उन तत्त्वों के ज्ञान से बड़ा उल्लसित होता है।

तीसरा भक्तहृदय उसमें अपनी 'भावना' के अनुरूप भगवान् का रूप देखता है। सहधर्मी उसके इष्टदेव की उपासना करता है, भक्ति और आह्लाद से विह्वल हो उठता है।

इस प्रकार एक ऋषि अथवा कवि की कृति के आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक अर्थों की उत्पत्ति होती है।

अतः जब किसी उपास्य और प्रिय धर्मग्रन्थ का, जनसाधारण के 'काव्य'ग्रन्थ का अर्थ करना हो तो पहले आधिदैविक, तब आध्यात्मिक और तब आधिभौतिक अर्थ करना चाहिए। आधिदैविक अर्थ जनसाधारण के लिये है, आध्यात्मिक अर्थ विशेष मनोवृत्ति के लोगों के लिये है और आधिभौतिक अर्थ कुछ इने-गिने सहृदय लोगों के लिये है, जो अलौकिक रस का अनुभव कर सकते हैं, जो लोक के साधारण बुरे-भले के ऊपर उठ सकते हैं।

विद्वान् सदा कहा करते हैं कि वेदों और पुराणों के तीन तीन अर्थ होते हैं—आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक।

जो जैसा अधिकारी हो, जिसमें विद्या-बुद्धि की जैसी योग्यता हो, जिसकी जैसी रुचि हो, वह उसी प्रकार के अर्थ को अपनावे और लाभ उठावे।

❀ ❀ ❀ ❀

रासपञ्चाध्यायी भागवत के दशमस्कन्ध (पूर्वार्ध) के उन्तीसवें अध्याय से तैतीसवें अध्याय तक का नाम है। उसमें कृष्ण और गोपियों की रासक्रीड़ा का वर्णन है। यही वर्णन संक्षेप से विष्णु-पुराण में और विस्तार से ब्रह्मवैवर्त में भी आया है। भागवत का वर्णन न अधिक सूक्ष्म है और न अधिक विस्तृत। भागवत की कथा ही लोगों में अधिक कही और सुनी जाती है अतः उसी पर आक्षेप भी अधिक होते हैं।

आक्षेप तो होते ही रहते हैं पर जिन्हें सचमुच इस रासपञ्चाध्यायी को पढ़ने की इच्छा है उनसे एक बात कही जा सकती है कि भागवत भक्तों के लिये लिखी गई है। रासपञ्चाध्यायी के प्रारम्भ में ही लिखा है कि शरद् की रात्रि में भगवान् ने योगमाया का आश्रय लेकर रास की लीला प्रारम्भ की थी। अतः जो लोग कृष्ण को योगीश्वर भगवान् मानते हों और जो उनकी आधिदैविक लीला को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हों वही इसे पढ़ें। अर्थात् भागवत का प्रधान अर्थ आधिदैविक ही होना चाहिए। और यदि इतने से उस श्रद्धालु की जिज्ञासा शान्त न हो तो वह किसी सन्त अथवा महात्मा से उसके आध्यात्मिक तत्त्वों को समझने का यत्न करे। रास के आध्यात्मिक अर्थ से उसकी जिज्ञासा भी शान्त होगी

और अपूर्व आनन्द भी मिलेगा। इसके आगे जाने की अनधिकार चेष्टा प्रत्येक को न करनी चाहिए।

ऐसे विशाल हृदयवाले भी अनेक होते हैं जो उस रास के आधिभौतिक अर्थ में भी अलौकिक रस की अनुभूति करते हैं। वे श्लील-अश्लील के परे जाकर उसके सौन्दर्य की परख करते हैं। पर ऐसे लोग वही होते हैं जिन पर सरस्वती की विशेष कृपा रहती है; नहीं तो प्रत्येक पाठक के आँख-कान होते हैं और प्रत्येक ही उन वाक्यों और कथाओं को पढ़ता अथवा सुनता है पर सबको न तो एक सा अर्थ ही सूझता है और न सुझाने पर प्रिय ही लगता है।

उतत्वः पश्यन् न ददर्श वाचम्।
उतत्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्व विसस्रे
जायेव पत्य उशती सुवासा॥ ऋ० १०।७१

'जिसे लखावे वही लखे'

कृष्ण की मन्त्रमूर्त्ति

(ले०—प्रिन्सिपल श्री गोपीनाथजी कविराज, एम० ए०, गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस)

श्रीमद्भागवत (१।५।३८) में श्री भगवान् को 'मन्त्रमूर्तिममूर्तिकम्' कहा गया है, इससे भी प्रतीत होता है कि मन्त्र उनकी मूर्ति है तथापि वे अमूर्त हैं। भगवान् के मन्त्र या शब्द-ब्रह्ममयरूप का वर्णन भागवत के अन्य स्थलों में भी स्पष्ट रूप से मिलता है। सिद्धावतार कपिलदेव के पिता प्रजापति कर्दम ऋषि के दीर्घकाल तपस्या करने पर भगवान् प्रसन्न होकर उनके सामने शब्द-ब्रह्मात्करूप धारण करके आविर्भूत हुए थे।

तावत्प्रसन्नो भगवान्पुष्कराक्षः कृते युगे।
दर्शयामास तं क्षत्तः शाब्दं ब्रह्मदधद्वपुः॥
(श्रीमद्भा० ३।२१।८)

रामानुजसम्प्रदायवाले उनको 'पञ्चोपनिषत्तनु' कहते हैं—इसका भी अभिप्राय यही है कि शब्द-ब्रह्ममय नाद ही भगवान् का विग्रह है।

चार कृष्ण भक्त

अरविन्द योगी हैं, गीतानन्द स्वाध्यायी हैं, विद्यानन्द सन्त हैं, लोकसङ्ग्रही हैं, दक्षिण के दामोदर भी स्वाध्यायी हैं। स्वाध्याय मण्डल में काम करते हैं, अरविन्द का आश्रम पाण्डुचेरी में है। गीतानन्द का आश्रम गीता है और विद्यानन्द तो यति ठहरे। उनका आश्रम भक्तों का हृदय है।

ये चारों भारत के महापुरुष हैं, योगी हैं। गीताप्रेमी (चार) पुरुषरत्न गीता के जीवित भाष्यकार हैं। यों तो जितने योगी हैं—जितने लोग गीता की साधना करनेवाले हैं वे सभी गीता के भाष्यकार हैं पर हम केवल उनकी चर्चा करेंगे जिनके कहे और लिखे विचारों को हम जानते हैं।

चारों पुरुषों का चरित पुरुषोत्तमाङ्क में निकलेगा।

वंशी और पाञ्चजन्य

(पद्य)

बचपन में मैं सुना करता था कि जो भागवत (के अठारह हजार श्लोकों) में है वही गीता (के अठारह अध्यायों) में है, पर अभी तक मैं समझ न पाया था। दोनों में तो बड़ा भेद है !! इसका अर्थ मुझे अभी हाल में लगा है। स्वामीजी ने एक दिन 'गीताधर्म विद्यालय' (काशी) में कथा कहते हुए कहा था—

१ भागवत का दूसरा नाम है वंशी अथवा वेणु

२ गीता का दूसरा नाम है पाञ्चजन्य

अब तो सभी अर्थ खुल गया। चाहे भागवत का 'वेणुगीत' सुनो अथवा गीता का शङ्खनाद सुनो एक ही फल मिलेगा, वही रस मिलेगा, वही आनन्द मिलेगा।

यदि वंशी और पाञ्चजन्य की व्याख्या करें तो भागवत और गीता की व्याख्या करनी पड़ेगी। अतः एक ही बात आज मैं कह सकूंगा।

भगवान् को जो कुछ सुनाना है वह तो एक ही है वही योग, वही धर्म, वही ज्ञान, वही प्रेम। उसी को कभी वे वृन्दावन की लीलाभूमि में मुरली बजाकर सुनाते हैं और उसी को कभी कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में शङ्ख बजाकर सुनाते हैं।

हमें सुनना चाहिए यही सुनना (श्रुति) तो सब कुछ है।

स्वागत

१

भरतभू को देते हैं दीप्ति,
समय पर आ-आकर रवि-सोम।
बले हैं घर घर विद्युत दीप,
पर भरा है तब भी तमतोम॥

२

आ रहे हो तो आओ श्याम !
क्यों न लो देशदशा अवलोक।
टले जिससे सारा तमपुञ्ज;
मिले वह मञ्जुलतम आलोक॥

प्रार्थना

१

प्रबल हो गया तपन उत्ताप
मचाता है आतप उत्पात।
गगन बरसाता है अङ्गार
हुआ पावकपूरित क्षितिगात॥

२

दिशाओं को करते उत्फुल्ल
पधारो ऐ नवजलधर 'श्याम'।
बना दो परम सरस सब ओक
सुधामय कर दो वसुधाधाम॥

हरिऔध

कला में कृष्ण की अभिव्यक्ति

(ले०—कलाविद् राय कृष्णदासजी, काशी)

श्री कृष्ण में जहाँ सत् और चित् का पूर्ण विकास हुआ है वहाँ आनन्द का भी पूर्ण विकास हुआ है। यही कारण है कि उनमें मानव आदर्श का सर्वोच्च विकास माना जाता है; वे पूर्णावतार कहे जाते हैं।

हमारे श्री कृष्ण मूर्तिमान् साधन हैं, साधक हैं, सिद्धि हैं, अर्थात् वे ज्ञान हैं, कर्म हैं, आनन्द हैं। उनकी आनन्दमयी मूर्ति का प्रभाव कला पर तो इतना पड़ा है कि उसमें कृष्ण सर्वत्र व्याप्त हैं। कहना चाहिए कि कृष्ण कला के मुख्य आधार हैं।

यदि हम भारतीय कला के पिछले छः-सात सौ वर्षों की पड़ताल करें तो हमारी बात की सत्यता प्रकट हो जायगी। यहाँ हमें यह कह देना चाहिए कि कला से हमारा तात्पर्य उसके व्यापक अर्थ में है। अर्थात् हम इसमें चित्र, मूर्तिकला, नृत्य, सङ्गीत के साथ साथ काव्य को भी सम्मिलित करते हैं।

यों तो कला में कृष्ण की अभिव्यक्ति का पता ईस्वी सन् की पहली शताब्दी से ही चलता है; क्योंकि इस समय की बनी एक अत्यन्त भव्य गोवर्द्धनधारी मूर्ति मिलती है और इसके कुछ ही शताब्दी बाद की माखनचोरी की भी एक सुन्दर मूर्ति मिलती है, किन्तु जैसा हमने ऊपर कहा है, हमारी कला के पिछले छः-सात सौ वर्ष तो कृष्णमय ही हैं।

हमारे धर्म में पौराणिक युग से भक्ति की जो अविरल धारा बही है, वहीं से कृष्ण कला के आदर्श हुए हैं। भागवत के श्री कृष्ण परम दर्शनीय, परम कमनीय, नटवर हैं। मानव प्रकृति ही नहीं; समस्त चराचर उनके सङ्गीत पर मुग्ध हो जाता है। भागवत के वेणुगीत तथा गोपीगीत में इसकी इतनी कोमल और सरस अभिव्यक्ति हुई है कि भावुक उससे पुलकित हो उठते हैं। इनके कुछ अवतरण दिए बिना आगे बढ़ना ठीक न होगा।

वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम्।
कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः॥
व्योमयानवनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः।
काममार्गणसमर्पितचित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः॥
—१०।३५।२.३।

× × ×

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥

\+ + +

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥

\+ + +

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम्॥
१०।३१।१,६,१४।

इनके सिवाय भागवत में अनेक बार उनके ऐसे सुन्दर ध्यान आते हैं कि उनकी अनुभूतियाँ मस्त बना देती हैं उनका ध्यान करते-करते तबियत मस्त हो जाती है, यथा—

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय
गुञ्जावतंस परिपिच्छल सन्मुखाय।
वन्यस्रजे कमलनेत्रविषाणवेणु-
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय॥

\+ + +

बर्हप्रसूननवधातुविचित्रिताङ्गः
प्रोद्दामवेणुदलशृङ्गरवोत्सवाढ्यः ।
वत्सान्गृणन्ननुगगीतपवित्रकीर्ति-
र्गोपीदृगुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥
१०।१४।१,४७।

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्ध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन्गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः ॥
१०।२१।५.

भागवत में अधिक सुन्दर और गहरे भाववाले वे अंश हैं जहाँ यशोदा की सुत विषयक रति (अत्यन्त प्रीति) की अभिव्यक्ति है। इस अंश को पढ़कर हमें मानना ही पड़ता है कि वात्सल्य अवश्य ही एक स्वतन्त्र रस है। भागवत दशमस्कन्ध के अष्टम एवं नवम अध्याय में पाठकों को इसे पढ़ना चाहिए।

भागवत का गोपीविरह *—भ्रमरगीत— यद्यपि बहुत छोटा है तथापि वह बहुत ही प्रभावजनक है। फिर भागवत के रुक्मिणीपरिहास† को पढ़कर तो हमें आँसू आ जाते हैं। स्वकीया की प्रीति और गृहस्थ के प्रेममय जीवन का जैसा अद्वितीय चित्र यहाँ खींचा गया है वैसा भारतीय वाङ्मय में तो अन्यत्र नहीं मिल सकता।

भागवत के कृष्णचरित्र का मुख्य आधार विष्णुपुराण है। वह गुप्तकाल से इधर की रचना नहीं है, किन्तु उसके वर्णनों में कलात्मक उक्तियों का अभाव सा है।

भागवत के उपरान्त कृष्णलीला की सुन्दर अभिव्यक्ति के लिये गीतगोविन्द का नाम लेना पड़ेगा। यह गीतिकाव्य केवल भारतीय ही नहीं; संसार भर के गीतिकाव्यों में अनोखा है। इसके एक एक शब्द छाँट छाँट कर रत्नों की तरह सजाए और जड़े गए हैं, जिनमें विन्दु-विसर्ग तक का परिवर्तन असम्भव है। इसके प्रत्येक पद से रस छलछला रहा है। चाहे इसके कुछ अंश वर्त्तमान आदर्श के प्रतिकूल हों, किन्तु उसके जो अंश ऐसे हैं, जिनका आदर्श चिन्त्य नहीं है, वे त्रिकाल में सौन्दर्य और रस की वस्तु हैं—

हरि हरि याहि माधव याहि केशव मा वद कैतववादम् ।
तामनुसर सरसीरुहलोचन या तव हरति विषादम् ॥ ध्रुवम् ॥
चरणकमलगलदलक्तकसिक्तमिदं तव हृदयमुदारम् ।
दर्शयतीव बहिर्मदनद्रुमनवकिसलयपरिवारम् ॥ हरि हरि ॥

× × ×

श्रितकमलाकुचमण्डल धृतकुण्डल ए ।
कलितललितवनमाल जय जय देव हरे ॥ ध्रुवम् ॥ १ ॥
दिनमणिमण्डलमण्डन भवखण्डन ए ।
मुनिजनमानसहंस जय जय देव हरे ॥ २ ॥
कालियविषधरगञ्जन जनरञ्जन ए ।
यदुकुलनलिनदिनेश जय जय देव हरे ॥ ३ ॥
मधुमुरनरकविनाशन गरुडासन ए ।
सुरकुलकेलिनिदान जय जय देव हरे ॥ ४ ॥
अमलकमलदललोचन भवमोचन ए ।
त्रिभुवनभवननिदान जय जय देव हरे ॥ ५ ॥
जनकसुताकृतभूषण जितदूषण ए ।
समरशमितदशकण्ठ जय जय देव हरे ॥ ६ ॥
अभिनवजलधरसुन्दर धृतमन्दर ए ।
श्रीमुखचन्द्रचकोर जय जय देव हरे ॥ ७ ॥
तव चरणे प्रणता वयमिति भावय ए ।
कुरु कुशलं प्रणतेषु जय जय देव हरे ॥ ८ ॥

* भागवत दशमस्कन्ध ४६-४७
† भागवत दशमस्कन्ध ६०। १—३२।

श्रीजयदेवकवेरिदं कुरुते मुदम् ए।
मङ्गलमुज्ज्वलगीति जय जय देव हरे ॥ ६ ॥

+ + +

धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली।
(गोपीपीनपयोधरमर्दनचञ्चलकरयुगशाली) ॥ ध्रुवम्॥
नामसमेतं कृतसङ्केतं वादयते मृदु वेणुम्।
बहु मनुतेऽतनु ते तनुसङ्गतपवनचलितमपि रेणुम् ॥धीर०॥२
पतति पतत्रे विचलति पत्रे शङ्कितभवदुपयानम्।
रचयति शयनं सचकितनयनं पश्यति तव पन्थानम् ॥धीर०॥
मुखरमधीरं त्यज मञ्जीरं रिपुमिव केलिसुलोलम्।
चल सखि कुञ्जं सतिमिरपुञ्जं शीलय नीलनिचोलम् ॥ धीर०

इस शैली के देशी भाषा में सबसे बड़े आचार्य मिथिलाकोकिल विद्यापति ठाकुर हुए। यों तो इनकी कविताओं के नायक कृष्ण का चरित्र भागवत तथा गीतगोविन्द में चित्रित कृष्ण के ऐहिक चरित्र से बहुत कुछ मिलता हुआ है, परन्तु कहीं कहीं तो ये बहुत ऊँचे उठ गए हैं—

सखि कि पुछसि अनुभव मोय।
सेही परित अनुराग बखानइत तिले तिले नूतन होइ ॥
जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल।
सेहो मधुर बोल स्रवनहि सुनल स्रुति पथे परस न गेल ॥

* * *

कत विदगध जन रस अनुगमन अनुभव काहु न पेख।
विद्यापति कह प्राण जुड़ाइत लाखवे न मिलल एक ॥

यह शैली बंगाल में बहुत दिनों तक चलती रही। चण्डीदास, गोविन्ददास आदि महाकवियों ने अपनी सङ्गीतमय वाणी से लोगों में भक्ति का श्रोत बहाया। इनकी रचनाएँ वैष्णवसम्प्रदाय की चिरसम्पत्ति हैं।

इन सब बातों से हम समझ सकते हैं कि भारतीयकला का पिछला हजार वर्ष किन प्रभावों से प्रभावित हुआ है।

यद्यपि हमें कृष्णसम्बन्धी बहुत पुराने चित्र तो नहीं मिलते, किन्तु पंद्रहवीं शताब्दी के बाल-गोपाल-चरित की जो सचित्र प्रति मिली है उससे स्पष्ट है कि इससे सैकड़ों वर्ष पूर्व कृष्ण का चित्राङ्कन होने लगा था। बंगाल के पहाड़पुर में जो कृष्णचरित्र-सम्बन्धी गुप्तकालीन बड़ी सजीव एवं जोरदार कतिपय मूर्तियाँ मिली हैं, उनसे प्रमाणित होता है कि गुप्तकाल में भी कृष्णलीला का चित्राङ्कन होता था। क्योंकि इस काल में जिन विषयों की मूर्ति बनती थी उनके चित्र भी बनते थे।

बाल-गोपालचरित के एक शताब्दी बाद के भी कृष्णसम्बन्धी चित्र काफी सङ्ख्या में मिलने लगे हैं। डा० कुमार स्वामी ने इस समय के चित्रों का नामकरण 'आरम्भिक राजपूत चित्र' किया है। यही काल उस कविता के भी प्रारम्भ का है, जो आगे चलकर रीतिकाल की कविता में परिणत होती है। वर्तमान सङ्गीत के पितामह कलावंत बैजू बावरे का समय भी यही है। इन्होंने कृष्णसम्बन्धी बड़े ही सुन्दर ध्रुपद बाँधे हैं।

इस समय में साहित्य तो कृष्ण से इतना प्रभावित हुआ कि भक्ति के अतिरिक्त रीतिग्रन्थों के नायक भी कृष्ण ही हो गए। हिंदू ही नहीं; मुसलमान भावुक भी इनके रंग में रँग गए और इन पर मजमून बाँधे। हाँ, मूर्तिकला के लिये यह समय उत्कर्ष का न था।

इस समय की जो कतिपय सुन्दर मूर्तियाँ बाल-गोपाल या वेणुगोपाल की उत्तरी भारत में मिली हैं वे दक्षिण भारत की कृष्ण-मूर्तियों के मुकाबले में कुछ भी नहीं ठहरती।

इस समय में सङ्गीत में एक बहुत बड़ा दल उन गायकों का हो गया था, जो बादशाही दरबारों में

गाते थे; और जिनके गान का विषय मुख्यतः बादशाहों की विरुदावली होती थी। इस गान में केवल स्वरों का चमत्कार रह गया था। अतएव भावमय सङ्गीत के लिये हमें बैजूबावरा के बाद ब्रज की ओर मुड़ना होगा, जहाँ सूरदास की प्रमुखता में अष्टछाप के कवियों ने मूर्तिमान् प्रेम—श्री कृष्ण—के ऐसे ऐसे सुन्दर और भावपूर्ण शब्दचित्र खींचे हैं कि वे हिंदीसाहित्य में अपना जोड़ नहीं रखते।

सूरदासजी का वात्सल्य और विप्रलम्भशृङ्गार बहुत ही उत्कृष्ट हुआ है। प्रत्येक में से हम कुछ नमूने यहाँ देते हैं—

खेलन अब मेरी जात बलैया।
जबहीं मोहिं देखत लरिकन सँग तबहिं खिझत बलभैया॥
मोसों कहत बसुदेव तात तब, देवकी तेरी मैया।
मोल लियो कछु दे उन कों करि करि जतन बटैया॥
अब बाबा कहि कहत नन्द कों जसुमति कों कहै मैया।
ऐसे ही कहि सब मोहिं खिझावत तब उठि चलो खिसैया॥
पाछे नन्द सुनत हैं ठाढ़े हँसत हँसत उर लैया।
सूर नन्द बलरामहि धिकरयो, सुनि मन हरख कन्हैया॥

× × × ×

चन्द्र खिलौना लैहौं मैया मेरी, चन्द्र खिलौना लैहौं।
धौरी को पयपान न करिहौं बेनी सिर न गुथैहौं॥
मोतिन माल न धरिहौं उर पर झँगुली कण्ठ न लैहौं।
जैहौं लोट अबैं धरनी पर तेरी गोद न ऐहौं।
लाल कहैहौं नंद बबा को तेरो सुत न कहैहौं॥
कान लाय कछु कहत जसोदा दाउहिं नाहिं सुनैहौं।
चन्दा हू ते अति सुंदर तोहिं नवल दुलहिया ब्यैहौं॥
तेरी सौंह मेरी सुन मैया अबहीं ब्याहन जैहौं।
सूरदास सब सखा बराती नूतन मङ्गल गैहौं॥

× × × ×

मेरे कुँअरकान्ह बिनु सब कछु वैसोइ धरयौ रहै।
को उठि प्रात होत ले माखन को कर नेत गहै॥
सूने भवन; जसोदा सुत के गुन गुनि सूल सहै।
दिन उठि घेरत ही घर ग्वारिनि उरहन कोउ न कहै॥
जो ब्रज में आनंद होत तो मुनि मनसाहू गहै।
सूरदास स्वामी बिनु गोकुल कौड़ी हू न लहै॥

× × × ×

बिछुरे श्री ब्रजराज आजु तौ नैनन की परतीत गई।
उड़ि न गए हरि सँग तबहि ये, ह्वै न गए सखि स्याममई॥
रूपरसिक लालची कहावत सो करनी कछुवै न भई।
साँचे क्रूर कुटिल ए लोचन बिथा मीन छबि छीन लई॥

मीरा का भी लगभग वही समय है। गिरधर-नागर मदछकी मीरा नारीप्रेम तथा विरह के अलौकिक रूप की पूर्ण प्रतीक है। उनकी कविता कृष्णविरह-कथा में डूबी हुई है—

हेरी मैं तो प्रेमदिवाणी, मेरा दरद न जाणै कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस विध सोणा होय॥
गगनमंडल पै सेज पिया की किस विध मिलणा होय।
घायल की गति घायल जाणै, की जिण लाई होय॥
जौहरी की गति जौहरी जाणै, की जिण जौहर होय।
दरद की मारी बन बन डोलूँ, बैद मिल्या नहिं कोय॥
मीरा की प्रभु पीर मिटैगी, जद बैद सँवलिया होय।

× × × ×

खिन मंदिर खिन आँगने रे, खिन खिन ठाढ़ी होय।
घायल ज्यूँ घूमूँ खड़ी, म्हारी बिथा न बूझै कोय॥
काटि कलेजो मैं धरूँ, रे कौआ तू ले जाय।
ज्याँ देसाँ म्हारो पिव बसै रे, वे देखत तू खाय॥

+ + + +

इसी समयके लगभग हितहरिवंशजी हुए। यद्यपि उन्होंने केवल चौरासी पद ही लिखे हैं, फिर भी वे उन्हीं से अमर हो गए हैं। उन्हें हिन्दी का जयदेव कहना अत्युक्ति न होगी। इनके भी नमूने पढ़िए—

ब्रज नवतरुणि कदम्ब मुकुटमणि श्यामा आजु बनी।
नख-सिख लौं अँग अंग माधुरी मोहे श्याम धनी॥
यों राजत कबरीगूंथित कच कनक कञ्जबदनी।
चिकुर चन्द्रकनि बीच अरध बिधु मानहुँ ग्रसत फनी॥
सौभग रस सिर स्रवत पनारी पिय सीमन्त ठनी।
भृकुटि कामकोदण्ड नैनसर कज्जलरेख अनी॥
भाल तिलक गण्ड पर नासा जलज मनी।
दसन कुन्द सरसाधरपल्लव पीतम मन समनी॥
चिबुक मध्य अति चारु सहज सखि साँवल बिन्दु कनी।
प्रीतम प्रान रतन संपुट कुच कञ्चुकिकसित तनी॥
भुज मृनाल बल हरत बलयजुत परस सरस स्रवनी।
श्याम सीस तरु मनु मिडवारी रची रुचिर रवनी॥
नाभि गँभीर मीन मोहनमन खेलन कौ ह्रदिनी।
कृश कटि पृथु नितम्ब किंकिनिवृत कदलि खंभ जघनी॥
पद अम्बुज जावकजुत भूषन प्रीतम उर अवनी।
नव नव भाव विलोम भाम इभ विहरति वर करनी॥
'हित हरिवंस' प्रसंसित श्यामा कीरति बिसद घनी।
गावत स्रवननि सुनत सुखाकर बिस्व दुरित दवनी॥

इसके उपरान्त तो ब्रज में पदों की ऐसी बाढ़ आई कि यदि वह समस्त साहित्य सङ्ग्रह किया जाय तो उसकी संख्या कई लाख पद तक पहुँचेगी। इनमें एक से एक चुने पद हैं। इस समय इस बात की बहुत बड़ी आवश्यकता है कि इनका एक चुना हुआ शिष्ट संस्करण निकाला जाय, जिससे इनका सारांश वर्तमान् साहित्यप्रेमियों को सुलभ हो जाय।

गोस्वामी तुलसीदास जी के उपास्य यद्यपि भगवान् रामचन्द्र हैं तो भी राम, कृष्ण के प्रति अभेद भाव के कारण, वे अपनी कृष्णगीतावली में किसी प्रकार सूर से नीचे नहीं हुए हैं। यथा—

अबहिं उरहनो दै गई बहुरो फिरि आई।
सुनु मैया तेरी सौं करों याकी टेक
लरन की सकुच बेचेसि खाई।
या ब्रज में लरिका घने हौं ही अन्याई।
मुँह लाए मूड़हि चढ़ी अन्तहु
अहिरिनि तोहिं सूधी करि पाई॥

× × ×

देखु सखी हरिबदन इन्दु पर।
चिक्कन कुटिल अलक अवली
छबि कहि न जाय शोभा अनूप वर॥
बालभुअंगिनि निकर मनहुँ मिलि
रही घेरि रस जानि सुधाकर।
तजि न सकहिं नहिं करहिं पान
कहो कारन कौन विचारि डरहि उर॥
अरुन बनजलोचन कपोल शुभ
श्रुतिमण्डित कुण्डल अति सुंदर।
मनहु सिन्धु निज सुतहिं मनावत
पठए युगल बसीठि बारिचर॥
नँदनन्दनमुख की सुंदरता
कहि न सकहिं श्रुति-शेष-उमावर।
तुलसिदास त्रिलोकविमोहन
रूप कपट नर त्रिविध सूल हर॥

अब्दुल रहीम खानखाना भी इसी काल में हुए हैं। ये अकबर के एक बहुत बड़े दरबारी थे, किन्तु भगवज्जन थे। यद्यपि ये अपने दोहों के कारण ही प्रसिद्ध हैं, किन्तु इनके पद भी अमूल्य हैं; उदाहरण के लिये—

छबि आवन मोहनलाल की।
काछे काछनि कलित मुरलि कर पीत पिछौरी साल की।

बंक तिलक केसर को कीनें, दुति मानो विधुबाल की ॥
बिसरत नाहिं सखी मो मन तें चितवनि नैन बिसाल की।
नीकी हँसनि अधर सधरन, छबि लीनी सुमन गुलाल की ॥
जल सो डारि दियो पुरइनि पै डोलनि मुकता माल की।
यह सरूप निरखै सोइ जानै या रहीम के हाल की ॥

पिछले पदकारों में नागरीदासजी ने बड़े सुन्दर शब्दचित्र खींचे हैं। इनका निम्न पद हमें बहुत रुचता है—

फुलवा बीनन हौं गई सजनी, जमुना तीर, द्रुमन की भीर।
अरुझ रह्यौ अरुनी की डरियाँ, ताछन मेरो अंचर चीर ॥
तहँ कोउ निकसि अचानक आयो, मालति सघन लता।निरुवारि।
बिना कहैं मेरो पट सुरझायो, इक टक मो तन रह्यौ निहारि ॥
मन उरझाय वसन सुरझायो अरु कह कहौं लाज की बात।
हौं गुरुजन डर झुकी जात ही, उत वह सैननि हा हा खात ॥
नाम न जानों स्याम रंग है पीत बरन वाकौ हुतौ दुकूल।
जेहि-तेहि विधि ले चली नागरिया फिर बीनन साँझी कौ।फूल ॥

इसी के साथ रीतिग्रन्थों में भी कृष्ण की बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। देव, बिहारी, मतिराम, सेनापति तथा पद्माकर के कुछ नमूने यहाँ दिए जाते हैं—

झहरि झहरि झींनी बूँदनि परति मानों
घहरि घहरि घटा छाई है गगन मैं।
आइ कह्यौ स्याम मोसों चलो आप झूलिबे कों
फूली न समाई ऐसी भई हौं मगन मैं ॥
चाहत उठो ई उठि गई सो निगोरी नींद
सोय गए भाग मेरे जागि वा जगन मैं।
आँखि खोलि देखों 'देव' घन हैं न घनस्याम
वेई छाई बूँदें मेरे आँसू हैं दृगन मैं ॥
जब ते कुँअर कान्ह रावरी कलानिधान
कान परी वाके कहूँ सुजस कहानी सी।
तब ही ते देव देखी देवता सी हँसति सी
रीझति सी खीझति सी रूठति रिसानी सी ॥
छोही सी छली सी छीन लीनी सी छकी सी।छिन
जकी सी टकी सी लगी थकी थहरानी सी।
बींधी सी बँधी सी विष।बूड़ति विमोहित सी
बैठी बाल बकति विलोकति बिकानी सी ॥

× × ×

सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
ऐहि बानक मो मन बसहु सदा बिहारीलाल ॥
सघन कुञ्ज छाया सुखद सीतल मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर ॥

+ + +

गुच्छनि के अवतंस लसैं सिखि पच्छनि अच्छ किरीट बनायो।
पल्लव लाल समेत छरी करपल्लव में मतिराम सुहायो ॥
गुंजन के उर मञ्जुल हार निकुंजनि ते कढ़ि बाहर आयो।
आज को रूप लखें ब्रजराज को आज ही आँखिन को फल पायो॥
मोरपखा 'मतिराम' किरीट मनोहर मूरति सौं मनु लैगो।
कुण्डल डोलनि गोल कपोलनि, बोल सनेह के बीज से बैगो ॥
लाल विलोचनि कौलन सौं, मुसकाइ इतैं अरुझाइ चितैगो।
एक घरी घनसे तन सौं अँखियान घनों घनसार सौ देगो ॥

+ + +

फूलन सों बाल की बनाइ गुही बेनी लाल,
भाल दीनी बेंदी मृगमद की असित है।
अङ्ग अङ्ग भूषन बनाइ ब्रजभूषन जू,
बीरी निज कर कै खवाई अति हित है ॥
ह्वै कै रसबस जब दीवे कों महाबर कें,
सेनापति स्याम गह्यो चरन ललित है।
चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आँखिन सों,
कही प्रानपति यह अति अनुचित है ॥

+ + +

झिझिकत झूमत मुदित मुसुकात गहि
आँचर को छोर दोऊ हाथन सों आढ़ो है।

देखि 'पदमाकर' गोबिंद की अमित छबि,
संकर समेत विधि आनँद सों बाढ़ो है ॥
पटकत पाँव होत पैजनी झुनुक रंच,
नैक नैक नैनन तें नीर कन काढ़ो है।
आगे नँदरानी के तनिक पय पीवे काज
तीनि लोक ठाकुर सो ठुनुकत ठाढ़ो है ॥

घनानन्द, रसखान तथा ठाकुर की परिपाटी इन महाकवियों से भिन्न थी। ये प्रेम में डूबे हुए कवि थे और प्रेम, विरह, तथा विनय से पगी हुई रचनाओं द्वारा इन्होंने भगवान् से सम्बन्ध रखनेवाले इन पहलुओं का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है—

परकारज देह कों धारे फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ सब ही विधि सज्जनता सरसौ ॥
घनआनँद जीवन दायक हौ कछु मोरियौ पीर हिएँ परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुआन कों लै बरसौ ॥

× × ×

मानस हौं तो वही रसखानि
बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो
चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन ॥
पाहन हौं तो वही गिरि को
जो धरयो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जौ खग हौं तो बसेरो करौं
मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन ॥
या लकुटी अरु कामरिया पर
राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवौ निधि कों
सुख नन्द की धेनु चराइ बिसारौं ॥
रसखानि कबौं इन आँखिन सों
ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूँ कलधौत के धाम
करीर की कुंजन ऊपर बारौं ॥

× × ×

ग्वारन को यार है, सिंगारसुख संपति को,
साँचो सरदार तीन लोक रजधानी को।
गायनि के सँग देख, आपनो बखत लेख
आनँद बिसेखि रूप अकह कहानी को ॥
ठाकुर कहत साँचों प्रेम को प्रसंग वारो,
लाजत अनंग अंग रंग दधिदानी को।
पुन्य नंदजू को अनुराग ब्रजबासिन को
भाग जसुमति को, सुहाग राधारानी को ॥

ये जे कहैं ते भलैं कहिबो करैं मानसही सौं सबै सह लीजे।
ते बकि आपुहिं ते चुप होयँगी काहे कों काहु पै ऊतर दीजे॥
ठाकुर मेरे मते की यहै धनि मानि कै जोबन रूप पतीजे।
या जग में जनमे कौ, जिये कौ, यहै फल है हरि सों हित कीजे॥

ऊपर हम कृष्णसम्बन्धी आरम्भिक राजपूत चित्रों की चर्चा कर चुके हैं। इसके कुछ ही दिनों बाद की रसिकप्रिया की एक सुन्दर, सचित्र प्रति अमेरिका के बोस्टन म्यूजियम में सुरक्षित है। यद्यपि नायिकाभेद का ग्रन्थ होने के कारण इसके कृष्ण सर्वथा ऐहिक हैं तो भी ये चित्र काफी अच्छे हैं। इन्हीं की परम्परा में बुंदेलखण्ड के वे चित्र जान पड़ते हैं जो इनके कई सौ वर्ष बाद हजारों की संख्या में तैयार हुए। यद्यपि इनमें से अधिकांश नायिकाभेद-सम्बन्धी हैं फिर भी गोपीकृष्ण के कई सुन्दर चित्र इनमें प्राप्त हुए हैं। राजस्थान में कृष्णचरित्र-सम्बन्धी अनगिनत चित्र बने। इनमें से दो तीन तो ऐसे हैं जो भारतीय चित्रकला मात्र में गिनती की चीज हैं। गोवर्द्धनधारण का एक सुन्दर चित्र, जो जैपुर राज्य के पोथीखाने में है और पूर्णतः आलङ्कारिक रीति से अङ्कित हुआ है, कृष्ण को प्रतिपालक के रूप में बड़ी सुन्दरता से अभिव्यक्त करता है।
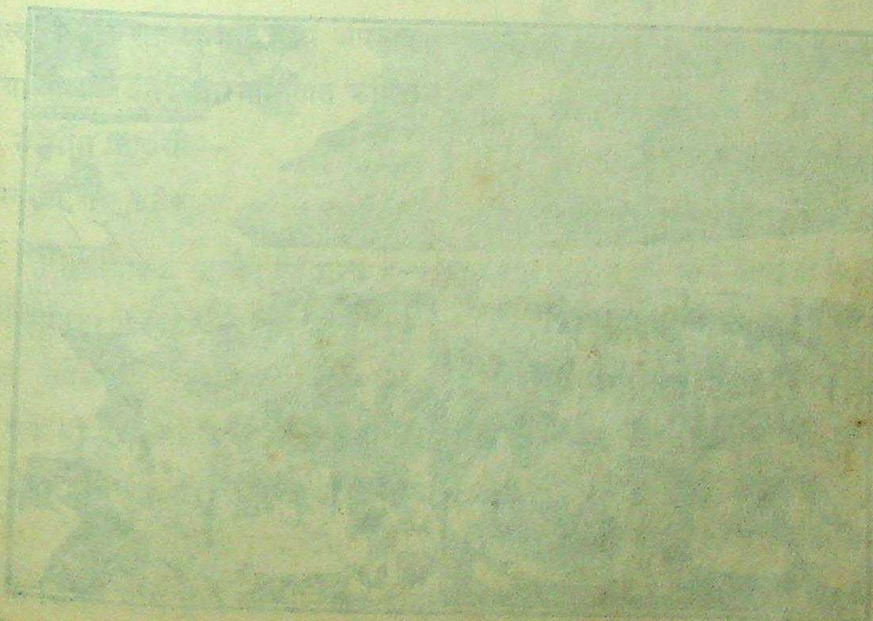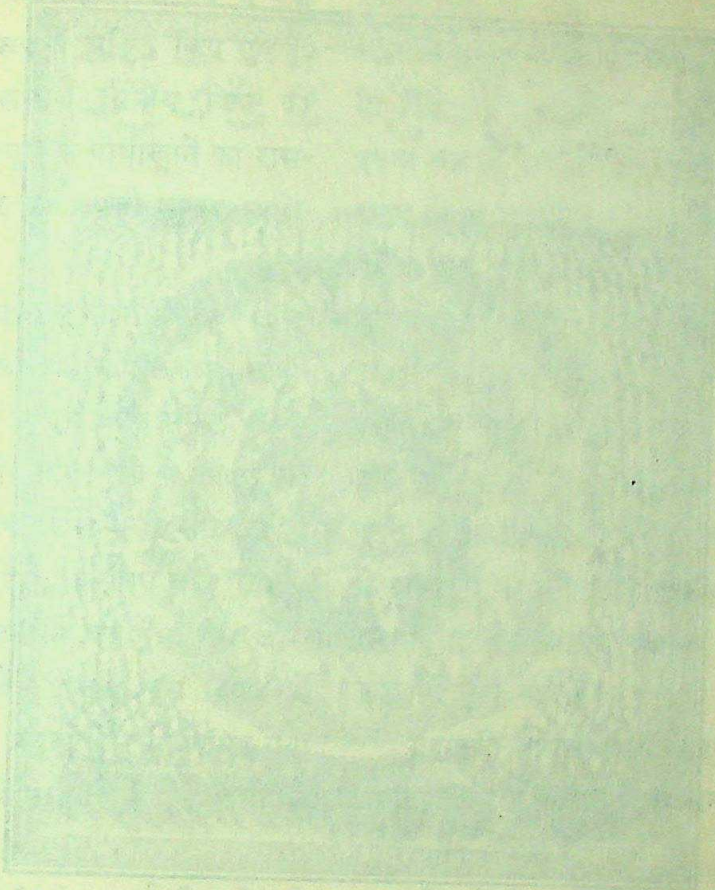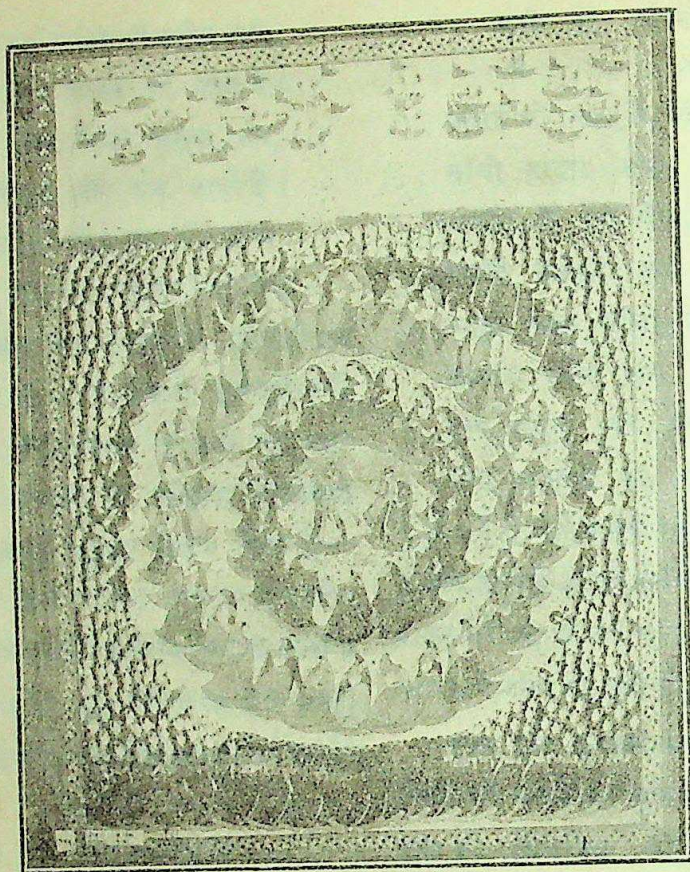
रासलीला पृ० ७३१

गोवर्द्धन धारण पृ० ७३१

गीताधर्म प्रेस, साक्षीविनायक, काशी।

इस चित्र में गोवर्द्धनधारी कृष्ण वास्तव में एक लोकोत्तर पुरुषोत्तम के स्वरूप में अङ्कित किए गए हैं, जो अपनी छाया तले सम्पूर्ण दयनीय विश्व का संरक्षण कर रहे हैं। जयपुर के पोथीखाने का रासलीलावाला चित्र भी नटवर की बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति है।

हिंदू चित्रकला का सर्वोत्कृष्ट अंश पहाड़ी चित्रण-शैली है। इसमें का बालकृष्ण, गोपालकृष्ण, गोपीकृष्ण सभी की बहुत ही सुन्दर और सफल अभिव्यक्ति हुई है। इतना ही नहीं कृष्ण के जीवन का उदात्त अंश भी इन चित्रकारों ने बड़ी सफलता से चित्रित किया है, कालियमर्दन, कंसवध तथा द्वारका और कुरुक्षेत्र के कृष्ण के इन्होंने बड़े पुष्ट और जोरदार चित्र तैयार किए हैं। जहाँ इस विषय में हमारा सङ्गीत और काव्य अधूरा और निर्बल रह गया है वहाँ पहाड़ी चित्रकला के उस्तादों ने इस कमी को बिलकुल दूर कर दिया है।

कविता में द्वारकावासी के अपूर्व मित्रस्नेह के आदर्श सुदामाचरित्र को नरोत्तम कवि ने लिखकर मानों हमारे साहित्य के उक्त लाञ्छन के लिये अपवाद उपस्थित कर दिया है। उनके निम्नलिखित कवित्त से किसकी आँखें न भींग जायगी—

ऐसे बिहाल बिवायन सों भए कंटक — उस श्रीमद्भा-
हाय सखा दुख पाइ महा तुम
देखि सुदामा की दीन ...प्रतिपादक ऋग्वेद का मन्त्र है—
पानी परात कौ... ...ग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
...धा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

पहाड़ी लिये... ...ा एक ही है, जानकार लोग उसी एक
भी अपने जाने, ..., मित्र, वरुण, वायु, यम आदि नामों
कृ...गवान् का
तिरे बिना अर्थ स... ...त के जितने पात्र हैं वे सबके सब इन्हीं
... बुझी हुई अग्नि... ...न हैं, आधिदैविक और आध्यात्मिक

मुसलमानों के जमाने से हमारे यहाँ का नृत्य केवल विलासिता की अभिव्यक्ति का साधन बना दिया गया है, फिर भी कृष्णप्रेम का प्रभाव हमारी कला पर इतना व्यापक था कि पिछले मुगलकाल के गाने का मुख्य विषय कृष्णप्रेम ही था, चाहे उसका कितना ही ऐहिक रूप क्यों न रहा हो। कान्हा और कन्हैया मुहम्मदशाह और वाजिदअलीशाह के दरबार की चीजों के प्रधान नायक हैं। इस गाने का प्रभाव स्वभावतः नृत्य पर भी पड़ा। विलासिता के होते हुए भी उसमें कृष्ण के नृत्य की, भावभङ्गियों की बहुत कुछ अभिव्यक्ति पाई जाती है। परन्तु कृष्ण के रासनृत्य का वास्तविक उत्तराधिकारी गुजरात का गरबानृत्य है, जिससे चारुतर भारतवर्ष का अन्य कोई भी नृत्य नहीं है।

महाकवि मैथिलीशरण के इस मत को मैं ...हूँ। मानता हूँ कि कृष्णावतार का सन्दे... ...माया इस अंश ...त भर...
...न्परित्यज्य मामेकं शरणं है, ...की ... लिखने का शीघ्र ही प्रयत्न
युग में, जिस... बुद्धिय... ...गा। ... ...क पाठकों को उनके एकात्म-
है, उनके ...की जानकारी के लिये प्रस्थानत्रयी को पढ़
कल्प... ...ा चाहिए। प्रस्थानत्रयी में उपनिषद् (श्रुति), ग... श्रीमद्भगवद्गीता (स्मृति) और वेदान्तदर्शन आते हैं। इन तीनों के ही हिन्दी अनुवाद हो चुके हैं। वेदान्तदर्शन का एक सुन्दर हिन्दी अनुवाद वेदान्त के मर्मज्ञ विद्वान् श्री भोले बाबाजी ने किया है। यह ग्रन्थ अच्युतग्रन्थमाला काशी से श्री गौरीशङ्कर गोयनकाजी द्वारा प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त शेष का अनुवाद भी हिन्दी में छप चुका है। जिज्ञासु पाठकों को एकात्मवाद समझने के लिये इनको अवश्य पढ़ना चाहिए। कृष्ण के जीवन में एकात्मवाद इनके पढ़ने पर ही समझ में आ सकेगा। यह एकात्मवाद ही कृष्ण का मत था, व्यास का मत था।

नहीं चाहती मैं विनिमय में
उन वचनों का वर्म, हरे !
तुझको—एक तुझी को अर्पित
राधा के सब कर्म, हरे !

\+ \+ \+

यह वृन्दावन, यह वंशीवट
यह यमुना का तीर, हरे !
यह तरते ताराम्बरवाला
नीला निर्मल नीर, हरे !
यह शशिरञ्जित-सितधन-व्यञ्जित
परिचित, त्रिविध समीर, हरे !
बस, यह तेरा अङ्क और यह
मेरा रंक शरीर, हरे !

\+ \+ \+

[illegible] करेगी तुझको
[illegible] राधिका बुधा, हरे !
[illegible] हरे !
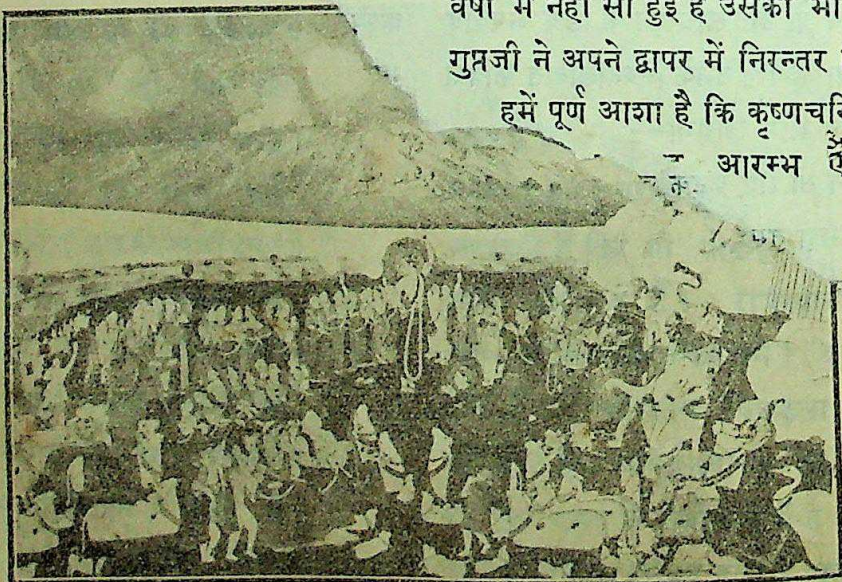
सब सहलूँगी—रो रो कर मैं,
देना मुझे न बोध, हरे !
इतनी ही विनती है मेरी
इतना ही अनुरोध, हरे !
क्या ज्ञानापमान करती हूँ
कर न बैठना क्रोध, हरे !
भूले तेरा ध्यान राधिका
तो लेना तू शोध, हरे !

× × ×

झुक वह वाम कपोल चूम ले
यह दक्षिण अवतंस, हरे !
मेरा लोक आज इस लय में
हो जावे विध्वंस, हरे !
रहा सहारा इस अंधी का
बस यह उन्नत अंस, हरे !
मग्न अथाह प्रेमसागर में
मेरा मानसहंस, हरे !

इसी प्रकार कृष्ण के जीवनसम्बन्धी जिन उदात्त अंशों की अभिव्यक्ति हमारी कला में पिछले एक हजार वर्षों में नहीं सी हुई है उसका भी बड़ा सुन्दर अङ्कन गुप्तजी ने अपने द्वापर में निरन्तर किया है।

हमें पूर्ण आशा है कि कृष्णचरित्र के इस रुख की [illegible] आरम्भ एक लंबे युग का [illegible]

गोवर्द्धन धारण पृ० ७३१

गीताधर्म प्रेस, साक्षीविनायक, काशी

कृष्णविज्ञान

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र

(ले०—श्री गौरीलाल पाठक, जयपुर)

हर एक नाम में विज्ञान रहता है। यह विज्ञान उसके अर्थ से प्रकट होता है। इसलिये शब्द के साथ अर्थ जाने बिना काम नहीं चलता। शब्द और अर्थ एक दूसरे से भिन्न नहीं है—जैसे जल से जल की लहर भिन्न नहीं है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने इसी उक्ति को कितने अच्छे शब्दों में कहा है—

'गिरा अर्थ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।'

कविकुल शिरोमणि कालिदास ने भी शब्द और अर्थ की एकता बतलाई है—

'वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये'

—रघुवंश १।१

शब्द और अर्थ असल में एक हैं। इस एकत्व [illegible] पद, का नाम ब्रह्म है। इसलिये प्रत्येक [illegible] ब्रह्म [illegible] एक सूत्र में बांध एक का नाम शब्दब्रह्म है [illegible] व्यास ने उसी को आनन्दमय ऊपर जिस एक [illegible] और भक्तों के सामने उसे श्रीमद्भा- भी कहते हैं। [illegible] में रखा।

वाक् से शब्द [illegible] वाद का प्रतिपादक ऋग्वेद का मन्त्र है—

सरस्वती वाक् [illegible] इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।

शब्द को [illegible] बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

जानने के लिये [illegible] ता एक ही है, जानकार लोग उसी एक को बिना जाने [illegible] द्र, मित्र, वरुण, वायु, यम आदि नामों मनु भगवान् का [illegible]। का बिना अर्थ स [illegible] त के जितने पात्र हैं वे सबके सब इन्हीं है बुझी हुई अग्नि [illegible] ग हैं, आधिदैविक और आध्यात्मिक

प्रत्येक नाम का अपना एक अर्थ होता है। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र का भी अपना एक अर्थ है। इस अर्थ को समझ लेने पर मनुष्य इस नाम के आधार से ही अपने समस्त पापों को नष्ट कर देता है, निष्पाप हो जाता है। यही मुक्ति है।

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र में तीन शब्द हैं। वैदिक विज्ञान के अनुसार ये तीनों शब्द रहस्यपूर्ण हैं, गम्भीर अर्थवाले हैं।

मनुष्य क्या; प्रत्येक प्राणी भगवान् का ही अंश है। 'ईश्वरअंश जीव अबिनासी'—[illegible] माया इस अंश पर परदा डाले रहती है, [illegible] त भर [illegible] की [illegible] छिपी रहती है। बुद्धियें [illegible] लिखने का शीघ्र ही प्रयत्न किया जा [illegible] यगा। [illegible] क पाठकों को उनके एकात्मवाद की जानकारी के लिये प्रस्थानत्रयी को पढ़ लेना चाहिए। प्रस्थानत्रयी में उपनिषद् (श्रुति), श्रीमद्भगवद्गीता (स्मृति) और वेदान्तदर्शन आते हैं। इन तीनों के ही हिन्दी अनुवाद हो चुके हैं। वेदान्तदर्शन का एक सुन्दर हिन्दी अनुवाद वेदान्त के मर्मज्ञ विद्वान् श्री भोले बाबाजी ने किया है। यह ग्रन्थ अच्युतग्रन्थमाला काशी से श्री गौरीशङ्कर गोयनकाजी द्वारा प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त शेष का अनुवाद भी हिन्दी में छप चुका है। जिज्ञासु पाठकों को एकात्मवाद समझने के लिये इनको अवश्य पढ़ना चाहिए। कृष्ण के जीवन में एकात्मवाद इनके पढ़ने पर ही समझ में आ सकेगा। यह एकात्मवाद ही कृष्ण का मत था, व्यास का मत था।

प्रकार की शक्तियां रहती हैं। इस षड्विध शक्ति का नाम भग है।

> ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
> ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥
>
> —विष्णुपुराण ६।५।७४.

सांख्यशास्त्र में वैराग्य, ज्ञान, ऐश्वर्य और धर्म ये चार विद्याबुद्धि कही गई हैं। उस अव्यय के विद्या और कर्म दो भागों में जो विद्याभाग है उसी का नाम बुद्धियोग है। विद्या के कर्मभाग से पाप्मा बनता है। यही आत्मा को ढकने का, उसे जीव बनाने का परदा है। विद्या के ज्ञानभाग से—जिसे बुद्धियोग कहते हैं—इस पाप्मा को दूर किया जाता है, परदे को हटाया जाता है। यह पाप्मा राग-द्वेष, अज्ञान, अस्मिता, अभिनिवेश आदि का गुट्ट है। इनमें से प्रत्येक को वैराग्य, ज्ञान, ऐश्वर्य, धर्म आदि से हटाया ज[illegible]। तब भग नामक शक्ति प्रकट [illegible]आत्मसाक्षात्कर्ता भगवान्

गोवर्द्धन धारण पृ० ७३१

> "हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
> तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम्" ॥
>
> यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाऽभिस्वरन्ति।
> इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः समाधीरः पाकमत्रा विवेश
> यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधिविश्वे।
> तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद् यः पितरं न वेद॥
>
> (ऋक्सं०, मं० १। सू० १६४। ऋ० २१-७)

सूर्य से ऊपर अमृत और नीचे मर्त्य हैं। सूर्यरश्मियाँ अमृतात्मा के आत्मभाग को प्राप्त होकर विज्ञानरूप से मिल जाती हैं। विज्ञानसम्पन्न सूर्य यहाँ पृथिवीलोक में बुद्धिरूप से प्रवेश करता है। अतः सूर्य **विज्ञानात्मा** कहलाता है। इसी अभिप्राय को लेकर श्रुति कहती है—

> "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च"

सूर्य से उत्पन्न अमृत और मर्त्यरूप विज्ञानात्मा के आठ बुद्धिस्वरूप होते हैं। जहाँ तक अमृत है तहाँ तक विद्याबुद्धि है—ये चार हैं जिन्हें पहले लिखा जा चुका है।

वर्षों में[illegible] [illegible]द्विशेषों में भग शब्द निरूढ़ है। गुप्तजी ने अपने द्वापर में [illegible] [illegible] अविद्याबुद्धि है, उनमें हमें पूर्ण आशा है कि कृष्ण[illegible] [illegible]सायात्मिका बुद्धि [illegible] आरम्भ [illegible], इससे विद्या- [illegible] नहीं होती। [illegible] व्यामोह को [illegible] जो विद्याबुद्धि [illegible] अव्ययात्मा को [illegible] से कहे जाते हैं। जो स्वयं [illegible]भी आनन्दयुक्त [illegible] प्रकाश होने से

सम्पूर्ण जन्म प्रत्यक्ष कर लेता है। इसलिये कहा जाता है—

"उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामगतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥"
विष्णुपुराण।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का पहला शब्द हो गया। अब कृष्णशब्द का अर्थ समझिए—

कृष्णशब्द नवधा विभक्त है—ये नौ कृष्ण एक सत्यकृष्ण के ही भेद हैं—

"सत्यकृष्ण, ईश्वरकृष्ण, ज्योतिःकृष्ण, यज्ञकृष्ण, परमेष्ठिकृष्ण, सौरकृष्ण, चान्द्रकृष्ण, पार्थिवकृष्ण, मानुषकृष्ण"

ऊपर गिनाए गए नौ कृष्ण नौ नहीं, एक सत्यकृष्ण के ही नौ रूप हैं। ये सत्यकृष्ण पुराण की भाषा में सत्यनारायण कहलाते हैं। इन नौ कृष्णों में एक ही सत्य तत्त्व है, कार्यभेद से यह एक ही तत्त्व नौ रूप से हमारे सामने आया है। पुराणों में इनकी लीला का इसी रूप में वर्णन मिलता है। और लीला के अनुसार ही उनका नामकरण हुआ है। यथा—

न बद,

१—सत्यकृष्ण की अपेक्षा से उन्हें एक सूत्र में बांध सर्वजगदात्मा, हृ[illegible] व्यास ने उसी को आनन्दमय

२—ईश्वरकृष्ण की [illegible] और भक्तों के सामने उसे श्रीमद्भा- विश्वरूप में रखा।

३—ज्योतिः[illegible]वाद का प्रतिपादक ऋग्वेद का मन्त्र है—
कृष्णवर्ण[illegible]मग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।

४—यज्ञकृष्ण[illegible]हुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
विष्णु क[illegible]ा एक ही है, जानकार लोग उसी एक

५—परमेष्ठिकृ[illegible], मित्र, वरुण, वायु, यम आदि नामों
नारायण, [illegible]
गोवर्द्धनगि[illegible]

[illegible]भारत के जितने पात्र हैं वे सबके सब इन्हीं यशोदान[illegible] के अंश हैं, आधिदैविक और आध्यात्मिक

६—सौरकृष्ण की अपेक्षा से उन्हें—

गो-ब्राह्मणप्रतिपालक, गोचारणवृत्तिवाले, पीताम्बरधारी, असुरविनाशक आदि कहा जाता है।

७—चान्द्रकृष्ण की अपेक्षा से उन्हें—

रासविहारी, राधाप्राण, समुद्रवासी, परमसुन्दर कहा जाता है।

८—पार्थिवकृष्ण की अपेक्षा से उन्हें—

विश्वम्भर, गिरिधर आदि कहा जाता है।

९—मानुषकृष्ण की अपेक्षा से उन्हें—

दामोदर, केशव, पुण्डरीकाक्ष, कंसारि कहा जाता है॥।

इसी प्रकार मानुषकृष्ण के धर्म भी उनमें पाए जाते हैं। लोकसाक्षी होने के कारण मानुषकृष्ण सत्यावतार माने ही जाते हैं। और भी—

एते वै त्रयो लोकाः पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः, इति।
अस्ति वै चतुर्थो देवलोक[illegible]त भर इति॥ है।

[illegible] लिखने का शीघ्र ही प्रयत्न

यहाँ [illegible]यगा। [illegible]कृष्ण के [illegible]क पाठकों को उनके एकात्मवाद की जानकारी के लिये प्रस्थानत्रयी को पढ़ लेना चाहिए। प्रस्थानत्रयी में उपनिषद् (श्रुति), श्रीमद्भगवद्गीता (स्मृति) और वेदान्तदर्शन आते हैं। इन तीनों के ही हिन्दी अनुवाद हो चुके हैं। वेदान्तदर्शन का एक सुन्दर हिन्दी अनुवाद वेदान्त के मर्मज्ञ विद्वान् श्री भोले बाबाजी ने किया है। यह ग्रन्थ अच्युतग्रन्थमाला काशी से श्री गौरीशङ्कर गोयनकाजी द्वारा प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त शेष का अनुवाद भी हिन्दी में छप चुका है। जिज्ञासु पाठकों को एकात्मवाद समझने के लिये इनको अवश्य पढ़ना चाहिए। कृष्ण के जीवन में एकात्मवाद इनके पढ़ने पर ही समझ में आ सकेगा। यह एकात्मवाद ही कृष्ण का मत था, व्यास का मत था।

श्री कृष्णचन्द्र मानुषकृष्ण कहलाते थे। 'पार्थिवात् आद्यः' कहे जाने के कारण उन्होंने सार्वभौम यश प्राप्त किया, जो अब तक भूमण्डल पर व्याप्त है और रहेगा। वे शरीराग्नि के अत्यन्त प्रदीप्त होने के कारण निरामय (व्याधिरहित) थे।

अब तीसरा शब्द है चन्द्र—मनोमय चान्द्रकृष्ण की अपेक्षा से मानुषकृष्ण पूर्ण रूप से हृदयहारी, निरतिशय, मनोरम—सुन्दर थे। कालयवन, जरासन्ध, शिशुपाल, कंस आदि इनके प्रियदर्शन थे। शत्रुमित्रउदासीनरहित होने के कारण सभी के प्रिय थे। चन्द्रमा के चञ्चल होने के कारण भगवान् कृष्ण भी चञ्चल थे, कृष्णचन्द्रकृतात्मत्व होने से इनका नाम कृष्णचन्द्र है।

ब्रह्मा कृष्णश्चनोऽवतु (यजु० २३।१३), चन्द्रमा वै ब्रह्माकृष्णः (शतपथ, १३।२।१।७) आदि श्रुति-से...माणों से ... का कृष्ण होना सिद्ध है।

...और अधिदैव पक्ष के सर्वाराध्य भगवान् अच्युत श्री कृष्ण के समान हैं। ईश्वर हैं। जिस प्रकार ईश्वर के शरीर में पाँच विश्व—पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, परमेष्ठी और स्वयम्भू हैं, उसी प्रकार भौतिक—मानुषकृष्ण में भी पाँच विश्व हैं। भगवती कठश्रुति के अनुसार—

> इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
> मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥
> महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः।
> पुरुषान्नपरं किंचित् सा काष्ठा सा परा गतिः॥
> कठ०, ३।१०-११.

अव्यक्तात्मा, महानात्मा, विज्ञानात्मा, प्रज्ञानात्मा तथा भूतात्मा ही स्वयम्भू, परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्र तथा पृथिवी के प्रतिनिधि होकर जीव में रहते हैं। अतएव इन पाँचों विश्वप्रतिनिधियों के कृष्ण में रहने से उनका ईश्वरत्व भी सिद्ध हो जाता है। इसी वास्तविक भाव से उनकी जानकारी भगवान् कृष्णचन्द्र की सच्ची जानकारी है।
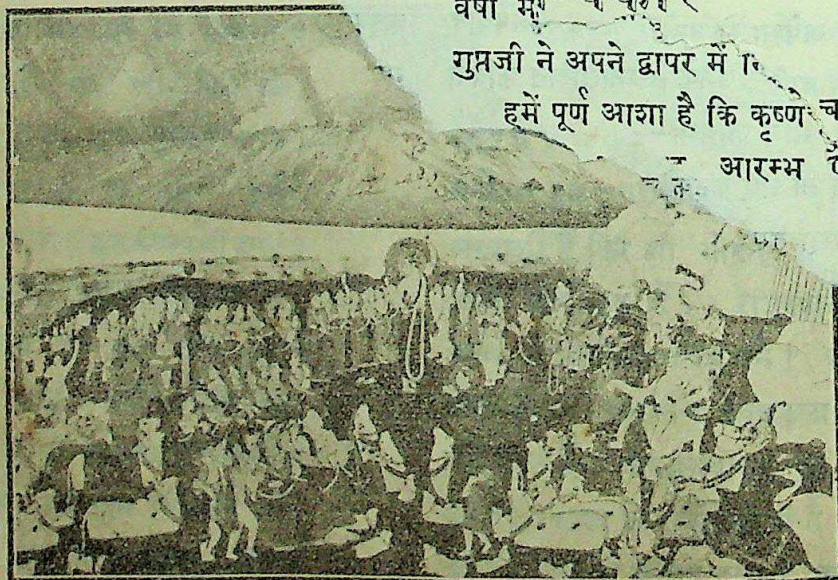
...अन्धकार

वर्षों में...

गुप्तजी ने अपने द्वापर में ...

हमें पूर्ण आशा है कि कृष्ण... चारों ओर अन्धकार ... आरम्भ ... का काम है। घूरे ... त पाइयाँ। ...गों के कारण ...ानो। ...और अनजान में ...। उसी दिन ... के चारों ओर ...भी ... सच बात ... प्रकाश

गोवर्द्धन धारण पृ० ७३१ गीताधर्म प्रेस, ...

कृष्ण का मत

(ले०—विट्ठल शर्मा चतुर्वेदी)

व्यासाङ्क में महर्षि व्यास के सम्बन्ध की प्रधान प्रधान बातों का उल्लेख किया है। उसमें मैं उनके सिद्धान्तों को नहीं बतला सका, परंतु इतना संकेत अवश्य कर दिया था कि व्यास के सिद्धान्तानुकूल ही कृष्णचरित्र है। कृष्णचरित्र की आलोचना करने पर यह सिद्ध भी हो जाता है।

महर्षि व्यास ने वेदों का विभाग किया, पुराणों का सम्पादन किया और वेदान्तसूत्र तथा महाभारत का प्रणयन। उनके बनाए हुए महाभारत में उनके सिद्धान्तों ने आकार धारण किया है। वे हमारे सामने आते हैं, अपना रूप बतलाते हैं और फिर अदृश्य हो जाते हैं।

महाभारत में जिन सिद्धान्तों का समावेश है उनका मूलरूप श्रीमद्भगवद्गीता है। इसके प्रणेता स्वयं व्यास हैं; और प्रवचनकर्ता कृष्ण।

एकात्मवाद की जो धारा वेद से प्रवाहित हुई, वेदान्तसूत्र में उसी का प्रतिपादन हुआ। महाभारत में उसी का दर्शन कराया गया। गीता ने वेद, वेदान्तसूत्र और महाभारत को एक सूत्र में बांध दिया। आगे जाकर व्यास ने उसी को आनन्दमय रूप देकर जनता और भक्तों के सामने उसे श्रीमद्भागवत के रूप में रखा।

एकात्मवाद का प्रतिपादक ऋग्वेद का मन्त्र है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

वह देवता एक ही है, जानकार लोग उसी एक देवता को इन्द्र, मित्र, वरुण, वायु, यम आदि नामों से पुकारते हैं।

महाभारत के जितने पात्र हैं वे सबके सब इन्हीं देवताओं के अंश हैं, आधिदैविक और आध्यात्मिक अर्थ में आत्मा की विभिन्न शक्तियों—देवताओं के विभिन्न कार्यों का दर्शन कराते हैं, उन्हें समझाते हैं। गीता के विभूतिप्रकरण और विश्वरूपदर्शन में इसी बात को सांकेतिक रूप से बतलाया गया है। वेदान्तसूत्र ने इसी बात को समझाने के लिये तर्क का आश्रय लिया है। श्रीमद्भागवत में सब को पुनः एक में मिला दिया गया है। यही एकात्मवाद कृष्ण के जीवन में आया है। व्यास ने उनके जीवन द्वारा यह बतला दिया है कि इस एकात्मवाद को जगत् में कैसे प्रत्यक्ष किया जा सकता है, आचरण में कैसे लाया जा सकता है।

एकात्मवाद के सिद्धान्तों के साथ कृष्ण के जीवन का मिलान यदि किया जाय तो एक पूरी पुस्तक ही बन जायगी, इस लेख में उसका होना कठिन है इसीलिये इसका संकेत भर कर दिया है। हाँ, इस प्रकार की पुस्तक लिखने का शीघ्र ही प्रयत्न किया जायगा। तब तक पाठकों को उनके एकात्मवाद की जानकारी के लिये प्रस्थानत्रयी को पढ़ लेना चाहिए। प्रस्थानत्रयी में उपनिषद् (श्रुति), श्रीमद्भगवद्गीता (स्मृति) और वेदान्तदर्शन आते हैं। इन तीनों के ही हिन्दी अनुवाद हो चुके हैं। वेदान्तदर्शन का एक सुन्दर हिन्दी अनुवाद वेदान्त के मर्मज्ञ विद्वान् श्री भोले बाबाजी ने किया है। यह ग्रन्थ अच्युतग्रन्थमाला काशी से श्री गौरीशङ्कर गोयनकाजी द्वारा प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त शेष का अनुवाद भी हिन्दी में छप चुका है। जिज्ञासु पाठकों को एकात्मवाद समझने के लिये इनको अवश्य पढ़ना चाहिए। कृष्ण के जीवन में एकात्मवाद इनके पढ़ने पर ही समझ में आ सकेगा। यह एकात्मवाद ही कृष्ण का मत था, व्यास का मत था।

फारसी और उर्दूसाहित्य में भगवान्

श्री कृष्ण

(ले०—श्री देवीनारायण जी बी० ए०, एल-एल० बी० विद्यासागर (काशी), मुंशी (इलाहाबाद), एडवोकेट, बनारस)

इस भारतभूमि में भगवान् श्री कृष्ण का अवतार अत्यन्त विलक्षण, प्रभावशाली और अद्भुत हुआ। श्री कृष्णजी की प्रेममयी बांसुरी ने कौन ऐसा भारतवासी है, जिसका हृदय मुग्ध न कर लिया हो। मुंशी तिलोकनाथ साहब ने सच कहा है।

"मुहताज उसी निगाह के ऐ कृष्ण ! हम भी हैं।
बेदिल भी मुज़तरब भी हैं, पामाल ग़म भी हैं ॥"

तेज़ कृष्णनंबर

क्या सुन्दर प्रेममयी वाणी सैय्यद अली नक़ी साहब की है

"क्या घटायें उठी हैं श्याम बरन।
अब तो हूँ शाकिआ तेरे दरशन ॥
आँसुओं का मोहाल है थमना।
यहीं गङ्गा यहीं पै हैं जमुना ॥
पुतलियां रह गई हैं पथरा के।
जैसे ठाकुरद्वारे मथुरा के ॥
इश्क़ में तज दिया है सब तन मन।
दिल वीरान बना है वृन्दावन ॥"

तेज़ कृष्णनंबर

महाराजा सर किशुनप्रसाद साहब माननीय दीवान हैदराबाद (दक्षिण) कृष्ण के अनन्य भक्त हैं और भारत के मार्मिक कवि और विद्वान् हैं, वे कहते हैं।

"कृष्ण कन्हैया राजदुलारे
सीस नवाऊं तोरे द्वारे। दो जग के ओ पालनहारे।
बिगड़े काम बनाये सारे। मनमोहन हैं सब के प्यारे ॥
कृष्ण कन्हैया राजदुलारे।
पीत लगाके मुंह को छिपाया। तौर यह तेरा सबको भाया।
एक आलम के दिलको लुभाया। तन मन धन सब तुझपर वारे ॥
कृष्ण कन्हैया राजदुलारे।"

तेज़ कृष्णनंबर

काशी के फारसी, अरबी आदि भाषाओं के प्रसिद्ध विद्वान् मौलाना हाफिज़ बशीर उद्दीन अहमद फरमाते हैं।

"जनम अष्टमी से हैं वाक़िफ़ सभी।
वेलादत किशुनजी की इसमें हुई ॥
हैं इस रोज़ की याद रखते वफ़ा।
के करते हैं उस रोज़ दान और कथा ॥
मगर क्या किशुनजी का आख़िर था योग।
तो इससे तो वाक़िफ़ नहीं आम लोग ॥
रसूले ख़ुदा थे वह यारो ! अयां।
न मानो मेरी बात देखो क़ुरां ॥
नबी हैं जो एक लाख चंदी हज़ार।
थे उनमें किशुनजी भी एक नामदार ॥
दरूदे ख़ुदा उनके ऊपर मुदाम।
शबो–रोज़ होता बरोज़े क़याम ॥
ख़ुदा के फेरसतादः आये थे यां।
बसा उनकी बरकत से हिंदोस्तान ॥
कलाम उनका वहये ख़ुदावे गुमां।
बहुत लोग ईमान लाये यहाँ ॥
मुसलमान हैं जानते इतनी बात।
मोहम्मद की है याद बारह वफ़ात ॥

प्राप्तिस्वीकार

गीता प्रेस गोरखपुर ने अपने यहाँ की प्रकाशित निम्न पुस्तकें हमारे पास भेजी हैं।

क्रम	पुस्तक	मूल्य
१	योगांक—कल्याण मासिक पत्र	३।।)
२	कठोपनिषद्	।।–)
३	भगवत्रत्न प्रह्लाद	१)
४	एकनाथचरित्र	।।)
५	तुकारामचरित्र	१≡)
६	शतश्लोकी	=)
७	प्रेमी भक्त	।–)
८	हरेराम भजनमाला	)।।।
९	आदर्श भक्त	।–)
१०	गीतोक्त सांख्ययोग निष्कामकर्म	–)।।
११	प्रेमदर्शन	।–)
१२	गीतानिबंधावली	=)।।
१३	भक्तकुसुम	।–)
१४	मननमाला	=)।।
१५	योरोप की भक्त स्त्री	।)
१६	भक्तभारती	।≡)
१७	उपनिषदों के चौदह रत्न	।=)
१८	तत्त्वचिंतामणि (१)	।।=)
१९	” (२)	।।।=)
२०	प्रेमयोग	१।)
२१	चैतन्यचरितावली (१)	।।।=)
२२	” (२)	१=)
२३	” (३)	१)
२४	” (४)	।।=)
२५	” (५)	।।।)
२६	देवर्षि नारद	।।।)
२७	ज्ञानयोग	।)
२८	व्रज की झाँकी	।)
२९	स्तोत्ररत्नावली	।।)
३०	शरणागतिरहस्य	।।≡)
३१	The Immanence of God	=)
३२	श्रुतिरत्नावली	।।)
३३	नैवेद्य	।।=)
३४	माता	।)
३५	वेदांतछंदावली	=)।।
३६	साधनपथ	=)
३७	मनुस्मृति दूसरा अध्याय	–)।।
३८	ब्रह्मचर्य	–)
३९	चित्रकूट की झाँकी	=)
४०	स्त्रीधर्मप्रश्नोत्तरी	=)
४१	प्रेमभक्तिप्रकाश	–)
४२	त्याग से भगवत्प्राप्ति	–)
४३	भगवान् क्या हैं	–)
४४	हनुमानबाहुक	–)।।
४५	ईश्वर	–)।
४६	परमार्थपत्रावली	।)
४७	सच्चा सुख और उसकी प्राप्ति के उपाय	–)।।
४८	भक्तचंद्रिका	।–)
४९	विवेक चूड़ामणि	।≡)
५०	दिनचर्या	।।)
५१	मुमुक्षुसर्वस्व	।।।–)
५२	प्रबोधसुधाकर	≡)।।
५३	मानवधर्म	≡)
५४	मन को वश में करने का उपाय	–)।

५५ भक्तनारी ।−)
५६ भक्तसप्तरत्न ।−)
५७ तुलसीदल ॥)
५८ ज्ञानेश्वरचरित्र ॥।−)
५९ श्री कृष्णविज्ञान १)
६० एक संत का अनुभव −)
६१ समाजसुधार −)
६२ मूल गोसाईं चरित्र −)।
६३ आचार्य के सदुपदेश −)
६४ भक्तपंचरत्न ।−)
६५ भक्तबालक ।−)
६६ सप्तमहाव्रत −)
६७ अपरोक्षानुभूति =)॥
६८ श्री गोविंददामोदरस्तोत्र −)॥
६९ आनंद की लहरें −)॥
७० सप्तश्लोकी गीता)।
७१ विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्)॥।
७२ श्रीमद्भागवत् और विष्णुसहस्रनाम)॥
७३ श्री पातंजल योगदर्शन)।
७४ श्री रामगीता सटीक)॥।
७५ कल्याणभावना)।
७६ श्रीमद्भगवद्गीता दूसरा अध्याय)।
७७ गजलगीता)=
७८ सेवाधर्म)॥
७९ श्रीमद्भगवद्गीता का सूक्ष्म विषय −)।
८० लोभ में पाप)=
८१ प्रश्नोत्तरी)॥
८२ दिव्य संदेश)।
८३ धर्म क्या है)।
८४ संध्याप्रारंभ −)॥
८५ महात्मा किसे कहते हैं)।
८६ ईश्वरदयालु और न्यायकारी है)।
८७ सीतारामभजनमाला)॥
८८ भजनसंग्रह (५) =)
८९ मुंडकोपनिषद् ।≡)
९० ईशावास्योपनिषद् ≡)
९१ विष्णुपुराण २॥)
९२ अध्यात्मरामायण १॥।)
९३ श्रीमद्भगवद्गीता सटीक ॥।=)
९४ श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य २॥)

अन्य प्रकाशकों और लेखकों की पुस्तकें जो प्राप्त हुई हैं।

तत्त्वोन्मेष—ले० श्यामानंद ब्रह्मचारी, प्रकाशक श्री पद्मरानी देवी वरनाइज बनारस ।)

तत्त्वदर्शन—ले० श्यामानंद ब्रह्मचारी-ग्रंथकर्ता शिवाला-घाट बनारस सिटी ?)

Truth Revealed by Syamanand Brahmachari, The auther shivala Ghat Benares City Rs. 2/-/

The Soul Problem and Maya Rs. 1/8/-

Self Realisation „ „ Rs. 2/8/-

रामचरितमानस—टी० पं० रामनरेश त्रिपाठी हिंदी-मंदिर, प्रयाग विशेष विवरण विज्ञापन में देखिए ५)

भागवतांक—श्रेय मासिक पत्र वृंदावन १॥≡)

वाममार्ग—लेखक और प्रकाशक श्री वंशीधर शुकुल वैद्यराज, तंत्रशास्त्री, नई सड़क, कानपुर ॥)

तुलसी—लेखक श्री केदारनाथ पाठक रासायनिक-प्रकाशक पाठक आयुर्वेदिक फार्मेसी ३६/३८ अगस्तकुंडा बनारस सिटी ?)

समालोचना

१—प्राप्तिस्वीकार हम उन पुस्तक-पुस्तिकाओं का करते हैं जिनकी केवल एक प्रति आती है।

२—परिचय तथा **आलोचना** हम उन्हीं पुस्तकों की करते हैं जिनकी दो प्रतियाँ प्राप्त होती हैं।

× × ×

३—विशेष सुविधा—जिन पुस्तकों की दो प्रतियाँ हमें मिल रही हैं, उनकी अलग आलोचना कराकर काशी की प्रसिद्ध तुलसीमीमांसापरिषद् द्वारा हम एक स्वतन्त्र पत्रिका में छापेंगे। यह काम महीनों में स्वाध्याय के क्रमानुसार होगा। इसकी हिंदीसंसार और प्रकाशकों को बड़ी आवश्यकता है। अच्छे लेखकों का प्रोत्साहन देना हमारा कर्तव्य है।

(१) दुलारे दोहावली (गङ्गापुस्तकमालाका एक सौ इक्कावनवाँ पुष्प)—लेखक तथा प्रकाशक श्री दुलारेलाल भार्गव 'सुधा' संपादक; मिलने का पता गङ्गाग्रन्थागार ३०, अमीनाबादपार्क, लखनऊ; पृष्ठसंख्या १५२, आकार डबल क्राउन १६ पेजी, छपाई-सफाई और कागज अच्छा; मूल्य सजिल्द १) अजिल्द ॥)

इस ग्रन्थ पर सर्वप्रथम देवपुरस्कार मिल चुका है, इतना ही परिचय बहुत है।

(२) ख़ाँजहाँ—(गङ्गापुस्तकमाला का तीसरा पुष्प)—ले० बंगला के सुप्रसिद्ध नाटककार श्री क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद; **रूपान्तरकार हिंदी के लेखक** माधुरीसम्पादक पं० रूपनारायण पाण्डेय; प्रकाशक गङ्गापुस्तकमाला कार्यालय, २९।३०, अमीनाबादपार्क, लखनऊ; पृष्ठसंख्या १७५, आकार डबल क्राउन १६पेजी, एन्टिक कागज पर छपी अजिल्द का मूल्य १=) सजिल्द १॥=)

प्रस्तुत पुस्तक मूल लेखक बंगला के सुप्रसिद्ध नाटककार श्री क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद महाशय के ख़ाँजहाँ नामक नाटक के आधार पर हिंदी रङ्गमञ्च के योग्य लिखी गई है। विषय ऐतिहासिक है। लेखक को अपने प्रयास में सफलता मिली है। पर आजकल के रङ्गमञ्च के लिये इसमें काट-छाँट हो सकती है।

(३) मञ्जरी—(गङ्गापुस्तकमाला का उन्नीसवाँ पुष्प) रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि बंगला के प्रसिद्ध लेखकों के दस गल्पों का सङ्ग्रह; सङ्ग्रहकर्त्ता तथा अनुवादक पं० रूपनारायण पाण्डेय कविरत्न; सम्पादक श्री दुलारेलाल भार्गव; प्रकाशकगङ्गापुस्तकमाला कार्यालय, २९।३० अमीनाबादपार्क, लखनऊ; पृष्ठ-संख्या २५६, आकार डबल क्राउन १६ पेजी; एन्टिक कागज पर छपी अजिल्द का मूल्य १।) सजिल्द १॥।)

गल्पों का चुनाव अच्छा हुआ है।

(४) चित्रशाला—(गङ्गापुस्तकमाला का सत्ताईसवाँ पुष्प) लेखक-विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक; सम्पादक श्री दुलारेलाल भार्गव 'सुधा' सम्पादक; प्रकाशक, गङ्गापुस्तकमाला कार्यालय, २९।३०, अमीनाबादपार्क, लखनऊ; पृष्ठसंख्या ३८४, आकार डबल क्राउन १६ पेजी एन्टिक कागज पर छपी सजिल्द का मूल्य २॥।) अजिल्द २।)

कौशिकजी की लिखी हुई कहानियों का सुन्दर सङ्ग्रह है, सङ्ग्रहकर्त्ता श्री दुलारेलाल भार्गव हैं। पुस्तक सङ्ग्रहणीय तथा उपादेय है।

(५) रतिरानी—(गङ्गापुस्तकमाला का सताईसवाँ पुष्प) लेखक—रसिकत्रय; सम्पादक श्री दुलारेलाल भार्गव 'सुधा' सम्पादक; प्रकाशक गङ्गापुस्तकमाला कार्यालय २९।३०, अमीनाबादपार्क, लखनऊ; पृष्ठसंख्या २५४, आकार डबल क्राऊन १६ पेजी, एन्टिक कागज, छपाई उत्तम; मूल्य अजिल्द १॥।) सजिल्द २।)

यह पुस्तक साहित्यसेवियों के लिये उत्तम तथा सङ्ग्रहणीय है। पुस्तक के आरम्भ में लिखी हुई भूमिका मनन योग्य है।

(६) भारत में बाइबिल प्रथम व द्वितीयभाग-(गङ्गापुस्तकमाला का पचहत्तरवाँ व छिहत्तरवाँ पुष्प) ले०—श्री जकालियट; अनुवादक सन्तराम बी० ए०; सम्पादक श्री दुलारेलाल भार्गव, 'सुधा' सम्पादक; प्रकाशक गङ्गापुस्तकमाला कार्यालय २९।३०, अमीनाबादपार्क; लखनऊ, पृष्ठसंख्या ४९० के लगभग, आकार डबल क्राउन १६ पेजी एन्टिक कागज पर छपी सादी का मूल्य ३) सजिल्द ४)—दोनों का।

प्रस्तुत पुस्तक प्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान् तथा भूतपूर्व चीफ जस्टिस श्री जकालियट की कृति है। यह पुस्तक क्या है प्राचीन आर्यसभ्यता का सजीव तथा तुलनात्मक चित्रण है। अनुवाद भी अच्छा हुआ है। प्रत्येक स्वदेशाभिमानी को यह पुस्तक अवश्य रखनी चाहिए।

(७) सौन्दरानन्द महाकाव्य—(गङ्गापुस्तकमाला का उन्नासीवाँ पुष्प)—ले० संस्कृत के प्रसिद्ध बौद्ध महाकवि अश्वघोष; अनुवादक पं० रामाधीन पाण्डेय एम० ए०, बी० एल्; सम्पादक श्री दुलारेलाल भार्गव 'सुधा' सम्पादक; प्रकाशक गङ्गापुस्तकमाला कार्यालय २९।३०, अमीनाबादपार्क; लखनऊ, पृष्ठसङ्ख्या ९० आकार डबल क्राउन १६ पेजी, एन्टिक कागज पर छपी अजिल्द का मूल्य ।।) सजिल्द १)

संस्कृत से अनभिज्ञ लोग भी इस पुस्तक को पढ़कर, सौन्दरानन्द महाकाव्य का रसास्वादन कर सकते हैं।

(८) भारतगीत—(गङ्गापुस्तकमाला का छठा पुष्प) ले०—श्रीधर पाठक; सम्पादक श्री दुलारेलाल भार्गव, 'सुधा' सम्पादक, प्रकाशक-गङ्गापुस्तकमाला कार्यालय २९।३०, अमीनाबादपार्क; लखनऊ, पृष्ठसंख्या १०२, आकार डबल क्राउन १६ पेजी, एन्टिक कागज पर छपी सादी का मूल्य ।।।=) सजिल्द १।=)

राष्ट्रीय तथा ग्राम्य आदि तरह-तरह की गीतों का सङ्ग्रह है। प्रत्येक के लिये उपयोगी है।

(९) उषा—(गङ्गापुस्तकमाला का इक्यावनवाँ पुष्प) ले०—शिवदास गुप्त 'कुसुम'; सम्पादक श्री दुलारेलाल भार्गव 'सुधा' सम्पादक; प्रकाशक गङ्गापुस्तकमाला कार्यालय २९।३०, अमीनाबादपार्क; लखनऊ, पृष्ठसङ्ख्या ६७, आकार डबल क्राउन १६ पेजी; एन्टिक कागज छः एक रंगे चित्रों से सुसज्जित अजिल्द का मूल्य ।।)

उषा-अनिरुद्ध के प्रेम का खण्डकाव्य।

(१०) एशिया में प्रभात—(गङ्गापुस्तकमाला का चौंतीसवाँ पुष्प) ले०—फ्रान्स के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् पाल रिचार्ड; अनुवादक ठाकुर कल्याणसिंह शेखावत बी० ए०; सम्पादक श्री दुलारेलाल भार्गव 'सुधा' सम्पादक; प्रकाशक-गङ्गापुस्तकमाला कार्यालय २९।३०, अमीनाबादपार्क; लखनऊ, पृष्ठसङ्ख्या ८८, आकार डबल क्राउन १६ पेजी; एन्टिक कागज पर छपी अजिल्द का मूल्य ।।) सजिल्द १)

(११) कृष्णकुमारी—(गङ्गापुस्तकमाला का तेइसवाँ पुष्प) ले०—वङ्गभाषा के कविसम्राट् श्री माइकेल मधुसूदनदत्त; अनुवादक पं० रूपनारायण पाण्डेय कविरत्न; सम्पादक श्री दुलारेलाल भार्गव 'सुधा' सम्पादक; प्रकाशक गङ्गापुस्तकमाला कार्यालय, २९।३०, अमीनाबादपार्क; लखनऊ, पृष्ठसङ्ख्या १४२, आकार डबल क्राउन १६ पेजी; एन्टिक कागज पर छपी, छपाई-सफाई अच्छी; मूल्य सादी १) सजिल्द १।)

प्रस्तुत पुस्तक वङ्गीय कविसम्राट् माइकेल मधुसूदनदत्त की लौह लेखनी से लिखित एक

ऐतिहासिक नाटक है। उदयपुर के राणा की राजकुमारी कृष्णकुमारी इसकी नायिका है। जयपुर और मारवाड़ के नरेश विवाह के लिये तैयार हैं। पिता असमञ्जस में पड़े हैं। राजकुमारी आत्महत्या द्वारा सारे खेल को समाप्त कर देती है। इसे कवि ने अपने इस नाटक में दर्शाया है। नाटकप्रेमियों के लिये पुस्तक उपादेय है।

(१२) विचित्र योगी—(गङ्गापुस्तकमाला का चौसठवाँ पुष्प) ले०—द्वारकाप्रसाद मौर्य बी० ए०, एल० एल० बी; सम्पादक श्री दुलारेलाल भार्गव 'सुधा' सम्पादक; प्रकाशक गङ्गापुस्तकमाला कार्यालय २९।३०, अमीनाबादपार्क; लखनऊ, पृष्ठसंख्या १६२, आकार डबल क्राउन १६ पेजी, एन्टिक कागज पर छपी पुस्तक का मूल्य अजिल्द १) सजिल्द १।।)

यह पुस्तक कहानियों का सुन्दर सङ्ग्रह है। कहानियाँ उच्च कोटि की और भावपूर्ण हैं।

(१३) आत्मार्पण (गङ्गापुस्तकमाला का चौदहवाँ पुष्प) ले०—द्वारकाप्रसाद गुप्त "रसिकेन्द्र"; सम्पादक श्री दुलारेलाल भार्गव, 'सुधा' सम्पादक; प्रकाशक गङ्गापुस्तकमाला कार्यालय २९।३०, अमीनाबादपार्क; लखनऊ, पृष्ठसंख्या ६१, आकार डबल क्राउन १६ पेजी, एन्टिक कागज पर छपी पुस्तक का मूल्य अजिल्द ।।।) सजिल्द १।), छपाई-सफाई उत्तम। २ तिरंगे और ४ एकरंगे चित्रों सहित।

यह एक ऐतिहासिकखण्डकाव्य है।

(१४) अचलायतन—(गङ्गापुस्तकमाला का पचासवाँ पुष्प) ले०—विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर; अनुवादक रूपनारायण पाण्डेय 'माधुरी' सम्पादक; सम्पादक श्री दुलारेलाल भार्गव 'सुधा' सम्पादक; प्रकाशक-गङ्गापुस्तकमालाकार्यालय २९।३०, अमीनाबादपार्क; लखनऊ, पृष्ठसंख्या ६०, आकार डबल क्राउन १६ पेजी, कागज़ एन्टिक अजिल्द ।।)

प्रस्तुत पुस्तक रवि बाबू द्वारा लिखे गए एक सामाजिक नाटक का अनुवाद है।

(१५) भवभूति—(गङ्गापुस्तकमाला का अड़तीसवाँ पुष्प) ले०—स्वर्गीय सतीशचन्द्र विद्याभूषण एम० ए०, पी० आर० एस; अनुवादक पं० ज्वालादत्त शर्मा; सम्पादक श्री दुलारेलाल भार्गव 'सुधा' सम्पादक; प्रकाशक—गङ्गापुस्तकमाला कार्यालय २९।३०, अमीनाबादपार्क; लखनऊ, आकार डबल क्राउन १६ पेजी, पृष्ठसंख्या १०३, एन्टिक कागज पर छपी अजिल्द ।।=)

(१६) मातृपदाञ्जली भा० टी० ले०—श्री ताराकुमार शर्मा; प्रकाशक गौरीशङ्कर गनेड़ीवाला गोरखपुर U. P. पृष्ठसंख्या १६ आकार डबल क्राउन १६ पेजी मूल्य -)

लेखक द्वारा बनाई हुई भगवतीदुर्गा की स्तुति है

(१७) शिवभक्तमाल (पूर्वार्द्ध) लेखक तथा प्रकाशक–गौरीशङ्कर गनेड़ीवाला, गोरखपुर; सम्पादक पं० अम्बिकादत्त उपाध्याय एम. ए., संशोधक पं० रामतेज पाण्डेय, साहित्यशास्त्री, पृष्ठसङ्ख्या २५०, आकार डबल क्राउन १६ पेजी, कागज-छपाई साधारण; शिव के एक एकरंगे चित्रसहित पुस्तक का मूल्य ।।-)

पुस्तक शिवभक्तों के काम की है। इसका एक सचित्र संस्करण भी निकला है, उसका मूल्य २) है।

(१८) शिवभक्तमाल (उत्तरार्द्ध) लेखक तथा प्रकाशक—वही मूल्य ।।)

पुस्तक शिवभक्तों के काम की है।

(१९) शिवपूजाविधान—सङ्ग्रहकर्त्ता गौरीशङ्कर गनेड़ीवाला गोरखपुर; संशोधक पं० रामतेज पाण्डेय 'साहित्य शास्त्री'; लेखक द्वारा प्रकाशित; पृष्ठसङ्ख्या ८०, मूल्य ।), प्रस्तुत पुस्तक शैव लोगों के काम की है। इसमें शिवजी की पूजा का विधान है।

(२०) शैवप्रमोद अर्थात् शिवभजनमाला—लेखक—पं० चन्द्रशेखर शुक्ल; प्रकाशक—गौरीशङ्कर गनेड़ीवाला, गोरखपुर; पृष्ठसंख्या ९८, ग्लेज कागज पर छपी पुस्तक का मूल्य ।-), छपाई-सफाई अच्छी; इस पुस्तक में शिवसम्बन्धी भजनों का सङ्ग्रह है।

(२१) काशीमोक्षनिर्णय—अनुवादक पं० अम्बिकादत्त उपाध्याय एम. ए., शास्त्री तथा श्री गौरीशङ्कर गनेड़ीवाला; प्रकाशक—गौरीशङ्कर गनेड़ीवाला गोरखपुर; सचित्र डबल क्राउन १६ पेजी साइज़ के ९४ पृष्ठ, मूल्य ।-), छपाई-कागज साधारण।

इस पुस्तक में काशी में मरने पर मोक्ष होता है या नहीं इसका निर्णय किया गया है।

(२२) शिवकवच—भाषा टीका-सङ्कलनकर्त्ता तथा टीकाकार गौरीशङ्कर गनेड़ीवाला; प्रकाशक-भक्तिग्रन्थमाला कार्यालय छपरा; पृष्ठसङ्ख्या १९, आकार डबल क्राउन १६ पेजी, छपाई-सफाई, कागज साधारण मूल्य -)॥

(२३) द्वादशज्योतिर्लिङ्गमाहात्म्य—लेखक तथा प्रकाशक—गौरीशङ्कर गनेड़ीवाला गोरखपुर; आकार डबल क्राउन १६ पेजी, पृष्ठसंख्या ४८, मूल्य -)॥

इस पुस्तक में शिव की बारह कथाएँ हैं। पुस्तक भक्त, भावुकों के काम की है।

(२४) शिवमहिम्नस्तोत्र, शिवकवच, शिवसहस्रनाम—(भाषाटीकासहित) टीकाकार—श्री विन्ध्याचल वकील और गौरीशङ्कर गनेड़ीवाला; प्रकाशक-भक्तिग्रन्थमाला कार्यालय, छपरा; आकार डबल क्राउन १६ पेजी; पृष्ठसङ्ख्या १५४, मूल्य ॥), कागज-छपाई-सफाई उत्तम।

इस पुस्तक की विशेषता यह है कि अन्वयार्थ सहित संस्कृत श्लोक के साथ हिन्दी कविता भी दी गई है। पुस्तक संस्कृतप्रेमियों के साथ हिंदीभक्तों तथा विद्यार्थियों के काम की है। लेखक का प्रयत्न स्तुत्य है।

(२५) सामुद्रिककुञ्जिका—ले०—स्वर्गीय पं० कालिकाप्रसाद राजज्योतिषी, बनारस स्टेट; प्रकाशक-गौरीशङ्कर प्रसाद राजज्योतिषी सामुद्रिकसदन, रामनगर, बनारस स्टेट; पृष्ठसंख्या ६४, आकार डिमाई आठ पेजी, मूल्य ॥=)

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक बनारस स्टेट के राजज्योतिषी तथा सामुद्रिकविद्या के प्रामाणिक विद्वान् माने जाते थे; उन्हीं की बनाई हुई यह पुस्तक है। पुस्तक के आरम्भ में श्रीमान् द्विजराज काशिराज का चित्र है। यह उन्हीं को समर्पित भी है। ज्योतिषियों के लिये पुस्तक बड़े काम की है।

(२६) स्वप्नविज्ञान लेखक—श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय, सहायक सं० अखण्डभारत; प्रकाशक-हिन्दी-साहित्यमण्डल, बनारस सिटी। आकार डबल क्राउन १६ पेजी, पृष्ठसंख्या १३६, मूल्य ॥)।

हिन्दी में आज तक स्वप्नविषयक ऐसी अच्छी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई थी। स्वप्नों का विश्लेषण, उनकी व्याख्या तथा दुःस्वप्नों के प्रभाव की शान्ति के उपाय आदि प्रत्येक विषय पठन तथा मनन करने योग्य हैं। पुस्तक उपादेय है।

(२७) तुलसी और उसके सौ उपाय ले०—काशीनाथ शर्मा ज्योतिषतीर्थ; प्रकाशक—हिन्दी-साहित्यमण्डल, बनारस सिटी; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के ४४ पृष्ठ, मूल्य ।-)

तुलसी को सभी जानते हैं, पर उसके गुण तथा उपचार के जाननेवाले लोगों की संख्या कम है; इसी अभाव की पूर्ति इस पुस्तक द्वारा की गई है। सभी लोग इससे लाभ उठा सकते हैं।

(२८) अरविन्द और उनका योग—सम्पादक, पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे; प्रकाशक श्री अरविन्दग्रन्थमाला ४, हेयर स्ट्रीट, कलकत्ता। डबल क्राउन १६ पेजी आकार के ८५ पृष्ठ, कागज छपाई-सफाई अत्युत्तम; मूल्य ॥)

इस पुस्तक में श्री दिलीपकुमार राय, श्री नलिनीकान्त गुप्त, श्री अनिलवरण राय, श्री महेन्द्रनाथ सरकार के आठ लेखों का सङ्ग्रह है, लेखों के नाम हैं—(१) श्री अरविन्दचरित्र (२) जीवनकलायोग (३) श्री अरविन्द का पूर्ण योग (४) नवस्वरूपदर्शन और बोध (५) श्री अरविन्द और उनका 'सम्प्रदाय' (६) श्री अरविन्द का गीताभाष्य (७) आध्यात्मिक जीवन (८) ईश्वर का राज्य। योगी अरविन्द के बारे में जिन्हें कुछ (ठीक !) जानने की इच्छा हो वे इसे एक बार अवश्य पढ़ें। अरविन्द किसी किसी के लिये तो कहानी के पात्र हो गए हैं। अतः इस पुस्तक से बड़ी जानकारी हो सकती है। अरविन्द को जाननेवालों ने इस ग्रन्थ को लिखा है।

इस ग्रन्थ के विशेष परिचय के लिये व्यासाङ्क में (पृ० ६२८ में) निकला हुआ लेख पढ़िए। कृष्णाङ्क के परिशिष्ट में 'चार पुरुषरत्न' का परिचय पढ़िए, सबसे अच्छा हो आप स्वयं ग्रन्थ को पढ़ें।

(२९) व्रजरज—लेखक हिन्दीजगत् के प्रसिद्ध कवि और कलाकार राय कृष्णदासजी। आपकी भाषा में इतनी सरलता है, ऐसा प्रसाद गुण है कि सभी पाठक आपकी कविता में रस ले सकते हैं। माधुर्य और मिठास का परिचय आपको उन दो चार कवित्तों से ही लग जायगा जो इसी अङ्क में (गीताधर्म में) नवनीत में दिए गए हैं।

व्रजरज की कविताओं में एक विशेषता यह है कि शब्दचित्र को पढ़ते पढ़ते सामने प्रत्यक्ष-चित्र खिंच जाता है। कई पर तो चित्र बन भी चुके हैं। यह चमत्कार राय सा० का तो सहज गुण है। वे कलाकार जो ठहरे !

आप पढ़कर देखिए, इसमें रत्नाकरजी की मँजी भाषा, सत्यनारायण कविरत्न की सहृदयता, श्रीधर पाठक की कोमलकान्तपदावली और हरिऔधजी की कल्पना का एक स्थान पर समावेश मिलेगा।

इसे पढ़कर सूरदास के भक्तिभाव और सलोनेपन का बार बार स्मरण हो आता है। आधुनिक व्रजभाषाकाव्य का प्रतिनिधि यह कवितासङ्ग्रह है। इस समय के क्षेत्र में इसे सर्वोत्तम कहना चाहिए।

(३०) वेदाङ्क (संस्कृतरत्नाकर)—सम्पादकगण—म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, श्री सूर्यनारायण शर्मा व्याकरणाचार्य, भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री साहित्याचार्य, श्री मोतीलाल शर्मा शास्त्री गौड़; प्रकाशक श्री मधुसूदनाभिनन्दनसमिति जयपुर; मूल्य २।।)

संस्कृतरत्नाकर मासिकपत्र जयपुर का यह विशेषाङ्क है। वेदसम्बन्धी प्रामाणिक लेखकों के लेख का सङ्कलन है।

(३१) बालप्रह्लाद—सम्पादक पं० जगन्नारायण देव शर्मा 'कविपुष्कर'; प्रकाशक–गुप्त ब्रदर्स, बनारस सिटी। पृष्ठसंख्या ३२, सचित्र मूल्य ≈); एक पौराणिक आख्यान।

(३२) द्वापर—लेखक—कविवर श्री मैथिलीशरण गुप्त, प्रकाशक—साहित्यसदन चिरगाँव झाँसी, मूल्य १।।) मात्र। द्वापर गुप्तजी की बिलकुल टटकी कृति है। हमारे एक सम्मान्य मित्र की राय में यह उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसकी विशद आलोचना फिर कभी। कृष्णप्रेमियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। इसमें भागवत और गीता का रस मिलेगा और भाषा सीधी, सरल, खड़ी बोली। आपका हृदय छलक पड़ेगा। खड़ी बोली में कृष्णसम्बन्धी यह अनूठी रचना है।

कृष्णसम्बन्धी हिन्दीसाहित्य

हमारी इच्छा तो थी कि कृष्णसम्बन्धी हिन्दीसाहित्य की एक आलोचना करते; विषय की दृष्टि से इनके ४ भाग करते। (१)—कविता और कवितागून्थ—जैसे प्रियप्रवास, द्वापर, व्रजरज, उद्धवशतक आदि, (२) गद्य, लेख और प्रबन्ध—जैसे चमूपतिजी एम० ए० का कृष्णचरित (?), बङ्किम का कृष्णचरित (हिन्दी अनुवाद), प्रो० सुखलालजी का 'कर्मवीर कृष्ण', गर्देजी का कृष्णसम्बन्धी लेख, माखनलालजी के गद्यप्रबन्ध आदि (३) भागवत के अनुवाद (४) गीता के अनुवाद। भागवत और गीता ही कृष्ण के प्रधान ग्रन्थ हैं—मानों इनकी वंशी और शङ्ख हों। इनके अनुवाद गद्य और पद्य दोनों में निकले हैं। इनकी आलोचना सचमुच कृष्ण की ही उपासना है, पर समय और स्थान की कमी के कारण यह काम तुलसीमीमांसापरिषद् की प्रदर्शिनी के लिये ही छोड़ना पड़ता है।

समानधर्मा साहित्य

हमारे पास धम्मपद जैसे ग्रन्थ भी आलोचनार्थ आए हैं। गीता के साथ धम्मपद की बड़ी सुन्दर तुलना दी जाती है। अतः धम्मपद के अनुवाद की आलोचना कृष्णाङ्क में सुन्दर होती, पर लाचारी है। सारनाथ से जो धम्मपद का हिंदी अनुवाद निकला है, उसकी हम सविस्तर आलोचना करेंगे; क्योंकि हम चाहते हैं कि संस्कृत, पाली आदि के सुन्दर अनुवाद हिंदी में आने चाहिए। इस ओर दोषज्ञ और विशेषज्ञ आलोचकों को ध्यान देना होगा। और ऐसी आलोचना एक दिन में गीताधर्म की दो एक लाइन में नहीं हो सकती। हमारे आलोचना के कुछ नियम हैं, जिन्हें हम फिर कभी लिखेंगे।

नवनीत

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुनि चलत रेनु तन मण्डित, मुख दधिलेप किए॥
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिए।
लट लटकनि मनो मत्त मधुपगन मादक मदहि पिए॥
कठुला कण्ठ वज्र केहरि नख राजत रुचिर हिए।
धन्य सूर एकौ पल या 'सुख', का सत कल्प जिए ?

—सूरदास

सूर ने अपने हृदय के आंगन में कृष्ण को 'नवनीत लिए' देखा था। कितना 'सुख' मिला होगा!.........स्वयं एक बार देखिए। *

× × × ×

ऋषि कृष्ण नहीं, चतुर्भुज कृष्ण नहीं। हमारे अधिक भक्तों ने गोपाल कृष्ण को ही अपनाया है। उन गोपाल का चित्रण तीन रसों में बड़ा सुन्दर बन पड़ा है। १ शान्त, २ शृङ्गार तथा ३ वीर। कहें तो करुण और वात्सल्य दो और रस गोपाल के कारण कवियों को बड़े प्रिय हो गए हैं। राधा का करुण-विप्रलम्भ और मैया यशोदा का वात्सल्य तो प्रसिद्ध ही है। इस प्रकार देखा जाय तो कृष्ण के जीवन में सभी रसों का परिपाक हुआ है।

अच्छा तो होता, हम प्रत्येक रस का एक एक उदाहरण देते। फिर ऋग्वेद से लेकर आज तक के सभी बड़े कवियों की एक एक सुन्दर चीज देते। फिर आजकल की देशभाषाओं की सैर करते। थोड़ी बौद्ध तथा जैन साहित्य की झांकी भी हम देखते, पर आज तो अधिक समय नहीं। बौद्ध साहित्य में कृष्ण का वर्णन नहीं सा है। जैन साहित्य में काफी वर्णन है। कृष्ण का बड़ा भव्यचित्र खींचा गया है।

जैन साहित्य में कृष्णजीवन की कथा का निरूपण करनेवाले मुख्य ग्रन्थ दोनों—दिगम्बर और श्वेताम्बर—सम्प्रदाय में हैं। श्वेताम्बरीय अङ्ग ग्रन्थों से छठें ज्ञाता और आठवें अन्तगड में भी कृष्ण का प्रसंग आता है। वसुदेव हिन्दी (लगभग सातवीं शताब्दी, देखो पृ० ३६८, ३६९) जैसे प्राकृत ग्रन्थों में कृष्ण के जीवन की विस्तृत कथा मिलती है। दिगम्बरीय साहित्य में कृष्णजीवन का विस्तृत और मनोरञ्जक वृत्तान्त बतानेवाला ग्रन्थ जिनसेनकृत हरिवंशपुराण है; और गुणभद्रकृत उत्तरपुराण में भी कृष्णजीवन की कथा है। दिगम्बरीय हरिवंशपुराण और उत्तरपुराण ये दोनों विक्रम की नौवीं शताब्दी के ग्रन्थ हैं।

* देखिए चित्र पहले पन्ने पर

कृष्ण के जीवन के कुछ प्रसंगों को लेकर देखिए कि इनका ब्राह्मणपुराणों में किस प्रकार वर्णन किया गया है और जैनग्रन्थों में किस प्रकार। अध्ययन का यह पहलू बड़ा ही अच्छा होगा।

× × × × × ×

हमारे वाङ्मय में—

ऋग्वेद के कृष्ण ऋषि कृष्ण हैं, ऋषियों के उपास्य भी ऋषि हैं; इसीसे ऋग्वेद के ऋषियों को ऋषि नारायण और ऋषि कृष्ण की झांकी देखने को मिलती है। इसी प्रकार उपनिषद् के कृष्ण भी ब्रह्म-विद्या के उपासक के रूप में मिलते हैं, घोराङ्गिरस के कृष्ण ऐसे ही हैं।

इतिहास के कृष्ण इतिहासकार व्यासदेव के समान ज्ञानी, उपदेशक, लोकसंग्रही, योगी हैं। महाभारत के कृष्ण और महाभारत बनानेवाले व्यास में कोई अन्तर नहीं दीख पड़ता; स्वयं भी कहा है कि 'मुनीनामप्यहं व्यासः'। अर्थात् मुझे मुनिरूप में देखना हो तो व्यास को देख लो।

रसिक शुकदेव के कृष्ण भी रसमय हैं। भागवत उन्हीं कृष्ण के रस से भरी है।

पद्म, विष्णु, हरिवंश, ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों के कृष्ण भी रसिक सूतों के कारण हमारे सामने अपने सुन्दर-सलोने और रसमय रूप में ही आते हैं।

इसके बाद संस्कृत के बड़े बड़े कवि—कालिदास, माघ, जयदेव आदि; मध्यकालीन देशभाषाओं के कवि—विद्यापति, चण्डीदास आदि; हिन्दी के सूर, तुलसी, मीरा, कबीर आदि आते हैं। और इन सभी कवियों ने गोप वेशवाले कृष्ण का सलोना रूप ही खींचा है; अब तो यह रूप इतना लोकप्रिय और व्यापक हो गया है कि आज भारत की सभी भाषाओं में कृष्ण की झांकी देखने को मिलती है, इतना ही नहीं; अंग्रेजी, फारसी आदि विदेशी भाषाओं में भी हम कृष्ण की मुरली सुनते हैं।

कृष्णसम्बन्धी इन सभी अच्छे ग्रन्थों में—ऋग्वेद से लेकर आज तक के व्रजभाषा और खड़ी बोली के ग्रन्थों में—एक बात ध्यान देने योग्य है, वह है उनके भीतर छिपा हुआ अध्यात्म। बिना इस अध्यात्म को पहचाने—कृष्णचरित के स्वभाव को पहचानना, इन ग्रन्थों के और इनके बनानेवाले कवियों के स्वभाव को पहचानना, इनके सच्चे भाव को परख सकना, साहित्य का मर्म समझ सकना कठिन है।

हमारे नवनीत के पाठक, हमारे साथी माखन खानेवाले तो जब हमारे साथ कवियों के दुहे हुए दूध को मथने बैठते हैं तो सहज ही वह अध्यात्म नवनीत के रूप में ऊपर निकल आता है। गोरस बेचनेवाली गोपियों का नवनीत तो भगवान् चुरा चुराकर खाते थे। यदि हम भी उसी प्रकार मथन करके नवनीत निकालना और खाना शुरू कर दें (या चाहें तो बेचना भी शुरू कर दें) तो वह माखनचोर हमारे माखन को भी चुराने अवश्य आवेगा। नवनीत भगवान् को लुभाकर बुलाने का उपाय है।

वासुदेव कृष्ण का ध्यान (चतुर्भुज रूप)

जय जय हरि, भक्त पाल, दीनन पै नित दयाल,
दुष्ट-दनुज-दल विदारि, दुसह दुःख हारी !
शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, धारे कर कृपा सद्म,
इन्दीवर रुचिर अङ्ग, पीत बसन धारी !
सोभित गल कौस्तुभ बर, बाम भाग लक्ष्मीधर,
असरन जग सरन एक, जयति जय मुरारी !
हरन हेतु भूमिभार, अवतरे कितेक बार,
भारत दुख मांहिं पर्यौ, लीजिये उबारी ॥

—राय कृष्णदास

कृष्णमहिमा

करी गोपाल की सब होय ।
जो अपुनो पुरुषारथ मानत अति झूठो है सोय ॥

(पूरा पद इसी अङ्क के पृष्ठ ७०० पर देखिए ।)

चेतावनी

जन्म तेरो बातनि बीति गयो ।
तूने कबहुँ न कृष्ण कह्यो ॥
पांच बरस कौ भोलो भालो अब तो बीस भयो ।
मकर पचीसी माया कारन देस बिदेस गयो ॥
तीस बरस कौ अब मति उपजी लोभ बढ़े नित नयो ।
माया जोरी लाख करोरी अजहुँ न तृप्त भयो ॥
बृद्ध भयो तब आलस उपजी कफ नित कण्ठ रह्यो ।
सतसंगति कबहूँ नहिं कीनी बिरथा जन्म गयो ॥
यह संसार मतलब को लोभी झूँटो ठाट रच्यो ।
कहत 'कबीर' समझ मन मूरख तू क्यों भूल गयो ॥

—कबीर

मा यशोदा का संदेशा

कहियो श्याम सों समुझाय ।
वह नातो नहिं मानत मोहन, मनों तुम्हारी धाय ॥
एकबार माखन के काजैं राख्यौ मैं अटकाय ।
वाकौ बिलगु मानु मति मोहन, लागति मोहि बलाय ॥
बारहि बार यहै लौ लागी कब लैहौं उर लाय ।
'सूरदास' यह जननी कौ जिय राखौ बदन दिखाय ॥

—सूर

पुत्र कृष्ण का उत्तर

ऊधो, इतनो कहियो जाय ।
आवैंगे हम दोऊ भैया मैया जनि अकुलाय ॥
याकौ बिलग बहुत हम मान्यो जो कहि पठयो 'धाय' ।
कहँलौं कीरति मापिय तुम्हरी, बड़ो कियौ पय प्याय ॥
और जु मिल्यो नन्द बाबा सों तब कहियो समुझाय ।
तौ लौं दुखी होन नहिं पावैं धूमरि धौरी गाय ॥
जद्यपि मथुरा विभव बहुत है तुम बिनु कछु न सुहाय ।
'सूरदास' ब्रजवासी लोगनि भेंटत हृदय जुड़ाय ॥

—सूर

सुतचिन्ता

प्रिय पति वह मेरा प्राणप्यारा कहाँ है । दुख जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है ॥
लख मुख जिसका मैं आज लौं जी सकी हूँ । वह हृदय दुलारा नैनतारा कहाँ है ॥
पल पल जिसके मैं पन्थ को देखती थी । निशि-दिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती ॥
उर पर जिसके है सोहती मुक्तमाला । वह नवनलिनी से नैनवाला कहाँ है ॥

—हरिऔध

× × ×

मुरलीधर

मुरलीधुनि स्रवन सुने रह्यो नाहिं परै।
ऐसी को चतुर नारि धीरज मन धरै॥
खग-मृग-तरु-सुर-नर-मुनि-सिवसमाधि टरै।
अपनी गति तजै पौन सरितौ ना ढरै॥
मोहन के मन को को अपने बस करै।
'सूरदास' सप्त सुरन सिन्धु सुधा भरै॥

—सूर

× × ×

तब लीनी करकमल जोगमाया सी मुरली।
अघटनघटनाचतुर बहुरि अधरन सुर जुरली॥
जाकी धुनि ते निगम अगम प्रगटित बड़ नागर।
नाद ब्रह्म की जानि मोहिनी सब सुखसागर॥
पुनि मोहन सों मिली कछू कलगान कियो अस।
बालविलोचन बालत्रियन मनहरन होय जस॥
मोहन मुरलीनाद स्रवन कीनो सब किनहूँ।
यथा यथाविधि रूप तथाविधि परस्यो तिनहूँ॥

—नन्ददास

\+ \+ \+

किती न गोकुल कुलवधू, काहि न केहि सिखदीन।
कौने तजी न कुल गली, है मुरलीसुरलीन॥

—विहारीलाल

\+ \+ \+

लाज, काज, सुख, साज, बन्धन, समाज, नांघि
निकसी निसंक सकुचैं नहीं गुरनि सों।
मीन ज्यों अधीनी गुन कीनी खैंचि लीनी 'देव'
बंसीवार बंसी डार बंसी के सुरनि सों॥

—देव

वंशी

मोहन बँसुरी सौं कछू, मेरो बस न बसाइ ।
सुर रसरी सौं स्रवन मग, बाँधि मनै लै जाइ ।।

— रसनिधि

कौन ठगोरीभरी हरि आज बजाई है बाँसुरिया रसभीनी ।
तानसुनी जिनहीं तिनहीं तिन लाज बिदा कर दीनी ।।
घूमें घरी घरी नन्द के द्वार नवीनी कहा अरु बालप्रवीनी ।
या ब्रजमण्डल में 'रसखान' सु कौन भटू जु लटू नहिं कीनी ।।

... ...

जा दिन ते वह नंद को छोहरो या बन धेनु चराइ गयो है ।
मीठो ही तानन गोधन गावत बेनु बजाइ रिझाइ गयो है ।।
वा दिन सों कछु टोना सो कै 'रसखानि' हिये मों समाइ गयो है ।
कोऊ न काहू की कान करै सिगरो ब्रजवीर बिकाइ गयो है ।।

— रसखान

× × ×

बाजी बन माहिं कहूँ, गेह गेह गूँजि उठो, पूरि उठी प्रानन में, नेहो मन लहकि उठे ।
गोपी, गोप, गाय, ग्वाल सुनि के गुपाल-बेन, गरक भए हैं सबै, गैल गैल गहकि उठे ।।
चातक, मयूर, हंस, सारस, परेवा, पिक,† पाइ पाइ आपुने मनोरथ चहकि उठे ।
डोलि नगराज उठे, झूमि नागराज उठे, नाचि नटराज उठे, बौरि के बहकि उठे ।।

— राय कृष्णदास

लुभावना चित्र

धूरिभरे अति सोभित स्यामजू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी ।
खेलत-खात फिरैं अँगना, पग, पैजनीं बाजतिं, पीरी कछोटी ।।
वा छवि कों रसखानि बिलोकत, वारत काम-कलानिधि कोटी ।
काग के भाग कहा कहिए, हरि-हाथ सों लै गयो माखन-रोटी ।।८।।

† ग्रीष्मादि छः ऋतुओं के पक्षी ।

अनन्य प्रेमी

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई। जाके सिर मोरमुकुट मेरो पति सोई ॥
भाई छोड़्या बंधु छोड़्या छोड़्या सगा सोई। साधु संग बैठ बैठ लोकलाज खोई ॥
भगत देखि राजी भई जगत देखि रोई। अँसुवन जल सींचि सींचि प्रेमवेलि बोई ॥
दधि मथि घृत काढ़ि लियो डार दई छोई। राणा विष को प्यालो भेज्यो पीय मगन होई ॥
अब तो बात फैल गई जाने सब कोई। 'मीरा' प्रभू लगन लागी होनी होय सो होई ॥

—मीरा

अभिन्न प्रेमी

रीझि रीझि, रहसि रहसि, हँसि हँसि उठैं, साँसें भरि, आँसू भरि कहत दई दई।
चौंकि चौंकि, चकि चकि, उचकि उचकि 'देव' जकि जकि, बकि बकि, परत बई बई ॥
दुहुँन को रूप-गुन दोऊ बरनत फिरैं, थरन थिरात रीति नेह की नई नई।
मोहि मोहि मोहन को मन भयौ राधिकामै, राधामन मोहि मोहि मोहन मई मई ॥

— देव

× × ×

पहिले ही जाय मिले गुन में स्रवन, फेरि रूप सुधा मधि कीनों नैनहूँ पयान है।
हंसनि, नटनि, चितवनि, मुसुकानि, सुघराई, रसिकाई मिली मति पयपान है ॥
मोहि मोहि मोहनमई री मन मेरो भयो, 'हरीचंद' भेद न परत कछु जान है।
कान्ह भये प्रानमय, प्रान भये कान्हमय, हिय में न जानि परै कान्ह हैं कि प्रान है ॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

कानन दूसरो नाम सुनैं नहिं एक ही रंग रंग्यौ यह डोरो।
धोखेहुँ दूसरो नाम कढ़ै रसना मुख बांधि हलाहल बोरो ॥
'ठाकुर' चित्त की वृत्ति यही हम कैसेहुँ टेक तजैं नहि भोरो।
बावरी वे अँखियां जरि जायँ जे सांवरो छांड़ि निहारती गोरो ॥

—ठाकुर

× × ×

रांची रसना मैं आठौ जाम मधुराई रहै, ताके नाम रुचिर रसीले गुलकंद की।
प्रेमबूंद नैननि निमूद नित छाई रहै, लाई रहै ललित लुनाई नँदनंद की॥

— रत्नाकर

प्रेम के वश में

सेस, महेस, गनेस, दिनेस, सुरेसहुँ जाहिं निरन्तर गावैं।
जाहिं अनादि, अनंत, अखंड, अछेद, अभेद सुवेद बतावैं॥
नारद से सुक, व्यास रटैं, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

— रसखान

राधा के वश में

ब्रह्म मैं ढूँढ्यौं पुरानन गानन, बेद-रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यौं सुन्यौं कबहूँ न कितू, वह कैसे सुरूप औ कैसे सुभायन॥
टेरत-हेरत हारि पर्यौ रसखानि, बतायो न लोग-लुगायन।
देखो, दुर्यौ वह कुंज-कुटीर में, बैठ्यौ पलोटतु राधिका-पायन॥

— रसखान

(राधा का रहस्य समझने के लिये इसी अङ्क का दूसरा लेख पढ़िए।)

'निमित्त मात्रं भव'

काहू सों माई कहा कहिए, सहिए जु सोई रसखानि सहावैं।
नेम कहा जब प्रेम कियो, तब नाचिए सोई जो नाच नचावैं॥
चाहत हैं हम और कहा सखि, क्योहूँ कहूँ पिय देखन पावैं।
चेरियै सों जु गुपाल रच्यौ, तौ चलो री, सबै मिलि चेरी कहावैं॥

— रसखान

कृष्णभक्त की निर्भयता

द्रौपदि औ गनिका, गज, गीध, अजामिल सों कियो सो न निहारो।
गौतम-गेहिनी कैसे तरी, प्रह्लाद कौ कैसे हर्‌यो दुख भारो॥
काहे कों सोच करै रसखानि, कहा करि है रविनंद विचारो।
कौन की संक परी है जु माखन चाखनहारो है राखनहारो॥

— रसखान

प्रेमोन्माद

हेरी, मैं तो प्रेमदिवानी मेरो दरद न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी किस विधि मिलना होय॥
गगन मँडल पै सेज पिया की किस विधि मिलना होय।
घायल की गति घायल जाने की जिन लाई होय॥
जौहरी की गति जौहरी जानै की जिन जौहर होय।
दरद की मारी वन वन डोलूँ बैद मिला नहिं कोय॥
'मीरा' की प्रभु पीर मिटैगी जब बैद संवलिया होय।

— मीरा

× × ×

जब तें कुँवर कान्ह रावरी कलानिधान कान परी वाके कहूँ सुजस कहानीसी।
तबहीं तें 'देव' देखी देवतासी, हँसतिसी, खीझतिसी, रीझतिसी, रूसति रिसानीसी॥
छोहीसी, छलीसी, छीन लीनीसी, छकीसी छीन, जकीसी, टकीसी लगी, थकी, थहरानीसी।
बीधीसी, बधीसी, विषबूड़ीसी, विमोहितसी, बैठी वह बकति बिलोकति बिकानीसी॥

— देव

विरहानुभूति

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतंग करी दीपक सों आपै प्रान दह्यो॥
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सों संपति हाथ गह्यो।

सारँग प्रीति करी जु नाद सों संमुख बान सह्यो ॥
हम जो प्रीति करी माधौ सों चलत न कछू कह्यो ।
'सूरदास' प्रभु बिन दुख दूनो नैनन नीर बह्यो ॥

—सूर

× × ×

जो मैं ऐसा जानती (रे) प्रीत किए दुख होय ।
नगर ढिंढोरा फेरती (रे) प्रीत करो जनि कोय ॥

—मीरा

प्रेम में त्याग

आरस छोरि लहौं तुलसीदल पारस पाइ पलौ न उमाहौं ।
गावत वे प्रभु के गुन पावन पावत मोद पलास की छाहौं ॥
या जग मैं जकरे सँकरे परौं भाग छुटे 'हरिऔध' सराहौं ।
सांवरे राजते काज कहा हमैं रावरे पायन की रज चाहौं ॥

—हरिऔध

बेगि मिलो म्हाराज

सुनी मैं हरि आवन की आवाज ।
महल चढ़ि चढ़ि जोऊँ मोरी सजनी, कब आवें म्हाराज ॥
दादुर, मोर, पपीहा बोले, कोयल मधुरै साज ।
उमग्यो इंद्र चहूँ दिसि बरसे दामिनि छोड़ी लाज ॥
धरती रूप नवा नवा धरिया इंद्रमिलन के काज ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर बेगि मिलो म्हाराज ॥

—मीरा

नवनीत में दिये जाने लायक उदाहरण कलाविद्, रसिक राय कृष्णदासजी के लेख पृष्ठ ७२४ में आ गये हैं । उनके नवनीत का भी भोग लगाइए ।

❀ श्री कृष्णार्पणमस्तु ❀

राधा

आदि में न होती जो पै राधे की रकार तो पै
मेरी जान राधा कृष्ण आधा कृष्ण रहते।
—सिद्धजी, भदैनी, काशी
(अप्रकाशित)

२.

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झांईं परे, स्याम हरित द्युति होय॥
— विहारीलाल

जय जय प्यारी राधा रानी, जय जय मनमोहन ब्रजराज।
दोउ चकोर, दोउ चंद, दोऊ घन, दोउ चातक सिरताज॥

× × ×

झूलत राधा गोरी के सँग सोहत सुघर सलोने स्याम।
गल बाहीं दीने दोउ राजत, मानहुँ रति अरु काम॥
छहरति छबि छन छबि मिलि ज्यों घनस्याम नवल अभिराम।
मन मोहत मिलि ज्यों कालिंदी, सुरसरिता इक ठाम।
पाय प्रेमघन चंद लगत प्रिय जथा जामिनी जाम॥
'प्रेमघन'

सेवक गुनीजन के चाकर चतुर के हौं
कविन के मीत चित हित गुनगानी के।
सीधे हम सीधन सों बाँके महा बाँकन सों
हरीचंद नगद दमाद।अभिमानी के॥
चाहिवे की चाह काहू की न परवाह,
नेही नेह के दिवाने सदा सूरत निवानी के।
प्रेमिन के प्रेमी हौं सुदास दास भगतन के
सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधा रानी के॥
— भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

झहरि झहरि झीनी बूँदनि परति मानो,
घहरि घहरि घटा घेरी है गगन मैं।
आनि कह्यो स्याम मों सों चलौ झूलिबे को आप,
फूली ना समानी भई ऐसी हौं मगन मैं॥
चाहत उठोई उठि गई सो निगोड़ी नींद,
सोय गए भाग मेरे जागि वा जगन मैं।
आँख खोलि देखौं तो न घन है न घनस्याम,
वेई छाईं बूँदें मेरे आँसु ह्वै दृगन मैं॥
—देव

खेल उसी का, वही खिलाड़ी और खिलौना भी वही;
खेलें उसके संग सदा हम, इष्ट हमें बस है यही।
हार जीत का निर्णय राधा करती रहे सही सही,
चिन्ता करे बलाय हमारी जगती के जंजाल की!
बलिहारी, बलिहारी, जय जय गिरिधारी-गोपाल की।
— मैथिली०

राधा मूर्ति हैं परम प्रेम की, अनन्य भगवदाराधन की।

जो भगवान् का आराधन करके तन्मय हो जाता है, उसे भी राधा नाम मिल जाता है।

राधा के द्वारा ही हमारी बाधा दूर होती है और हमें वह (नटवर सखा) मिलता है। इसीसे हमारे यहां के कवि और कलाकार राधा की ही साधना करते हैं।

आजकल अरविन्द भी राधा साधना ही अपने साधकों को सिखाते हैं।

अभी कल हम शान्तिनिकेतन में भारत के प्रसिद्ध कलाविद् और चित्रकार श्री नन्दलाल बोस से बातें कर रहे थे। उन्होंने कहा—

'गुरुदेव' (रविबाबू) का कहना है कि चित्र तो राधा का खींचना चाहिए। राधा के प्रेम और विरह में ही कृष्ण के दर्शन मिलते हैं। कृष्ण का सच्चा दर्शन करना हो तो राधा की झांकी देखना सीखो।

(देखो पृ० ७५८ राधा के वश में)

पृष्ठ ६८४ का शेषांश कृष्णचरित

इसकी सरल विधि त्रेता के पहले थी, पर समय के प्रभाव से इसका बड़ा आडम्बर बढ़ा। इसका आध्यात्मिक तत्त्व तो जाता रहा, और ब्याह दान की तरह यह एक लौकिक कर्म यश, कीर्ति, बल बढ़ाने के लिये हो गया। गीता में भी यह लौकिक कर्म "यज्ञात्......भवन्ति भूतानि"—मनुष्यों के सांसारिक लाभ के लिये कहा गया है। इसमें पशुवध प्रधान था; और शायद ही कोई पशु अश्वालम्भन से गवालम्भन तक बचा रहा हो। यजुर्वेदभाष्य में महीधर ने लिखा है कि एक अश्वमेध यज्ञ में ही ६०९ प्रकार के पशुओं का वध होता था (यदि एक प्रकार के एक से अधिक हुए तो गिनती हज़ार तक पहुंचती होगी)।

"षट्शतानि नियुज्यन्ते पशूनां मध्यमेऽहनि।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य नवभिश्चाधिकानि च॥

कोमलहृदय कृष्ण को इन मूक जीवों का वध दुःखदाई लगा। उन्होंने यज्ञ की विधि का सुधार किया—और जो उसकी आदि प्रथा थी वही अर्जुन के बहाने संसार को बतलाई।

"यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि"।

"वधयज्ञोस्मि"—कदापि नहीं। और कीर्तन कलियुग का धर्म हो गया—

"कलौ तद्धरिकीर्तनात्"

—भागवत

आज भी है—

"एक अधार राम गुन गाना"

—तुलसी।

ऐसे ही दयारहित कर्मकाण्ड के ढंग के अर्थ जब वेदों के किए जाते हैं तो कृष्ण उनकी भी निन्दा करते हैं[१]।

जो ज्ञान कृष्ण ने अपने जीवन में करके दिखलाया वही उन्होंने बौद्धावतार लेकर डंके की चोट उपदेश किया; और फल ऐसा हुआ कि सज्जनों की तो बात ही क्या है उस समय के राक्षस तथा दुराचारी भी जीववध से हट गए।

कुछ लोगों का मत है—मांस न खाने से हमारे देशवासी बलहीन और कायर हो गए हैं और इसी से उनका पतन हुआ है। जो हो; पर शूर-वीर तो उसी को कहते हैं जो दधीचि की तरह अपना प्राण और शरीर देकर दूसरे की रक्षा करे। जो दूसरे का शरीर भूँज भूँजकर अपने शरीर में रख रहा है उसका चित्त अपनी जाति और देश के बचाने को क्यों तैयार होगा? सिंह ने वन के कितने पशुओं की जान बचाई? अपनी जातिवालों को भी जब देखा तो मारना ही चाहा। बंगाली, मैथिल, काश्मीरी आदि विशेष मांसभोजी जातियाँ हैं। इन्होंने कितनी लड़ाइयाँ जीतीं? असल में सिख, मराठे, बैसवरिया ही इस देश की युद्धसामग्री (fighting material) हैं। इनमें मांसाहारी भी हैं। पर इस अपवादस्वरूप दोष के लिये वे सोने का क्या, चाँदी के पदक भी न पायंगे?

पर लोगों को तो चसका लग गया है—"जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः"—जान-बूझकर भी नहीं छोड़ सकते। इस चसके की दवा भगवान् ने गीता में लिखी है—

---

१ वे वेद के सच्चे अर्थ का तो बड़ा मान करते हैं। वे कहते हैं कि सभी वेदों द्वारा एक भगवान् का ज्ञान करना है। वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः। सच पूछा जाय तो कृष्ण मानते सभी कुछ थे, पर लोगों को बढ़ी हुई भौतिकता से हटाकर अध्यात्म की ओर लगाने के लिये कई बातों की निन्दा की है।

कृष्ण और बुद्ध में बड़ा भेद है, पर हैं दोनों ही एक विष्णु के अवतार। इस पर फिर कभी। —सं०

"रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ।"

चसका रह जाता है और वह परमेश्वर के दर्शन से छूटता है। यही हम भी ऊपर कह चुके हैं। अपने हृदय पर हाथ रखिए (आत्मा) और परमात्मा से प्रार्थना कीजिए तभी यह चसका छूटेगा।

यदि इस देश के लोग सदा इस प्रसंग पर विचार करते रहेंगे—और अधिक नहीं तो मन्दिरों में देवता के बहाने होनेवाले जीववध बंद कराने में सहायता करेंगे तो मैं समझूँगा कि सद्धर्म और सद्ज्ञान की विजय हुई।

"यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयोभूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

परिणाम

कथा लंबी हो गई, अब इसको समाप्त करते हैं। पर बहुत से प्रसंग अब भी रह गए। राधा कहाँ से टपक पड़ीं, गोपियों के संग विलास और १६१०८ स्त्रियों के होते कृष्ण योगीश्वर कैसे हुए—काम, क्रोध, लोभ, मोह से परे कैसे हुए? अवतारों का कर्मभोग, कृष्णपंथियों का दिग्दर्शन और कर्तव्य इत्यादि विषयों पर पाठकों से फिर कभी बात-चीत होगी।

अन्त में अहिंसाधर्म पर फिर एक बार विचार कर लेना चाहिए। मेरा तो इस धर्म में ऐसा ध्रुव विश्वास है कि, वह कदाचित् पक्षपात की सीमा तक पहुँच गया है। लोग समझेंगे कि मैं बौद्ध या जैन हो गया हूँ। मुझे स्वीकार है। पर जो लोग अपने को हिन्दू कहते हैं—अपने को मनुष्य कहते हैं—वे अपने हृदय पर हाथ रखकर देखें, यदि उनसे कहा जाय कि तुम हमेशा अपने ही हाथ से जीव मार-कर तब मांस खाओ, तो क्या वे सहन कर सकेंगे? जब पशु काटते काटते मनुष्य का दिल जिससे वह काटता है लोहे सा कड़ा हो जाता है तभी वह यह बात सह सकता है। मेरे कई भलेमानुस मुसलमान मित्र कहते हैं कि उनके धर्म में बकरीद के दिन अपने हाथ से बलिदान करना बड़ा पुण्य है; पर उस संहार को देखकर उन्हें बड़ा कष्ट होता है। यही नहीं, मुसलमान धर्म में भी कहा है कि तीन प्रकार के लोगों पर खुदा रहम न करेगा (१) जीव के मारनेवाले, (२) वृक्ष के काटनेवाले और (३) वर्षा को रोकनेवाले।

आहारनिद्राभयमैथुनं च,
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
ज्ञानं हि तेषामाधिको विशेषो,
ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समाना ॥

जब मनुष्य पहले पहल इस पृथिवी पर आया तो वह अपने पड़ोसी पशुओं के समान आहार, निद्रा, भय, मैथुन में रमता रहा। आहार के लिये पहले फल मिले, फिर पशु। प्राणरक्षा के लिये दो ही खाद्य थे, इसलिये मांस-भोजन उसके लिये मानों एक आपद्धर्म था। धीरे धीरे ज्ञान की अधिकता-विशेषता हुई, बुद्धि हुई, खेती हुई, अन्न उपजा, दूध दुहा गया; दही, मक्खन, घी, रबड़ी, मलाई, लड्डू, पेड़े बनने लगे तो फिर ज्ञानहीन और बुद्धिहीन बन-कर—जीव मारकर—खाना और पशुसमान बने रहना, कौनसा धर्म है? फिर देवी-देवता के बहानें मार मारकर खाना! (कृष्ण त्राहि माम्!) इस दोहरे पाप का क्या दण्ड होगा?

संपादकीय सूचना

१—कृष्णपूजा

(ले० —श्री गीतानन्दजी)

गत व्यासाङ्क में पृ० ६४९ पर गुरुपूजा के नाम से कृष्णपूजा का अद्भुत वर्णन है। गीता के अनुसार कृष्णपूजा करने की विधि प्रसिद्ध तपस्वी श्री गीतानन्दजी ने बताई है।

२—वीर कृष्ण

(ले० —श्री पद्मनारायण आचार्य)

कई लोग कृष्ण को श्रृङ्गार की मूर्ति समझ बैठे हैं, यह ठीक है, पर कृष्ण तो 'रसमय' हैं, सभी रसों की मूर्ति हैं। यदि आप उनका वीर रूप देखें तो फड़क उठें। देखिए कवि माघ का चित्रण...... और देखिए विजयाङ्क में लेख—विजयी के दो रूप।

(कृष्णाङ्क में सब लेख कैसे जा सकते हैं ?)

३—कृष्ण का अद्भुत और उग्ररूप

देखना हो तो दर्शनाङ्क देखिए।

४—कृष्ण का धर्म

सविस्तर पढ़ना हो तो विश्वधर्माङ्क पढ़िए।

५—कृष्णदीप

इस कृष्णज्योति की महिमा पढ़िए दीपाङ्क में।

यह सब सामग्री वास्तव में कृष्णाङ्क की है। वास्तव में हम अपने स्वाध्याय के तेरहों अरों को मिलाकर एक चक्र बनावेंगे। तब कहीं वह कृष्णाङ्क का एक चक्र तैयार होगा। हमारे गीताधर्म का सब अङ्क=कृष्णाङ्क होता है। सच पूछिए तो तब भी वह कृष्णचरित पूरा नहीं होता।

'एतावानस्य महिमा
ततो ज्यायांश्च पूरुषः'

उसी पुरुष को कृष्ण कहते हैं। आगे पुरुषोत्तमाङ्क आ रहा है। पढ़िए—

पुरुषोत्तमाङ्क

'पुरुषोत्तम' का स्मरण कीजिए।

उनके नाम और रूप पर विचार कीजिए।

थोड़ा मनन कीजिए।
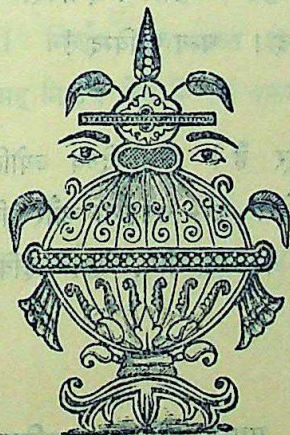
काले पाख की काली रात को कारा की काल कोठरी में जो जन्म ले उसे कृष्ण न कहें तो क्या शुक्ल कहें ! भले ही वह अपने कर्मों के मान से आगे चलकर चन्द्र बन जाय ! "गौर कृष्ण" होकर पुजे !

वाह रे आप की नटखटी ! आपने तो दुनिया सिर पर उठा ली है ! वित्ता भर के वित्तन सवा हाथ की डाढ़ी ! नन्हें से तो आप हैं, पर सबको परेशान कर रखा है। किसी की मटकी फोड़ी तो किसी का कूँड़ा गिराया ! किसी की नैनी ले भागे तो किसी की छाछ फैला दी ! कभी आप चुपके से बछड़ा छोड़ देते हैं तो कभी धौरी की टाँगों में सिर डालकर बेखटके ऐन चूसने लगते हैं। न डरें किसी डायन से, न सहमें किसी दानवा से ! अच्छा है ! आज खूब सूझेगी। क्या करे माँ बेचारी ! तंग आकर उसने कमर में रस्सी बाँधी है ! दामोदरजी नमस्कार !

धन्य गोपाल धन्य ! भारत के प्राण गोधन की आप न रक्षा करें तो कौन करे ? वन में गायें स्वच्छन्दता से चर रही हैं। कोई रोक टोक नहीं ! चाहे झाड़ झंखाड़ के झुरमुट में दुप जायँ चाहे चौड़े धाड़े हरी हरी दूब ही टूँगें। उनका मन ! उनकी मनमानी ! किसी की ताव नहीं कि कोई उनका बाल बाँका करे। साँझ हुई। 'गोसंघ' लेकर घर लौटना है। ग्वाले गायें समेट रहे हैं ? सब आ गईं ? और तो आईं, पर लाली का कहीं पता नहीं ! अँधेरा छा रहा है। जंगल में श्वापदों का राज्य होगा ! किसका साहस है कि लाली को ढूँढ़ने जाय ? गोविन्द जायँगे गोविन्द। धन्य गोविन्द !

वाह, आप की आँखों में कैसा नूर है ! कैसी दिव्य ज्योति है ! कैसा जादू है ! एक बार की चितवन चित्त चुरा लेती है ! माधुर्य और तेज का, सतर्कता और विस्रम्भ का, उल्लास और गाम्भीर्य का, विलोलता और स्थैर्य का, कातरता और पारुष्य का ऐसा योग, ऐसा सहविहार कहाँ देखने में आता है ? पुण्डरीकाक्ष के माने भी तो यही हैं।

शरत्काल की धवल राका खिली है, समस्त सृष्टि में **उन्मदिष्णुता** सी जाग उठी है। हिमांशु के निरावरण करों का स्पर्श पाकर प्रकृति पुलकित हो रही है। रूपवती गोपिकाओं का उद्दाम यौवन केलिलालसा से निर्मर्याद हो रहा है। उस वंशीधर त्रिलोकसुन्दर के संग ही उसे वे चरितार्थ करना चाहती हैं। उधर मदन भी

मोहन के मोहन का ऐसा सुअवसर हाथ से निकल जाने देना नहीं चाहता। शीलनिधान गोपियों का यह प्रणयानुरोध स्वीकार करते हैं। रास रचा जाता है। नटवर खुल खेलने के लिये तैयार खड़े हैं। गलबहियाँ पड़ जाती हैं। पैर थिरकने लगते हैं। लालसा तृप्त होती है। रात बीत जाती है। हे अच्युत! आप गोपीमोहन तो हैं ही, मदनमोहन भी हैं।

जन, जनन-मरण का खिलौना जन, कर क्या सकता है! साधारण से साधारण संकट ही में उसके हाथ-पैर फूल जाते हैं। इस मांसपुद्गल में कैसा सत्त्व और क्या सार! इसकी सब कामनाएँ, सारे मनोरथ, समस्त उत्साह और सम्पूर्ण साहस जहाँ के तहाँ रह जायँ यदि आप इसके अर्दन[१] न हों; समय समय पर इसे हाँका न करें। वस्तुतः जन की बागडोर जनार्दन के हाथ है।

गोपेश्वर! आपने सदा गायें ही दुहीं। धौरी, काली, भूरी, लाली सभी का स्वच्छ कुमुदवर्ण क्षीर एक रूप! एक रस! एक सत्त्व! जब चाहा जिसको पिलाया। आज या तो गायें ठाँठ हो गई हैं या दूध का रङ्ग बदल गया है। अंधी जनता आश्चर्य करती समझती है कि मेरी काली गाय सफेद दूध कहां से देगी! हे गोपालनन्दन! अब आप कब सब गायें दुहकर समझदार लोगों को एक सा अमृत दूध पिलायंगे?

दुनिया दुरंगी है। समस्त विश्व द्वन्द्व की प्रचण्ड थपेड़ से व्यथित हो रहा है। कोई ऐसा मार्ग नहीं जिस पर सब के सब सुख-शान्ति से चलकर मनुष्यता देवी को विकसित होने का पूरा पूरा अवकाश दे सकें। किसी से कुछ जोग-जुगुत पूछना चाहिए? कौन है जो इन प्रबल विरोधियों के उच्छृङ्खल वेगों का योग कराकर एक ऐसा समञ्जस ऊर्ज उत्पन्न करे जिससे विश्वजनीन कल्याण सम्पन्न हो? यों तो नेता सभी हैं, पर कर्मकुशल **योगेश्वर** कृष्ण के सिवा इस योग की साधना कोई नहीं कर सकता।

धर्मराज की राजसूय-सभा बैठी है। बड़े बड़े पुरुष, सुपुरुष, अतिपुरुष और पुरुषाभास भी विराजमान हैं। प्रथमपूज्यता का प्रश्न उपस्थित है। निर्णय विवादग्रस्त हो रहा है। आजन्म ब्रह्मचारी सकलशास्त्र-निष्णात परम आप्त कुरुप्रवीर भीष्म पितामह निर्णय देते हैं—"चक्रपाणि कृष्ण ही पुरुषोत्तम हैं, इन्हीं की प्रथम पूजा होनी चाहिए।"

'केशव कहि न जाय का कहिए।'

१—Cf. urge.

पुरुषोत्तम का साहित्य

१. यदि मर्यादापुरुषोत्तम (राम) की उपासना करनी है तो रामायण पढ़िए।

२. यदि लीलापुरुषोत्तम की लीला देखनी है तो भागवत पढ़िए।

३. यदि पुरुषोत्तम के नामों का अद्भुतरस पान करना है तो 'सहस्र नाम' पढ़िए। (सहस्र नाम=गोपालसहस्रनाम, विष्णुसहस्रनाम आदि)।

४. यदि पुरुषोत्तम का योग साधना है तो गीता पढ़िए।

५. यदि मर्यादा (=यज्ञ), लीला (=स्वभाव), नाम और योग सभी का अनोखा विवेचन पढ़ना है तो ऋषियों की ऋचाएँ पढ़िए—ऋग्वेद में।

× × × ×

यों तो वेद, पुराण, इतिहास, काव्य आदि सभी पुरुषोत्तम के गुणगान से ही भरे हैं; पर आप किसी एक को ही ले लीजिए।

१. नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये
सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने 'पुरुषाय' शाश्वते
सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥

—विष्णुसहस्रनाम

२. वन्दे 'महापुरुष' ते चरणारविन्दम् ।

— भागवत

३. अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥

—गीता

वेदवचनामृत

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते ॥
वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः। वेदा ये अध्यासते ॥
नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्या स्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः ॥
अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति। कृतानि या च कर्त्वा ॥
स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्। प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥

—ऋग्वेद १।२५।८-१२.

पुरुषोत्तममास की पूजा

राधया सहितः कार्यः सौवर्णः पुरुषोत्तमः ॥
तस्य पूजा प्रकर्तव्या विधिना भक्तितत्परैः ॥

— बृहन्नारदीयपुराण

पुरुषो० मा०, अ० २०।५३ ।

अर्थ—राधा के साथ पुरुषोत्तम (कृष्ण) की सोने की प्रतिमा बनाकर पूरी भक्ति के साथ विधिवत् उस मूर्ति की पूजा करनी चाहिए।

पुनर्ग्रामाः पुनर्वित्तं पुनः पुत्राः पुनर्गृहम् ॥
पुनः शुभाशुभं कर्म न शरीरं पुनः पुनः ॥

— बृहन्नारदीयपुराण

पुरुषो० मा०, अ० २०।५४ ।

ग्राम, धन, लड़केबाले, घरबार और भले बुरे कर्म फिर होते ह, अर्थात् एक बार नष्ट होने पर भी पुनः मिल जाते ह, किंतु शरीर (नष्ट होकर) पुनः नहीं मिलता ।

अरविन्द के पुरुषोत्तम

(ले० — श्री पद्मनारायणजी)

अरविन्द के इसी 'पर सत्य' को कहते हैं पुरुषोत्तम "जो अपनी राधा (निज चैतन्य की परमाशक्ति) के संग रहते हुए इन सब अभिव्यक्तियों को अपनी इच्छा से अपने भीतर समेट लेते हैं और फिर जब चाहे बाहर प्रकट कर सकते हैं" (देखो गीताधर्म का गङ्गाङ्क पृ० ४६९) ।

'गीता के पुरुषोत्तम, ही अरविन्द के लक्ष्य हैं' । वे कहते हैं —

"हमारा लक्ष्य है परम सत्य भगवान् को पाना, उनकी चैतन्यशक्ति के द्वारा प्रत्येक बात का अनुभव करना और व्यावहारिक प्रयोग में उसे नीचे उतार लाना, ताकि उस महाशक्ति के स्पर्श से समस्त आधार (शरीर, प्राण, मन) शुद्ध होकर दिव्य हो जाय । और तभी इस जड़जगत में से गुप्त चैतन्य का प्रस्फुटन किया जा सकता है और सदा के लिये स्वर्ग की स्थापना यहीं की जा सकती है ।"

राधा

यहाँ लक्ष्यप्राप्ति का उपाय भी बता दिया गया है । गीता पढ़कर हम जिस पुरुषोत्तम की ओर बढ़ते हैं, उनको नीचे उतारकर अपने बीच लाने का यही उपाय है कि हम उनकी ही पराशक्ति की उपासना करें । भगवान् के आत्मचैतन्य की परमाशक्ति श्री राधारानी की उपासना करें । राधा की उपासना अनेक सन्त और कवि करते आए हैं । पर आजकल राधा का स्वरूप ही लोग भूल गए हैं, इससे बड़ा भ्रम फैल रहा है । कई लोग राधा को लेकर 'ईश्वर' तक की 'छीछालेदर' करते हैं— अपने को, अपनी संस्कृति को तो वे पहले ही खोखला मान लेते हैं । ऐसे मोह के समय हमें गीता और गीताविद् (अरविन्द) की सहायता से राधा का स्वरूप पहचानने का यत्न करना चाहिए । पहचान होने पर तो प्रेम* हो ही जायगा । स्वयं राधा ही परम प्रेम† रूपा हैं । भगवदाराधन का नाम ही तो राधा है ‡ ।

---

* बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती । (तुलसी रामायण)

† सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा । (नारद सूत्र २)

‡ जो अरविन्द के पुरुषोत्तम और राधा के बारे में अधिक जानना चाहें, वे पढ़ें । 'अरविन्द' नाम की पुस्तिका (पद्मनारायण आचार्य, एम० ए० द्वारा लिखित और विद्यानन्दग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित) ।

'महापुरुष' रामकृष्ण[१]

(ले०—लोकसंग्रही परमहंस स्वामी विद्यानन्दजी 'गीताधर्म' के संस्थापक, काशी)

रामकृष्ण

रामकृष्ण 'परमहंस' थे। परमहंस का आदर्श भारत का पूर्ण आदर्श है। इस आदर्श को पूर्णता को देश-विदेश के सभी बड़े विद्वान् मानने लगे हैं। रोमां रोलां जैसे फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् ने हमारे परमहंस पर जो लिखा है, देखना चाहिए।

आदर्श

वह परमहंस का आदर्श क्या है ? भागवत और गीता में जिस बड़े आदर्श का वर्णन है, वही परमहंस का धर्म है। त्यागी-महात्मा का जीवन है। अब हमारा काम है कि इन ग्रन्थों को पढ़ें और उनके आदर्श से परमहंस रामकृष्ण का जीवन मिलान करके देखें। यह बड़ा सुन्दर स्वाध्याय होगा।

सब से बड़ी बात

यह विद्वानों और विद्यार्थियों का काम है। पर जिन्हें रामकृष्ण के जीवन की उपासना करनी है, उन्हें केवल एक बात समझ लेनी चाहिए; वह है 'नर में नारायण को देखना'। तुलसीदास के शब्दों में कहें तो 'जग को सियाराममय समझना' सब से बड़ी बात है—

'सियाराममय सब जग जानी।
करौं प्रणाम सप्रेम सुबानी॥'

तुलसी के समान ही प्रत्येक परमहंस इस जग को भगवान् का विराट् और विशाल रूप समझता है (देखो गी० ११ अध्याय का विश्वदर्शन)। हमारे 'रामकृष्ण' जग में ही भगवान् को देखते थे। उन्हें इसी जीवन में भगवान् का दर्शन होता था, समाधि लग जाती थी। इसी से उनका सबसे बड़ा उपदेश था, 'नर' की ही सच्ची सेवा करो—नारायण तुम्हें दर्शन देंगे। दरिद्रनारायण, आर्तनारायण आदि की सेवा करो, उस दरिद्र अथवा आर्त (रोगी) शरीर के भीतर छिपे भगवान् कभी दर्शन दे ही देगें। भीतर से बाहर ही निकलने की देर तो है !

तुलसीदास ने भी यही बात कही थी—

तुलसी या जग आइके सब सों मिलिए धाय।
का जाने का वेष में 'नारायन' मिलि जाय॥

इस प्रकार जो सारे विश्व से—अपने सभी भाइयों से प्रेम करने लगता है उसे अवश्य ही प्रेम-भगवान् मिल जाते हैं।

लोकसंग्रह

इसी विश्वप्रेम और नरपूजा को तो लोक-संग्रह कहते हैं। परमहंस लोकसंग्रही होते हैं। रामकृष्ण लोकसंग्रही थे।

धर्मों की एकता

रामकृष्ण के इसी विश्वसंदेश का एक

---

[१]—महापुरुष = (१) भगवान्, (२) संन्यासी के लिये रूढ़ हो गया है, (३) बड़ा आदमी, महाजन। रामकृष्ण के बारे में ये तीनों अर्थ घटते हैं। रामकृष्ण शताब्दी के उत्सव में स्वामीजी ने जो भाषण दिया था वही यह है। 'पुरुषोत्तमाङ्क' में महापुरुषों की जीवनी पढ़नी चाहिए।

वाक्य और है जिसका थोड़ा अधिक खुलासा होना चाहिए। वह है सब धर्मों की एकता का भाव।

जग को सियाराममय जाननेवाला कभी किसी दूसरे मतवाले से द्रोह नहीं कर सकता। वह कभी किसी दूसरे धर्मवाले को सता नहीं सकता। वह तो अपना धर्म पालता है, और परधर्म और विधर्म के फेर में नहीं पड़ता। अपना काम करने से जिसे फुरसत नहीं मिलती, वह दूसरे को सतावेगा कैसे?

हमारे भारत का तो मूलमन्त्र यही है कि सब-धर्म अच्छे हैं। सभी ईश्वर को पाने के रास्ते हैं। तुम अपने रास्ते चलो।

बड़ा प्रसिद्ध श्लोक है—

'आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्,
सर्वदेवनमस्कारः, केशवं प्रति गच्छति'
—विष्णुस०

जैसे आकाश से पानी गिरता है—नदी में जाता है, झील में जाता है, गली में गिरता है, खेत में गिरता है, पर वह अन्त में किसी न किसी रूप में सागर में ही जाता है। उसी प्रकार किसी भी देव (और धर्म) को नमस्कार करो, वह एक ईश्वर को ही मिलेगा।

हमें उस एक की ही शरण लेनी चाहिए और सब झगड़ों से दूर रहना चाहिए। इसी से भगवान् कृष्ण ने गीता के अन्त में कहा है, सब 'त्याग' कर केवल मेरी, 'एक' की शरण लो—

'मामेकं शरणं व्रज'

+ + + +

भगवान् के कहने के बाद गीता के बिलकुल अन्त में संजय ने कहा कि जहाँ नारायण और नर दोनों रहते हैं वहीं श्री, विजय आदि सब कुछ रहता है। अतः नारायण के सखा नर को और नर के भीतर (= सब नरों के भीतर) रहनेवाले नारायण को कभी न भूलना। अन्त में वही शिक्षा फिर से कहकर बैठता हूँ।

सियाराममय सब जग जानी।
करौं प्रणाम 'सप्रेम' सुबानी॥

स्थाने

(ले०—श्री गीतानन्द शर्मा)

मलनाम्नि न ते द्वेषो न रागोऽधिकनाम्नि ते।
तुल्यनिन्दास्तुतित्वेन स्थाने त्वं पुरुषोत्तमः॥

हे पुरुषोत्तम मास! तुम्हें लोग मलमास अर्थात् सदोष मास कहते हैं, किंतु उस नाम से तुम्हारा कोई झगड़ा नहीं। इसी प्रकार लोग अधिक मास अर्थात् श्रेष्ठ मास भी कहते हैं, पर उस नाम में तुम्हारा कोई राग नहीं। स्तुति और निन्दा में बराबर होने के कारण तुम्हारा पुरुषोत्तम यह नाम उचित ही है। सारांश यह है कि तुम न तो सदोष कहनेवालों की कोई क्षति करते हो और न श्रेष्ठ कहनेवालों का कोई लाभ। इसलिये तुम पुरुषोत्तम के समान ही पुरुषोत्तम हो।

महापुरुष का सम्मान

पुरुषोत्तममास में

श्रीसंयुतो भूतिभृतोऽपि 'नीतिमान्' न्यायी नराणां 'पुरुषः' 'सुखी' भवान् ।
भवन्तमालोक्य गुणैर्वरं जना उदीरयन्तीह नृपं नु विक्रमम् ॥
'वाग्योगवित्' कश्चन नावलोकितो विद्वन्यथावद् भवतोऽधिकोऽन्यः ।
नीरं न मुञ्चन्ति न के हि वारिदा मघाघनः किंतु पटुर्विशेषतः ॥
शं सन्ततं न्यायपरायणो भवांस्तनोति न्यायासनतः क्षितौ यथा ।
करोति विद्याव्रतिनां गणे तथा 'विद्या'प्रचारार्थमनुष्ठितं नवम् ॥
रती रमाया भवतः पदाब्जयोर्ब्राह्मी सुवर्णा रसनाग्रनर्तकी ।
निपीय भूयोऽपि यदीरितं तथा समाद्रियन्ते न जनाः सुधामपि ॥
'योगः' परं कर्मसु कौशलं पुरा पार्थाय युद्धे 'प्रतिबोधितम्' नु यत् ।
गीतार्थसम्पादितजीवने भवत्यालोक्यते तत्परिपूर्णतां गतम् ॥
प्रतापतौ पालयति प्रजाः पुरा यथा क्षितौ शान्तिरभूत् सुखप्रदा ।
आकण्ठमानन्दरसं पिबन्ति ते तथैव लोका भवतः सुशासने ॥
ईदृग्गुणैः प्रीतिमुपेत्य सम्राडुपाधिनाऽलंकृतवान भवन्तम् ।
ईशान-'मन्तःकरणे' स्तुमो वयं कुर्यात्स एवं भवतः सदा 'जयम्' ॥

गीताधर्मपरिवार इस पुरुषोत्तममास में अपने किए हुए (कृत) और (कर्त्वा) किए जाने-वाले—दोनों प्रकार के कामों को देखता है। यही तो 'राजा वरुण' की सीख है।

नियोगीजी गीता, गीताधर्म और गीतासम्मे-लन तीनों के बड़े सहायक हैं। ऐसे पुरुष के गुण-गान में हमें सुख मिलता है; क्योंकि वे हमारे गीता-परिवार के हैं। और उनके चरितवर्णन से अन्य जन भी इसी प्रकार अपना जीवन कर्मयोगमय बना सकते हैं, सुखी हो सकते हैं।

आदर्श मनुष्य को मिलता क्या है—१ श्री (मोक्ष), २ विजय (अर्थ और कीर्ति), ३ भूति (काम-भोग), ४ ध्रुवा नीति (धर्म)—

तत्र श्रीर्विजयो भूति-
र्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम। गीता १८।७८

जो श्री और नीति का धनी है उसके पास अन्य दो तो रहते ही हैं। वे उनके 'सहचर' हैं।

हमारे नियोगीजी श्रीमान् हैं और (कीर्ति-मान् होने पर भी) नीतिमान् हैं। लोग जब कुछ करने के बाद कीर्ति कमा लेते हैं तो उन्हें 'अतिमान्' हो जाता है और वे गीता की ध्रुवा नीति (=धर्म) को भूल जाते हैं। पर नियोगीजी दृढ़ गीताधर्मी हैं। इसी से हम उन्हें 'पुरुष' कहते हैं।

श्री, नीति, पुरुष, सुखी (गीता का योगी), 'वाग्योगविद्' (=महाभाष्य का योगी) आदि शब्द हमने 'अन्तःकरण' में सोच-समझकर रखे हैं। 'गीताधर्मी' पुरुष में ये सब गुण होने चाहिए।

अब पूरे 'पत्र' का ही लोकभाषा में—सरल हिन्दी में अनुवाद कर देते हैं, जिससे यह गुणानुवाद सभी लोगों की समझ में आ जावे।

१

लोगों के बीच आप बड़ी शानवाले, भूति से युक्त होने पर भी, नीति के अतिशय जानकार और न्यायी के रूप में प्रख्यात हैं। अपने गुणों से आप वरणीय (=वर) अर्थात् श्रेष्ठ हैं, इसलिये आपको देखकर लोग राजा विक्रमादित्य का नाम लेते हैं। (उज्ज-यिनी के विक्रमादित्य स्कन्दगुप्त का न्याय प्रसिद्ध है! आपके न्याय को देखकर भी लोगों को विक्रमादित्य की याद आती है!)

नोट—श्री = १. शान २. यश ३. शान्ति और मोक्ष।

२

विद्वन्, आपसे बढ़कर कोई दूसरा ठीक ठीक वाणी का प्रयोग करनेवाला (कुशलवक्ता) नहीं देखा गया, इसलिये आपकी जय निश्चित है, यह व्यक्त होता है। देखिए—

"यस्तु प्रयुङ्क्ते कुशलो विशेषो
शब्दान् यथावद् व्यवहारकाले।
सोऽनन्तमाप्नोति जयं परत्र,
वाग्योगविद्.................॥");

(महाभाष्य पस्पशाह्निक)

पानी बरसाना कौन मेघ नहीं जानता? किंतु मघा नक्षत्र के बादल इस कार्य में विशेष चालाक होते हैं। (बातें सब कर लेते हैं, पर कुशलवक्ता विरला ही होता है!)

३

जिस प्रकार पृथ्वी पर अपने न्याय के आसन से न्यायपरायण होकर आप सदा कल्याण फैला रहे हैं, उसी प्रकार विद्या के व्रती (विद्यार्थियों) के बीच में भी विद्या के प्रचार के लिये नए नए कार्यों को करते हैं। (आपके ये कार्य नागपूर युनिवर्सिटी के वाइस चांसलर पद से देखे जा चुके

है, और उससे रिटायर्ड हो चुकने पर आज भी देखे जाते हैं।)

४

आपके चरणकमलों में रमा अर्थात् लक्ष्मी रमती है। (कमलों में ही लक्ष्मी का वास माना गया है, और दूसरी ध्वनि यह है कि आप पैरों से उसे ठुकराते हैं तो भी आकर पैरों पड़ती है।) अच्छे वर्ण—(१—रूप; २—अक्षर)-वाली सरस्वती आपकी रसना पर नाचती रहती है। जिसे बारंबार प्रेम से सुनकर लोग अमृत का भी आदर नहीं करते।

५

प्राचीन काल में अर्जुन को युद्धस्थल में भगवान् कृष्ण ने जिस 'योगः कर्मसु कौशलम्' की शिक्षा दी थी, वह योग आपके जीवन में परिपूर्णता को प्राप्त हो चुका है। क्योंकि आपने गीता के ही अर्थों से अपने जीवन को सुधारा है।

६

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र के प्रजापालन करते समय सुख को देनेवाली शान्ति जिस प्रकार पृथ्वी पर छाई हुई थी, उसी प्रकार आज आपके शासन में भी लोग छककर आनन्दरस का पान करते हैं।

७

भारत के सम्राट् ने आपके ऐसे ही गुणों से प्रसन्न होकर आपको सी० आई० ई० की पदवी से अलंकृत किया है। प्रसन्न मन से हमारी भी शङ्करजी से यह प्रार्थना है कि वे प्रसन्न होकर इसी प्रकार सदा आपकी विजय करें।

'विनोद'

स्वामीजी का आत्मचरित

इस पुरुषोत्तममास में स्वामीजी अपने बीते हुए चरित को कहकर अपना विनोद कर रहे हैं। उससे उन्हें रस मिलता है और हमें शिक्षा मिलती है। स्वामीजी 'स्वामीजी' कैसे हुए? उन्हें भगवान् (पुरुषोत्तम) कैसे मिले? इन बातों का हमें परिचय मिलता है।

स्वामीजी को भगवान् ने दर्शन दिया था। हमें भी दर्शन दे सकते हैं। इसी से ध्यान देकर पढ़ना चाहिए कि स्वामीजी को भगवान् कैसे मिले।

तारीफ तो यह है कि स्वामीजी अभी भी कहते हैं कि हम भगवान् को खोज रहे हैं; भगवान् से इशारा मिला है। 'दर्शन कभी मिलेगा'।

पर हम कहते हैं उन्हें भगवान् मिले थे—भगवद्दर्शन मिला था।

विनोद पढ़िए; आपको भी विश्वास हो जावेगा। वह घटना अद्भुत है, पर है 'मानुष' ही।

देखिए, सब महापुरुषों का आत्मचरित पढ़िए, पर जब तक आप अपने आत्मचरित को नहीं पढ़ेंगे, अपनी बीती बातों पर नहीं विचारेंगे तब तक सच्चा ज्ञान नहीं होगा।

तुलसी ने अपनी बातों पर विचार कर ही कहा था—

अब लौं नसानी प्रभु अब ना नसैहौं।
रामकृपा भव निशा सिरानी, जागे पुनि न डसैहौं॥

केवल दो बातें है—

१. महापुरुषों का आत्मचरित पढ़ना (और शिक्षा लेना)।

२. अपने आत्मचरित पर विचार करना और आगे के लिये सोचना कि क्या करना चाहिए।

कृष्णाष्टक

(कृष्णसंबन्धी)

१—कृष्ण कहाँ रहते हैं ?

२—कृष्ण बुलाए कैसे जाते हैं ?

३—कृष्ण की पूजा कैसे होती है ?

४—कृष्णप्रेमी मनुष्य पवित्र कैसे होता है ?

५—कृष्णभक्त संकल्प कैसे करता है ?

६—कृष्णप्रेमी का आचारण कैसा होता है ?

७—कृष्णप्रेमी क्या चाहता है ?

८—कृष्णप्रेम से मिलता क्या है ?

१. निःसंशयेषु सर्वेषु नित्यं वसति वै हरिः ।

—महा० भीष्मपर्व

२. 'अनन्यया भक्त्या' —गीता० ११।५४

३. त्याग और शरणागति से (देखो, व्यासाङ्क के प्रश्नोत्तर में गुरुपूजा की विधि है। वही कृष्ण-पूजा की भी विधि है)।

४. कृष्णप्रेमी कृष्णस्मरण से ही बाहर-भीतर शुद्ध हो जाता है।

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा
सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं
स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

५. भक्त का संकल्प—

ॐ तत्सदिति
(अथवा कृष्णप्रीत्यर्थं)

६. भगवदाराधन का जीवन ही कृष्णप्रेमी का आचरण है। वह राधा के समान प्रेम और मधुरता की मूर्ति बन जाता है। और उसे सारा संसार कृष्ण-मय देख पड़ता है। वह जीवन को कृष्णलीला समझ-कर सभी कार्य करता है, किसी से मुँह नहीं मोड़ता; जो मिलता है उसे लेता भी जाता है, पर आशा नहीं करता, किसी की परवाह नहीं करता; क्योंकि वह तो कृष्ण की आज्ञा से सब कुछ करता है।

वह सात्त्विक त्याग करता है। कार्य करता है, पर उसकी परवाह नहीं करता। सच्चा ज्ञानी और सच्चा दास दोनों ऐसा ही करते हैं। दोनों ही त्यागी होते हैं। दोनों ही कृष्ण के सच्चे भक्त होते हैं।

कृष्णप्रेमी कहता है—करिष्ये वचनं तव।
कृष्ण कहते हैं—मामनुस्मर युद्धय च
(युद्ध = जीवनयुद्ध होता है)

७. कृष्णप्रेमी चाहता कुछ नहीं। वह केवल कृष्ण को चाहता है। जहां कृष्ण हैं वहां क्या नहीं है? फिर चाह कैसी!

८. सब कुछ मिलता है। प्रेम से कृष्ण ही मिल जाते हैं और फिर जहां कृष्ण हैं, उनके प्रेमी हैं, वहां श्री, विजयादि क्या नहीं है!

तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।

प्रश्नोत्तर

महापुरुष कृष्ण की जीवनी

गीता पुरुषोत्तम कृष्ण की आत्मकथा है।

(ले०—श्री गीताकृषमण्डूक गीतानन्द शर्मा)

परायण—कृष्णाङ्क के लिये भगवान् की जीवनी चाहता हूँ। लेकिन आपसे पूछने में पूरा सकुचा भी रहा हूँ; क्योंकि आप तो गीताविषयक प्रश्नों का उत्तर देते हैं और कृष्ण भगवान् की जीवनी से गीता का......।

गीतानन्द—अतिघनिष्ठ सम्बन्ध है। मैं गीता से ही आपके सब सवालों को हल करूँगा। बिना किसी संकोच के पूछते जाइए।

परायण—मैं मन में जानता था कि आपसे आज कुछ विलक्षण बातें सुनने को मिलेंगी! अच्छा, तो मेरी ओर से "याचने का दरिद्रता ?"। बताइए, भगवान् का जन्म कब हुआ ?

गीतानन्द—न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।

अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥

—गीता १०।२

अर्थात् मेरे जन्म को न तो देवताओं ने जाना है, न महर्षियों ने। अर्जुन, तुम इतना निश्चय जान लो कि मैं (इन) देवताओं और महर्षियों (सब) का आदि हूँ। सबसे पहले का हूँ।

इसलिए इतना ही कहा जा सकता है कि भगवान् का जन्म देवताओं और ऋषियों आदि की सृष्टि के पहिले हुआ।

परायण—भगवान् अपने को गीता में **अज** कहते हैं—

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।

असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

--गीता० १०।३

जो यह जानता है कि मेरा (परमात्मा का) कभी जन्म नहीं होता, मेरा कोई आदि नहीं और मैं (सब लोकों का) बड़ा ईश्वर हूँ, वही मनुष्यों में मोह से छूटा हुआ पुरुष है। वह सब पापों से मुक्त हो जाता है।

तब ऐसे **अज** के जन्म का स्वरूप क्या है, यह जानने का कुतूहल किसको न होगा ?

गीतानन्द—योगवासिष्ठ में कहा हुआ है कि परब्रह्म परमात्मा को जब 'अहमस्मि' (मैं हूँ) ऐसी अहंकारवाली स्फुरणा हुई, तो वे मायी (=माया-वाले) हुए। इसी माया से युक्त होकर प्रकट होने को भगवान् का **प्रभव** अथवा **जन्म** कहते हैं।

परायण—तब तो उनके मां-बाप भी होंगे ? क्योंकि जो जन्म लेता है, उसके मां-बाप भी होते हैं।

गीतानन्द—जरूर। ईशोपनिषद् में है—

"कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः।"

—ईश।८

स्वयं वह मां है और स्वयं ही बाप।

परायण—थोड़ा और स्पष्ट करके कहिए तो अधिक अच्छा हो।

गीतानन्द—गीता कहती है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥

—गीता ४।६

यद्यपि मेरा कभी जन्म नहीं होता, मुझमें कभी कोई विकार नहीं होता और मैं सभी प्राणियों का ईश्वर हूँ, तौ भी अपनी (=स्वा) प्रकृति में अधिष्ठित रहकर अपनी माया से उत्पन्न होता हूँ।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।

—गीता १४।३

हे भारत, महत् ब्रह्म (प्रकृति) मेरी ही योनि है। मैं उसी में गर्भ रखता हूँ। उस (गर्भ)-से सब प्राणियों की उत्पत्ति होती है।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥

गीता १४।४

हे अर्जुन, कीट-पतङ्ग आदि सब योनियों में जो मूर्तियाँ जन्म लेती हैं उनकी 'योनि' अर्थात् उत्पन्न करनेवाली मां महत् ब्रह्म (प्रकृति) है और मैं बीज देनेवाला 'पिता' हूँ।

मतलब यह है कि **स्वा प्रकृति** या परा प्रकृति-रूप से भगवान् अपना **बीजप्रदः पिता** हैं और **आत्ममाया** या **अपरा प्रकृति** अथवा महद्ब्रह्म-रूप से भगवान् अपनी योनि अर्थात् **माता** हैं।

परायण—जन्म की कहानी तो सुनी। क्या हम भगवान् की मृत्यु के बारे में भी पूछ सकते हैं?

गीतानन्द—क्यों नहीं? जैसे **अज** का जन्म सृष्टि से पूर्व बतलाया हुआ है, वैसे ही उनकी मृत्यु को भी प्रलय के बाद समझ लेना चाहिए। भगवान् के जन्म और मृत्यु का अर्थ है—ब्रह्म की भगवत्ता का आदि और अन्त; निर्गुण का सगुणभाव और सगुण का निर्गुण में लय। यही भगवान् का जन्म-मरण कहलाता है।

परायण—अब तो आपके विनोदगर्भित परमार्थ वचन ने मुझे कुछ ढीठ सा बना दिया है। इसलिये अब मैं उनके घर, नाम, रूप, कर्म आदि जितनी बातें एक साधारण मनुष्य के बारे में पूछी जा सकती हैं, सब क्रम से पूछूँगा। गीताधर्म के पाठकों के लिए यह एक उम्दा हास्यरस का गद्यमय विनोद ही हो जायगा।

गीतानन्द—गीता में सब बातों का उत्तर तैयार है—

मकान—

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

— गीता १५।६

जहाँ जाकर कोई लौटता नहीं है, वही मेरा परम-धाम अर्थात् रहने का घर है।

मकान पर जाने का रास्ता भी है—

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।

— गीता ८।२४

अग्नि, ज्योति अर्थात् ज्वाला, दिन, शुक्ल पक्ष और उत्तरायण के छः महीने, यह उस शुक्ल मार्ग का वर्णन है जिससे हम कृष्ण (=ब्रह्म) के पास पहुँच सकते हैं[1]।

उनके नाम का भी उल्लेख है—

...लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।

—गीता १५।१८

[1] कृष्णमार्ग से कृष्ण नहीं मिलते यही कृष्ण ने गीता में सिखाया है। (विशेष जानना हो तो गीता से अथवा गीतानन्दजी से पूछिए—सं०)

लोकव्यवहार में और वेद में पुरुषोत्तम नाम से मैं प्रसिद्ध हूँ।

रूप भी देख लीजिए—

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

—गीता १३।१३

सब तरफ उसके हाथ-पैर हैं, सब तरफ आँखें, सिर और मुँह हैं। सब तरफ कान हैं और वही इस संसार में सब पर व्याप रहा है।

नित्य बैठक का स्थान भी कितना एकान्त और अच्छा है!

हृदि सर्वस्य धिष्ठितम्।

—गीता १३।१७

वह सबके हृदय में बैठा रहता है।

भोजन—

पत्रं पुष्पं फलं तोयम्…अश्नामि।

—गीता ९।२६

पत्ता, फूल, फल और जल यही भोजन की सामग्री है।* इन चारों के बारे में आगे भी कहा है कि—

पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।

—गीता १५।१४

मैं चार प्रकार के अन्नों को पचाता हूँ।

विद्याभ्यास—

वेदविदेव चाहम्।

—गीता १५।१५

वेदों का ज्ञाता मैं हूँ।

जरा बाल-बच्चों की संख्या की ओर दृष्टि दौड़ाइए—

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥

—गीता १४।४

(अर्थ ऊपर एक बार आ चुका है।)

संसार के सभी प्राणी उस भगवान् के ही बाल-बच्चे हैं।

कहाँ तक आप पूछिएगा और मैं कहाँ तक कहूँगा? फलतः समग्र गीता ही भगवान् के जीवन-चरित्र की कहानी है।

स्वधर्म पालन ही कृष्ण की सच्ची पूजा है।

* 'पत्रं पुष्पं फलं तोयम्' से निम्न प्रकार के अन्न का बोध होता है। पत्र—शाक वगैरह। पुष्पं—गोभी, कचनार वगैरह। फलं—धान्य वा शस्य वगैरह। तोयं—दूध, मधु वगैरह तरल पदार्थ।

—लेखक

**भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर॥**

—भारतेन्दु

पुरुषोत्तममास में दो काम करो

(एक महात्मा)

१—अपने चरित को देखना।

२—हम जो कुछ जानते हैं उससे भी अधिक कुछ है। हम अपने आपको। (आत्मा) और दूसरे स्थावर, जङ्गम प्राणियों (भूत) को आँखों से देखते हैं। पर इन दोनों से परे भी कुछ है; उसे भी जानना चाहिए। वही है **परमात्मा**।

'उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः'

—गी० १५।१७

मनन का विचित्र फल—हम अपने को भी देखते हैं और दूसरों को भी। हम जब विचार करने लगते हैं कि हमारे भीतर कौन है ? अध्यात्म (आत्मा में) कौन है ? इन सब में—हमसे बाहर जो सब कुछ है उसमें, कौन है ? अधिभूत (भूतों में) कौन है ? तभी हमारी आँखें खुलती हैं; क्योंकि जो इनके भीतर है वही इनके ऊपर है।

इन्हीं सब बातों का प्रश्न-उत्तर गीता में है। पुरुषोत्तममास में गीता अवश्य पढ़िए। सुनिए, समझिए और मनन कीजिए।

पुरुषोत्तम के दो रूप

(१) 'सत्य' (२) 'मधुर'

सत्याष्टक

(ध्यान—)

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥

भागवत स्कं० १०, अ० २, श्लो० २६.

मधुराष्टक

(श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचित)

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥१॥
वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम्।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥२॥
वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥३॥
गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम्।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥४॥
करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं मरणं मधुरम्।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥५॥
गुञ्जा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥६॥
गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं भुक्तं मधुरम्।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥७॥
गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥८॥

व्यवहार में—

भगवान् मनु ने कहा है कि व्यवहार में इसी मीठे और सच्चे दोनों रूपों को मिलाकर उपासना करो।

सत्यं ब्रूयात्
प्रियं ब्रूयात्।
सच बोलो
मीठा बोलो॥

ગુજરાતી અને હિન્દી ના વર્ણમાલા

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ
અ આ ઇ ઈ ઉ ઊ ઋ ૠ ઌ ૡ

ए ऐ ओ औ अं अः
એ ઐ ઓ ઔ અં અઃ

क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ
ક ખ ગ ઘ ઙ, ચ છ જ ઝ ઞ

ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न
ટ ઠ ડ ઢ ણ, ત થ દ ધ ન

प फ ब भ म
પ ફ બ ભ મ

य र ल व श ष स ह
ય ર લ વ શ ષ સ હ

क्ष त्र ज्ञ
ક્ષ ત્ર જ્ઞ

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ०
૧ ૨ ૩ ૪ ૫ ૬ ૭ ૮ ૯ ૦

મહાપુરુષ સ્વામી વિદ્યાનન્દ

"મહાવિદ્યા" માસીકના માર્ચ—એપ્રિલના અંક ઉપર થી ઉધૃત.

(લે૦—મણીભાઈ જશભાઈ દેશાઈ)

સ્વામી વિદ્યાનન્દજીનું નામ પ્રત્યેક ગીતાપ્રેમી જાણે છે. છતાં વાંચક વર્ગ તરફથી પૂછવામાં આવે છે કે,—

"સ્વામી વિદ્યાનન્દજી કોણ છે ?"

"એક સાંન્યાસી છે."

અરે ભાઈ, એતો ઠીક, પણ મારેતો એમનુ નામ-ગામ, ન્યાત-જાત આદિ જાણવું છે.

એમની જન્મ ભૂમિ, બનારસથી સોળ ગાઉ દૂર આજમગઢ જિલાનું મહાદેવપારા ગામછે. એમની જાતી સરયુપારી બ્રાહ્મણછે. ગોત્ર શાણ્ડિલ્ય છે, તથા તેમનુ પૂર્વાશ્રમનું નામ હતુ મુરારી ત્રિપાઠી.

એટલીજ સ્વામીજીની પૂર્વકથા છે. તેનાથી વધારે કહેવાથી અત્રે કાંઈ લાભ નથી. તેમનુ ચાળીસ બેંતાળીસ વર્ષનું જીવન લખવામાં ઘણો સમય લાગે તેમ છે. તેથી સ્વામીજીમાં જે વિશેષતાઓછે, તેનુંજ યથામતિ ગુણ-ગાન કરવાનું અમારે માટે તથા અમારા પાઠકોને માટે વધારે સારુ છે. એમના વ્યક્તિગત જીવન કરતાં, એમના લોક જીવનની ચર્ચા કરવી, એજ અધિક લાભપ્રદ થશે.

લોક જીવનનું ચિત્રણ પણ ઘણી રીતે થઈ શકે છે. તોપણ તેમાં સૌથી વધારે પ્રત્યક્ષ, જે આપણા સર્વની સામેજ છે, તેને ટૂંકાણમાં જોવાનો પ્રયત્ન કરીશું. એમ તો સ્વામીજીનું આખુ જીવન લોક-સંગ્રહનુંજ જીવન છે, પણ ભારતનાં જુદાં જુદાં સ્થાનોમાં સંસ્થાપિત સંસ્થાઓ, તે જીવનનાં મૂર્ત ઉદાહરણ છે.

(૧) ગીતા-મન્દિર, કરનાળી.—સ્વામીજીએ વડોદરા રાજ્યમાં નગરે નગર અને ગામે ગામ ફરીને ગીતાનો પ્રચાર કર્યો છે. અને એજ ગીતા-પ્રચારના ઉદ્દેશને અર્થે, પોતે વડોદરા પ્રાન્તના, તિલકવાડા પેટા મહાલના, નર્મદા તટે આવેલા કરનાળી ક્ષેત્રમાં એક ગીતા-મન્દિરની સ્થાપના કરી છે. અને તેને અંગે તેજ ભવ્ય અને વિશાલ મકાનમાં ગીતા-પુસ્તકાલયની પણ યોજના થએલી છે. જે ગીતા પ્રેમી ત્યાં જાય છે, તે નર્મદાના પવિત્ર જળમાં સ્નાન કરે છે, સ્વામીજીના મન્દિરમાં ભોજન કરે છે, અને પોતાને અનુકૂળ કોઈ પણ ભાષામાં ગીતા ઉપર થએલાં ભાષ્યો, ટીપણો, નિબન્ધો વગેરે પુસ્તકાલયમાંથી લઈ તેનું અધ્યયન કરી શકે છે. (જુવો કરનાળીનું વર્ણન—પં૦ દયાશંકર દુબેનુ "નર્મદા-પરિક્રમા" નામનું પુસ્તક, પૃષ્ટ ૨૦૭)

(૨) વિદ્યાનન્દ-સત્સંગ-મણ્ડળ, કામનાથ મહાદેવ અમદાવાદ, અમદાવાદમાં સ્વામીજીએ ત્રણ ચાર વર્ષે ગીતાની કથા પૂરી કહીને બધી જનતાના હૃદયમાંજ ગીતામન્દિર બનાવી દીધુ છે. સ્વામીજીની કથા માં ત્યાં આઠ દશ હજાર શ્રોતાઓ નિયમિત રીતે ભાગ લે છે. પણ સ્વામીજી હમેશ અમદાવાદ માં રહેતા નથી. 'જોગી કાકે મીત' એતો આજ અહીં તો કાલે ત્યાં. તેથી સ્વામીજીએ

આ સત્સંગ-મણ્ડળ દ્વારા એવો પ્રબન્ધ કરી દીધો છે કે ત્યાં ગીતાની કથા ચાલુ રહે. તથા સત્સંગ-પ્રેમિયોને, અન્ય વિદ્વાનો, મહાત્માઓ તથા સન્તોના સત્સંગનો લાભ મળતો રહે. આ સત્સંગ-મણ્ડળના કાર્યકર્ત્તા શેઠ બદ્રીદાસ, શ્રી કાન્તિલાલ આદિએ પ્રયાગના પ્રથમ અખિલ ભારતીય ગીતા સમ્મેલનની સારી સેવાકરી હતી.

(૩) વડોદરાનું ગીતા-મણ્ડળ. કરનાળીનું ગીતા-મન્દિર વડોદરા સ્ટેટમાંજ છે. વડોદરા નગરમાં પણ સ્વામીજી દ્વારા સંસ્થાપિત ગીતા-મણ્ડલ છે. એના પ્રધાન કાર્યકર્ત્તા છે, શ્રીમણીભાઈ જશભાઈ દેશાઈ.

(૪) બોરશદ (બ્રિટિશ) તાલુકાના વીરશદ ગામે એક સુન્દર આશ્રમ સ્વામીજીએ સંસ્થાપિત કરેલો છે, તેનું નામ શ્રી વિદ્યાનન્દાશ્રમ હોઈ, તેનો એકંદર પ્રબન્ધ કોન્ટ્રાકટર શ્રી ઉમેદભાઈ પટેલ કરે છે.

(૫) નાગપૂરમાં જે મેદાનમાં સ્વામીજી પ્રવચન કરે છે, તે ગીતા-મેદાનના નામથી પ્રસિદ્ધ થઈ ગયું છે. ત્યાંપણ એક ગીતા-મણ્ડળ સ્થાપિત થઈ ગયું છે. ત્યાં તો એક હાઈસ્કુલ પણ સ્વામીજીના નામથી ખુલ્લી મુકાઈ ગએલી છે.

(૬) જબલપૂરમાંપણ સ્વામીજીએ મોટા પ્રમાણમાં ગીતા પ્રચાર કરેલો છે. અને ત્યાં શેઠ રામકુમારજીના સુપ્રબન્ધથી એક ગીતા-સભા ચાલુ થએલી છે.

(૭) આ પ્રમાણે નાની મોટી અનેક ગીતા સંસ્થાઓ સ્વામીજી દ્વારા ઘણાં સ્થાનોમાં સંસ્થાપિત થએલી છે, અને તે ચાલુ છે. પણ કાશીની ગીતા-સંસ્થા આ સમયે ઘણા ઉત્સાહથી સુન્દર કામ કરી રહી છે.

કાશીમાં આ સમયે --

(ક) 'ગીતા-ધર્મ' માસિક,
(ખ) 'ગીતા-ધર્મ' પ્રેસ,
(ગ) 'ગીતા-ધર્મ' પુસ્તકાલય,
(ઘ) 'ગીતા-ધર્મ-વિદ્યાલય' અને
(ઙ) વિદ્યાનન્દ ગ્રન્થમાળા

નું કામ સન્તોષ કારક ચાલી રહ્યું છે. આ સર્વના સંસ્થાપક સ્વામી વિદ્યાનન્દજીજ છે. ગીતા-ધર્મ માસિકના આઠ અંક નિકળી ચુકેલા છે. આ થોડા સમયમાં પણ તેની છ હજાર પ્રતો પ્રતિમાસે છપાય છે. તે લોકપ્રિય હોવાની સાથે તેનુ સ્વરૂપ અનોખુ છે. તેના સર્વ અંકો વિશેષાંક હોય છે. અર્થાત્ પ્રતિમાસના અંકમાં એક વિષય વિશેષ લઈને તેના ઉપર જુદા જુદા દૃષ્ટિબિંદુથી વિચારણા કરવામાં આવે છે. આ પ્રકારે આપત્ર દ્વારા પ્રાચીન ભારતીય સંસ્કૃતિ, કળા, સાહિત્ય અને ઇતિહાસનો તેના વાસ્તવિક સ્વરૂપમાં પરિચય કરાવી દેવાનો સ્વામીજીનો તથા કાર્યકર્ત્તાનો હેતુ છે. આ લક્ષ્યની પૂરતી ને સારૂ, વિદ્યાલય, ગ્રંથમાળા આદિનો પણ આરમ્ભ થઈ ગએલો છે.

(૮) આ ઉપરાન્ત બીજી અનેક સંસ્થાઓના તથા પત્ર પત્રિકાઓના પણ સ્વામીજી સંરક્ષક છે—

(અ) તુલસી-મીમાંસાપરિષત્, ભદૈની, કાશી. આ સંસ્થાએ તુલસી-સાહિત્યનું અધ્યયન, અધ્યાપન અને પ્રચાર, એને પોતાનું મુખ્ય લક્ષ્ય બનાવ્યું છે, પણ તેની સાથેજ તે હિંદની પ્રાચીન કળા, સંસ્કૃતિ, ધર્મ અને સાહિત્યની પણ મીમાંસા કરે છે. 'પ્રદર્શિની' નામક છમાહી પત્રિકા તથા સુન્દર પુસ્તક—પુસ્તિકાઓનું પ્રકાશન પણ કરે છે. આ પરિષતના મન્ત્રી છે—પં૦ પદ્મનારાયણ આચાર્ય એમ૦ એ૦, અને સંરક્ષક છે—આજ સ્વામીજી

(આ) તુલસી-પુસ્તકાલય, ભદૈની—આ કાશીની બીજી પ્રસિદ્ધ સંસ્થાછે, તેના પણ સ્વામીજી સંરક્ષક છે.

આ પુસ્તકાલય વિશ્વકવિ ગોસ્વામી તુલસીદાસનું પહેલુ અને એકજ સ્મારક છે. આ પુસ્તકાલયનો ઉદ્દેશ છે. (૧) તુલસી-સાહિત્યનોસઙ્ગ્રહ (૨) અને હિન્દી ભાષાનાં સર્વ કાવ્યોનો સઙ્ગ્રહ.

(ઇ) 'મહાવિદ્યા'—(માસિક) ભારતીય જનતામાં સદ્‌વિદ્યાના અને સંસ્કૃતિના પ્રચારને અર્થે પાંડેયઘાટ, કાશીમાં પં૦ જગન્નારાયણ દેવ શર્મા 'કવિપુષ્કર' ના વિદ્યામન્દિરમાંથી પ્રકાશિત થાયછે. સ્વામીજી તેના પણ સંરક્ષક છે.

(ઈ) ગુજરાત (અમદાવાદ) નું ગીતા માસિક આદિ કેટલીએ પત્ર-પત્રિકાઓના સ્વામીજી સહાયક, સંરક્ષક આદિ છે.

(ઉ) રામકૃષ્ણ-શતાબ્દીને અંગે સ્વામીજીએ ધન તથા વ્યાખ્યાન બંને પ્રકારની સહાયતા કરી છે.

વાતએ છે કે જે વ્યક્તિ અથવા સંસ્થા સ્વામીજીને પકડીને પોતાને ત્યાં લઈ જાય છે તેનુ સ્વામીજી ભલૂંજ કરેછે. એમનું કામજ લોકસઙ્ગ્રહ છે.

(૯) પ્રયાગમાં પ્રથમ અખિલ ભારતીય ગીતા સમ્મેલનના સંયોજક પણ સ્વામી વિદ્યાનન્દજીજ હતા. આ સમ્મેલન હર ત્રીજે વર્ષે કુમ્ભના અવસર ઉપર પ્રયાગ, હરદ્વાર, ઉજ્જૈન અને નાસિકમાં થયાં કરશે. તેનુ કાર્યાલય કાશીમાં રહેશે. તેના આ વખતના સભાપતિ મહામહોપાધ્યાય ડૉ૦ ગંગાનાથ ઝા એમ૦ એ હતા. મહામના માલવીયજી તથા પુરીના જગદ્‌ગુરુ શંકરાચાર્ય આદિ સર્વેનો તેમાં સહયોગ અને સહાનુભૂતિ હતાં. તેના મંત્રી પં૦ પદ્મનારાયણ આચાર્ય એમ૦ એ હતા.

પ્રથમ ગીતા-સમ્મેલનના પ્રસ્તાવ—

તા૦ ૧૯-૧-૩૬ થી તા૦ ૨૫-૧-૩૬ સુધી

"(૧) આ અખિલ ભારતીય ગીતા-સમ્મેલન, પાઠશાળાઓ તથા વિદ્યાલયોના અધિકારીઓને પ્રાર્થના કરેછે કે, તે મહાશયોએ પાઠ્યક્રમમાં ગીતાનો વિષય અનિવાર્ય બનાવવો

૨૧-૧-૩૬

તેનું વિવેચન કરતાં બ્રહ્મનિષ્ટ સ્વામી વિદ્યાનન્દજીએ કહ્યું કે ગીતા પ્રચારનું કામ, પાઠશાળાઓ દ્વારા ઘણા સરળ, સીધા અને સાત્વિકતાથી, થઈ શકે તેમ છે. મ૦ મ૦ ડૉ૦ ગંગાનાથ ઝા ના સભાપતિત્વમાં આ ઠરાવ સર્વ સમ્મત થયો હતો.

(૨) આ અખિલ ભારતવર્ષીય ગીતા-સમ્મેલન, સર્વ સન્તો, મહાત્માઓ, વિદ્વાનો, ઉપદેશકો તથા શિક્ષા સંસ્થાઓને પ્રાર્થના કરે છે કે તેમણે પોતાને યોગ્ય લાગે તેવીરીતે યથા શક્તિ ગીતા પ્રચાર કરવો.

૨૨-૧-૩૬

ડૉ૦ ઉમેશ મિશ્ર (પ્રોફેસર ઇલાહાબાદ-વિશ્વ-વિદ્યાલય) ના સભાપતિત્વમાં પરમહંસ બાબા રાઘવદાસજી એ પ્રસ્તાવ કર્યો, અને તે સર્વસમ્મતિથી પસાર થયો.

(૩) આ અખિલભારતીય ગીતા-સમ્મેલન સર્વને પ્રાર્થના કરેછે કે નગરે નગર અને ગામે ગ્રામ માં ગીતા-મન્દિર અથવા ગીતા-મેદાનની સ્થાપના કરવી, કે જે વડે ગીતા અને ધર્મનો પ્રચાર સુગમથાય.

૨૩-૧-૩૬

એના ઉપર વિવેચન કરતાં મન્ત્રીજીએ 'ધર્મ-ક્ષેત્ર' નો વિશદ અર્થ કર્યો; અને કહ્યું કે, પ્રત્યેક હૃદયજ ગીતા મન્દિર બનવુ જોઈએ. પણ તેની સાથે તેનુ ભૌતિક અને સામુહિક સ્વરૂપ હમારી સામે ગીતા-મન્દિર અથવા ગીતામૈદાનના રૂપ માં રહેવુ જોઈએ. સર્વ સમ્મતિથી પાસ થયો.

(૧૦) આજકાલ પરીક્ષાઓની અને કથાઓની જે દુર્દશા થઈ રહીછે, તેનો અનુભવ કરીને ગીતાધર્મ વિદ્યાલયમાં વ્યાસ-પરીક્ષા લેવામાં આવે છે, તેમજ કથા વાચકત્વનું શિક્ષણ પણ આપવામાં આવે છે. આ સર્વ સ્વામીજીના લોક-સંગ્રહનુંજ ફળ છે.

(૧૧) આદર્શ કથા-વાચક-પહેલી મહત્વની વાત એ છે કે, સ્વામીજી, કથા કેવળ વચનથીજ નહી—પણ કાયાથી, વાચાથી અને મનથી કહે છે. લોકાનુગ્રહમાં એમનું રોમે રોમ પરોવાઈ જાયછે. તેથીજ તેમની કથાનો આટલો પ્રભાવ પડે છે. ભણેલા, વગર ભણેલા, નાના, મોટા સર્વ કહે છે કે—સ્વામીજીની કથામાં જાદૂ છે. સ્વામીજી ચાહેતો કૃષ્ણની ગીતા કહે, શુકનુ ભાગવત કહે કે તુલસીનું રામાયણ કહે, તેમની કથા તેજ રસથી તરબોળ હોય છે; તેટલીજ અપાર ભીડ થાય છે.

સ્વામીજી આદર્શ કથા વાચક છે. તેઓ કેવી રીતે, પોતાના પવિત્ર આચરણ, ત્યાગવૃત્તિ તથા ઓજસ્વી ભાષણથી લોકોને પ્રભાવિત કરી નિર્લોભ પ્રચાર કરે છે તે ઉપર કથા-વાચકોએ ખાસ ધ્યાન આપવા જેવુ છે.

(૧૨) આદર્શ સંન્યાસી—સ્વામીજી, જગદ્ગુરુ આચાર્ય શંકરના જેવા લોકસંગ્રહી છે. એમના જ્ઞાન અને કર્મ-સંન્યાસથી સર્વ કોઈને લાભજ લાભ થાય છે. જ્ઞાન માર્ગની સાચી વ્યાખ્યા, આવા મહાત્મા સંન્યાસી જ્ઞાનિઓનાં જીવનજ કરે છે.

(૧૩) આદર્શભક્ત—એમના ભક્તો અને શિષ્યો, સ્વામીજીને પરમ ભક્ત માને છે. એ જ્યારે ભજનની—નામ સ્મરણની—ધૂન જગાવે છે, શ્રીમન્નારાયણ, નારાયણ, નારાયણ.—રઘુપતિ રાઘવ રાજારામ, પતિતપાવન સીતારામ—શ્રી કૃષ્ણ ગોવિન્દ હરે મુરારે, હે નાથ નારાયણ વાસુદેવ ઇત્યાદિ, ત્યારે હજારો ભક્તો એકજ સ્વરમાં તેમની સાથે બોલવા માંડે છે. તે સમયે સર્વ જ્ઞાન આનન્દ સાગરમાં ડૂબી જાય છે. એ ભજન-સુખનું વર્ણન કર્યું જાય તેમ નથી. જે અનુભવ કરે છે તેજ તેનો રસ જાણે છે.

(૧૪) આદર્શ શિક્ષક અને પ્રચારક—સ્વામીજીની બે મુખ્ય વિશેષતાઓ છે. (૧) વધારે ભાગે તેઓ પોતાના કામોથી—ચારિત્ર્યથીજ શિક્ષણ આપે છે. તેઓ પોતે ઘણીજ સાદાઈથી રહે છે. મુખ શુદ્ધિને સારૂ પણ કાંઇજ ખાતા નથી. મહેલ અને ઝુંપડી બંને જગાએ સરખા સુખ પૂર્વક રહે છે. આ પ્રકારથી લોકો પોતાની મેળેજ શિખી લે છે કે સુખી જીવન કોને કહેવાય. (૨) બીજો ગુણ એ છે કે કોઈનો પણ વિરોધ ન કરવો. તે પોતાનુ કામ કરે છે, પણ કોઈના ઉપર આક્ષેપ કરતા નથી. કદાપિ કોઈ તેમની નિન્દા કરે, તોપણ તેનો ઉત્તર પ્રતિ ઉત્તર કરતા નથી. સદા શાન્ત રહી સર્વને ક્ષમા કરે છે. આનીતિ એમની સિદ્ધિનું પ્રધાન કારણ છે. ગીતાના પ્રચારકોએ આવીજ નિર્વિરોધ અને શાન્ત નીતિ ગ્રહણ કરવી જોઈએ.

(૧) આદર્શ હિંદી-સેવક-રાષ્ટ્ર ભાષા હિંદીનો, હિંદી ભાષા ન બોલનારા પ્રાન્ત ગુજરાત, મહા-

રાષ્ટ્ર પરાડ, હૈદરાબાદ આદિમાં, જે પ્રચાર સ્વામીજીએ કર્યો છે, તેનું વર્ણન કરવાને સારુ એક અલગ નિબન્ધ લખી શકાય તેમ છે. ગત વર્ષે નાગપુરના હિંદી—સઙ્ઘે, સ્વામીજીને એક અભિનન્દન પત્ર પણ આપ્યુ હતુ.

સ્વામીજી સ્વયં પ્રાન્તિય ભાષા શિખેછે. અને પછી પોતાની કથા દ્વારા ત્યાંના લોકોને હિંદી શીખવે છે. હિંદીનો પ્રચાર કરવાને સારુ, પ્રચારકોએ જે તે પ્રાન્તની ભાષા શિખવી જોઈએ અને પછી તે તે પ્રાન્તોમાં રહીને પ્રચાર કરવો જોઈએ. સ્વામીજી જેવા લોકસઙ્ગ્રહી મહાત્મા તેના પથદર્શક થઈ શકે તેમ છે. સંસ્કૃત અને પાલી જેવી પ્રાચીન ભાષાઓ, આવા ત્યાગી મહાત્માઓ દ્વારાજ એક વખત ભારતની રાષ્ટ્ર ભાષાઓ બની શકી હતી.

(૧૬) સાહિત્ય-નિર્માણ—ગ્રન્થમાળા અને પત્ર દ્વારા જે સાહિત્ય નિર્માણનું કામ સ્વામીજી કરે છે અને કરાવે છે, તેનુ મહત્ત્વ મર્મજ્ઞ સમજે છે. ઋગ્વેદાદિ મોટા મહત્વપૂર્ણ ગ્રન્થોના સ્વાધ્યાય તથા અનુવાદ એમના કાશી વાળા મન્દિરમાં ચાલી રહ્યા છે.

(૧૭) ત્યાગ—આ પ્રકારે સ્વામીજી, સાહિત્ય તથા સંસ્કૃતિનો ઉદ્ધાર, પોતાની કથા, પત્રિકા, તથા ગ્રન્થમાળા દ્વારા ઘણા સુદૃઢ અને સુન્દર રૂપમાં કરી રહ્યા છે. એમના લોક સઙ્ગ્રહનો તથા સાચા સંન્યાસનો આદર્શ ગ્રહણ કરી, થોડા બીજા સાધુ-મહાત્માઓ, તે પ્રકારે સદાચાર નો પ્રચાર કરે તો કોણ જાણે કેટલુંએ બધું કામ થઈ જાય. ભારતના સાચા શિક્ષક એ મહાત્મા છે. એવા ત્યાગી જીવ સાધુ અને ગૃહસ્થો બંનેને સારુ આદર્શરૂપ થઈ પડે છે. ત્યાગ થીજ જીવનમાં રસ આવે છે, ચાહે તે ગૃહસ્થા નું જીવન હોય કે સાધનુ જીવન હોય. સ્વામીજી ના જીવનમાં રસ છે, કારણકે તઓ ત્યાગ કરવો જાણે છે. તે સત્વગુણી છે, વિષ્ણુને આદર્શ માનનારા સન્તોષી છે, સર્વ કાંઈ લુંટાવી દેવા વાળા સાધુ છે. લક્ષ્મીજીની એમને છાયા છે. તેમનુ કામ એક કોપીનથી નભે છે. તેમનેજ મલે છે કે જે બીજાને આપી દે છે.

(૧૮) લોકસઙ્ગ્રહ આને અનાસક્તિ-સ્વામીજીને જ્યારે અમે રસ પૂર્વક કામ કરતા જોઈએ છીએ ત્યારે ગીતાનુ વાક્ય યાદ આવે છે કે—

'સક્તાઃ કર્મણ્યવિદ્વાંસો યથાકુર્વન્તિ ભારત ।
કુર્યાદ્વિદ્વાંસ્તથાસક્તશ્ચિકીર્ષુર્લોકસંગ્રહમ્ ॥"

(ગી૦ અ૦ ૩ શ્લો. ૨૫)

પણ, અનાસક્તિપણ સ્વામીજીની ગજબછે, તેઓ સંસ્થા ચાલતી કરી દે છે. પણ તે પછી, ત્યાંના સુયોગ્ય લોકો ઉપર છોડીને પોતે અલગ થઈ જાયછે. લોકને સદા સ્વામીજી ઉપર મોહ રહે છે, પણ સ્વામીજી પોતાનુ કામ અનાસક્તપણે કરેછે. જ્યારે અમારે સાથે રહેવાનો પ્રસંગ આવેછે ત્યારે અમારા ઉપર પુત્રવત્ સ્નેહ કરેછે; પણ એમનો તો સર્વ ઠેકાણે એજ હાલ હોય છે. મોહ વશ થઈને તેઓ કોઈ કામ બગાડી નાખતા નથી.

(૧૯) ગીતા પ્રચાર—પોતે વર્ષનો મોટો ભાગ, હમેશ ગીતા-પ્રચારને અર્થે ભારતના જુદા જુદા પ્રદેશો માં ફરે છે. ભારતનાં તમામ મોટાં મોટાં શહેરોમાં સ્વામીજી એકથી વધારે વખત પ્રચાર કરી ચુક્યા છે. એક બે વખતતો પોતે હજારો ભક્તોની સાથે પગે ચાલીને તીર્થયાત્રા કરી છે. સ્પેશલ ટ્રેનથી પણ સેંકડો

ભક્તોની સાથે ઘણી અને લાંબી યાત્રાઓ કરી છે. વચમાં વચમાં પોતે હિમાલયમાં ગુપ્ત અને એકાન્ત વાસ પણ કરે છે. જે વખતમાં પોતે જનતાથી અલગ રહી શાંતિ મેળવે છે.

(૨૦) ગીતાની શિક્ષા—સ્વામીજીનું કહેવું એમ છે કે ગીતાથી બાલક, વૃદ્ધ, સ્ત્રી, પુરુષ, સાધુ, તથા ગૃહસ્થ સર્વ, લાભ ઉઠાવી શકે છે. અધ્યાત્મ, યોગ તથા અનાસક્તિની આવશ્યકતા સર્વને છે. આવાતોની જેટલી આવશ્યકતા નિવૃત્તિ માર્ગી સંન્યાસીને છે, તેટલીજ એક પ્રવૃત્તિમાર્ગી ગૃહસ્થને પણ છે. ભગવાનના રાજ્યમાં બંનેનો આદર છે. ગીતા બંનેને સારુ છે. કેટલાક લોકો એમ સમજેછે કે ગીતા અને ગૃહસ્થીનો વિરોધછે. પણસ્વામીજીએ પોતાના ઉપદેશથી એ ભ્રમ દૂર કર્યો છે. પોતે કહે છે કે—'યુધ્ય સ્વ' પોતાના ધર્મ ક્ષેત્રમાં યુદ્ધ કરો, અર્થાત્ પોતાના ધર્મનુ પાલન કરો. એ સ્વધર્મ શું છે? તે સમજવાને સારુ ગીતાનો અભ્યાસ કરો; તો તરત તમને પોતાનેજ સમજણ પડી જશે કે શું કરવુ જોઈએ, કયો માર્ગ ઠીક છે, 'નિવૃત્તિ' અથવા 'પ્રવૃત્તિ'?

કેટલાક લોકો શંકા કરેછે કે, વિદ્યાર્થીઓના-શિક્ષાક્રમમાં ગીતા દાખલથવાથી, વિદ્યાર્થી અકર્મણ્ય અને આળસુ થઈ જશે, પણ સ્વામીજીએ હજારો વિદ્યાર્થીઓને ગીતા ભણાવીનેએ સિદ્ધ કરી આપ્યુ છે કે, ગીતા ભણેલા સંસારમાં પણ અધિક સુખી અને સફળ ગૃહસ્થ થઈ શકે છે. એક શબ્દમાં સ્વામીજીનું કહેવુછે કે ગીતા એ જીવન શાસ્ત્ર છે. જેને જીવન જીવવુ હોય, તણે ગીતા અવશ્ય ભણવી જોઈએ.

(૨૧) સ્વામીજીનું જીવન એ ગીતાના લોક—સઙ્ગ્રહની વ્યાખ્યા છે. *

ગંગા અને સ્વામીજી

૧—સ્વામીજીનો જન્મ—ગંગા કિનારે (મહાદેવપુરી માં)

૨—સંન્યાસ—ત્રિવેણીના તટ ઉપર (કુમ્ભના મેદાનમાં)

૩—તપસ્યા, તથા વેદાન્તનો સ્વાધ્યાય—ગંગાના તટ ઉપર (હરદ્વારમાં),

૪—ગંગોત્તરીને રસ્તે નીલકણ્ઠની સાનિધ્યમાં સ્વામીજીનો એકાન્ત વાસ તથા યોગ સાધના.

૫—ગંગોત્તરીથી ગંગાસાગર સુધીની યાત્રા.

૬—ગંગા સાગરમાં તરતાં તરતાં સ્વામીજી બ્રહ્મદેશ સુધી પહોચીગયા. બાદ.

૭—ત્યાં પહોચેલા મહાત્માએ, ગંગા તટ ઉપર સંચય કરેલા પુન્ય તથા તપના પ્રભાવે, ગીતાની ગંગાને પ્રવાહિત કરી. ક્યાં? ઉત્તરથી દક્ષિણ ભારત તરફ. તેના સાક્ષી મધ્ય દેશ, મધ્યભારત, મધ્યપ્રાન્ત, ગુજરાત,

* આજમગઢથી બે સરયુપારી બ્રાહ્મણ બાળક સાધુથયા બંને વિશ્વબન્ધુત્વનો ઉપદેશ આપીરહ્યા છે. બંને અન્તર્રાષ્ટ્રીય મહાપુરુષ છે. બંને ભારતીય સંસ્કૃતિનો ઉદ્ધાર કરીરહ્યા છે. એકે ગીતાજીને અપનાવ્યાંછે ત્યારે બીજાએ ધમ્મપદને, એકે શંકરને ગુરુ બનાવ્યા છે ત્યારે બીજાએ બુદ્ધને (૧) એકનું નામ છે પરિવ્રાજકાચાર્ય પરમ હંસ સ્વામી વિદ્યાનન્દજી (૨) બીજાનું નામ છે ત્રિપિટકાચાર્ય રાહુલ સાંકૃત્યાયન. બંનોએ ઘણુંજ ભ્રમણ કરેલુ છે; પણ માતૃભૂમિ (જન્મભૂમિ-શિશુવય વ્યતીત કરેલો પ્રદેશ) છોડીને. શું શંકર અને બુદ્ધના પરમ કારુણિક શિષ્ય પોતાના જન્મ સ્થાન તરફ નહી આવે?

કાઠિયાવાડ, સિન્ધ, મુંબાઈ, (નિજામ) હૈદરાબાદ આદિ. વિશેષે કરીને દક્ષિણ પ્રાન્તને જન સમૂહ ગીતાભક્ત છે. ત્યાંથી પોતે.

૮—ઉત્તર તરફ ચાલ્યા—સ્વામીજીની મોટી હરદ્વારની યાત્રા પ્રસિદ્ધ છે. (જુવો હરદ્વારની યાત્રા).

૯—પછી યોગી કાશીમાં આવ્યા. આજ-કાલ અહીંજ ગીતાધર્મનો પ્રચાર ચાલી રહ્યો છે. 'પર યોગી કાકે મીત'

યોગી (સ્વામીજી) તો, પોતે પોતાની મેળે ઘૂમ્યાંજ કરેછે, અને 'ગીતાધર્મ', પુનીત કાશીપુરીમાં દશાશ્વમેધના ઘાટ ઉપર, અન્નપૂર્ણાનીપાસે, સાક્ષીવિનાયકની સામે, સ્વામીજીનો પ્રસાદ છુટે હાથે વહેંચે છે.—એજ ગંગાવાળા યોગીનો યોગ છે.

૧૦—આ ગંગાના સાધુએ નર્મદાને કિનારે પણ પોતાનું ગીતા મન્દિર બનાવી રાખ્યુ છે. ત્યાંપણ તેમનુ સદાવ્રત ચાલુ છે.—

ઓં તત્સત્, તસ્માદ્ યોગી ભવ.

વૈષ્ણવજન

(લે૦—નરસી મેહતા)

વૈષ્ણવ જન તો તેને કહિયે, જે પીડ પરાઈ જાણે રે
પરદુઃખે ઉપકાર કરે તોયે, મન અભિમાન ન આણે રે
સકલ લોકમાં સહુને વન્દે, નિન્દા ન કરે કેની રે
વાચ કાછ મન નિશ્ચલ રાખે, ધન ધન જનની તેની રે
સમદૃષ્ટિ ને તૃષ્ણાત્યાગી, પરસ્ત્રી જેને માત રે
જિવ્હા થકી અસત્ય ન બોલે, પરધન નવ ઝાલે હાથ રે
મોહ માયા વ્યાપે નહિ જેને, દૃઢ વૈરાગ્ય જેના મનમાં રે
રામનામ શુ તાલી લાગી, સકલ તીરથ તેના તનમાં રે
વણલોભી ને કપટરહિત છે, કામ ક્રોધ નિવાર્યા રે
ભણે નરસૈંયો તેનું દરશન કરતાં, કુલ એકોતેર તાર્યા રે

जिज्ञासुओं के प्रश्न

इस अङ्क में आए हुए प्रश्नों को हम प्रकाशित कर देते हैं। आगामी अङ्कों में उनका उत्तर छपेगा। ऐसे ही अनेक प्रश्नों और अद्भुत उत्तरों का संग्रह है—"अद्भुत संवाद"

अद्भुत स्वाध्यायी गीतानन्दजी ने अपना पूरा जीवन गीता के ही अध्ययन में लगा दिया है। उनके इस स्वाध्याय पर (काशी के शिष्यों के अतिरिक्त) लोकमान्य तिलक, डा० भगवानदास आदि मान्य-विद्वान् विस्मित और मुग्ध हो चुके हैं। ऐसे अद्भुत गीतानन्दजी के ही उत्तरों का संग्रह है—

'अद्भुत (गीता) संवाद'

जन्माष्टमी को इस कृष्णार्जुनसंवाद का—जन्म हुआ। शीघ्र ही वह रत्न आप लोगों को समर्पित होगा। इस अङ्क में आए हुए प्रश्न—

श्रीमान् सम्पादकजी !

इन प्रश्नों को गीताधर्म में छपने के लिए सुप्रसिद्ध निरालाजी ने भेजे दिया है। यदि संस्कृत में न छप सकें तो हिन्दी या गुजराती अनुवाद कराकर ही कृपया इन्हें प्रकाशित करा दीजिएगा।

भवदीय—राधाकान्त पाण्डेय, काशी

"संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥"

—गी० ५।२

१—श्लोकेऽस्मिन् कर्मयोगः कर्मसंन्यासाद्वरीयान् निर्दिष्ट इति बहूनां मतम्। किं तथ्यमत्र तथाऽस्ति निर्देशः ? अर्थात् कर्मणस्संन्यासान्महत्ता प्रदर्शिता ?

२—अस्ति चेत्कथंकारं "गीतायां सर्वेषां धर्माणामस्ति समन्वय" इत्युक्तिस्संगच्छते ?

३—कर्मण एव श्रेष्ठत्वे सिद्धे श्लोकेऽस्मिन् संन्यासयोगस्य श्रेष्ठत्वमपि कथं सेत्स्यति ?

४—कर्मयोगसंन्यासावुभावपि धातुनिष्ठार्थभावात्साम्यं नाधिगच्छतः किम् ?

……'योगः कर्मसु कौशलम्', 'संन्यास'-शब्दश्च (नि + अस् इत्यस्माद् घञि कृते तस्य च विहिते सता सह समासे, सतो न्यास इति विग्रह-वलात्) सूक्ष्मेक्षिकया निरीक्षणेन नैकभावं भजेते ?

५—श्लोकेनानेनैव किमेतत्कर्तुं शक्यते नो व्याकृतिसाहितीसामञ्जस्यप्रदर्शनपूर्वकं, यन्नाम कर्मयोगस्संन्यासाद्विशिष्टो वर्णित इति ?

६—तथा च सति कीदृशस्समन्वितो भविष्यत्यस्यार्थः ?†

प्रश्नकर्त्ता—श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लखनऊ

श्री गीतानन्दजी से

१—गीता के ग्यारहवें अध्याय में:—

गदा और चक्र का वर्णन आया है, किंतु शङ्ख और पद्म का वर्णन नहीं; इसका क्या कारण है ? बार बार इन्हीं दो आयुधों का जिक्र है। क्या इसमें कोई रहस्य है ?

२—गीता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय क्या है ?

३—गीता का माहात्म्य क्या है ?

४—क्या गीता को विजय का ग्रन्थ कह सकते हैं ?

† हमने इन प्रश्नों का अनुवाद अथवा विशेष संपादन न करके अविकल छाप दिया है, जिसमें प्रश्नकर्ता के भाव, उन्हीं के शब्दों में पाठकों के सामने आवें। —संपादक।

५—जब आप स्वभाव, अध्यात्म और ईश्वर को पर्याय मानते हैं तब क्या प्रकृति को भी ईश्वर का पर्याय मानेंगे ?

यदि हां, तो कृपया मुझे गीता में दिए हुए सभी प्रकृति के पर्याय नाम बता दीजिए। क्या प्रकृति=क्षर ?

६—क्या ईश्वर और पुरुषोत्तम में कुछ भेद करते हैं ?

+ + +

७—श्रद्धा कितने प्रकार की होती है ?

८—शास्त्रविधि त्यागनेवालों की सात्त्विकी, राजसी और तामसी भेद से तीन प्रकार की श्रद्धा होती है। तब शास्त्रविधि के अनुसार यजन करनेवालों की श्रद्धा कैसी होती है ?

९—शास्त्रविधि क्या है ?

१०—शास्त्र क्या है ?

११—विधि और अविधि में भेद किंमूलक है ?

१२—गीता के सप्तदश अध्याय में अर्जुन का प्रश्न यह है:—

"ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः
तेषां निष्ठा तु का" ... ...

— गीता १७।१

यह निष्ठा के बारे में पूछा गया है। परंतु उत्तर में भगवान् ने निष्ठा की कोई चर्चा नहीं की। इस शङ्का का समाधान चाहता हूँ।

१३—"तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु॥"

—गी० १३।३

इस प्रतिज्ञा में क्षेत्र के विषय में चार प्रश्न हैं और क्षेत्रज्ञ के विषय में दो ही। उनका पृथक् पृथक् भगवान् ने क्या क्या उत्तर दिया सो ठीक समझ में नहीं आता। इसकी निगद व्याख्या चाहता हूँ।

+ + +

१४—धर्म और कर्म में भेद क्या है ?

१५—गीता के अनुसार प्रकृति और पुरुष का भेद क्या है ?

१६—कृष्ण धर्मवीर थे अथवा कर्मवीर ?

१७—'एवं प्रवर्तितं चक्रं' में किस चक्र की ओर संकेत है, उसका पूरा नाम क्या है; धर्मचक्र, कर्मचक्र, यज्ञचक्र, कालचक्र, सुदर्शनचक्र अथवा प्रवृत्तिचक्र ?

१८—'कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा' में क्या 'श्री' का वही यशपरक अर्थ है, जो गीता के अन्तिम श्लोक में है ?

कीर्ति और यश 'श्री' में भेद क्या है ?

प्रश्नकर्ता—श्री जगदीश आचार्य, अध्यापक—
गीताधर्म विद्यालय, काशी।

मानुषी संपत्ति और पुरुषोत्तम

(श्री गीतानन्दजी के विचार)

परायण—आपने गीताधर्म के पिछले अङ्क में लिखा है कि मानुषी संपत्ति ऊह्य है। पर, वह ऊह्य संपत्ति क्या है, यही तो हम जानना चाहते हैं ?

गीतानन्द—गीता की राय है—

'दैवी संपद् विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता'

—गीता १६।५

अर्थात् जो देवताओं की संपत्ति है वह संसार के बन्धन से छुड़ाने (मुक्त करने) के लिये है और आसुरी अर्थात् असुरों की संपत्ति बन्धन के लिये है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि देवताओं की संपत्ति का लक्षण मुमुक्षा (= मुक्त हो जाने की इच्छा) है और असुरों की संपत्ति का लक्षण है बुभुक्षा (भोग करने की इच्छा)। किंतु मनुष्य इन दोनों से परे है। वह इस बन्धन मोक्ष में हेयोपादेय बुद्धि रखता है अर्थात् वह कहीं से कुछ ले लेता है तो कुछ त्याग भी देता है। दोनों के बीच में रहने के कारण उसकी 'योगदृष्टि' दोनों ओर रहती है। सारांश यह हुआ कि असुर कर्मरागी हैं। वे कर्म करते हैं और उसी के साथ साथ चिपके भी रहते हैं। इसके विपरीत देवता कर्मत्यागी होते हैं। पर आदर्श मनुष्य तो कर्मयोगी ही बन सकता है। वह न तो कर्मों को त्यागता है और न उनसे चिपका रहता है।

परायण—गीता के अनुसार देव, असुर और मनुष्य इन तीनों में किसको अर्जुन का आदर्श माना गया है ?

गीतानन्द—अर्जुन को भगवान् का उपदेश है कि 'तस्माद्योगीभवार्जुन' (—गीता ६।४६)। अर्थात् हे अर्जुन, इसलिये तुम योगी बनो। इससे यह मालूम पड़ता है कि यदि भगवान् अर्जुन को केवल देवता ही बनाना चाहते होते, तो योगी बनने का उपदेश न करते, बल्कि कर्मों के त्याग का उपदेश करते। असुर बनाना चाहते तो कर्मराग का राग अलापते। भगवान् ने 'रागत्याग' के बीचोबीच 'योग' करने का उपदेश किया। अतः अर्जुन का आदर्श 'मनुष्य' था, न कि देवता अथवा असुर।

परायण—क्या निस्त्रैगुण्य पुरुष गीता का आदर्श है ?

गीतानन्द—योगी, स्थितप्रज्ञ (जो पुरुष मन के भीतर पैठी हुई सभी कामनाओं को तज देता और अपने से अपने में ही संतुष्ट रहता है, उसे स्थितप्रज्ञ कहते हैं), भक्त, ज्ञानी और निस्त्रैगुण्य (जिस पर तीनों गुणों का कोई असर न हो) गीता का आदर्श नर है। देखिए—'योगी', 'स्थितप्रज्ञ' के लिये गीता २।५३ और २।५४, 'भक्त' के लिये गीता १२।१३–२०, 'ज्ञानी' के लिये गीता १३।८–१२ और निस्त्रैगुण्य के लिये गीता १४।२२–२५।

परायण—पुरुष और पुरुषोत्तम में गीता के अनुसार क्या भेद है ?

गीतानन्द—पुरुष एक क्षेत्रज्ञ होता है; परंतु गीता का पुरुषोत्तम सर्वक्षेत्रज्ञ होता है। सारांश यह निकला कि दोनों में स्वरूपतः कोई भेद नहीं। उपाधि (क्षेत्र) के भेद होने से भेद मालूम पड़ जाता है।

परायण—निस्त्रैगुण्य पुरुष और पुरुषोत्तम में कोई भेद रह जाता है क्या ?

गीतानन्द—आपके प्रश्न का सीधा मतलब यह है कि मुक्त और ईश्वर में क्या भेद है ? उत्तर भी बड़ा सरल है—दोनों में कोई भेद नहीं। दोनों एक हैं। हां, मुक्त नर को संसार में रहते हुए संसार के व्यवहारों को करना पड़ता है और ईश्वर को नहीं, इतना ही फरक है और कुछ भी नहीं। वेदान्त दर्शन (४।४।१७) भी कहता है कि 'जगद्व्यापारवर्जम्' अर्थात् संसार के व्यवहारों को छोड़ उनमें और कोई भेद नहीं।

परायण—पुरुषोत्तममास में गीता के अनुसार किस प्रकार पुरुषोत्तम की पूजा करनी चाहिए ?

गीतानन्द—अशुभ कर्मों को तो सर्वदा के लिये मना किया गया है, पर इस पुरुषोत्तममास में शुभ कर्म भी निषिद्ध हैं। पुरुषोत्तममास नैष्कर्म्यशिक्षा के लिये अपूर्व है। इस अवसर से हमें गीता की नैष्कर्म्यशिक्षा अवश्य लेनी चाहिए।

भजन और मनन का विचार

(स्वामी रवीन्द्रानन्दजी, काशी)

गीता के संवाद का उपसंहार करते हुए संजय धृतराष्ट्र से कहते हैं कि मेरी तो यही मति है कि जिधर योगेश्वर कृष्ण हों, धनुर्धर अर्जुन हों, उधर ही श्री, विजय, ऐश्वर्य, और अटूट नीति रहती हैं।

× × × ×

अजी मेरे जीव, तुमने रसभरे अंगूरों का रस लिया है, अच्छी तरह मिसिरी का भोग लगाया है, निर्मल दुग्ध का पान किया है, स्वर्ग में जाकर कितनी ही बार अमृत पिया और रम्भा के अधरामृत का रस चखा है, किंतु ठीक ठीक कहना कि बारंबार इस संसार में चक्कर काटते हुए तुम्हें 'कृष्ण' इन दो अक्षरों की मिठास का उद्गार (=डकार) भी कहीं लख पड़ा ?

\+ × × ×

तुम पाताल में पैठो अथवा स्वर्ग में चले जाओ; सुमेरु की चोटी पर पहुँचो अथवा एक के बाद एक सभी समुद्रों को पार कर डालो, तौ भी तुम्हारी आशा शान्त नहीं हो सकती। हे आधि (मन की पीड़ा), व्याधि (शरीर की पीड़ा) और बुढ़ापे से नष्ट होनेवाले जीव, यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो, तो 'श्री कृष्ण' इस रसायन का स्वाद लो। अरे, नाहक दूसरे श्रमों से तुम्हारा क्या लाभ ?

जिज्ञासुओं के प्रश्न

इस अङ्क में आए हुए प्रश्नों को हम प्रकाशित कर देते हैं। आगामी अङ्कों में उनका उत्तर छपेगा। ऐसे ही अनेक प्रश्नों और अद्भुत उत्तरों का संग्रह है—"अद्भुत संवाद"

अद्भुत स्वाध्यायी गीतानन्दजी ने अपना पूरा जीवन गीता के ही अध्ययन में लगा दिया है। उनके इस स्वाध्याय पर (काशी के शिष्यों के अतिरिक्त) लोकमान्य तिलक, डा० भगवानदास आदि मान्य-विद्वान् विस्मित और मुग्ध हो चुके हैं। ऐसे अद्भुत गीतानन्दजी के ही उत्तरों का संग्रह है—

'अद्भुत (गीता) संवाद'

जन्माष्टमी को इस कृष्णार्जुनसंवाद का—जन्म हुआ। शीघ्र ही वह रत्न आप लोगों को समर्पित होगा। इस अङ्क में आए हुए प्रश्न—

श्रीमान् सम्पादकजी !

इन प्रश्नों को गीताधर्म में छपने के लिए सुप्रसिद्ध निरालाजी ने मुझे दिया है। यदि संस्कृत में न छप सकें तो हिन्दी या गुजराती में अनुवाद कराकर ही कृपया इन्हें प्रकाशित करा दीजिएगा।

भवदीय—राधाकान्त पाण्डेय, काशी

"संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥"

—गी० ५।२

१—श्लोकेऽस्मिन् कर्मयोगः कर्मसंन्यासाद्वरीयान्निर्दिष्ट इति बहूनां मतम्। किं तथ्यमत्र तथाऽस्ति निर्देशः? अर्थात् कर्मणस्संन्यासान्महत्ता प्रदर्शिता?

२—अस्ति चेत्कथंकारं "गीतायां सर्वेषां धर्माणामस्ति समन्वय" इत्युक्तिस्संगच्छते?

३—कर्मण एव श्रेष्ठत्वे सिद्धे श्लोकेऽस्मिन् संन्यासयोगस्य श्रेष्ठत्वमपि कथं सेत्स्यति?

४—कर्मयोगसंन्यासावुभावपि धातुनिष्ठार्थभावात्साम्यं नाधिगच्छतः किम्?

······'योगः कर्मसु कौशलम्', 'संन्यास'-शब्दश्च (नि+अस् इत्यस्माद् घञि कृते तस्य च विहिते सता सह समासे, सतो न्यास इति विग्रहबलात्) सूक्ष्मेक्षिकया निरीक्षणेन नैकभावं भजेते?

५—श्लोकेनानेनैव किमेतत्कर्तुं शक्यते नो व्याकृतिसाहितीसामञ्जस्यप्रदर्शनपूर्वकं, यन्नाम कर्मयोगस्संन्यासाद्विशिष्टो वर्णित इति?

६—तथा च सति कीदृशस्समन्वितो भविष्यत्यस्यार्थः?†

प्रश्नकर्त्ता—श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लखनऊ

श्री गीतानन्दजी से

१—गीता के ग्यारहवें अध्याय में:—

गदा और चक्र का वर्णन आया है, किंतु शङ्ख और पद्म का वर्णन नहीं; इसका क्या कारण है? बार बार इन्हीं दो आयुधों का जिक्र है। क्या इसमें कोई रहस्य है?

२—गीता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय क्या है?

३—गीता का माहात्म्य क्या है?

४—क्या गीता को विजय का ग्रन्थ कह सकते हैं?

† हमने इन प्रश्नों का अनुवाद अथवा विशेष संपादन न करके अविकल छाप दिया है, जिसमें प्रश्नकर्ता के भाव, उन्हीं के शब्दों में पाठकों के सामने आवें। —संपादक।

५—जब आप स्वभाव, अध्यात्म और ईश्वर को पर्याय मानते हैं तब क्या प्रकृति को भी ईश्वर का पर्याय मानेंगे ?

यदि हां, तो कृपया मुझे गीता में दिए हुए सभी प्रकृति के पर्याय नाम बता दीजिए। क्या प्रकृति=क्षर ?

६—क्या ईश्वर और पुरुषोत्तम में कुछ भेद करते हैं ?

\+ + +

७—श्रद्धा कितने प्रकार की होती है ?

८—शास्त्रविधि त्यागनेवालों की सात्त्विकी, राजसी और तामसी भेद से तीन प्रकार की श्रद्धा होती है। तब शास्त्रविधि के अनुसार यजन करनेवालों की श्रद्धा कैसी होती है ?

९—शास्त्रविधि क्या है ?

१०—शास्त्र क्या है ?

११—विधि और अविधि में भेद किंमूलक है ?

१२—गीता के सप्तदश अध्याय में अर्जुन का प्रश्न यह है:—

"ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः
तेषां निष्ठा तु का" ... ...

— गीता १७।१

यह निष्ठा के बारे में पूछा गया है। परंतु उत्तर में भगवान् ने निष्ठा की कोई चर्चा नहीं की। इस शङ्का का समाधान चाहता हूँ।

१३—"तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु॥"

—गी० १३।३

इस प्रतिज्ञा में क्षेत्र के विषय में चार प्रश्न हैं और क्षेत्रज्ञ के विषय में दो ही। उनका पृथक् पृथक् भगवान् ने क्या क्या उत्तर दिया सो ठीक समझ में नहीं आता। इसकी निगद व्याख्या चाहता हूँ।

\+ + +

१४—धर्म और कर्म में भेद क्या है ?

१५—गीता के अनुसार प्रकृति और पुरुष का भेद क्या है ?

१६—कृष्ण धर्मवीर थे अथवा कर्मवीर ?

१७—'एवं प्रवर्तितं चक्रं' में किस चक्र की ओर संकेत है, उसका पूरा नाम क्या है; धर्मचक्र, कर्मचक्र, यज्ञचक्र, कालचक्र, सुदर्शनचक्र अथवा प्रवृत्तिचक्र ?

१८—'कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा' में क्या 'श्री' का वही यशपरक अर्थ है, जो गीता के अन्तिम श्लोक में है ?

कीर्ति और यश 'श्री' में भेद क्या है ?

प्रश्नकर्ता—श्री जगदीश आचार्य, अध्यापक—
गीताधर्म विद्यालय, काशी।

मानुषी संपत्ति और पुरुषोत्तम

(श्री गीतानन्दजी के विचार)

परायण—आपने गीताधर्म के पिछले अङ्क में लिखा है कि मानुषी संपत्ति ऊह्य है। पर, वह ऊह्य संपत्ति क्या है, यही तो हम जानना चाहते हैं?

गीतानन्द—गीता की राय है—

'दैवी संपद् विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता'

—गीता १६।५

अर्थात् जो देवताओं की संपत्ति है वह संसार के बन्धन से छुड़ाने (मुक्त करने) के लिये है और आसुरी अर्थात् असुरों की संपत्ति बन्धन के लिये है।

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि देवताओं की संपत्ति का लक्षण मुमुक्षा (= मुक्त हो जाने की इच्छा) है और असुरों की संपत्ति का लक्षण है बुभुक्षा (भोग करने की इच्छा)। किंतु मनुष्य इन दोनों से परे है। वह इस बन्धन मोक्ष में हेयोपादेय बुद्धि रखता है अर्थात् वह कहीं से कुछ ले लेता है तो कुछ त्याग भी देता है। दोनों के बीच में रहने के कारण उसकी 'योगदृष्टि' दोनों ओर रहती है। सारांश यह हुआ कि असुर कर्मरागी हैं। वे कर्म करते हैं और उसी के साथ साथ चिपके भी रहते हैं। इसके विपरीत देवता कर्मत्यागी होते हैं। पर आदर्श मनुष्य तो कर्मयोगी ही बन सकता है। वह न तो कर्मों को त्यागता है और न उनसे चिपका रहता है।

परायण—गीता के अनुसार देव, असुर और मनुष्य इन तीनों में किसको अर्जुन का आदर्श माना गया है?

गीतानन्द—अर्जुन को भगवान् का उपदेश है कि 'तस्माद्योगीभवार्जुन' (—गीता ६।४६)। अर्थात् हे अर्जुन, इसलिये तुम योगी बनो। इससे यह मालूम पड़ता है कि यदि भगवान् अर्जुन को केवल देवता ही बनाना चाहते होते, तो योगी बनने का उपदेश न करते, बल्कि कर्मों के त्याग का उपदेश करते। असुर बनाना चाहते तो कर्मराग का राग अलापते। भगवान् ने 'रागत्याग' के बीचोबीच 'योग' करने का उपदेश किया। अतः अर्जुन का आदर्श 'मनुष्य' था, न कि देवता अथवा असुर।

परायण—क्या निस्त्रैगुण्य पुरुष गीता का आदर्श है?

गीतानन्द—योगी, स्थितप्रज्ञ (जो पुरुष मन के भीतर पैठी हुई सभी कामनाओं को तज देता और अपने से अपने में ही संतुष्ट रहता है, उसे स्थितप्रज्ञ कहते हैं), भक्त, ज्ञानी और निस्त्रैगुण्य (जिस पर तीनों गुणों का कोई असर न हो) गीता का आदर्श नर है। देखिए—'योगी', 'स्थितप्रज्ञ' के लिये गीता २।५३ और २।५४, 'भक्त' के लिये गीता १२।१३–२०, 'ज्ञानी' के लिये गीता १३।८–१२ और निस्त्रैगुण्य के लिये गीता १४।२२–२५।

परायण—पुरुष और पुरुषोत्तम में गीता के अनुसार क्या भेद है?

गीतानन्द—पुरुष एक क्षेत्रज्ञ होता है; परंतु गीता का पुरुषोत्तम सर्वक्षेत्रज्ञ होता है। सारांश यह निकला कि दोनों में स्वरूपतः कोई भेद नहीं। उपाधि (क्षेत्र) के भेद होने से भेद मालूम पड़ जाता है।

परायण—निस्त्रैगुण्य पुरुष और पुरुषोत्तम में कोई भेद रह जाता है क्या?

गीतानन्द—आपके प्रश्न का सीधा मतलब यह है कि मुक्त और ईश्वर में क्या भेद है? उत्तर भी बड़ा सरल है—दोनों में कोई भेद नहीं। दोनों एक हैं। हां, मुक्त नर को संसार में रहते हुए संसार के व्यवहारों को करना पड़ता है और ईश्वर को नहीं, इतना ही फरक है और कुछ भी नहीं। वेदान्त दर्शन (४।४।१७) भी कहता है कि 'जगद्व्यापारवर्जम्' अर्थात् संसार के व्यवहारों को छोड़ उनमें और कोई भेद नहीं।

परायण—पुरुषोत्तममास में गीता के अनुसार किस प्रकार पुरुषोत्तम की पूजा करनी चाहिए?

गीतानन्द—अशुभ कर्मों को तो सर्वदा के लिये मना किया गया है, पर इस पुरुषोत्तममास में शुभ कर्म भी निषिद्ध हैं। पुरुषोत्तममास नैष्कर्म्यशिक्षा के लिये अपूर्व है। इस अवसर से हमें गीता की नैष्कर्म्यशिक्षा अवश्य लेनी चाहिए।

भजन और मनन का विचार

(स्वामी रवीन्द्रानन्दजी, काशी)

गीता के संवाद का उपसंहार करते हुए संजय धृतराष्ट्र से कहते हैं कि मेरी तो यही मति है कि जिधर योगेश्वर कृष्ण हों, धनुर्धर अर्जुन हों, उधर ही श्री, विजय, ऐश्वर्य, और अटूट नीति रहती हैं।

× × × ×

अजी मेरे जीव, तुमने रसभरे अंगूरों का रस लिया है, अच्छी तरह मिसिरी का भोग लगाया है, निर्मल दुग्ध का पान किया है, स्वर्ग में जाकर कितनी ही बार अमृत पिया और रम्भा के अधरामृत का रस चखा है, किंतु ठीक ठीक कहना कि बारंबार इस संसार में चक्कर काटते हुए तुम्हें 'कृष्ण' इन दो अक्षरों की मिठास का उद्गार (=डकार) भी कहीं लख पड़ा?

+ × × ×

तुम पाताल में पैठो अथवा स्वर्ग में चले जाओ; सुमेरु की चोटी पर पहुँचो अथवा एक के बाद एक सभी समुद्रों को पार कर डालो, तौ भी तुम्हारी आशा शान्त नहीं हो सकती। हे आधि (मन की पीड़ा), व्याधि (शरीर की पीड़ा) और बुढ़ापे से नष्ट होनेवाले जीव, यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो, तो 'श्री कृष्ण' इस रसायन का स्वाद लो। अरे, नाहक दूसरे श्रमों से तुम्हारा क्या लाभ?

व्यासवचनामृत

पुरुषोत्तम

नाम ? पुरुषोत्तम के हजारों नाम हैं (सहस्रनाम्ने), पर हमें यहाँ एक बात का अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि पुरुष, महापुरुष और पुरुषोत्तम तीनों ही एक परमात्मा के नाम हैं।

ईश्वर के सभी नाम बड़े हैं, पर हमें दो नाम बड़े प्रिय हैं, राम और कृष्ण। दशरथ के आँगन में खेलनेवाले राम और 'सोभित कर नवनीत लिये' कृष्ण हमें बड़े प्यारे हैं। इनकी मिठास ! एक बार चखकर देखिए !

रूप ? पुरुषोत्तम के हजारों रूप हैं। (वे 'सहस्रमूर्ति' हैं)। पर हमें तो उनका बालरूप ही प्यारा है।

जिसका मन हो वह महायोगेश्वर का विराट् रूप देखे—विश्वरूप का दर्शन करे (गीता ११ अ०), पर दिव्य और उग्ररूप से मानुष, सौम्य गोपाल रूप अधिक प्यारा होता है।

कर्म पुरुषोत्तम को प्यारा कौन होता है ? जो उनका भक्त हो और त्यागी हो—

शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः। १२।१७

तन और मन, इस मानुष तन से ऐसा काम करो कि मन निष्काम हो जावे। जहाँ मन सुन्दर हुआ कि जीवन सुन्दर हुआ समझो। मन ही सुख का मूल है।

मन को सुधारने का योग (उपाय) गीता में है।

त्याग किस का करना चाहिए ? यही सबसे बड़ा प्रश्न है। त्याग का अर्थ यह नहीं है कि हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाओ। 'त्याग' वैदिक कर्मकाण्ड तथा गीता के कर्मयोग दोनों ही प्रसंगों में बड़े अच्छे अर्थ में आया है। वहां 'त्याग' का अर्थ कर्मफलत्याग अर्थात् फल की आशा छोड़ना है। 'त्याग' (का यही सच्चा अर्थ) सिखाना गीता का मुख्य लक्ष्य है। पुरुषोत्तममास का भी मुख्य कर्म यही (फल और आशा का) त्याग है।

बृहन्नारदीयपुराण में लिखा है कि—पुरुषोत्तम मास में राधासहित पुरुषोत्तम की पूजा करनी चाहिए। और शुभ अथवा अशुभ कोई भी काम न करना चाहिए। इसका यही अर्थ है कि इस मास में विचार और मनन से अपने मन को पवित्र बनाना चाहिए। ऋग्वेद के वरुण सूक्त (१।२५) में लिखा है कि राजा वरुण अपने महलों में बैठकर चारों ओर देखते हैं कि क्या हो चुका है और क्या होनेवाला है।

हमें भी इसी प्रकार पुरुषोत्तममास में घर बैठना चाहिए। अपनी बीती बातों पर विचार करना चाहिए और आगे क्या करना है इसकी भी चिन्ता करनी चाहिए।

हमारे संत और आचार्य तो कहा करते हैं कि हमें प्रतिदिन ही एक समय ऐसा स्थिर कर लेना चाहिए जब हम अपनी दिन भर की बातों को सोचें समझें।

ऐसा करने से स्वार्थ और परमार्थ, कर्म और धर्म सभी ठीक हो जाते हैं। इसलिए प्रायः बड़े लोग 'डायरी' (दैनंदिनी) लिखा करते हैं।

प्रत्येक अभ्युदय के इच्छुक और आत्मोन्नति के प्रेमी को पुरुषोत्तममास की इस सीख को गँठिया लेना चाहिए।

पुरुषोत्तममाहात्म्य की विशेषता पर ध्यान देना चाहिए। यह मास अमावस्या से प्रारम्भ होता है और अमावस्या को ही समाप्त हो जाता है। पूर्णिमा बीच में पड़ती है। इसका रहस्य यह है कि मनुष्यजीवन की पूर्णिमा यहीं बीच में होती है। जन्म-मरण का तो ठिकाना नहीं; वह तो 'अव्यक्त' होता है। अतः इस सुन्दर नरजीवन का जितना बने उतना सदुपयोग करना चाहिए।

'सुर दुर्लभ मानुष तन पायो'—तुलसी

कृष्णसंदेश का प्रचार

स्वामी विद्यानन्दजी इस वर्ष गुरुपूर्णिमा को कलकत्ते में थे, उनका जीवन गीता का संदेश सुनाने में बीतता है, कलकत्ते में भी उन्होंने उसी संदेश का प्रचार कई ढंग से किया है।

१—लगभग दो महीने के, माहेश्वरीभवन में गीता की कथा हुई, जिसमें कई हजार नरनारी जुटते और लाभ लेते थे।

२—चलतेचलाते इस लोकसंग्रह की पूर्णाहुति हुई गीताधर्म रिलीफ फंड की स्थापना में। पीडितों की सहायता के लिए स्वामीजी ने एक फंड कायम किया।

३—बीच बीच में स्वामीजी गोविन्दभवन, विशुद्धानन्दविद्यालय, विश्वबन्धुविद्यालय १२० तुलापट्टी आदि संस्थाओं में जाकर शिक्षा और उपदेश भी दिया करते थे। गोविन्दभवन में गीताधर्म की विशालता, अन्तर्राष्ट्रीयता, नित्यता पर; विशुद्धानन्दविद्यालय में गोस्वामी तुलसीदास के उच्च आदर्श पर और विश्वबन्धुविद्यालय में शिक्षा की आवश्यकता पर स्वामीजी ने बड़ा रोचक और गम्भीर भाषण किया। विश्वबन्धुविद्यालय की तो स्वामीजी ने स्वयं **नींव ही डाली थी।** यह एक सरयूपारियों का विद्यालय है और इसकी स्थापना एक विश्वबन्धु संत ने की है।

४—कलकत्ते से बिदा के समय कलकत्ते की जनता यह चाहती थी कि जुलूस के साथ स्वामीजी को स्टेशन पहुँचावें, पर स्वामीजी ने इसे मना कर दिया, आपने कहा कि मेरे जाने के समय यदि दस पाँच मोटरें भी एक साथ गईं, तो मैं नहीं जा सकता। आखिर एक मोटर पर स्वामीजी और गीताधर्म संपादक स्टेशन पहुँचे; किंतु वहाँ का दृश्य ही कुछ निराला था, सैकड़ों की संख्या में प्रतिष्ठित नागरिकों की भीड़ वहाँ इकट्ठी थी, सब लोग ट्रेन खुलने तक "श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ, नारायण, वासुदेव" का कीर्तन कर रहे थे, स्वामीजी को विदाई के समय सैकड़ों मालाएँ पहनाई गईं। प्रसाद के रूप में स्वामीजी माला और अंगूर (फल-फूल) सबको दे रहे थे; इतने में गाड़ी चल पड़ी।

५—इस गीताप्रचार का श्रेय **सेठ दाऊदयाल कोठारी, सेठ रामप्रसाद मूंदरा,** माहेश्वरीभवन के मन्त्री **श्री हरिकृष्ण भंवर** और **श्री यमुनाधर लोहिया** आदि सज्जनों को है।

६—इस यात्रा में एक बात और सीख की है। कृष्ण और गीता के भक्त इतने नम्र होते हैं, इसका एक उदाहरण देखिए।

कल्याण के प्राण और गीता के साधु श्री जयदयालजी गोयंदका जैसे प्रतिष्ठित पुरुष को स्वामीजी के पास आने और कथा सुनने में बड़ा रस मिला; यह उनकी नम्रता का उत्कृष्ट उदाहरण है कि वे गीताप्रेमी स्वामीजी के यहाँ स्वयं गये और आग्रह करके गोविन्दभवन ले गये, ऐसी विनय, ऐसी नम्रता और सत्कार की ऐसी वृत्ति सराहनीय और अनुकरणीय है।

बाँध अथवा गोवर्धन

बाबा का कर्मयोग

ले० — डा० मोतीचंद एम. ए., पी-एच. डी. (लंदन)

भगवान् जो कुछ करते हैं भक्त भी वही करने की कोशिस करते हैं। पुरुषोत्तम कृष्ण जो कुछ करते हैं, उनके अनुयायी महापुरुष भी यथाशक्ति वही काम करते हैं।

गोरखपुर जिले में एक बड़ा नीचा स्थान है। वहाँ बरसात के दिनों में पानी भर जाता था। पानी की बाढ़ से प्रायः लोगों की खेतीबारी भी नष्ट हो जाती थी। किसान भूखे मरते थे और उनके चउवा गोरू भी बिना चारा घास के बड़ी तकलीफ पाती थीं।

एक प्रकार से यहाँ हरसाल दुर्भिक्ष ही रहता था। इन्द्र के इस प्रकोप से (=पानी के बढ़ने और इकट्ठा होने से) बेचारे किसान बहुत डरा करते थे। अपने धनजन का नाश देखकर वे सदा खून के आँसू रोया करते थे। इस दुःख और त्रास की रोक के लिए वे बड़े हैरान थे। एक बड़े बाँध की बड़ी जरूरत थी। बेचारे गरीब देवी देवता मनाया करते थे। और कर ही क्या सकते थे? न उनके पास धनबल था, और न जनबल। इतना बड़ा बाँध बाँधने के लिए बड़ा रुपया चाहिए और बहुत से आदमी।

एक बार एक गीताभक्त महापुरुष ने कहा—"इस साल बाँध बँधेगा।"

किसान चकराये। कहने लगे—बाबाजी पागल हुए हैं, इतना रुपया कहाँ से आवेगा? एक ने पूछ ही दिया "बाबाजी यह तो किसी राजा रईस का काम है। रुपया कहाँ से आवेगा?" बाबाजी ने सरल हँसी के साथ कहा "सब हो जावेगा। कल देखना सब ठीक हो जावेगा।"

दूसरे दिन लोगों ने देखा—एक दुबला-पतला साधु फौड़ा और खाँची (=फरसा और टोकरी) लेकर तेजी से चला जा रहा है। बहुत से आदमी तमाशा देखने के लिए पीछे चल पड़े। नीचे स्थान पर पहुँचकर साधु ने मिट्टी खोदना शुरू कर दिया; फिर क्या था? साथ आये हुए लोग भी दौड़ दौड़कर कुदार और टोकरी ले आये और चारों ओर खुदाई होने लगी। देखते देखते इतने और अधिक आदमी गाँवों से निकलकर आ गये कि वहाँ पर चारों ओर नर-नारी ही दिखाई पड़ने लगे। बूढ़े, बच्चे, स्त्री, पुरुष, छोटे, बड़े, ऊँच, नीच सभी इस महाकार्य में शामिल थे।

इन श्रद्धालु ग्रामियों ने चमत्कार कर दिखाया, इतना बड़ा बाँध बाँध कर छोड़ा। राम के समान बाबाजी प्रसन्नता से हँसते थे और बलवान् श्रद्धालु बानरों के समान वहाँ के किसान बाँध को देखकर उछल रहे थे। इस प्रकार असंभव संभव हो गया।

बाँध को देखकर आज भी लोग आश्चर्य करते हैं कि क्या इसे किसानों ने बाँधा था? क्या इसे एक बाबा ने बाँधा था? हम कहते हैं हाँ।

गोपाल कृष्ण ने गोवर्धन उठाने के लिए अँगुली उठाई; सारे व्रजवासी तनमन से उठाने में लग गये, बात की बात में गोवर्धन उठ गया।

कृष्ण का भक्त इसी प्रकार यदि किसी काम में अपनी अँगुली भी लगा देता है तो जनता के रूप में आकर स्वयं जनार्दन उस काम को पूरा कर देते हैं। हम तो कहते हैं कि बाबाजी का यह बाँध नहीं गोवर्धनधारण था। गोवर्धनधारण का भी उद्देश्य था वर्षा से रक्षा और इस बाँध का भी लक्ष्य था वर्षा के पानी से बचाव।

इस कर्मयोगी बाबा का नाम है— परमहंस राघवदास।

गीता और बाढ़

(सेवाधर्म)

ले०—एक सेवक (एम० ए०, पी-एच० डी०)

हमारे एक पढ़े लिखे विलायत पास मित्र कहा करते थे कि भाई तुम लोगों की इस गीता की बाढ़ से बड़ा नुकसान हो रहा है। भारत के लोग तो यों ही आलसी और अकर्मण्य हो रहे हैं, ऊपर से गीता और गीताधर्म का प्रचार उन्हें और भी सुस्त, निकम्मा और पौरुषहीन बना रहा है। अभी कल प्रयाग में एक हिन्दी मासिक के संपादक से हमने सुना है कि गीता-वालों के कारण सच्चे साहित्य का प्रचार रुका हुआ है। जनता की सच्ची सेवा नहीं हो रही है।

जो लोग गीतावालों के धर्म को नहीं समझ रहे हैं उनके लिए इस कृष्णाङ्क में हमने कर्मयोगी तिलक के विचार पृष्ठ ७२० पर उद्धृत कर दिये हैं। गीताधर्म के साधक देखने हों तो रामकृष्ण, विद्यानन्द, गीतानन्द, अरविन्द, राघवदास आदि जैसे सेवाधर्मियों को देखिए। गीताधर्म का दूसरा नाम है सेवाधर्म। इस विषय में हम आगे फिर कभी लिखेंगे। पर जो कुछ आंखों से देखना चाहते हों वे देखें इस भयंकर और देशव्यापी घोर बाढ़ के मौके पर इन गीतावालों ने क्या किया है।

गीताधर्म विद्यालय

परीक्षा और प्रतियोगिता

कई सज्जन हमसे पूछते हैं—

गीताधर्म विद्यालय की विशेषता क्या है ?

कई बार ऐसे जिज्ञासु और विद्यार्थी भी हमारे पास आते हैं जो वेदान्त और दर्शन पढ़ना चाहते हैं। वे पूछते हैं 'गीताधर्म विद्यालय की रूपरेखा क्या है ?'

सबके लिए मेरा एक ही उत्तर है—

इस गीताधर्म विद्यालय का मूल मन्त्र है—विद्या और विनय दोनों का समान शिक्षण अर्थात् 'योग' की शिक्षा। इसी (विद्या और विनय के) योग को संस्कृति कहते हैं।

संस्कृति क्या है ? उसका प्रचार और वर्धन कैसे हो ? यही गीताधर्म की सभी संस्थाओं का लक्ष्य है।

लक्ष्य प्राप्ति के उपाय—

विद्यालय के पाठ्यक्रम से छात्रावास अर्थात् आश्रम-जीवन का महत्त्व अधिक है। पढ़ाई लिखाई से चरित्र का गठन बड़ा होता है। पढ़ा लिखा विद्वान् भी रावण जैसा असुर हो सकता है और शील तथा चरित्र के बल से हनुमान् के समान वानर भी देव हो सकता है। हम हनुमानजी की पूजा करते हैं उनके ब्रह्मचर्य बल और पवित्र जीवन के लिए। पर रावण चार वेदों का ज्ञानी शूरवीर राजा था तो भी हम उसकी निन्दा करते हैं, क्योंकि वह स्वभाव और चरित्र में राक्षस था।

गीताधर्म विद्यालय का इसी से यही पहला उद्देश्य है कि यहाँ के विद्यार्थी महावीर हनुमान् के समान बड़े वीर और सच्चरित्र बनें। ऐसे बली वीर ही अपने राम और राष्ट्र की सच्ची भक्ति कर सकते हैं और वे सच्चे दूत बन सकते हैं।

इस चरित्रगठन की शिक्षा के लिए इस विद्यालय में कथा और व्याख्यानों का प्रबन्ध किया गया है।

१—प्रति एकादशी को कथा होती है।

२—अन्य पुण्य पर्वों पर भी कथा और व्याख्यान होते हैं।

३—बड़े बड़े महापुरुषों की जयन्ती मनाई जाती है।

४—गीताधर्म के प्रधान संपादक पद्मनारायण आचार्य अपने स्थान पर सवेरे गीता और संध्या को भागवत पढ़ाते हैं।

५—नित्य सवेरे ६ बजे संमिलित प्रार्थना और भजन होते हैं।

६—(क) गीताधर्म कार्यालय, प्रेस तथा संपादकीय विभाग सभी के कर्मचारी विद्यार्थी समझे जाते हैं। और

(ख) असत्य (= झूठ) उनका सबसे बड़ा और अक्षम्य अपराध माना जाता है। जो झूठ बोलता अथवा असत् आचरण करता है, वह अवश्य दण्डनीय होता है।

७—सत्यं ब्रूयात् }
प्रियं ब्रूयात् } यही इस विद्यालय का मोटो (= बीजमन्त्र) है।

८—जो जिस ढंग से चरित्र का, विनय, शील और

ग्रंथ का पाठ पढ़ सके उसे उसी तरह से पढ़ाने का यत्न किया जाता है।

९—इस विद्यालय का सच्चा परीक्षाफल वहाँ के शिक्षित विद्यार्थियों का जीवन होगा।

१०—पुरुषार्थ की शिक्षा इस विद्यालय में दी जाती है। अतः यहाँ के पुरुषों को देखना चाहिए। यहाँ का मानदण्ड साधारण परीक्षाएँ और पदवियां नहीं है, तो भी व्यवहार में कुछ लाभ पहुँचाने के लिए थोड़ा परीक्षा और प्रतियोगिता का भी प्रबन्ध किया गया है।

(१) परीक्षा का नाम है व्यासपरीक्षा। इसके छ खण्ड हैं—(क) 'प्रवेशिका', (ख) 'दीक्षित', (ग) गीता-विशारद, (घ) कथावाचक, (ङ) व्यास, (च) आचार्य।

(इसका पूरा परिचय फिर कभी देंगे)

(२) प्रतियोगिता द्वारा भी बड़ी शिक्षा मिलती अनेक विद्यार्थियों का उत्साह बढ़ता है। समय समय पर इस प्रतियोगिता की सूचना दी जाया करेगी।

गीता प्रतियोगिता

१—आगामी गीता जयन्ती, मार्गशीर्ष शु० ११ को इसका फल निकलेगा और पुरस्कार वितरण होगा गीताधर्म विद्यालय के भवन में।

२—पुरस्कार में पुस्तक, कलम, कपड़े, पदक, रुपये आदि कई चीजें हो सकती हैं।

३—प्रतियोगिता में वे ही भाग ले सकते हैं, जो स्वयं गीताधर्म के ग्राहक हों अथवा उनके अभिभावक (मातापिता, भाई आदि) हों।

४—उत्तर भेजनेवालों के पत्र पर उनके अभिभावक का हस्ताक्षर होना चाहिए कि उत्तर भेजनेवाले का ही है।

५—प्रश्नों के साथ उम्र (अवस्था) लिखी रहेगी। अतः उत्तर देनेवाले को अपने पूरे पते के साथ अपनी ठीक अवस्था भी लिखनी चाहिए।

प्रश्न—

१—गीता के पहले अध्याय में जितने व्यक्तिवाचक नाम आये हैं, उनका इतिहास लिखो। नीचे लिखी बातों पर विशेष ध्यान रखना होगा।

(क) भाषा हिन्दी होगी।

(ख) किसी ग्रन्थ के आधार पर तुम कथा लिख रहे हो अथवा अपने किसी बड़े (गुरु, पिता आदि से) से सुनकर लिख रहे हो ?

(ग) जिस व्यक्ति के बारे में तुम लिख रहे हो उससे गीता का क्या संबन्ध है ?

(घ) पहले अध्याय में कितने मनुष्यों के नाम आये हैं, और कितने मनुष्येतर चीजों के नाम है ?

(एक व्यक्ति के बारे में जिस पृष्ठ पर उत्तर रहेगा उस पर दूसरा उत्तर प्रारम्भ न करना चाहिए।)

सूचना—इस प्रतियोगिता में अठारह वर्ष के नीचे तक के सभी विद्यार्थी भाग ले सकते हैं। पहले अध्याय में जितने नाम हैं उतने से भी अधिक पुरस्कार रखे गये हैं। परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर विद्यालय के द्वारा उस विद्यार्थी की सहायता अन्य प्रकार से भी की जा सकती है। और किसी किसी को प्रमाण पत्र भी दिये जायँगे।

प्रश्न नं० २—गीता में—

(क) 'कृष्ण' नाम कितनी बार आया है और किस किस श्लोक में ?
(ख) 'विजय' " "
(ग) 'दीप' " "
(घ) 'धर्म' " "

सूचना—दूसरे प्रश्न का उत्तर बारह वर्ष तक की अवस्थावाले विद्यार्थी दें।

परीक्षकमण्डल

१. स्वामी विद्यानन्दजी
२. श्री गीतानन्दजी
३. संपादक
४. गीताधर्म विद्यालय का एक अध्यापक

उत्तर भेजने की अवधि है—
आगामी दीपावली, १४ नवंबर ३६ तक।

प्रार्थी—
प्रधानाध्यापक
गीताधर्म विद्यालय
साक्षीविनायक काशी

इसके संबन्ध में क्रमशः अगले अङ्कों में लिखा जायगा।

संपादकीय

भक्ति का साहित्य

कृष्ण का साहित्य, नये गीताभाष्य, अमृतदान, कुछ अपनी महापुरुषों के जीवनचरित्र आदि।

आजमगढ़ के हमारे एक प्रतिष्ठित सज्जन का आग्रह है कि हम भक्तिसाहित्य की एक तालिका तैयार कर दें। उनकी जैसी रुचिवाले लोग ऐसे साहित्य की खोज में रहते हैं। यह काम एक अङ्क में एक आदमी द्वारा तो हो नहीं सकता। हाँ, सदा कुछ न कुछ इस विषय में लिखा जा सकता है—

(१) थोड़े में कहें, तो व्यास की **भागवत** और सूरदास की **सूरसागर**—इन दो ग्रन्थों को पास में रख लें। ये दोनों भक्तिसाहित्य के विश्वकोष हैं। इनमें भक्त के लिए सभी भाव मिल जाते हैं। इन दोनों का भजन और मनन करने से इतना भागवतरस मिलता है कि फिर अधिक पढ़ने की न तो इच्छा ही रह जाती है और न आवश्यकता ही।

सूरसागर तो व्रज (हिन्दी) भाषा में है, पर भागवत संस्कृत में है। जो संस्कृत नहीं जानते वे अंग्रेजी अथवा हिन्दी अनुवाद पढ़ें।

(२) कृष्णसंबन्धी और ग्रन्थ पढ़ना हो तो गीता पढ़ लो। यह तो सब शास्त्रों का आधार है। सच पूछा जाय तो गीता की व्याख्या और टीका पढ़ने में कोई समय लगाने लगे तो साधारण आदमी जीवन भर में भी सैकड़ों भाषाओं में लिखे हजारों ग्रन्थों को एक बार भी न पढ़ सकेगा। पर एक भक्त के लिए तो छोटी सी गीता के साढ़े सात सौ श्लोक ही बहुत हैं। इनका पाठ और मनन ही सब कुछ कर सकता है। इनमें क्या नहीं है?

(३) व्रजभाषा के भक्त कवियों के काव्य—

सूरदास ने तो सागर ही लिखा है, पर अन्य बहुत से कवि हुए हैं जिन्होंने व्रजमाधुरी की धारा बहाई। उनकी भक्तिरूपी यमुना में स्नान करने से सचमुच भक्त अमर हो जाते हैं। इनको थोड़े में परिचय के लिए पढ़ना चाहिए—

व्रजमाधुरीसार (प्रकाशक—हिन्दीसाहित्यसंमेलन, प्रयाग)। इसमें प्राचीन और नवीन कुल २८ कवियों का संग्रह तथा जीवन है। पहले इसे पढ़ लेने से आगे इस साहित्य के अध्ययन का मार्ग खुल जाता है।

(४) **'उद्धवशतक'**, **'व्रजरज'** आदि इस युग में भी भक्तिभावपूर्ण रचनाएँ हो ही रही हैं। माघ, जयदेव, जगन्नाथ, तुलसी, मीरा आदि कृष्णसंबन्धी अन्य संस्कृत तथा हिन्दी के कवियों की चर्चा हम कभी फिर करेंगे (हो सका तो वसन्त में सरस्वतीपूजन के समय)। कुछ नाम नवनीत में मिल सकते हैं। यहाँ इतना ही कहेंगे कि जो चाहें वे परिचय और आलोचना में गिनाये हुए दो चार गद्यप्रबन्ध और लेख पढ़कर देखें। उन्हें कुछ में इतिहास कथा और कुछ में गजब का कृष्णरस मिलेगा।

(५) कुछ विशेषाङ्क भी ग्रन्थ जैसे हैं—(१)

'श्रेय' का भागवताङ्क (२) 'कल्याण' का कृष्णाङ्क (३) गीताङ्क, (४) भक्ताङ्क इत्यादि।

(६) गोरखपुर से प्रकाशित भक्तिसाहित्य की सूची तो इस अङ्क में पूरी दी गई है (देखो पृ० ७४१)।

खड़ी बोली में कृष्ण पर दो बड़े काव्यग्रन्थ हैं—१. प्रियप्रवास (हरिऔध) और २. द्वापर (मैथिलीशरण गुप्त)। दोनों चीजें भक्तों और रसिकों की निधि हैं।

(८) उर्दू के बारे में हम पीछे अधिक लिखेंगे। इस अङ्क में छपे लेख (पृ० ७३८) से भी कुछ परिचय मिल सकता है।

(९) अंग्रेजी में भी कृष्ण पर बहुत कुछ लिखा गया है। हम केवल उन दो चार ग्रन्थों का नाम यहाँ देते हैं, जिससे हमारे जिज्ञासु पाठकों को विशेष लाभ हो सकता है—

1. Lights on Yoga
(Addresses by Sri Arbinda)
इसमें कृष्ण और राधासंबन्धी बड़ी सुन्दर व्याख्याएँ आई हैं। अरविन्द के अन्य निबन्ध भी पढ़े जा सकते हैं।

2. Transformation of Nature in Art
by A. K. Kumar Swami
इस ग्रन्थ में विद्वान् कलाविद् ने रास, राधा आदि पर बड़ी मार्मिक बातें लिखी हैं, जिससे अनेक पश्चिमी भ्रम में पड़े लोगों को भी लाभ हो सकता है।

3. Krishna by Dr. Bhagawandas,
(I. P. House, Adyar, Madras)
कृष्णजीवन की पढ़ने योग्य विवेचना है।

4. Our Elder Brethren by Dr. Besent.
इसमें कृष्ण पर एक सुन्दर लेख है।

5. Shree Krishna. by Ch. Gopinatham. B. A.
(पता—गोपीनाथ बी० ए० वकील, एलोर, कृष्णा डिस्ट्रिक्ट)
यह चार खण्डों का ग्रन्थ पढ़ने लायक है।

6. Shri Krishna by Dhana Krishna Biswas B. A.
(T. P. Society, Benares.)

7. Krishna's Flute by T. L. Vaswani
(Ganesh & Co. Madras)

8. Krishna The Saviour by T. L. Vaswani:
(Ganesh & Co., Madras)

9. Ras by Pande N. Kishore Sahai Seva Kunj
(Patna)
यह रासपञ्चाध्यायी का अंग्रेजी अनुवाद पठनीय है।

10. Bhagavat I and II
Translated by
S. Subba Rao M. A.

11. Ras by Gitanandaji
इस प्रकार के ग्रन्थ गिनाने लगें तो अभी बहुत से मिलेंगे। जो पाठक चाहें खोजकर पढ़ सकते हैं। दिग्दर्शनमात्र हमने करा दिया है।

(१२) हिन्दी साहित्य के इतिहासों में कृष्णशाखा के भक्त कवियों का एक परिचय मिल सकता है।

+ + + +

नये भाष्य—स्वामी विद्यानन्दजी, ब्रह्मचारी श्री गीतानन्दजी, योगी अरविन्द आदि जो गीता के वर्तमान प्रसिद्ध व्याख्याता हैं, उनके गीताभाष्यों को लिखने लिखवाने का हम शीघ्र ही प्रबन्ध कर रहे हैं। यह स्वाध्याय का जिम्मेदारीवाला काम है। जल्दी नहीं हो सकता। हमें भी बड़ा सोचना समझना पड़ता है। अतः हमारे पाठक देरी से घबड़ावें नहीं। धीरज रखें।

अमृतदान—१. गीताधर्म रिलीफफंड में कलकत्तावासियों ने सत्रह सौ से ऊपर रुपयों और कोई चौदह पन्द्रह हजार अदत कपड़ों के अतिरिक्त अनाज, बर्तन आदि दिए हैं। उनका ब्यौरा आगे निकलेगा।

२. जमशेदपुर से तिवारी वेचर कंपनी के मालिक श्री एम० एल० तिवारीजी ने अपनी प्रिय पत्नी की स्मृति में गीताधर्म को दान दिया है। ऐसे ही अयाचित दान को अमृतदान कहते हैं। तिवारीजी ने हमें अमृत दिया है। हम क्या करें? हम प्रभु से यही मनाते हैं कि वे उनकी प्रिया को शान्ति दें और संतत हृदय को सान्त्वना।

अपनी तो हमें यही कहना है कि १. हम पहले कुछ अस्वस्थ थे; अच्छे होने पर २. नयी मेशीन के लाने में ३. और बाढ़पीड़ितों की सहायता करने में वझ जाना पड़ा। आशा है, आप इस देरी के लिए कुछ न सोचेंगे। ४. साथ ही हमने दो अङ्क भी इस बार आपकी सेवा में दिए हैं। इससे देरी होना स्वाभाविक था।

महापुरुषों के जीवनचरित

हमने कृष्णाङ्क में (पृ० ७२२) लिखा था कि चार जीवन चरित लिखेंगे। जगह न होने से लाचारी है। फिर कभी। इस अङ्क में कई महापुरुषों के चरित तो आ ही गए हैं। 'महापुरुष अरविन्द'वाला प्रबन्ध पत्रिका में न छापकर हमने अलग छाप दिया है। श्री गीतानन्दजी का जीवनचरित 'अद्भुत संवाद' में निकल रहा है। इस प्रकार दूसरे रूप में उस वचन का पालन हो जाता है। —सं०

गुरुपूर्णिमा परिशिष्ट

कान्तिलाल आ० बोडीवाला सेक्रेटरी श्रीविद्यानन्द सत्संगमण्डल लिखते हैं:—

कामनाथ महादेव के शिवालय में श्री विद्यानन्द सत्संगमण्डल की ओर से बड़े उत्साह के साथ गुरुपूर्णिमा का उत्सव मनाया गया। मन्दिर खूब सजाया गया था। बीच में सुन्दर व्यासपीठ सजा हुआ था। इसके ऊपर गद्दी, तकिया, गलीचा वगैरः बिछाया गया था। जनता ने इस उत्सव में बड़ी संख्या में भाग लिया था।

कार्यक्रम—सवेरे ६॥ बजे से १०॥ बजे तक भजन और जप होने के बाद स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज के चित्र का पूजन हुआ। जनता में आनन्द की लहर लहरा रही थी। बाद में पूज्य श्री शास्त्री ईश्वरलाल शर्मा का पौन घण्टे तक गुरुपूर्णिमा के माहात्म्य पर सुन्दर भाषण हुआ।

पूज्य स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज का अमूल्य संदेश गुरुपूर्णिमा पर आशीर्वादरूप में भक्त जनों के बीच में पढ़कर सुनाया गया। उस समय श्रोतावर्ग ने बड़े उत्साह से परमात्मा का और स्वामीजी का जय जयकार किया। लगभग डेढ़ घण्टे तक स्वामीजी की प्रिय पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ हुआ। फिरसे पूजा-अर्चन-आरती के बाद सब लोगों को मण्डल की ओर से प्रसाद बाँटा गया। बड़े आनन्द के साथ गुरुपूजन समाप्त हुआ।

सूचना—'गुरुपूर्णिमा' काशी के गीताधर्म कार्यालय तथा अन्य प्रसिद्ध स्थानों और नगरों में भी बड़ी धूम से हुई थी, पर यहां स्थान नहीं है कि वर्णन दें। —सं०

गीता में कृष्ण के नाम

कृष्णाङ्क और पुरुषोत्तमाङ्क की तैयारी में हमारे लेखकों और सहयोगियों ने कुछ उठा नहीं रखा। हमें भी अपनी यह (दो अङ्कों की) युक्त रचना बड़ी सुहावनी लगती है।

निज कबित्त केहि लाग न नीका।
सरस होय अथवा अति फीका॥

पर जब हम पुरुषोत्तम कृष्ण की महिमा का विचार करते हैं, तब तो कुछ और ही कहना पड़ता है (नेति नेति)। हम ज्यों ज्यों सोचते हैं त्यों त्यों हमें ऐसा लगता है कि कितना अच्छा अङ्क हो सकता था? कितनी अच्छी और अधिक बातें इस अङ्क में आ सकती थीं? न जाने कितने विषय सूझते हैं, पर न तो हमारे पास समय है, न पत्रिका में स्थान है (इस अङ्क में अठारह फर्मे से भी अधिक लिखा जा चुका और कई पन्ने यहाँ वहाँ के जोड़ दिये गये हैं)। और एक बात यह भी मन में आती है कि सारा विश्व भी भगवान् का रूप है और हमारा पूरा जीवन भी उसका अध्ययन करने और वर्णन करने के लिए काफी नहीं है। हमें जीवन में यही तो करना है; उस भगवान् की विभूति और श्री का संसार में दर्शन करना है।

एक बार हमारी इच्छा हुई थी कि गीता में आये हुए कृष्ण के नामों पर कुछ विचारें और लिखें, पर यह कभी फिर होगा। गुरुवर केशवजी ने इसकी एक झलक दी है। हम केवल इतना कह देते हैं—

"हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति"

महिमा न जानने के कारण अर्जुन इन नामों को लेते थे, पर भक्त कवि इन महिमाहीन नामों को ही सबसे बड़ा मानते हैं। क्यों? विचारिए, मनन करिए।

गीताधर्म

विशेषांकमय सचित्र धार्मिक और साहित्यिक

मासिक पत्र

इस वर्ष (१९३५–३६) गीताधर्म के अनुपम विशेषाङ्क जो निकल चुके हैं, उन्हें अवश्य पढ़िए—

१—प्रवेशाङ्क
२—कुम्भाङ्क
३—वसन्ताङ्क
४—यज्ञाङ्क
५—रामाङ्क
६—शङ्कराङ्क
७—गङ्गाङ्क
८—व्यासाङ्क
९–१०–कृष्णाङ्क और पुरुषोत्तमाङ्क

गीताधर्म अपने दूसरे वर्ष में लगभग ६०० पृष्ठों का

विश्वधर्माङ्क नामक विशाल विशेषाङ्क लेकर प्रवेश करेगा।

इन विशेषाङ्कों का पढ़ना न भूलिए—

कलापूर्ण चित्र सुन्दर मेक-अप और नयनाभिराम छपाई के साथ-साथ लेख, कविता एवं कहानियों का इतना सुन्दर 'योग' अन्यत्र नहीं मिलेगा। शीघ्रता कीजिए अन्यथा दूसरे संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

मैनेजर—'गीताधर्म'
साक्षीविनायक, काशी

गीताधर्म प्रेस, साक्षीविनायक, काशी

(भारत के प्रसिद्ध शहरों में गीताधर्म कार्यालय की शाखाएँ)

गीताधर्म मिलने के पते

१ **काशी,** (क) गीताधर्म कार्यालय, साक्षीविनायक। (ख) गीताधर्म कार्यालय, भदैनी (ग) विद्यामंदिर कार्यालय, पांडेघाट, (घ) श्री शिवनारायण बी. ए., अर्दली बाजार।

२ **प्रयाग,** पं० वृषकेतु उपाध्याय, जार्जटाउन ३३ (गिरधारीलाल का बँगला)

३ **बंबई,** श्री नगीनदास फूलचंद चिनाई, चिनाई बिल्डिंग, मसजिद बंदररोड।

४ **कलकत्ता,** श्री सेठ रामप्रसादजी मूंदरा ३२, क्रासस्ट्रीट मूंगापट्टी कलकत्ता M. P.

५ **अहमदाबाद,** सेठ बद्रीप्रसाद, कामनाथ महादेव, रायपुर दरवाजा बाहर।

६ **बड़ोदा,** मणिभाई जशभाई, कंसारा की वाड़ी, मांडवी रोड।

७ **इन्दौर,** हीरालाल पन्नालाल, न्यू क्लाथ मारकेट।

८ **इन्दौर,** श्री कमलाशंकरजी पंड्या M. B. E. H. प्राइवेट मेडिकल प्रेक्टीशनर, पीपली बाजार।

९ **ग्वालिअर,** बाबू उमराव बिहारी, अंबानिवास नौमहला।

१० **नागपूर,** लाला नंदलाल मैकूलाल, सीतावर्डी (किराना मर्चेंट)।

११ **जबलपूर,** सेठ रामकुमार, लार्डगंज।

१२ **जबलपूर,** लाला रामचन्द्र, रईस व ठेकेदार मुकादमगंज।

१३ **गाडरवारा,** आचारीजी का मन्दिर।

१४ **नरकाटियागंज (चंपारन),** पंडित राधावल्लभ मिश्र, अध्यापक जानकी संस्कृत विद्यालय।

१५ **जमशेदपूर,** एम. एल. तिवारी, तिवारी बेचर एन्ड कं० लिमिटेड।

१६ **लाहौर,** सेठ शालिग्राम नरसिंहदासजी, लाहौर कैन्टुन्मेन्ट।

१७ **लखनऊ,** श्री नंदबिहारीलाल ओरियंटल ग० सिक्यूरिटी लाइफ इंश्योरेंस कं० लि० ओरियंटल बिल्डिंग, हजरतगंज।

१८ **डभोई,** सेठ चुन्नीलाल गिरधरलाल जीनवाला।

१९ **सनखेड़ा,** बक्षी जेठालाल केशवलालजी बजारमां (बड़ौदा)

२० **आनंद,** पटेल गोरधनभाई शामलदासजी मास्तर।

२१ **उदयपूर,** अक्षयकीर्ति शर्मा 'अखय', सुपरिंटेंडेंट मेवाड़ आफ कोलाजी विक्टोरिया हाल म्युजियम (राजपूताना)

२२ **उज्जैन,** पं० दुर्गाप्रसादजी तिवारी, लेफ्टीनेन्ट, माधवनगर ।

२३ **सिहोरा,** श्री दयाप्रसाद वर्मा, लोकल बोर्ड सेक्रेटरी, सिहोरा रोड ।

२४ **गाजीपूर,** श्री शिवमूर्ति पांडेयजी, भगवती औषधालय, धानापूर ।

२५ **मुल्तान,** सनातनधर्म सभा मुल्तान, (पंजाब)

२६ **कनखल,** श्रीस्वामी कल्याणगिरिजी घंटाकोठी (हरिद्वार)

२७ **आगरा,** श्रीयुत राधेचरनजी रिटायर्ड डिप्युटी कलक्टर, सिव्हिल लाइन ।

२८ **रावलपिण्डी,** श्रीमान् हेडमास्टर साहब, सनातनधर्म हाईस्कूल ।

२९ **कानपुर,** श्रीमान् बाबू गंगानारायण खरे, म्युनिसिपल हाईस्कूल, नवाबगंज ।

३० **दिल्ली,** श्रीमान् पं० गोविन्दचन्द्र पांडेय बी० ए०, सेक्रेटरी आल इण्डिया ब्राह्मणमहासभा तथा वर्णाश्रम स्वराज्य संघ, २३०३ चरखे वालान स्ट्रीट, कूचा बीबीगौहर ।

३१ **सिंध,** मेसर्स बेरहामल नंदरामजी, न्यू अंडरपीस गुड्समचेंट, शिकारपुर ।

३२ **हैदराबाद,** श्रीमान् गोपीकिशनजी C/o सेठ सीतारामजी रामगोपालजी माता नी नगारखाना, बेगमबाजार हैदराबाद (दक्षिण)

३३ **पादरा,** श्रीमान् जेठालाल मनसुखरामजी, कापड़ नी दुकान, बजारमां ।

३४ **पेटलाद,** श्रीमान् काछिया मोतीभाई जेठालाल, एजेन्ट पेटलाद बुक्सेलर, ठे० बड़कुवां पासे ।

३५ **रतलाम,** श्रीमान् माणिकलाल भूराभाई, C/o मगनलाल गिरिधरलाल बिल्डिंग पञ्चकंडील ।

३६ **गोधरा,** शाह माणेकलाल बृंदावनदास, ग्राम-वीरपूर ना सरवैयर ।

३७ **आजमगढ़,** पं० श्रीधर उपाध्याय, कुर्मीटोला ।

३८ **हरिद्वार,** मैनेजर, महारानी अहिल्याबाई-बाड़ा ।

३९ **जैपुर,** श्रीमान् लक्ष्मीशरण गंगाशरणजी माथुर, जड़ियो का रास्ता, जैपुर सिटी ।

४० **भुज, (कच्छ),** श्रीमान् महेता यशश्चंद्रभाई मोतीभाई, ज्वाइन्ट प्राइवेट सेक्रेटरी ।

४१ **आफ्रीका,** Gordhan Bhai Soma Bhai Patel The Indian School, Saba Saba P. O. MARAGUA, (Kenya Colony) British East Africa

42 Fiji (Island)—S. B. Patel Bar-at-Law, Lauutka

43 Mombasa—Purashotam D. master P. 274 British East Africa

44 Java—Natwarlal Govardhan das Parikh Messers Chandulal & Co.,
4, Gang Gipo, Survaya.

45 Japan—Messers R. C. Patel & Co., P. N. 339 Kove.

४६ **बालिया,** पं० श्यामसुंदरजी उपाध्याय A. A. L. L. B., सेक्रेटरी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड।

४७ **लहेरियासराय,** श्री विश्वनाथ नारायण सिंह, B. A. L. L. B. (दरभंगा)।

४८ **पटना,** वैद्यरत्न पं० ब्रजबिहारी चतुर्वेदी, रत्नाकर औषधालय, भिखना पहाड़ी, बाँकीपूर।

४६ **महादेवपारा,** वसिष्ठनारायण त्रिपाठी, मु० महादेवपारा पो० मेहनगर, आजमगढ़।

५० **प्रतापगढ़,** पं० रविदत्त पांडेय B. A, L. T., असिस्टेण्ट मास्टर अजीत सोमवंशी हाईस्कूल
प्रतापगढ़ सिटी (अवध)

५१ **अमृतसर,** गोस्वामी जीवनदास, महामंत्री-पंजाब प्रान्तीय वर्णाश्रम स्वराज्य संघ,
दुरगियाना, अमृतसर (पंजाब)

५२ **करांची,** रतीलाल नरवेजी, कोटक, प्रागजी दामजी बिल्डिंग प्रिंसेस स्ट्रीट, नंदकुवादा।

५३ **रांची,** गुलाबनारायण शर्मा, तिवारी महल्ला

सूचना

इन ५३ स्थानों में गीता के प्रेमी और निष्काम सज्जनों ने ऐसी व्यवस्था कर दी है कि वहाँ से जो कोई चाहे गीताधर्म प्राप्त कर सकता है। कलकत्ता, अहमदाबाद, बड़ौदा, पेटलाद, डभोई, सनखेड़ा, इंदौर और जबलपूर में तो ऐसा प्रबंध हो गया है कि वहीं के स्थानीय लोग ग्राहकों के घर गीताधर्म पहुँचा देंगे। जिन लोगों को गीताधर्म किसी कारण से अथवा भूल से न मिले वे अपने नगर के कार्यालय से पता लगाकर तब हमारे यहाँ (काशी) लिखें।

जिन नगरों में गीताधर्म ग्राहकों के घर पर पहुँचाने का प्रबंध है उनके नाम और पते—

१. **नागपूर,** लाला नंदलाल मैकूलाल, सीतावर्डी (किराना मर्चेंट)।
२. **अहमदाबाद,** श्रीविद्यानंद सत्संग मण्डल, रायपुर दरवाजा बाहर।
३. **बड़ोदा,** गीताधर्म सत्संग मंडल, कंसारा नी वाडी, मांडवी पासे।
४. **इंदौर,** डाक्टर श्री कमलाशंकरजी पंड्या M. B. E. H.
प्राइवेट मेडिकल प्रेक्टीशनर पीपली बजार।
५ **जबलपूर,** लाला रामचंद्रजी रईस, मुकादम गंज।

महत्त्व की ग्रंथसूची

गीताधर्म के आगामी अंक होंगे—

विजयांक, दीपांक, दर्शनांक, और विश्वधर्मांक।

प्रति अंक में हम एक ग्रंथसूची देंगे। कृष्ण, विजया दशमी, दीपावली, दर्शनशास्त्र और विश्व के सभी धर्मों के अच्छे ग्रंथों की सूची हम देना चाहते हैं। जो पाठक तथा प्रकाशक पता भेजकर अथवा पुस्तक भेजकर इस स्वाध्याय में सहायता कर सकें, अवश्य करें (प्रकाशकों और लेखकों का तो एक प्रकार का विज्ञापन हो जावेगा)।

संपादक—
'गीताधर्म'

—संचित और प्रारब्ध कर्म जानने का अपूर्व अवसर—

अपने पूर्व जन्म के कर्मों का ज्ञान हो जाने से मनुष्य सावधान होकर ऐसे कर्म करता है जिससे उसका वर्तमान जीवन **सुखी** बने।

यदि इच्छा हो तो जन्मपत्रिका, मासपत्रिका, वर्षपत्रिका भेजकर लाभ उठाइए। यदि कुछ भी न हो तो किसी भी समय एक पुष्प का तथा अपना नाम लिखकर पंडितजी के पास प्रश्न भेजिए। वे उत्तर देंगे। प्रश्न करते समय शांत चित्त से भगवान् का ध्यान करना चाहिए और वही प्रश्न करने का समय नोट करके भेजना चाहिए।

पंडितजी पत्रिकाएँ भी बनाते हैं।

पंडितजी का पता है—

पं० श्रीधर उपाध्याय आचारी, आजमगढ़ सिटी (U.P.)

गीताधर्म कार्यालय के द्वारा भी इनसे पत्रव्यवहार हो सकता है।

'महाविद्या' का 'तुलसी अंक' श्रावणमें निकल गया

संपादक समिति

१—पं० पद्मनारायण आचार्य एम० ए०
२—पं० मधुसूदनप्रसाद मिश्र 'मधुर' व्याकरणाचार्य
३—श्री शिवनारायण वर्मा बी० ए०
४—श्री देवीनारायण बी० ए०, एल्‌० एल्‌० बी०
५—श्री वृषकेतुजी 'शुक' बी० ए०
६—श्री कमलाजी 'अशोक'
७—पं० जगन्नारायणदेव शर्मा 'कविपुष्कर'

यदि आप गो० तुलसीदासजी तथा उनकी कृतियों पर लिखे गए विद्वानों के मार्मिक लेख पढ़ना चाहते हों, यदि आपको मनोहर कविताओं के देखने का प्रेम हो और यदि आप तुलसीसाहित्य की सुंदर समालोचना और संपादकीय टिप्पणियाँ देखना चाहें तो यह अंक मंगाकर अपने पास रखें। ग्राहकों से कुछ नहीं, दूसरों से ॥) मूल्य लिया जायगा। 'महाविद्या' का वार्षिक मूल्य ३) है।

निवेदक—'महाविद्या' विद्यामंदिर-कार्यालय,
पाण्डेयघाट—बनारस सिटी।

गीताधर्म के नियम

गीताधर्म प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित होता है।

इसका वार्षिक मूल्य ४) मात्र है। इसका वर्ष मार्गशीर्ष से कार्तिक तक समझा जाता है। छः मास का मूल्य २।) रुपया है, परन्तु छः मासवाले ग्राहकों को वार्षिक बड़ा विशेषाङ्क नहीं मिलेगा। प्रति सङ्ख्या का मूल्य ।≥) है। नमूने के लिये ।≥) आने का टिकट भेजना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ६॥) और प्रति सङ्ख्या का ।≡) है।

अपना नाम और पूरा पता साफ साफ लिखकर भेजना चाहिए, जिसमें पत्रके पहुँचनेमें गड़बड़ी न हो।

जिन सज्जनों को किसी मास का गीताधर्म न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछना चाहिए। पता न लगने पर डाकघर के उत्तर के साथ जिस महीने की सङ्ख्या न मिली हो उसके अगले महीने की कृष्ण एकादशी तक पत्र लिखें। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर विचार करना कठिन होगा। गीताधर्म यहाँ से दो बार अच्छी तरह जाँचकर रवाना किया जाता है।

पत्र के उत्तर के लिये सदा **जवाबी कार्ड अथवा टिकट** आना चाहिए, अन्यथा हम उत्तर देने में असमर्थ हैं।

६—यदि एक ही दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो अपने डाकखाने से उसका प्रबन्ध करा लेना चाहिए। यदि सदा अथवा अधिक काल के लिये पता बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिए।

७—लेख, कविता, समालोचना के लिये पुस्तकें (२ प्रति से कम नहीं) और बदले के पत्र "सम्पादक 'गीताधर्म', साक्षीविनायक, काशी" के पते से भेजना चाहिए। मूल्य तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र "मैनेजर 'गीताधर्म', साक्षीविनायक, काशी" के पते से आना चाहिए।

८—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने वा न करने का तथा उसे लौटाने वा न लौटाने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेखों के घटाने बढ़ाने का अधिकार भी सम्पादक को है।

९—लेख, कविता एवं कहानियों का सरल भाषा में धर्म के अनुकूल तथा एक ही पृष्ठ पर स्पष्ट लिखित होना आवश्यक है। अधूरे वा धर्मविरुद्ध लेख नहीं छापे जायँगे। जिन लेखों में चित्र रहेंगे वे तब तक न छापे जायँगे जब तक लेखक उनके मिलने का प्रबन्ध न कर देंगे।

गीताधर्म के विज्ञापन छपाई के रेट

	प्रतिमास
का तीसरा पृष्ठ	३०) ,,
,, ,, एक कालम	१६) ,,
,, चौथा पृष्ठ	४०) ,,
,, ,, ,, एक कालम	२१) ,,
के द्वितीय पृष्ठ के सामनेवाला पृष्ठ	२५) ,,
,, ,, एक कालम	१५) ,,
विषय की समाप्ति के सामनेवाला पृष्ठ	२५) ,,
,, ,, सामने एक कालम	१५) ,,

१—हमारे यहाँ अश्लील, कुरुचिपूर्ण अथवा **अधार्मिक** विज्ञापन नहीं छापे जायँगे। इसका निर्णय समिति के द्वारा होता है।

२—विज्ञापन छपाई के रुपये पहले ही आ जाने चाहिए। नियमों की जानकारी के लिये इस पते पर पत्र लिखें—

मैनेजर 'गीताधर्म'
साक्षीविनायक, काशी।

Gita Dharma Registered No. A 2843.

गीताधर्म कहाँ मिलता है ?

कलकत्ता, बंबई, काशी, प्रयाग, अहमदाबाद, बड़ौदा, इंदौर, जबलपुर, नागपुर, गाडरवारा, नरकटियागंज, आजमगढ़, दिल्ली आदि प्रसिद्ध स्थानों में गीताधर्म के प्रेमियों ने ऐसा प्रबन्ध कर दिया है कि जो गीताधर्म लेना चाहें उन्हें मिल सकता है। पूरे पते भीतर देखिए।

ब्रजरज

(रचयिता—सुप्रसिद्ध कवि और कलाविद् श्री राय कृष्णदासजी काशी)

यदि आप ब्रजभाषा की सबसे नई रचना का रसास्वादन करना चाहते हैं, तो आज ही ब्रजरज खरीदिए। इसमें 'रत्नाकर' जी की मँजी भाषा, सत्यनारायण कविरत्न की सहृदयता, श्रीधर पाठक की कोमल-कान्त पदावली और 'हरिऔध' जी की कल्पना का एक स्थान पर समावेश मिलेगा। आधुनिक ब्रजभाषाकाव्य का यह प्रतिनिधि कवितासङ्ग्रह है। अभी अभी श्रावण में निकला है; आप भी जल्दी करिए अन्यथा द्वितीय संस्करण का रास्ता देखना पड़ेगा। मूल्य आठ आने मात्र।

विद्यानन्द ग्रन्थमाला के ग्रन्थ

(पढ़िए, विद्यालाभ भी होगा, आनन्द भी मिलेगा)

१. शब्दशक्ति (प्रथम और अद्वितीय ग्रन्थ) रु० १)
२. गीता (स्वाध्याय के लिये) -)
३. विद्यानन्द भजनावली (भक्तों के लिये अपूर्व भाण्डार) -)
४. व्यास (आलोचना और खोज से भरी सरस जीवनी) ।।)
५. विद्यानन्द विनोद (अद्भुत और अनूठी आत्मकथा) ग्राहकों के लिये मुफ्त
६. कुम्भ (मेले की त्रिविध व्याख्या) ।)
७. सत्यनारायण (स्वामीजी के अनुसार आध्यात्मिक व्याख्या और सुन्दर भाष्य)
८. गीताभाष्य (लोकसङ्ग्रह) शीघ्र ही प्रकाशित होगा।
९. गीतानुवाद (सरल शब्दानुवाद)
१०. कृष्ण जन्मभूमि
११. नित्य नियम
१२. अद्भुतसंवाद (स्वयं प्रकाशवाले प्रसिद्ध तपस्वी गीतानन्दजी के प्रश्नोत्तर)
१३. आत्महत्या (अथवा पराजय)
१४. गङ्गा (चित्रमय गङ्गा का वर्णन)
१५. ऋग्वेद, भागवत आदि के अनुवाद
१६. गीता और ऋग्वेद के इन्डेक्स छप रहे हैं। शीघ्रता करिए, स्थायी ग्राहक बनिए।

गीताधर्म में विज्ञापन देने से बड़ा लाभ होता है; रेट भीतर देखिए।

श्री पद्मनारायण आचार्य, एम० ए० द्वारा गीताधर्म प्रेस, साक्षीविनायक, काशी में मुद्रित, सम्पादित और प्रकाशित।

आश्विन, १९९३

काशी

संख्या ११

—स्वामी विद्यानन्द]
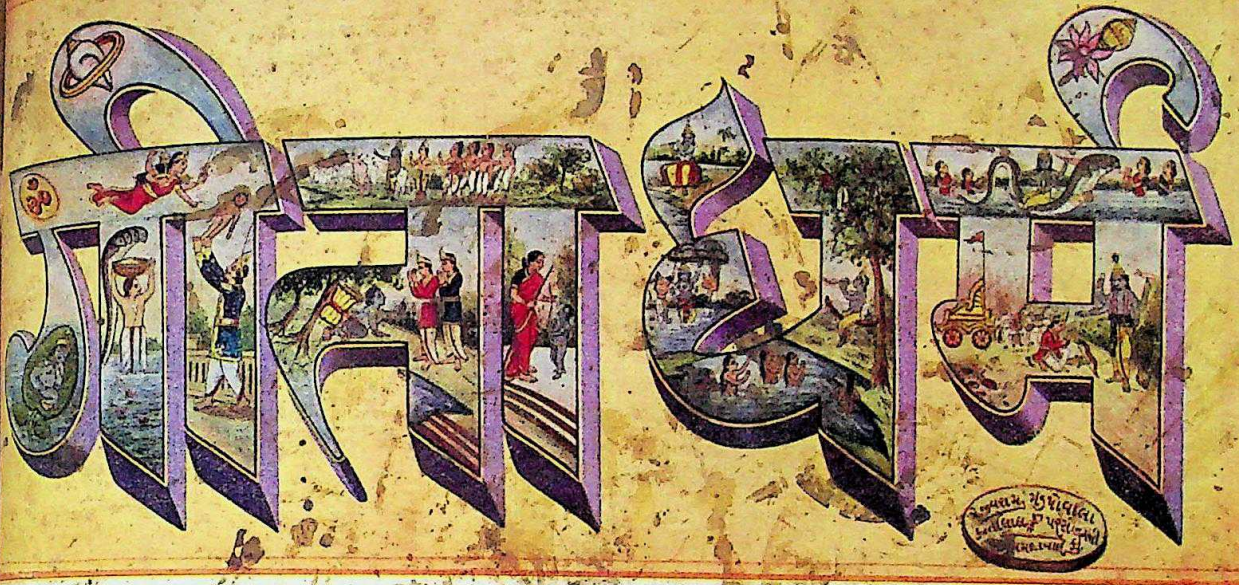
[संपादक—पद्मनारायण आचार्य, एम० ए०

(संख्या १० पुरुषोत्तमाङ्क के रूप में कृष्णाङ्क के साथ ही निकल चुकी)

भजन और मनन

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव !

भज गोविन्दं भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढ़मते !

× × × ×

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

म० भी० ४२।७८

जहाँ योगेश्वर कृष्ण हैं और धनुर्धर पृथापुत्र अर्जुन हैं वहीं श्री है, विजय है, विभूति है और ध्रुवानीति है—ऐसा मेरा मत है।

भज गोविन्दं भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढ़मते !

× × × ×

यत्र धर्मो द्युतिः कान्तिर्यत्र ह्रीः श्रीस्तथा मतिः।
यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥

म० भी० २३।२८

जहाँ धर्म है वहाँ द्युति है, कान्ति है, ह्री है, श्री है तथा मति (सुमति) है, क्योंकि जहाँ धर्म है वहाँ कृष्ण हैं और जहाँ कृष्ण हैं वहाँ जय [द्युति, कान्ति, ह्री, श्री तथा मति (बुद्धि, सुमति)] है।

भज गोविन्दं भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढ़मते !

× × × ×

सुमति कुमति सबके उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं।
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ॥

रामचरितमानस

भज गोविन्दं भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढ़मते !

× × × ×

वार्षिकमूल्य
भारत में ४) रु० विदेश में ६॥)

एक प्रति
भारत में ।=) विदेश में ॥=)

અપીલ

મેઘરાજાના ભયઙ્કર પ્રકોપથી

પીડાયેલા ભાઈઓ માટે—

સ્વામી શ્રી વિદ્યાનન્દ મહારાજની અપીલ.

પ્રભુના પ્રેમીજનો !

આપણા ભાઈયો યૂ. પી, અને વિહારના કેટલાક જીલ્લાઓમાં ભયઙ્કર મેઘરાજાના જલ પ્રવાહથી અત્યન્ત પીડાઈ રહેલા છે. અનેક મનુષ્યોનાં ઘર પાણીમાં ડુબી ગયાં છે, તેમનાં અન્ન અને વસ્ત્ર જલમાં તણાઈને બીલકૂલ નષ્ટ થઈ ગયાં છે, આવખતે તે બીચારાં વસ્ત્ર વગર એકદમ ભૂખ્યાં રોવાઈ રહ્યાં છે.

આવા વિકટ સમયમાં આપણું કર્તવ્ય છે કે તે પીડાતા ભાઈઓની સહાયતા હરેક પ્રકારે પોત પોતાની શક્તિ પ્રમાણે કરવી જોઇયે; અન્ન, વસ્ત્ર, રૂપિયા પૈસા જે બને તે દાન કરવું, એજ આર્તત્રાણ નારાયણની સેવા છે, આજ શ્રી કૃષ્ણની સાચી ભકિત છે અને આજ ગીતાધર્મનું યથાર્થ પાલન છે,

બનારસ, આજમગઢ, જૌનપુર, ગોરખપુર, બસ્તી લખનઊ, બલિયા, નરકટિયાગંજ વિગેરે સ્થાનોમાં આપણે બે પ્રકારે સહાયતા કરી શકિયે છીઓ, (૧) નિર્ધારિત કેન્દ્રોમાં ઘેર બઠો ચીજો મોકલી આપીને તથા (૨) સ્વતન્ત્ર રુપે પોતે જઈને અને પોતાના માણસોને મોકલીને ।

મૈનેજર,
ગીતાધર્મ

तुलसी पुस्तकालय, भदैनी, काशी

इस वर्ष के

सभापति	मन्त्री
आचार्य आनन्दशङ्कर बापूभाई ध्रुव, एम० ए०	श्री पद्मनारायण आचार्य, एम० ए०

इस तुलसीस्मारक संग्रहालय का पहला उद्देश्य है कि १. तुलसी के रचे सभी ग्रन्थ, २. उनके सभी ग्रन्थों के सभी संस्करण और ३. तुलसी के संबन्ध में लिखे सभी ग्रन्थ, पत्र पत्रिका, चित्र आदि का संग्रह रहे।

हमारी एक प्रार्थना है—जो प्रकाशक हैं वे हमें सूचना दें, हम उनके ग्रन्थ खरीदेंगे। जो प्रकाशक, लेखक अथवा अन्य सज्जन इस पुण्यकार्य में दान देना चाहें (पुस्तक अथवा धन द्वारा) हमें वे भी सूचित करें। यह धर्म, साहित्य, राष्ट्रभाषा—सभी की सेवा होगी।

जो सज्जन तुलसीसंबन्धी किसी ग्रन्थ अथवा चित्र के बारे में कुछ जानते हों, वे हमें इसी की सूचना देकर भी बड़ा काम कर सकते हैं।

प्रार्थी
पद्मनारायण आचार्य, एम० ए०
मन्त्री, तुलसीपुस्तकालय, भदैनी, काशी।

ગુજરાતી અને હિન્દી ટાઇપ

આઠ મહિનાથી અમો નાગરી (હિંદી) ટાઇપમાં ગુજરાતી લેખ આપતા આવ્યા છીએ. અમારા ગુજરાતી-વાંચકો તે પ્રેમથી વાંચે છે. હવેથી અમે કેટલાક ગુજરાતી લેખો ગુજરાતી ટાઇપમાં આપીશું. હિંદીપાઠક વર્ગને પણ ગુજરાતી અક્ષરોનો પરિચય થવો ઇષ્ટ છે. નાગરી (હિંદી) લીપીને રાષ્ટ્રીય અને સાર્વદેશિક કરવાને સારૂ અમારે પણ બીજી પ્રાંતિક લીપીઓ શિખવાનું કષ્ટ સહર્ષ વેઠી લેવું જોઈએ.

ગીતાધર્મના ગુજરાતી ભક્તો ને સારૂ, હવે સુંદર સુંદર લેખો ગુજરાતી ટાઇપમાં આવશે, તેથી તેમને વધારે સરળતા થશે.

વિદ્યાનન્દ વિનોદ

સ્વામીજીએ હરદ્વારમાં ગંગાને કિનારે કેટલીક વિનોદની વાતો લખી છે. તે ઘણી રસભરી છે—સ્વામીજીના હૃદયના ઉદ્ગાર છે. સ્વામીજીના હૃદયનો રસ છે. "વિનોદ" ને વાંચીને હૃદયનો ભાર હલકો કરો—આત્મવિનોદ કરો. "काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्"

× × × ×

ગીતાધર્મના ગ્રાહકોને આ સાહિત્યિક, સચિત્ર, રસભરેલો ગ્રંથ વિના મૂલ્યે મળશે. તે ગુજરાતી અને હિંદી બન્ને ભાષા તથા લીપી માં છાપવાનો પ્રબંધ થઈ ગએલો છે.

બીજાને સારૂ મૂલ્ય માત્ર આઠ આના છે.

અમદાવાદ, વડોદરા અને નાગપુર માં આ પુસ્તક અમારી શાખાઓ તરફથી અર્પણ કરવામાં આવશે. પરન્તુ બીજા સ્થાનોમાં પોષ્ટ દ્વારા મોકલવામાં આવશે. આ ગ્રન્થની કીમત બીજાઓ પાસેથી આઠ આના લેવામાં આવશે. જે ગીતાધર્મના ગ્રાહક અથવા સંરક્ષક છે અને ઉપરની શાખાઓથી પુસ્તક પ્રાપ્ત નથી કરી શકતા, તેઓએ પોષ્ટેજ સારૂ દોઢ અનાની ટિકિટો મોકલી આપવી. જેથી તેઓને પુસ્તક મોકલી આપવામાં આવેશે.

આ પુસ્તક હિન્દી તથા ગુજરાતી બન્ને ભાષામાં છપાશે, માટે પત્રમાં સાફ સાફ લખ કે હિન્દીમાં જોઇએ કે ગુજરાતીમાં અથવા બન્નેમાં ? પુસ્તક મુદ્રિત થઈ બહાર પડવાની એકદમ તૈયારીમાંજ છે.

મૈનેજર

ગીતાધર્મ

સાક્ષીવિનાયક, કાશી

कुछ ध्यान देने योग्य आवश्यक

सूचनाएँ

आगामी बारहवां अङ्क **दीपाङ्क** होगा।

तेरहवां अङ्क दर्शनाङ्क होगा। सूची इसी अङ्क में देखिए।

प्रार्थना

(१) गीतापति भगवान् कृष्ण के अनुग्रह से लोकसंग्रही स्वामी विद्यानन्दजी के द्वारा गीताधर्म पत्र की स्थापना हो गई है। महात्मा और महापुरुष आशीर्वाद दे रहे हैं, भक्त और प्रेमी ग्राहक और संरक्षक बन रहे हैं। अनेक वृद्ध, युवा और बालक मिलकर इस पत्र की सेवा कर रहे हैं। अपने अपने ढंग से सभी लोग इस **ज्ञानयज्ञ** में भाग ले रहे हैं।

हमारी प्रार्थना है, आप भी इस **मासिक यज्ञ** में सहायता कीजिए। 'गीताधर्म' मासिक यज्ञ है।

गीताधर्म का लक्ष्य है आत्मकल्याण और लोकसंग्रह। इससे गीताधर्म के ग्राहक बनकर, ग्राहक बनाकर और अन्य उचित उपायों से गीताधर्म का प्रचार करके इस लक्ष्य की पूर्ति करना आपका कर्तव्य है।

'गीताधर्म' भगवान् का पत्र है। इसकी सेवा भगवान् की सेवा है।

प्रत्येक गीताधर्मप्रेमी से यह अनुरोध है कि जैसे आप स्वयं ग्राहक बने हैं, वैसे ही प्रत्येक महीने में औरों को भी ग्राहक बनावें।

(२) **लोकसंग्रही स्वामी विद्यानन्दजी** अहमदाबाद में हैं; पता—श्री विद्यानन्द सत्संग मण्डल, रायपुर, दरवाजा कामनाथ महादेव, अहमदाबाद।

(३) **रुपया किसे देना ?**—'गीताधर्म' की शाखाओं तथा प्रचारकों का नाम अन्त में दिया रहता है। ग्राहकों से प्रार्थना है कि वे इनको छोड़कर और किसी सज्जन को रुपये न दें। यदि उन्हें ग्राहक अथवा संरक्षक बनना हो तो रुपये मनीआर्डर से सीधे कार्यालय को भेज दें।

(४) हमारी समिति ने यह निश्चय किया है कि संस्कृत विद्या, भारतीय संस्कृति तथा साहित्य से संबंध रखनेवाले ग्रन्थ प्रकाशित किये जायँ और इस ग्रन्थमाला का नाम रहे **'विद्यानन्द ग्रन्थमाला'**।

(५) दो विशाल विशेषाङ्क—(१) विश्वधर्माङ्क, (२) गीताङ्क। गीताधर्म के दो भाग करके दो अङ्क निकाले जायँगे। उनका विशेष वर्णन पीछे निकलेगा।

(६) प्रश्नोत्तर—जिज्ञासु लोग प्रश्न भेजते हैं; हम गुरुजनों से पूछकर उनके उत्तर भेजने का यत्न करते हैं। काशी के प्रसिद्ध गीता के आचार्य श्री गीतानन्दजी ने यह वचन दिया है कि कोई भी जिज्ञासु हमसे गीता पर प्रश्न करे; उसका उत्तर यथाशक्ति अवश्य देंगे। तत्त्वबोध और सत्संग का यह अपूर्व अवसर है।

(७) पत्रव्यवहार—अँगरेजी या हिंदी में ही रहना चाहिए और जो लोग उत्तर चाहें उन्हें टिकट अथवा जवाबी कार्ड भेजना चाहिए।

(८) गुड्स रेलवे स्टेशन बनारस कैंट पर भेजना चाहिए।

(९) पार्सल बनारस टाउन के पते से भेजना चाहिए।

(१०) उलहना—कृपालु ग्राहक पत्रिका न मिलने पर शीघ्र पोस्ट में अथवा अपने स्थान के शाखाकार्यालय में जाँच कर, हमें न मिलने का उलहना पत्र द्वारा दिया करें।

मैनेजर—

'गीताधर्म', काशी

(भारत के प्रसिद्ध शहरों में गीताधर्म कार्यालय की शाखाएँ)

गीताधर्म मिलने के पते

१ **काशी,** (क) गीताधर्म कार्यालय, साक्षीविनायक। (ख) गीताधर्म कार्यालय, भदैनी। (ग) विद्यामंदिर कार्यालय, पांडेघाट, (घ) श्री शिवनारायण बी. ए., अर्दली बाजार।

२ **प्रयाग,** पं० वृषकेतु उपाध्याय, जार्जटाउन ३३ (गिरधारीलाल का बँगला)

३ **बंबई,** श्री नगीनदास फूलचंद चिनाई, चिनाई बिल्डिंग, मसजिद बंदररोड।

४ **कलकत्ता,** श्री सेठ रामप्रसादजी मूंदरा ३२, क्रासस्ट्रीट मूंगापट्टी कलकत्ता M. P.

५ **अहमदाबाद,** सेठ बद्रीप्रसाद, कामनाथ महादेव, रायपुर दरवाजा बाहर।

६ **बड़ोदा,** मणिभाई जशभाई, कंसारा की वाड़ी, मांडवी रोड।

७ **इंदौर,** हीरालाल पन्नालाल, न्यू क्लाथ मारकेट।

८ **इंदौर,** श्री कमलाशङ्कर जे. पंड्या M. B. E. H. प्राइवेट मेडिकल प्रेक्टीशनर, पीपली बाजार।

९ **ग्वालिअर,** बाबू उमराव बिहारी माथुर, अम्बानिवास नौमहला।

१० **नागपुर,** लाला नन्दलाल मैकूलाल (किराना मर्चेंट) सीतावर्डी।

११ **जबलपुर,** सेठ रामकुमार, लार्डगंज।

१२ **जबलपुर,** लाला रामचन्द्र, रईस व ठेकेदार मुकादमगंज।

१३ **गाडरवारा,** आचारीजी का मन्दिर।

१४ **नरकटियागंज** (**चंपारन**), पंडित राधावल्लभ मिश्र, अध्यापक जानकी संस्कृत विद्यालय।

१५ **जमशेदपुर,** एम. एल. तिवारी, तिवारी बेचर एन्ड कं० लिमिटेड।

१६ **लाहौर,** सेठ शालिग्राम नरसिंहदासजी, लाहौर कैन्टुमेन्ट।

१७ **लखनऊ,** श्री नन्दबिहारीलाल ओरियंटल ग० सिक्यूरिटी लाइफ इंश्योरेंस कं० लि० ओरियंटल बिल्डिंग, हजरतगंज।

१८ **डभोई,** सेठ चुन्नीलाल गिरधरलाल जीनवाला।

१९ **सनखेड़ा,** वक्षी जेठालाल केशवलालजी बजारमां (बड़ौदा)

२० **आनन्द,** पटेल गोरधनभाई शामलदासजी मास्तर।

२१ **उदयपुर,** अक्षयकीर्ति शर्मा 'अखय', सुपरिंटेंडेंट मेवाड़ आफ कोलाजी विक्टोरिया हाल म्युजियम (राजपूताना)

२२ **उज्जैन,** पं० दुर्गाप्रसादजी तिवारी, लेफ्टीनेन्ट, माधवनगर।

२३ **सिहोरा,** श्री दयाप्रसाद वर्मा, लोकल बोर्ड सेक्रेटरी, सिहोरा रोड।

२४ **गाजीपुर,** श्री शिवमूर्ति पाण्डेयजी, भगवती औषधालय, धानापुर।

२५ **मुल्तान,** सनातनधर्म सभा मुल्तान, (पंजाब)

२६ **बालाघाट,** गोस्वामी श्री दयालगिरिजी ज्वाइंट सेक्रेटरी–गीताप्रचारमण्डल कर्णकुटी

२७ **आगरा,** श्रीयुत राधेचरनजी रिटायर्ड डिप्युटी कलक्टर, सिव्हिल लाइन।

२८ **रावलपिण्डी,** श्रीमान् हेडमास्टर साहब, सनातनधर्म हाईस्कूल।

२९ **कानपुर,** श्रीमान् बाबू गङ्गानारायण खरे, म्युनिसिपल हाईस्कूल, नवाबगंज।

३० **दिल्ली,** श्रीमान् पं० गोविन्दचन्द्र पांडेय बी० ए०, सेक्रेटरी आल इण्डिया ब्राह्मणमहासभा तथा वर्णाश्रम स्वराज्य संघ, २३०३ चरखे वालान स्ट्रीट, कूचा बीबीगौहर।

३१ **सिन्ध,** मेसर्स बेरहामल नन्दरामजी, न्यू अन्डरपीस गुड्समचेंट, शिकारपुर।

३२ **हैदराबाद,** श्रीमान् गोपीकिशनजी C/o सेठ सीतारामजी रामगोपालजी माता नी नगारखाना, बेगमबाजार, हैदराबाद (दक्षिण)

३३ **पादरा,** श्रीमान् जेठालाल मनसुखरामजी, कापड़नी दुकान, बजारमां।

३४ **पेटलाद,** श्रीमान् काछिया मोतीभाई जेठालाल, एजेन्ट पेटलाद बुक्सेलर, ठे० बड़कुवां पासे।

३५ **रतलाम,** श्रीमान् माणिकलाल भूराभाई, C/o मगनलाल गिरिधरलाल बिल्डिंग पञ्चकण्डील।

३६ **गोधरा,** शाह माणेकलाल वृन्दावनदास, ग्राम वीरपूर ना सरवैयर।

३७ **आजमगढ़,** पं० श्रीधर उपाध्याय, कुर्मीटोला।

३८ **हरिद्वार,** मैनेजर, महारानी अहिल्याबाई बाड़ा।

३९ **जैपुर,** श्रीमान् लक्ष्मीशरण गङ्गाशरणजी माथुर, जड़ियो का रास्ता, जैपुर सिटी।

४० **भुज (कच्छ),** श्रीमान् महेता यशश्चन्द्रभाई मोतीभाई, ज्वाइन्ट प्राइवेट सेक्रेटरी।

४१ **आफ्रीका,** Gordhan Bhai Soma Bhai Patel The Indian School, Saba Saba P. O. MARAGUA, (Kenya Colony) British East Africa.

42 Fiji (Island)—S. B. Patel Bar-at-Law, Lauutka.

43 Mombasa—Purashotam D. master P. 274 British East Africa.

44 Java—Natwarlal Govardhan das Parikh
Messers Chandulal & Co., 4, Gang Gipo, Survaya.

45 Japan—Messers R. C. Patel & Co., P. N. 339 Kove.

४६ **बालिया,** पं० श्यामसुन्दरजी उपाध्याय B. A. L. L. B., सेक्रेटरी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड।

४७ **लहेरियासराय,** श्री विश्वनाथ नारायण सिंह, B. A. L. L. B. (दरभंगा)।

४८ **पटना,** वैद्यरत्न पं० ब्रजविहारी चतुर्वेदी, रत्नाकर औषधालय, भिखना पहाड़ी, बाँकीपूर।

४९ **महादेवपारा,** वसिष्ठनारायण त्रिपाठी, मु० महादेवपारा पो० मेहनगर, आजमगढ़।

५० **प्रतापगढ़,** पं० रविदत्त पाण्डेय B. A, L. T., असिस्टेण्ट मास्टर अजीत सोमवंशी हाईस्कूल प्रतापगढ़ सिटी (अवध)

५१ **अमृतसर,** गोस्वामी जीवनदास, महामंत्री-पंजाब प्रान्तीय वर्णाश्रम-स्वराज्य संघ, दुरगियाना, अमृतसर (पंजाब)

५२ **करांची,** रतीलाल नरवेजी, कोटक, प्रागजी दामजी बिल्डिंग प्रिंसेस स्ट्रीट, नंदकुवादा।

५३ **रांची,** गुलाबनारायण शर्मा, तिवारी महल्ला।

५४ **गोरखपुर,** श्री हरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी बी. ए. एल. एल. बी. बेतिया हाता,

५५ **चंपारन,** पं० रामसागर मिश्र हेड पण्डित D. M. एकडमी बगहा, पो० बगहा,

५६ **बालाघाट,** सेठ चौथमलजी बाराशीवनी, सी. पी.

५७ **कलकत्ता,** जयदेव गङ्गाराम १४।१ रूपचन्द राय, स्ट्रीट

५८ **जौनपुर,** श्रीराम उपाध्याय B. A. L L. B. एडवोकेट महल्ला—जोगियापुर,

५९ **छिन्दवाड़ा,** प्रधानाध्यापक हरिप्रसाद द्विवेदी आ० शास्त्री श्री सनातनधर्म संस्कृतविद्यालय सिवनी, (श्री राममन्दिर के पास) (सी० पी०)

६० **गाजीपुर,** पं० कुबेरनाथ पाण्डेय हेडमास्टर अपर प्राइमरी स्कूल मु. पो. मुहमदाबाद, जि.

६१ अकोला, सीताराम [illegible] [illegible]
सेठ [illegible]

गीताधर्म का ग्यारहवां अङ्क

दीपाङ्क

सूची नवें अङ्क में निकल चुकी है।

गीताधर्म का बारहवां अङ्क

दर्शनाङ्क

सभी मान्य लेखकों, कवियों और विद्वानों से प्रार्थना है कि निम्नलिखित लेखसूची में से किसी पर लेख लिखकर गीताधम के इस ज्ञानयज्ञ में यज्ञपुरुषोत्तम की पूजा कर।

१—दर्शन
२—विश्वरूपदर्शन
३—रूपदर्शन
४—नामदर्शन
५—दर्शन का प्रसाद
६—दर्शन शब्द के अनेक अर्थ
७—चार्वाकदर्शन
८—बौद्धदर्शन
९—जैनदर्शन
१०—रामानन्ददर्शन
११—पूर्णप्रज्ञदर्शन
१२—नकुलीश पाशुपतदर्शन
१३—शैव ,,
१४—प्रत्यभिज्ञा ,,
१५—रसेश्वर ,,
१६—वैशेषिक पाशुपतदर्शन
१७—अक्षपाद (न्याय) दर्शन
१८—जैमिनीय ,,
१९—पाणिनीय ,,
२०—सांख्य ,,
२१—पातञ्जल (योग) ,,
२२—वेदान्त ,,
२३—प्रस्थानभेदात् दर्शनभेदः
२४—वैदिकदर्शन
२५—षड्दर्शन का एक परिचय
२६—दर्शन और समन्वय
२७—पाश्चात्य और पौर्वात्यदर्शन
२८—दर्शन और धर्म
२९—कवि का दर्शन

उपहार

कविं पुराणमनुशासितारम्—

उस कवि को नमस्कार। वह कवि पुरानापन भी नहीं छोड़ता, पर साथ ही उसकी हर एक बात नई होती है।

गीताधर्म कवि की विभूति ही तो है। कवि शब्द और अर्थ के 'योग' की उपासना करता है और गीताधर्म भी 'योग' की ही साधना है। अतः आज विजया को—अपने विजयी कवि के हाथों में—यह विजयाङ्क—यह श्री, विजय, और भूतिवाला गीताधर्म देकर हम विजयोल्लास का अनुभव कर रहे हैं।

कवे,

अपने सखावर्ग का, समान भाषा बोलनेवाले अपने भाइयों का विजयोपहार लो, कैसा है यह 'स्वर्णयोग'!

जानते सखा सखापन यहाँ, भली श्री वाणी में उनके

—ऋ० १०।७१

तुम्हारी कृति को जाननेवाले

'कृतज्ञ'

सखा

अवश्य पढ़िए

१. विजय का कवि
२. विजय के दो रूप
३. विजयमन्त्र
४. वीर माता के उपदेश

विजयाङ्क की विषयसूची

× × × ×

अपूर्व पुस्तक ! आर्य सभ्यता का दर्शन ! आर्य दर्शन !

नारीभूषण

यह वही पुस्तक है जिसकी प्रतीक्षा आर्य जनता कई वर्ष से कर रही थी। सैकड़ों आर्डरों व अनेकों मित्रों के तकादे आते रहते थे। आज तक जितनी भी स्त्रियोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनमें एक बहुत बड़ी कमी रही। जिसकी ओर इसके प्रणेता श्रीयुत स्वर्गीय वृन्दावनजी हेडमास्टर गव० हाई-स्कूल का ध्यान आकर्षित हुआ। यह पुस्तक कन्याओं, बधुओं का पथप्रदर्शक तो है ही; साथ ही एक उपन्यास का आनन्द भी इसमें है। स्त्रियोपयोगी कोई ऐसी बात नहीं रही जिसकी ओर विद्वान् लेखक ने ध्यान न दिया हो, एक यही ऐसी पुस्तक स्त्रियोपयोगी है साङ्गोपाङ्ग कही जा सकती है। शीघ्र मँगाइए, अन्यथा फिर दूसरे संस्करण की बाट जोहनी पड़ेगी। मूल्य भी लागत मात्र १)

पुस्तकप्रेमियों के लिए अपूर्व सुविधा

आपको जब कभी किसी भी विषय की पुस्तक की आवश्यकता हो, तो एक बार हमसे पत्रव्यवहार कीजिए

हमारे यहाँ अच्छे अच्छे उपन्यास, किस्से, कहानी, काव्य, साहित्य, समालोचना, जीवनचरित्र, दर्शन, वेदान्त, राजनीति आदि सभी विषयों की पुस्तकें मिलेंगी।

चाँद कार्यालय	हिंदी पुस्तक एजेन्सी	पुस्तकभवन
गङ्गापुस्तकमाला	सस्ता साहित्यमण्डल	नागरीप्रचारिणी सभा
हिंदी-ग्रन्थरत्नाकर	इण्डियन प्रेस, लिमिटेड्	लहरी बुक्डिपो
हिंदीमन्दिर	सरस्वती प्रेस	साहित्यभवन

आदि की सभी पुस्तकें हर समय तैयार रहती हैं

सब जगह की पुस्तकें एक साथ हमारे यहाँ से मँगाइए। सब पर आपको कमीशन दिया जायगा। पुस्तकालयों के साथ खास रियायत की जायगी। इसलिए हमारा निवेदन है कि आप सब जगह की पुस्तकें यदि खरीदना चाहते हैं, तो एक बार हमारे यहाँ से मँगवाकर परीक्षा कीजिए। हम कई पुस्तक-प्रकाशकों के सोल एजेंट हैं। हमारे यहाँ से पुस्तक मँगवाने में आपको द्रव्य तथा समय दोनों का लाभ है।

पता—देवेन्द्रचन्द्र विद्याभास्कर,
विद्याभास्कर बुकडिपो, बनारस सिटी

ॐतत्सत्

गीताधर्म — यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः — विजयाङ्क

— म० भी० २३।२८

संस्थापक
लोकसंग्रही स्वामी विद्यानन्द

सं० पद्मनारायण आचार्य, एम० ए०
मधुसूदनप्रसाद मिश्र 'मधुर'
विट्ठलशर्मा चतुर्वेदी

भाग १ — काशी, आश्विन १९९३ — संख्या ११

दुर्गास्तोत्र

श्रीभगवानुवाच —

शुचिर्भूत्वा महाबाहो सङ्ग्रामाभिमुखे स्थितः ।
पराजयाय शत्रूणां दुर्गास्तोत्रमुदीरय ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच —

एवमुक्तोऽर्जुनः सङ्ख्ये वासुदेवेन धीमता ।
अवतीर्य रथात् पार्थः स्तोत्रमाह कृताञ्जलिः ॥ ३ ॥

अर्जुन उवाच —

नमस्ते सिद्धसेनानि आर्ये मन्दरवासिनि ।
कुमारि कालि कापालि कपिले कृष्णपिङ्गले ॥ ४ ॥
भद्रकालि नमस्तुभ्यं महाकालि नमोऽस्तु ते ।
चण्डि चण्डे नमस्तुभ्यं तारिणि वरवर्णिनि ॥ ५ ॥
कात्यायनि महाभागे करालि विजये जये ।
शिखिपिच्छध्वजधरे नानाभरणभूषिते ॥ ६ ॥
अट्टशूलप्रहरणे खड्गखेटकधारिणि ।
गोपेन्द्रस्यानुजे ज्येष्ठे नन्दगोपकुलोद्भवे ॥ ७ ॥
महिषासृक्प्रिये नित्यं कौशिकि पीतवासिनि ।
अट्टहासे कोकमुखे नमस्तेऽस्तु रणप्रिये ॥ ८ ॥
उमे शाकंभरि श्वेते कृष्णे कैटभनाशिनि ।
हिरण्याक्षि विरूपाक्षि सुधूम्राक्षि नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥
वेदश्रुति महापुण्ये ब्रह्मण्ये जातवेदसि ।
जम्बूकटकचैत्येषु नित्यं सन्निहितालये ॥ १० ॥
त्वं ब्रह्मविद्या विद्यानां महानिद्रा च देहिनाम् ।
स्कन्दमातर्भगवति दुर्गे कान्तारवासिनि ॥ ११ ॥
स्वाहाकारः स्वधा चैव कला काष्ठा सरस्वती ।
सावित्रि वेदमाता च तथा वेदान्त उच्यते ॥ १२ ॥
स्तुताऽसि त्वं महादेवि विशुद्धेनान्तरात्मना ।
जयो भवतु मे नित्यं त्वत्प्रसादाद्रणाजिरे ॥ १३ ॥
कान्तारभयदुर्गेषु भक्तानां चालयेषु च ।
नित्यं वससि पाताले युद्धे जयसि दानवान् ॥ १४ ॥
त्वं जम्भनी मोहिनी च माया ह्रीः श्रीस्तथैव च ।
सन्ध्या प्रभावती चैव सावित्री जननी तथा ॥ १५ ॥
तुष्टिः पुष्टिर्धृतिर्दीप्तिश्चन्द्रादित्यविवर्धिनी ।
भूतिर्भूतिमतां सङ्ख्ये वीक्ष्यसे सिद्धचारणैः ॥ १६ ॥

सञ्जय उवाच —

ततः पार्थस्य विज्ञाय भक्तिं मानववत्सला ।
अन्तरिक्षगतोवाच गोविन्दस्याग्रतः स्थिता ॥ १७ ॥

देव्युवाच —

स्वल्पेनैव तु कालेन शत्रून् जेष्यसि पाण्डव ।
नरस्त्वमसि दुर्धर्ष नारायणसहायवान् ॥ १८ ॥
अजेयस्त्वं रणेऽरीणामपि वज्रभृतः स्वयम् ।
इत्येवमुक्त्वा वरदा क्षणेनान्तरधीयत ॥ १९ ॥

सञ्जय उवाच —

लब्ध्वा वरं तु कौन्तेयो मेने विजयमात्मनः ।
आरुरोह ततः पार्थो रथं परमसम्मतम् ॥ २० ॥
कृष्णार्जुनावेकरथौ दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ।
य इदं पठते स्तोत्रं कल्य उत्थाय मानवः ॥ २१ ॥
यक्षरक्षः पिशाचेभ्यो न भयं विद्यते सदा ।
न चापि रिपवस्तेभ्यः सर्पाद्या ये च दंष्ट्रिणः ॥ २२ ॥
न भयं विद्यते तस्य सदा राजकुलादपि ।
विवादे जयमाप्नोति बद्धो मुच्यति बन्धनात् ॥ २३ ॥
दुर्गं तरति चावश्यं तथा चौरैर्विमुच्यते ।
संग्रामे विजयेन्नित्यं लक्ष्मीं प्राप्नोति केवलाम् ॥ २४ ॥
आरोग्यबलसम्पन्नो जीवेद्वर्षशतं तथा ।
एतद्दृष्टं प्रसादात्तु मया व्यासस्य धीमतः ॥ २५ ॥

दुर्योधन की सेना को युद्ध के लिए तैयार देखकर श्री कृष्ण ने अर्जुन के हित के लिए कहा—हे अर्जुन ! संग्राम के आरम्भ में, शत्रुओं की पराजय के लिए, पवित्रता पूर्वक दुर्गास्तोत्र का पाठ करो।

महाराज ! बुद्धिमान् श्री कृष्ण के उपदेश करने पर अर्जुन रथ से उतरकर हाथ जोड़कर, भगवती कात्यायनी की स्तुति इस प्रकार करने लगे—हे सिद्धसेनानी, हे आर्ये, मन्दराचल पर निवास करनेवाली, कुमारी, काली, कपालिनी, कपिला, कृष्णपिङ्गला भगवती, आप को प्रणाम है। हे तारिणी, वरवर्णिनी, भद्रकाली, महाकाली, चण्डी, चण्ड-रूपिणी, कात्यायनी, महाभागा आप को प्रणाम है। हे कराली, विजया, जया, मयूरपिच्छध्वजाधारिणी, अनेक आभूषण पहननेवाली, अत्यन्त उत्कट त्रिशूल,खड्ग और खेटक धारण करनेवाली, श्री कृष्ण की बहिन नन्द गोप के कुल में जन्म लेनेवाली, महिष का रक्त पीनेवाली, कौशिकी, पीताम्बर पहननेवाली, अट्टहास करनेवाली, कोकमुखा, रणप्रिया देवी आप को नमस्कार है। उमा, शाकंभरी, श्वेता, कृष्णा, कैटभनाशिनी, हिरण्याक्षी, विरूपाक्षी, धूम्राक्षी आपको नमस्कार है। वेदश्रुती, महापुण्या, ब्रह्मण्या, अग्निवधू, जम्बू-कटक-चैत्य आदि स्थानों में नित्य रहनेवाली देवी, आप सब विद्याओं में ब्रह्मविद्या और सब शरीरधारियों में महानिद्रा के स्वरूप से स्थित हैं। हे भगवती, स्कन्द जननी, दुर्गा, दुर्गम स्थान में रहनेवाली आप स्वाहा, स्वधा, कला, काष्ठा, सरस्वती, सावित्री, वेदमाता और वेदस्वरूपिणी हैं। मैं विशुद्ध चित्त से आपकी स्तुति करता हूँ। आशीर्वाद दीजिए कि आपकी कृपा से विजय प्राप्त कर सकूँ। भक्तों की रक्षा के लिए आप सदा दुर्गम मार्ग और भयानक स्थान तथा पातालतल में रहती हैं और संग्रामभूमि में दानवों को हराती हैं। आप जम्भनी, मोहिनी, माया, ह्री, श्री, संध्या, प्रभावती, सावित्री, जननी, तुष्टि, पुष्टि, धृति, चन्द्रसूर्यविवर्धिनी, दीप्ति और संपन्न पुरुषों की संपत्ति हैं। सिद्धचारण सदा रणक्षेत्र में आपके दर्शन पाते हैं।

अर्जुन की भक्ति देखकर मनुष्यवत्सला कात्यायनी प्रसन्न हुईं। और श्री कृष्ण के आगे प्रकट होकर अर्जुन से कहने लगीं—"हे पाण्डव, तुम नारायण की सहायता से शीघ्र ही संग्राम में शत्रुओं को जीत लोगे। तुम युद्ध में शत्रुओं के लिए अजेय हो। तुम को तो साक्षात् इन्द्र भी नहीं जीत सकते।" और वरदायिनी भगवती अन्तर्धान हो गईं।

वरदान पाकर अर्जुन ने अपने को विजयी समझ लिया। वे श्री कृष्ण के साथ रथ पर बैठकर दिव्य शङ्ख बजाने लगे।

जो कोई सवेरे उठकर इस दुर्गास्तव को पढ़ता है उसे यक्ष, राक्षस, पिशाच, शत्रु; साँप आदि हिंसक पशु और राजकुल आदि से डर की आशङ्का नहीं रहती। वह मनुष्य विवाद में विजय पाता है, बन्धन से छुटकारा पाता है तथा संकट और आफत से छूट जाता है। यदि चोर डाकू घेर लें तो इस स्तोत्र को पढ़ने से वे सब भाग जाते हैं। यह स्तोत्र पढ़ने से युद्ध में विजय, लक्ष्मी, आरोग्य, बल और दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। म० भी० अ० २३

विजयमन्त्र

[गीता का सर्वश्रेष्ठ मन्त्र]

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

इसी मन्त्र की व्याख्या हमने पूरे कृष्णाङ्क में की है। और इसी की व्याख्या करने के लिए आगे हम विजयाङ्क (विजयः), दीपाङ्क (श्रीः), दर्शनाङ्क (भूति का नाम रूप दर्शन), धर्माङ्क (ध्रुवा नीतिः) आदि कई अङ्क निकाल रहे हैं। जो चाहें इस मन्त्र का मनन करें और देखें उसमें क्या क्या भरा है।

हमारे गीतानन्दजी तो कहते हैं कि इस एक श्लोक के समझ लेने से पूरी गीता समझ में आ सकती है। और गीता समझने से सभी कुछ समझ में आ सकता है। आइए इस मन्त्र का मनन करें।

कहाँ ?

(व्यासवचनामृत)

कहाँ ? श्री कहाँ है ? विजय कहाँ है ? भूति कहाँ है ? नीति कहाँ है ? धर्म कहाँ है ? जहाँ योग है, वहाँ ।

भाइयो ! आज हमें एक प्रश्न का उत्तर देना है । वह है, कहाँ ? हमारा भाई पूछता है हम जीतें कैसे ? जीत रहती कहाँ है ? इस कहाँ का ही उत्तर हमें देना है ।

संसार का हर एक आदमी अपनी जीत चाहता है । इसी से हर एक आदमी चाहे वह राजा हो अथवा रङ्क, साधु हो अथवा दुष्ट । वह चाहता यही है कि हम विजयी हों, हम अपने काम में सफल हों । सभी खोजते हैं कि वह सफलता कहाँ है ?

गीता ने एक शब्द में कह दिया है—

योग में ।

संजय ने इसी एक शब्द को एक पङ्क्ति (लाइन) में और भी साफ साफ समझा दिया है । जहाँ कृष्ण और अर्जुन रहते हैं, वहीं विजय रहती है । कृष्ण और अर्जुन के योग से ही विजय मिलती है ।

यह योग कैसे बने ? हमें तो बनना चाहिए अर्जुन । हमें अर्जुन के समान सुनने, समझने और करने के लिए तैयार रहना चाहिए । और अपने हृदय में कृष्ण को बिठाकर सदा साथ रखना चाहिए । इस प्रकार सदा आपके जीवन में अर्जुन और कृष्ण का साथ बना रहेगा—योग रहेगा । इसी योग से जीवन में विजय होती है ।

विचारिए, यही गीता का विजयमन्त्र है ।

× × ×

व्यावहारिक अर्थ करें तो कृष्ण का अर्थ होता है नियम; और धनुर्धर अर्जुन का अर्थ होता है नियम का पालन ।

१—जो व्यवहार के नियम जानता है, पर उसका पालन नहीं करता वह कभी सफल नहीं होता—

> पर उपदेश कुशल बहुतेरे ।
> जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥
>
> —रामचरितमानस

२—जो काम तो बहुत करता है, उद्योगी है, परिश्रमी है, पर नियम का पालन नहीं करता, वह भी बार बार ठोकरें खाता है । आहार विहार में युक्त न होने से सुख और स्वास्थ्य दोनों खो बैठता है । ऐसे बेनियम के आदमी को क्षणिक सफलता भले ही मिल जाय, पर सच्ची विजय कभी नहीं मिलती ।

खराब और दुष्ट लोगों की तो बात ही छोड़ दीजिए । जो अच्छे लोग हैं वे भी इन्हीं दो श्रेणियों में आ जाते हैं । कुछ लोग ज्ञान छाँटते हैं, नियम जानते हैं, पर उसका पालन नहीं करते; और कुछ लोग काम करते हैं, पर नियम नहीं जानते । अतः सच्ची सफलता के लिए, जीवन सफल बनाने के लिए नियम भी जानना चाहिए और नियम का पालन भी करना चाहिए । यह देखने में बात छोटी लगती है, पर अनुभव से इसकी महिमा मालूम पड़ती है । यह व्यावहारिक सफलता का मूल मन्त्र है ।

बुद्ध ने एक बार अपने शिष्यों से कहा था कि जो अपने बनाए हुए नियमों को तोड़ता नहीं वह किसी से नहीं हारता ।

सचमुच जीवन की यह सबसे बड़ी कमजोरी है। हम स्वयं अपने बनाए हुए नियमों को नहीं पालते और इसी कारण बड़ी तकलीफ उठाते हैं।

आज से संकल्प कीजिए कि जब सोच समझकर हम नियम बना लेंगे, उसका अवश्य पालन करेंगे।

× × ×

इस प्रकार हमें कृष्ण की दो प्रकार से उपासना करनी चाहिए तभी हमें दोनों क्षेत्रों में विजय मिलेगी। पहले को कहते हैं—अध्यात्म का धर्मक्षेत्र। इसका वर्णन हमने प्रारम्भ में ही किया है। दूसरे क्षेत्र का नाम है—अधिभूत अर्थात् व्यवहार का कुरुक्षेत्र। इसका वर्णन भी हमने थोड़े में कर दिया है। अब आप स्वयं मनन कीजिए और उसके अनुसार चलिए। विजयमन्त्र को एक बार फिर दोहरा लीजिए।—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं
गोविन्दं भज मूढ़मते।

विजय किस पर?

(ले०—श्री पद्मनारायण आचार्य, एम० ए०, प्र० संपादक)

इन्द्र = काम = शैतान (Satan) = मदन = मार आदि एक ही अर्थ के शब्द हैं। यदि किसी के विचार भिन्न हों अथवा इस लेख के विचारों में कुछ गलत बातें आ गई हों तो इससे पाठकों को बुरा न मानना चाहिए। विचार और खोज के लिए ही ऐसे लेख लिखे जाते हैं। उन पर विचार करना और उसे प्रकट करना ही हम सबका काम है।

हमारे वेदों और पुराणों में इन्द्र जिस प्रकार भोगी, विलासी तथा बलवान् विजेता के रूप में आते हैं। उसे देखकर विद्वानों को निश्चय हो गया है कि इन्द्र 'काम' (अथवा मार) का ही सर्वश्रेष्ठ रूप है। (देखो डा० कुमार स्वामी, A new approach to Rigveda,) इसी से ज्ञानी कहा करते हैं कि ऐन्द्र पद क्या चीज है। इसका त्याग करने पर ही सच्चे मार्ग का दर्शन मिलता है। हमारे बड़े कवियों ने (जैसे तुलसी और मैथिली) इन्द्र के चरित का बड़ा उपहास किया है। (जिन लोगों की धार्मिक भावना पर इस विचार से कुछ चोट लगे, वे इसे हमारी जिज्ञासा समझकर उत्तर दें, नाराज न हों।)

ईसाइयों के शैतान, बौद्धों के मार, जैनों के मदन का भी वर्णन हमने पढ़ा है। उनमें और कालिदास तथा तुलसी के 'कामदेव' में कोई भेद नहीं दीखता। एक ही प्रवृत्ति के इतने भिन्न भिन्न नाम हैं। प्रवृत्तिरेषा भूतानां। मनु ने कहा है कि यह (काम की प्रवृत्ति) सभी में होती है। उसे छोड़ने में बड़प्पन है। निवृत्तिस्तु महाफला।

इसी कामनिवृत्ति का वर्णन सभी अच्छे धर्मग्रन्थों और अच्छे काव्यों में हुआ है। उसे ही इन्द्रविजय, कामविजय, रावणविजय, मारविजय आदि कहते हैं।

गीता के शब्दों में कहें तो—

जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।

काम को ज्ञान से जीतो। प्रवृत्ति को निवृत्ति से जीतो

कैसे? 'योग' से। उपाय से।

विश्वविजयिनी शक्ति

(ले०—लोकसंग्रही स्वामी विद्यानन्दजी)

यह विश्व शक्तियों का समूह है—शक्ति का मूर्तरूप है। विश्व का कर्ता सर्वशक्तिमान् है। गीता ने शक्ति और शक्तिमान् में कोई भेद नहीं माना है। समस्त शक्तियाँ और विभूतियाँ विभु के विराट् और उग्र-रूप में निहित देख पड़ती हैं। जिसे दिव्य दृष्टि मिल जाती है, उसे विश्व के कण कण में शक्ति का दर्शन मिलता है, उसे समस्त संसार "सिया राम मय" देख पड़ता है। और अर्जुन के समान वह भगवान् के विराट् रूप का दर्शन करके कृतकृत्य हो जाता है।

जिस "विश्वरूप" को देखकर अर्जुन भयविह्वल हो उठा था, उस 'सुदुर्दर्श' नानात्व को ही ज्ञानियों ने 'माया', भक्तों ने 'लीला' और उपासकों ने 'शक्ति' नाम दिया है, ज्ञानी माया से मुक्ति चाहता है, विश्व की माया से दूर रहने का यत्न करता है। अनन्य भक्त अपने भगवान् की लीला ही में मस्त रहता है, उसकी भी भक्ति करता है। उसे संसार की कोई चिन्ता नहीं। चिन्ता करनेवाला तो प्रभु है।

पर सच्चा उपासक—गीता का आदर्श उपासक शक्ति की उपासना करता है। वह आजकल का भौतिकतावादी, शक्तिपूजक वैज्ञानिक नहीं है। वह कोरी कर्मशक्ति का पूजन नहीं करता। वह इस नानात्व में एकत्व देखता है। इस विश्व को ब्रह्म का ही रूप समझता है। उसमें कर्ता की शक्ति का (विभूति का) दर्शन करता है। वह शक्ति को 'विभूति' समझता है। अतः अभेद बुद्धि रखकर वह सब कर्म करता है। वह ज्ञान की अवहेलना नहीं करता। भगवान् की शक्ति का मुग्ध भक्त तो वह है ही, पर वह प्रकृति में भी भगवान् की शक्ति मानकर प्रकृति द्वारा नियुक्त कार्यों को चुप चाप करता जाता है, उन्हें छोड़ता नहीं है। इस प्रकार वह ज्ञान, भक्ति और कर्म का समन्वय कर लेता है।

गीता में भगवान् की शक्ति के दो रूप देख पड़ते हैं—एक उग्र और दूसरा सौम्य। उग्र विराट् रूप दिव्य और उत्तम अधिकारियों के लिए है; और सौम्य मानुष रूप सभी नर प्रकृतियों को—अर्जुन जैसे सभी साधारण मनुष्यों को सुलभ हो सकता है। इसी से दर्शनों ने शक्ति की उग्रता का वर्णन किया है और पुराणों तथा इतिहासों ने शक्ति की सौम्य मूर्ति का परिचय दिया है। शास्त्रों में वर्णित शक्ति की चकाचौंध से साधारण आदमी आँख मूँद लेता है। पर भक्त की भावुक वाणी सुनकर कोई भी शक्ति का भक्त बन जा सकता है। पिछले ढंग का वर्णन गीता के दशम अध्याय में बड़ा सुन्दर हुआ है।

अब सगुण पूजा के क्षेत्र में यह बात ध्यान देने योग्य है, कि शिव के साथ शक्ति का और विष्णु के साथ श्री का होना आवश्यक है।

भक्त लोग प्रायः कहा करते हैं कि 'मां' ने ही कृपा की है, अन्नपूर्णा के सहारे ही शिव संसार का पालन करते हैं, लक्ष्मी विष्णु के हृदय में निवास करती हैं इत्यादि—इस सब का तात्पर्य यही है कि वास्तव में शक्तिमान् की शक्ति ही सब कुछ करती है। बिना शक्ति का शक्तिमान् कैसा ? शक्ति का ही तो साक्षात् अनुभव होता है। अतः प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि शक्ति (के किसी न किसी रूप) की उपासना करे।

शक्ति प्रत्येक वस्तु में रहती है। इसलिए किसी भी शक्ति का अनादर न करना चाहिए, हममें से प्रत्येक को अपनी शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्ति बढ़ानी चाहिए, और विश्व में व्याप्त आध्यात्मिक शक्ति का अनुभव करना चाहिए। ऐसी शक्तिपूजा से ही जीवन में विजय मिल सकती है।

गीता में जिस विजयिनी शक्ति का उपदेश है उसका मूलमन्त्र है—

"मामनुस्मर युध्य च"

भगवान् कहते हैं—

मुझे स्मरण रखो और बस जीवनयुद्ध में बढ़ते जाओ। स्मरण रखना और कर्म करना दोनों का योग चाहिए। भगवान् और संसार दोनों का योग होना चाहिए। 'योग' से सदा विजय होती है। विजय पाने का यही उपाय है कि परमार्थ और व्यवहार का—प्रभु से प्रभु के संसार का योग कर दो। अर्थात् अपने संसारी जीवन को भगवान् में जोड़ दो, लगा दो। (योग = जोड़)।

'इस उपाय से तुम संसार और संसार के प्रभु दोनों को ही जीत सकते हो'। तब बचा क्या? इसी से तो संत कहते हैं कि गीता का योग विजय का सबसे बड़ा उपाय है। योग की शक्ति सबसे बड़ी शक्ति है। इसी योग का उपदेश पाकर अर्जुन ने महाभारत जीत लिया था। तुम भी इस योग के अस्त्र को उठाओ और विश्वविजय कर डालो।

योगास्त्र सीखने के लिए गीता पढ़ो। गीताधर्म का पालन करो।

विजय का उपाय

तुल्य निन्दा स्तुतिर्मौनी

(ले०—स्वामी रवीन्द्रानन्दजी)

चाहे दुनिया के व्यवहार में, चाहे धर्म की पारमार्थिक क्रिया में कहीं भी यदि कुछ करना हो तो निन्दा और स्तुति दोनों की अधिक परवा न करके चुपचाप (मौनी) अपने एक रास्ते से चलते जाओ। यही कृष्ण की सलाह है।

भगवान् बुद्ध ने भी इसी बात को बड़े सुन्दर शब्दों में कहा है—

"भिक्षुओ! यदि कोई निन्दा करे तो तुम लोगों को सच और झूठ बात का पूरा पता लगाना चाहिए—क्या यह ठीक नहीं है, यह असत्य है, यह बात हम लोगों में नहीं है, यह बात हम लोगों में बिलकुल नहीं है?

"भिक्षुओ! और यदि कोई मेरी, धर्म की या संघ की प्रशंसा करे तो तुम लोगों को न आनन्दित, न प्रसन्न और न हर्षोत्फुल्ल हो जाना चाहिए। यदि तुम लोग आनन्दित, प्रसन्न और हर्षोत्फुल्ल हो जाओ, तो उसमें तुम्हारी ही हानि है। भिक्षुओ! यदि कोई प्रशंसा करे, तो तुम लोगों को सच और झूठ बात का पूरा पता लगाना चाहिए—क्या यह बात ठीक है, यह बात सत्य है, यह बात हम लोगों में है और यथार्थ में है?"

माँझी

(ले०—श्री बच्चनजी)

श्री बच्चनजी ने अपनी कविताओं द्वारा हिंदी जगत् में एक नई हलचल पैदा कर दी है, एक नया जोश भर दिया है। उनकी मधुशाला और मधुबाला में जितनी मस्ती है, जितनी तन्मयता है; माँझी में उतनी ही दृढ़ता है, उतना ही आत्मविश्वास है। बिना इतनी दृढ़ता और बिना इतने आत्मविश्वास के न कोई मनुष्य अपने लक्ष्य पर पहुँच सकता है और न उसे किसी भी काम में सफलता अथवा विजय ही प्राप्त हो सकती है। पाठक एक बार तन्मय होकर इसे पढ़ें और मनन करें।

धूलिमय नभ, क्या इसी से
बाँध दूँ मैं नाव तट पर?

[१]

देखते ही देखते अति
वेग से कर शब्द 'सनसन'
टूट पृथ्वी पर पड़ेगा
पश्चिमी नभ से प्रभञ्जन,

भीत हो सारी दिशाएँ
घन तिमिर में जा छिपेंगी,
जायगा भर घोर हाहा-
कार से वन और उपवन,

हो विकलविह्वल तरङ्गे
उठ गिरेंगी, गिर उठेंगी,
जलथपेड़े खा उठेगी
काँप मेरी नाव 'थरथर'

धूलिमय नभ, क्या इसी से
बाँध दूँ मैं नाव तट पर?

[२]

प्रात की स्वर्णिम विभा में
और दिन की रोशनी में,
सांध्य नभ की लालिमा में
श्वेत शीतल चाँदनी में,

वायु के अनुकूल अपना
पाल फैलाता, गिराता,
मैं चुका हूँ घूम गाता
स्वच्छ जल कल्लोलिनी में;

आज मैं तमतोम आता
देखकर पीछे हटूँ यदि,
काम किस दिन आ सकेगी
जो रही जग ज्वाल अंदर?

धूलिमय नभ, क्या इसी से
बाँध दूँ मैं नाव तट पर?

[३]

ठीक, लहरों से प्रताड़ित
हो करेगी नाव 'मरमर',
फैन फैलाता तटों पर
कर उठेगा नीर 'छरछर'

व्योम के सुनसान घर में
शब्द 'सनसन' भर उठेगा,
कर चलेगी तीर पर
फैली हुई वनराजि 'हरहर',

किंतु इतने से भला वह
किस तरह हो मौन बैठे?
विश्व का चीत्कार गाने
जो चला है राग में भर!

धूलिमय नभ, क्या इसी से
बाँध दूँ मैं नाव तट पर?

[४]

जायगा उड़ पाल होकर
तारतार विशद गगन में
टूटकर मस्तूल सिर पर
आ गिरेगा एक क्षण में,

नाव से होकर अलग
पतवार धारा में बहेगी,
डाँड छूटेगा करों से,
पर बचा यदि प्राण तन में,

तैरकर ही क्या न अपने
ध्येय को मैं जा सकूँगा?
मथ चुके हैं कर न जाने
बार कितनी विश्वसागर!

धूलिमय नभ, क्या इसी से
बाँध दूँ मैं नाव तट पर?

[५]

आज है अस्थिर गगन,
अस्थिर सलिलतल हो रहा है,
किंतु अस्थिर हो न माँझी,
धैर्य अपना खो रहा है,

झेलने को इस बड़े
तूफान के झोंकेझकोरे,
मानवी संपूर्ण साहस
वक्षबीच सँजो रहा है।

अवनि-अम्बर की तराज़ू
सामने रख दी गई है,
क्यों न तौलूँ आज अपनी
शक्ति उस पर गर्व से धर?

धूलिमय नभ, क्या इसी से
बाँध दूँ मैं नाव तट पर?

———

मायावाद

(ले० —श्री अनिलवरण राय, एम० ए० श्री अरविन्दाश्रम, पांडीचेरी।)

मायावाद का वास्तविक अर्थ लोग भूल गये हैं। आजकल उसका जो अर्थ लगाया जाता है, उसी के कारण भारतवर्ष की दुर्दशा हुई है। श्री अनिलवरण राय, एम० ए० श्री अरविन्दाश्रम पांडीचेरी के उत्कृष्ट साधक हैं। आधुनिक मायावाद से कैसी दुर्दशा हुई है उसका शब्दचित्र उन्होंने अपने इस लेख में खींचा है। और मायावाद के अपने अर्थ का स्पष्टीकरण भी किया है। पाठकों के लिए मनन करने की यह एक सामग्री है। संपादक का इससे सहमत होना अनिवार्य नहीं।

(१)

मायावाद और आधुनिक आदर्श

ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है—यही मायावाद है। किसी न किसी रूप में यह मायावाद जगत् के सब धर्मों में घुस गया है और आधुनिक सभ्य समाज में जो धर्म के विरुद्ध एक प्रबल अभियोग उठ खड़ा हुआ है उसका मूल भी यही मायावाद है।

यह जगत् दुःखमय है। यहाँ पर साधन, भजन, पुण्यकर्म के द्वारा मनुष्य को योग्य बनना होगा, जिसमें वह इस जगत् के ऊपर—परलोक में वास्तविक सुख शान्ति का अधिकारी हो सके। एक कवि ने जो यह कहा है कि "शान्तिनिकेतन को छोड़कर, भला बताओ तो, तुम कहाँ शान्ति पाओगे? संसार में तो शान्ति की आशा करना मृगमरीचिका के समान है।"—यही मूलतः सब धर्मों की शिक्षा है। और इस शिक्षा ने मनुष्य को संसार की ओर से, जगत् की ओर से विमुख कर दिया है। जो लोग धर्मभाव के द्वारा प्रभावित होते हैं, वे सांसारिक उन्नति के प्रति उदासीन हो जाते हैं, अपने परकाल की चिन्ता में, मोक्ष की चिन्ता में ही डूब जाते हैं। यही कारण है कि आजकल बहुत से लोग धर्मभाव को एक प्रकार की मानसिक विकृति (mental defect) मानने लगे हैं और इस कारण उससे अलग ही हटकर रहना चाहते हैं। जब तक मनुष्य अन्धविश्वास के वश में होकर परलोक के सुख की आशा से इहलोक के समस्त दुःखों को सहता रहा है तभी तक धर्म की प्रधानता रही है। किंतु अब आया है युक्तिवाद (Rationalism) का युग। लोगों का कहना है कि हम नहीं जानते और न देखते ही हैं कि भगवान् कौन हैं या कहां पर हैं। परलोक, परकाल नामक कुछ है या नहीं, इस विषय में भी प्रमाण का अभाव ही है। परंतु दूसरी ओर आँखों के सामने हम इस जगत् को, इस मानव जीवन को देखते हैं—चेष्टा करने पर इसे दुःख-यन्त्रणा से मुक्त करके अशेष सुख और समृद्धि से पूर्ण किया जा सकता है। ऐसा न करके जो बहुत से प्रतिभाशाली, शक्तिशाली मनुष्य धर्मभाव से प्रेरित होकर संसार से विरागी हो जाते हैं, वर्तमान

सभ्यतासंकट के मूल कारण की खोज न करके आत्मचिन्तन में लीन हो जाते हैं, इसी को लोग आजकल मानव सभ्यता की एक महान् विपत्ति समझते हैं। वे कहते हैं कि जितने ज्ञानवान् लोग एकान्त में तपस्या करते हैं, वे सब यदि देश के कार्य में, समाज के कार्य में अपने को लगा दें तो सहज ही आधुनिक समस्त समस्याओं का समाधान हो जायगा; परंतु जगत् को मिथ्या अनुभव करना ही जिनकी साधना का लक्ष्य है, वे भला क्यों इन सांसारिक कार्यों में लिप्त होंगे ?

अवश्य ही यह बात भी सत्य नहीं है कि धर्म-भाव के वश में होकर लोग जगत् का हितसाधन नहीं करते। मनुष्य का दुःख दूर करना धर्म का भी लक्ष्य है। दान, सदाव्रत, परोपकार, मनुष्य-सेवा, सब जीवों की सेवा—ये सब तमाम धर्मों के अङ्ग हैं। परंतु धर्म मनुष्य का जो कल्याण करना चाहता है वह है आध्यात्मिक कल्याण, पारलौकिक कल्याण। धर्म मूलतः मनुष्य को ऐसी शिक्षा देना चाहता है जिससे वह संसार से अनासक्त होकर परकाल की चिन्ता में लीन हो जाय, और इस प्रकार संसार के अवश्यंभावी दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति कर सके। जो लोग केवल अपनी आध्यात्मिक मुक्ति के लिए साधना करते हैं, उनके मार्ग को हीन-यान कहकर, उसकी निन्दा करके, बौद्ध महायान-संप्रदाय ने जगत् के समस्त मनुष्यों की आध्यात्मिक मुक्ति का मार्ग परिष्कृत कर देना ही अपनी साधना का लक्ष्य बनाया था। परंतु आधुनिक युक्तिवाद के युग में यह महायान भी एक प्रकार का हीनयान ही माना जाता है; क्योंकि यह सब मनुष्यों को संसारलीला से हटाकर निर्वाण की ओर ले जाना चाहता है। अवश्य ही सब धर्मों का लक्ष्य निर्वाण या आत्मलोप करना नहीं है। साधारणतः धर्म साधना का लक्ष्य यह है कि मृत्यु के बाद स्वर्ग में जाकर मनुष्य असीम सुख का भोग करे। परंतु यह स्वर्गसुखभोग भी आधुनिक युग के मनुष्यों को आकृष्ट नहीं कर पाता, उनका प्राण रो रहा है इस मर्त्य के लिए। ईसाईधर्म द्वारा कल्पित स्वर्गसुख के संबन्ध में अभी हाल में किसी समालोचक ने कहा है कि—"जिस स्वर्गराज्य में विवाह नहीं है, विवाह नहीं किया जाता, हम जिसे जीवन कहते हैं, वह जहाँ बिलकुल नहीं है, उसमें और बौद्धों के निर्वाण में अन्तर क्या है ?"

शंकराचार्य की शिक्षा है कि नारी नरक का द्वार है, "अर्थम् अनर्थम्, कौपीनवन्तम् खलु भाग्यवन्तम्।" ईसाईधर्म की शिक्षा है कि एक ऊँट के लिए सुई के छिद्र में प्रवेश करना जितना कठिन है, उससे भी अधिक एक धनी के लिए स्वर्गराज्य में प्रवेश करना कठिन है। जिन पर इस शिक्षा का प्रभाव पड़ा है उनके द्वारा सांसारिक जीवन की क्या उन्नति होगी ? सब साधु व्यक्ति, धार्मिक व्यक्ति यदि अर्थ को अनर्थ मानकर दारिद्र्यव्रत ग्रहण कर लें तो जगत् का समस्त धन असाधु और अधार्मिक लोगों के हाथ में ही चला जायगा और उनके द्वारा अर्थशक्ति का जो दुरुपयोग होगा, उससे जगत् में अनर्थ सीमा को पार कर जायगा। वास्तव में आजकल जो संसार में भीषण संकट उपस्थित हुआ

है इसका एक मूल कारण अर्थशक्ति का दुरुपयोग ही है। अतएव धन को असाधुओं के हाथ से मुक्त कर सत्कार्य में, भगवान् के कार्य में लगाना मानवसमाज के लिए समृद्धिशाली, सौन्दर्यमय, दिव्य जीवन निर्माण करना साधु मनुष्यों का कर्तव्य है। परंतु जो लोग मायावाद के प्रभाव में आकर काञ्चन का विषवत् परित्याग करना चाहते हैं उनके द्वारा यह संभव नहीं।

जर्मन दार्शनिक नित्शे ने कहा है—"जीवन की ओर! जीवन—और भी, और भी जीवन! आओ जगत् को अनन्त काल के लिए नित्य नवीन जीवन से भर दें। भाइयो! हम तुमसे अत्यन्त अनुरोध करते हैं कि पृथिवी के प्रति एकनिष्ठ होकर रहो, जो लोग तुम्हें परलोक की आशा देकर रखते हैं, उनकी बात पर विश्वास मत करो। जीवन से वे घृणा करते हैं, वे मुमुर्षु हैं, उन्होंने स्वयं विषपान किया है, उनका भार पृथिवी के लिए असह्य हो रहा है! विदा हो जायँ वे लोग। भाइयो! तुम अपना सब धर्मबल लगाकर इस पृथ्वी के प्रति एकनिष्ठ होकर रहो।"—(श्री नलिनीकान्त गुप्त रचित 'नित्शे की वाणी' से)। इसको मायावाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया कहा जा सकता है। यही आधुनिक युगवाणी है, कालपुरुष का संकेत है, इसकी उपेक्षा करने से किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता।

(२)

सांसारिक दुःख का प्रतिकार

संसार के दुःख से मुक्ति प्राप्त करने के दो मार्ग हैं। एक मार्ग है मन, प्राण को इस प्रकार का बना लेना जिसमें संसार का कोई दुःख, कोई यन्त्रणा फिर विचलित न कर सके। और दूसरा मार्ग है ऐसी व्यवस्था करना जिससे संसार में दुःख ही न रह जाय। दुःख के सब कारणों को दूर करना अध्यात्म साधना का पहला पथ है, परंतु सुख दुःख से अतीत ऐसी मानसिक अवस्था को प्राप्त करने के लिए जिस साधना की आवश्यकता है, वह सर्वसाधारण के लिए संभव नहीं है। संसार की सब वस्तुओं पर से आसक्ति हटानी होगी, समस्त वासनाओं का त्याग करना होगा, माया ममता के सारे बन्धन, प्यार के बन्धन स्वयं अपने हाथों तोड़कर त्यागी, वैरागी, संन्यासी होना होगा—तभी वास्तविक शान्ति प्राप्त होगी। ऐसी कठोर साधना दो चार व्यक्तियों के लिए संभव होने पर भी, संसार की जो दुःखमय अवस्था है, उसका इससे कोई प्रतिकार नहीं होता, अधिकांश लोगों को दुःख में ही पड़ा रहना पड़ता है। उच्च अध्यात्म-जीवन प्राप्त करके संन्यासी लोग साधारण मनुष्यों का दुःख दूर करने में प्रवृत्त होंगे, इसकी भी बहुत कम आशा है। क्योंकि जो लोग यह देखते हैं कि दुःख मिथ्या है, जगत् मिथ्या है, वे उस मिथ्या दुःख को दूर करने की चेष्टा ही क्यों करेंगे? विशेष कर उन्हें सर्वदा यह आशङ्का रहेगी कि सांसारिक कर्म में प्रवृत्त होने पर संभव है कि वे पुनः उसमें जकड़ जायँ, इतना कष्ट उठाकर जो उन्होंने मुक्ति प्राप्त की है, संभव है उनकी वह सारी

साधना चौपट हो जाय! वास्तव में यह देखा जाता है कि जो लोग जनहितकर कार्य में, सेवा के कार्य में प्रवृत्त होते हैं वे अपने अंदर आध्यात्मिकता के साथ सामञ्जस्य नहीं रख पाते। और अध्यात्मसाधना की ओर अग्रसर होने पर कर्म स्वयं घट जाता है! श्री रामकृष्ण ने कहा है, "पहले पहले कर्म की खूब हलचल रहती है। ईश्वर के मार्ग में जितना ही आगे बढ़ोगे उतना ही कर्म घटेगा। अन्त में कर्म का त्याग और फिर समाधि हो जायगी।"

दूसरा मार्ग है ईश्वर की ओर अग्रसर न होकर कर्म के द्वारा यथासंभव संसार के दुःख-कष्ट का प्रतिकार करना; और यही आधुनिक आदर्श है। जो लोग इस आदर्श का अनुसरण करना चाहते हैं, धर्म को मनुष्यजीवन से निकाल बाहर करना चाहते हैं, उन्हें नास्तिक कहकर उनकी निन्दा करने से समस्या का समाधान नहीं होगा। वे बुद्धिमान् हैं, सहृदय हैं, अपने अपने मतानुसार उनके अंदर भी श्रद्धा है। वे लोग मनुष्य का कल्याण चाहते हैं, जगत् का कल्याण चाहते हैं और उसके लिए सब प्रकार का त्याग स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हैं। वे केवल यही स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं समझते कि मनुष्य के ऊपर भी और कुछ है। कवि की भाषा में उनकी यही वाणी है कि "सवार उपरे मानुष सत्य, ताहार उपरे नाई।" (अर्थात् सब के ऊपर मनुष्य सत्य है, उससे ऊपर और कुछ नहीं है।) मनुष्य की सेवा, मानव जाति का कल्याणसाधन, उन्नतिसाधन—इसी को वे धर्म (Humanism) मानते हैं और इसके लिए जप, तप, कृच्छ्र साधन में लीन न होकर वे महान् कर्म की साधना करना चाहते हैं। आधुनिक विज्ञान ने मनुष्य के हाथ में ऐसी शक्तियों को दिया है कि मनुष्य अन्धविश्वास, कुसंस्कार आदि को त्यागकर यदि युक्तिसंगत रूप में उनका प्रयोग करे तो यह पृथिवी सुख, स्वास्थ्य, समृद्धि से पूर्ण हो जाती है। उनसे रोगों का प्रकोप दूर होता है, सब मनुष्य सुरुचि, सुविधा और सौन्दर्य से पूर्ण जीवन यापन करते हुए पृथिवी का उपयोग पूर्णरूप से कर सकते हैं। इन्हीं दिनों में पाश्चात्य देश इस दिशा में बहुत कुछ आगे निकल गये हैं। जिन रोगों के प्रकोप से भारत में प्रति वर्ष लाखों मनुष्य अकाल ही काल के गाल में समा जाते हैं अथवा शोचनीय रुग्णावस्था में जीवन बिताते हैं, वे सब रोग इंगलैंड, जर्मनी आदि देशों से पूर्णरूप से नष्ट हो गये हैं, ऐसा कहा जा सकता है। उन सब देशों ने गार्हस्थ्य जीवन को सुख सुविधा से पूर्ण करने के लिए कितने प्रकार के नये नये आयोजन किये हैं और कर रहे हैं, इसकी गणना नहीं है। अमेरिका के कुली मजूरों को भी इतनी आर्थिक सहूलियत है कि वे स्वयं अपनी मोटर पर सवार होकर मजूरी करने जाते हैं! रूस आदि सभी यूरोप के देशों का यही आदर्श है। और तथाकथित धर्मभाव के वशीभूत होकर भारत चलता है ठीक उससे विपरीत दिशा में! किसी प्रकार का सुख भोगना मानो पाप है,—सब प्रकार से कृच्छ्र साधन करना ही पुण्य है—यही आजकल धर्म का

आदर्श है, धर्म की शिक्षा बन गई है। दारिद्र्य-मय, नग्न, यहाँ तक कि कुत्सित जीवन ही महान् है, ऐसी ऊँचे स्वर में घोषणा की जाती है। जो लोग जीवनवादी हैं, कर्मवादी हैं, वे यदि इस शिक्षा के विरोधी हों, 'धर्मविद्वेषी' हों तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। संसार के सब भोगों, सुखों को यदि छोड़ना ही होगा तो फिर भगवान् ने इस ऐश्वर्यमय जगत् की सृष्टि ही क्यों की ?

निरपेक्ष भाव से विचार करने पर यह मालूम होता है कि इन दोनों मार्गों में कुछ सत्य विद्यमान है, परंतु इनमें कोई पूर्ण या समग्र सत्य नहीं है। विज्ञान के द्वारा जीवन की बाह्य समृद्धि चाहे जितनी क्यों न बढ़ा ली जाय, जब तक मनुष्य का अन्तःकरण शुद्ध और बुद्ध नहीं होता तब तक उसे किसी वस्तु में प्रकृत सुख, शान्ति और आनन्द नहीं मिल सकता। आज अमेरिका पृथिवी पर सबसे अधिक धनी है और वही अमेरिका पाप का भी केन्द्रस्थल हो रहा है। वहाँ पर मनुष्य पर मनुष्य जो अत्याचार करता है, वह वर्णनातीत है। अन्न वस्त्र का अभाव बहुत बड़ा दुःख है और उसका समुचित प्रतिकार सबसे पहले होना चाहिए। परंतु यथेष्ट आर्थिक संपदा होने से ही मानव-जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान नहीं हो जाता। जगत् में धनी मनुष्य बहुत से हैं, परंतु क्या उनके जीवन को आदर्श माना जा सकता है ? जो जितना ही धनी है, उसे उतनी ही अधिक आकाङ्क्षा है, उतना ही अधिक लोभ है और उतनी ही अधिक अशान्ति है। काम, क्रोध, लोभ—ये तीनों मनुष्य के परम शत्रु हैं,—गीता की भाषा में ये तीनों नरक के द्वार हैं। जब तक मनुष्य इन तीनों परम शत्रुओं के हाथ से मुक्ति नहीं पा लेता, तब तक उसका सारे आदर्शों का अनुसरण करना व्यर्थ ही होगा। और इन तीनों का दमन किया जाता है, निर्मूलन किया जाता है केवल अध्यात्म साधना के द्वारा।

इन तीनों का मूल है अहंभाव (Egoism)। जगत् में जितना अत्याचार, अशान्ति, दुःख, द्वन्द्व, संघर्ष इत्यादि है सबका मूल कारण यह अहं है—व्यक्ति का अहं, देश का अहं, जाति का अहं, संघ का अहं, धर्म का अहं। अहं का धर्म ही है दूसरे को खर्व करके, निगल करके अपने को बड़ा करना। मानवसमाज में जो नाना स्तर के अहं अपने को बड़ा बनाने के लिए व्यस्त हैं, यही काम, क्रोध, लोभ की जड़ हैं और संसार के सब प्रकार के दुःखों के मूल हैं। जिस दिन मनुष्य अहंभाव को जीत लेगा, अपने लिए जो प्रयत्न करता है वही दूसरे के लिए करेगा, दूसरे का कल्याण करने में अपना जीवन उत्सर्ग करके उसके फलस्वरूप जो कुछ मिले उसे ही भगवान् के प्रसाद के रूप में ग्रहण करेगा, उसी दिन इस पृथिवी पर होगा प्रेम का राज्य, स्वर्गराज्य।

परंतु जब मनुष्य का अहंभाव दूर हो जायगा तब उसका रह ही क्या जायगा ? उस समय तो वह परम ब्रह्म में लीन हो जायगा, निर्वाण को प्राप्त हो जायगा। उस समय जगत् हो जायगा मिथ्या, जीवन हो जायगा मिथ्या। उस समय फिर कहाँ रहेगी यह पृथिवी और कहाँ रहेगा प्रेम का राज्य ?

अन्ततः यही मायावाद की शिक्षा है। सत्य बात यह है कि यदि मायावाद ही आध्यात्मिकता की अन्तिम बात है तब तो जीवनसमस्या का कोई समाधान नहीं है। तब तो आध्यात्मिकता के द्वारा जगत् का कोई भी कल्याण होने की संभावना नहीं; क्योंकि वह अहंज्ञान को नष्ट करके मनुष्य को संसार से विरागी बना देगी। और आध्यात्मिकता को छोड़कर अहं को पकड़े रहने से मनुष्य जो आज पशुत्व के अंदर पड़ा हुआ है उससे एक सीढ़ी भी ऊपर उठना उसके लिए संभव नहीं होगा। यही वर्तमान युगसमस्या है, "The present crisis in civilisation" का मूल सूत्र है।

(३)

आध्यात्मिकता और जीवन

भारत की वर्तमान दुर्दशा की ओर अँगुली दिखाते हुए बहुत से लोग कहा करते हैं कि आध्यात्मिकता ही भारत की सारी दुर्गति का कारण है। परंतु भारत चिरकाल से ही आध्यात्मिक है, अर्थात् भारत की सभ्यता आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता की तरह जड़वाद (materialism) और विज्ञान (science) के ऊपर प्रतिष्ठित नहीं है, बल्कि वह वैदिक ऋषियों की अध्यात्मसाधना से प्राप्त गम्भीरतर सत्य के ऊपर प्रतिष्ठित है। उससे भारत के ऐहिक जीवन को कोई क्षति नहीं पहुँची है। बल्कि भारत ने आध्यात्मिकता से जो प्रेरणा जीवनलीला में प्राप्त की थी, उससे वह संस्कृति और सभ्यता के उच्चतम शिखर पर पहुँचने में समर्थ हुआ था; अन्ततः दो हजार वर्षों तक ऐहिक जीवन के समस्त क्षेत्रों में—राष्ट्र, समाज, शिल्प, वाणिज्य, साहित्य सबमें उसने अपूर्व कर्मशक्ति, सृष्टि-शक्ति दिखाई थी। भारत के ज्ञान, भारत के ऐश्वर्य, भारत के वीरत्व, प्रतिभा, कार्यकुशलता इत्यादि ने संसार को चकित कर दिया था। परंतु उस समय भारत ने जिस अध्यात्म सत्य को अपनाया था, वह मायावाद नहीं है, वह है—ब्रह्म सत्य है, जगत् भी सत्य है, जगत् ब्रह्म की ही आत्मप्रकाशलीला है, आनन्दलीला है। भारतीय सभ्यता के, भारतीय शिक्षा दीक्षा के मूल उद्गम स्थान वेद और उपनिषदों में हम इसी अध्यात्मतत्त्व को पाते हैं। इसी कारण उस समय गार्हस्थ्य आश्रम को खूब ऊँचा स्थान दिया गया था। संन्यास केवल थोड़े से योग्य लोगों के लिए ही चरम आदर्श था। जिस समय शंकराचार्य ने अपनी अपूर्व प्रतिभा और कर्मशक्ति के द्वारा भारत के आपामर जनसाधारण के अंदर 'ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है'—इस मायावाद का प्रचार किया; जिस समय यह प्रचार किया कि ब्रह्मचर्य आश्रम के बाद गार्हस्थ्य आश्रम में प्रवेश न कर एकाएक संन्यास ग्रहण करना वाञ्छनीय है, प्रशंसनीय है, जो लोग अक्षम हैं, केवल उन्हीं के लिए गृहस्थाश्रम है, उस समय से ही भारतीय सभ्यता का प्राचीन सामञ्जस्य नष्ट हो गया। बौद्धों ने जो संसारत्याग का प्रचार किया था, उसे ही शंकराचार्य ने भी और भी व्यापक रूप में, देशवासियों के मन में

प्रवेश करा दिया। उसी समय से ऐहिक जीवन में भारत के वास्तविक अधःपतन का सूत्रपात हुआ। गार्हस्थ्य जीवन को लोग अत्यन्त हीन दृष्टि से देखने लगे, उसे विधि निषेध के असंख्य बन्धनों में जकड़ दिया गया,—देश की, समाज की उन्नति और प्रसार करनेवाली सब प्रकार की महान् चेष्टाओं की प्रेरणा नष्ट हो गई। स्त्री, पुत्र, क्षुद्र परिवार लेकर किसी प्रकार संसारयात्रा चलाना, दिनगत पापक्षय करना, यही गार्हस्थ्य जीवन का आदर्श बन गया। इस प्रकार सारा देश, सारी जाति धीरे धीरे जीवनी शक्ति खोकर अवसन्न हो गई। उसी का परिणाम भारत की पराधीनता और वर्तमान चरम दुर्दशा है।

ईसाईधर्म में भी इस मायावाद का प्रभाव है, परंतु उसके प्रचार से यूरोप में इस प्रकार का कुफल नहीं हुआ। क्योंकि यूरोप ने कभी भारत की तरह धर्म को, आध्यात्मिकता को मन, प्राण से ग्रहण नहीं किया। धर्म वहाँ पर शौकीनी का एक सामान है। जहाँ पर जीवनयात्रा में आघात उपस्थित होता है, वहाँ पर धर्म को छोड़ देने से भी उनका काम चल जाता है। भारत में जिस प्रकार समस्त जीवन ही धर्म है, धर्म की शिक्षा के द्वारा समग्र ऐहिक जीवन को नियन्त्रित करना आदर्श है, वैसा यूरोप में नहीं है। ईसाईधर्म की शिक्षा है—अन्याय का प्रतिरोध मत करो, पड़ोसी को प्यार करो, कोई तुम्हारे एक गाल पर यदि चपत लगावे तो उसकी ओर दूसरा गाल भी फेर दो, अपनी धन-संपत्ति को बाँटकर दरिद्रता का व्रत ग्रहण करो। यूरोप के किस देश ने, किस जाति ने अपने जीवन में इस शिक्षा को ग्रहण किया है? परंतु महात्मा गांधी जब इस शिक्षा से प्रभावित हुए, तब वह केवल अपने जीवन को ही तदनुसार बनाने के लिए अग्रसर नहीं हुए, वरन् समस्त भारतीय जाति के जीवन में उसका प्रयोग करने के लिए अग्रसर हुए, और धर्म तथा आध्यात्मिकता के नाम से प्रचारित उनके अहिंसा और दारिद्र्य के आदर्श का जो प्रभाव अत्यन्त थोड़े से समय में ही भारत के आपामर जनसाधारण पर पड़ा, वह जगत् के अन्य किसी देश में भी संभव नहीं हुआ होता। बहुत दिनों की मायावाद की शिक्षा ने ही भारत को इसके लिए प्रस्तुत कर रखा था।

परंतु यह भी नहीं कहा जा सकता कि आध्यात्मिकता को जीवन से निकालकर यूरोप ने भी सफलता प्राप्त कर ली है। उसकी जड़वादी सभ्यता आज अपने ही भार से स्वयं नष्ट हो रही है। भगवान् को छोड़कर मनुष्यजीवन का कोई अर्थ ही नहीं रहता, किसी समस्या का समाधान नहीं होता। यूरोप बाह्य जीवन को गठित करने के असंख्य उपादान संग्रह करके भी वास्तविक सुख शान्ति नहीं प्राप्त कर सका है। इसी से आज आध्यात्मिकता के केन्द्रस्थान भारत की ओर उसकी दृष्टि आकृष्ट हो रही है, परंतु आध्यात्मिकता के द्वारा किस प्रकार जीवनसमस्या का समाधान हो सकता है यह बात उसकी समझ में नहीं आ रही है। जिस आध्यात्मिकता की मूल शिक्षा यह है कि जगत् मिथ्या है, उसके द्वारा जगत् की क्या उन्नति हो सकती है?

(४)

मायावाद और आध्यात्मिकता

परंतु मायावाद और आध्यात्मिकता एक वस्तु नहीं है,—आज यह बात स्पष्ट तौर पर समझने का दिन आ गया है। मायावाद ने अध्यात्म सत्य की केवल एक दिशा पर ही विशेष जोर दिया है। 'माया' शब्द का मूल धातुगत अर्थ है जो माप करे= (मा=मापना, to measure), और प्रथमतः इसी अर्थ में वह व्यवहृत हुआ था। भगवान् अनन्त, असीम, अपरिमेय हैं। जिस शक्ति के द्वारा उन्होंने अपने को सीमा के अंदर प्रकट किया, जीव और जगत् के रूप में अभिव्यक्त किया, भगवान् की वही शक्ति 'माया' नाम से अभिहित हुई है; वह उनकी परमा चिद्शक्ति है। वह देश काल से अतीत, एक अद्वितीय है—उसके अंदर भेद नहीं है, विभाग नहीं है। परंतु उन्होंने ही पुनः बहुरूप में, देश काल में विस्तृत जगत् के रूप में आत्मप्रकाश किया। परंतु जो अखण्ड हैं, वे किस प्रकार खण्डित हुए ? जो असीम हैं वे कैसे सीमा के अंदर आवद्ध हुए ? जो सब संबन्धों, सब व्यवहारों से अतीत हैं, वे किस तरह इस संबन्धमय व्यावहारिक जगत् के रूप में परिणत हुए ? इसका एक उत्तर यह है कि वे वास्तव में यह सब नहीं होते, केवल मालूम होता है कि वे इस प्रकार हुए हैं। इसलिए यह जगत् प्रपञ्च सत्य नहीं है, मिथ्या है। इस प्रकार 'माया' शब्द का अर्थ हो गया भ्रान्ति, मिथ्या (illusion)। किंतु वेद, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, गीता कहीं भी हमें 'माया' शब्द की यह व्याख्या नहीं मिलती। आचार्य शंकर ने ही इस अर्थ का विस्तृत प्रचार किया है। शंकर के मत से ब्रह्म निर्विशेष, निर्गुण, निष्क्रिय हैं—उनके द्वारा जगत् की सृष्टि या उनका जगत् के रूप में परिणत होना संभव नहीं है। परंतु उपनिषदों में ब्रह्म को जिस प्रकार निर्विशेष, निर्गुण, निष्क्रिय कहा गया है उसी प्रकार सविशेष, सगुण, सक्रिय भी कहा गया है। तब इस विरोध की मीमांसा क्या है ? ब्रह्मसूत्र के रचयिता आचार्य बादरायण ने इसकी बड़ी सहज मीमांसा दी है, श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्—श्रुति में जो ब्रह्म के संबन्ध में दो प्रकार के वर्णन मिलते हैं, वे दोनों प्रकार सत्य हैं, यद्यपि वे हमारी विचार-बुद्धि से अतीत हैं। ब्रह्म का स्वरूप अचिन्त्य स्वभावयुक्त है, अतएव उसमें कोई विरोध रह नहीं सकता। परंतु आचार्य शंकर इस मीमांसा को स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि ब्रह्म सविशेष और निर्विशेष दोनों हैं, यह बात युक्तिसंगत नहीं। परन्तु उन्होंने भी श्रुति को अस्वीकार नहीं किया है। उन्होंने 'माया' शब्द की अपनी व्याख्या करके उसके द्वारा इस विरोध का सामञ्जस्य किया है। ब्रह्म वास्तव में निर्विशेष, निर्गुण होने पर भी माया के प्रभाव से सविशेष, सक्रिय प्रतिभात होते हैं, जैसे रज्जु में सर्प का भ्रम होता है। परंतु शंकर का यह सिद्धान्त अध्यात्मदृष्टि से प्राप्त परम सत्य नहीं है,—यह आंशिक उपलब्धि के आधार पर प्रतिष्ठित मानसिक युक्तितर्क का सिद्धान्त है, अतएव

भ्रान्तिपूर्ण है। जो सर्वशक्तिमान्, अनन्त, असीम हैं, वे यदि अपने को इच्छानुसार सीमा के अंदर प्रकट नहीं कर सकते, एक होने पर भी बहुरूप में प्रकट नहीं हो सकते तो फिर उनका असीमत्व, absoluteness कहाँ रहा ? क्या वह इस तरह अपने एकत्व के अंदर ही सीमाबद्ध नहीं हो जाते ? एक किस प्रकार बहु हुआ ? यह हमारी साधारण मानसिक बुद्धि के द्वारा समझ में न आने पर भी परम सत्य है। वेद उपनिषद् के ऋषियों ने अत्यन्त उच्च अध्यात्मसाधना के बल से इस सत्य का साक्षात्कार किया था, इसी से उन्होंने ब्रह्म के संबन्ध में दो प्रकार के वर्णन किये हैं। ब्रह्म सत्य हैं, जगत् भी सत्य है। एक सत्य है, बहु भी सत्य हैं। जब केवल बहु ही चरम सत्य मालूम होते हैं, इसके पीछे जो परम ऐक्य विद्यमान है, उसकी उपलब्धि नहीं होती, तब वही भ्रान्ति है illusion, अज्ञान है। यह जगत् सृजनकारिणी माया की ही एक क्रिया है। ब्रह्म के अतिरिक्त जगत् का अस्तित्व नहीं है, किंतु जगत् मिथ्या नहीं है। उपनिषद् में वर्णन है, 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', यह समस्त जगत् ब्रह्म है। गीता कहती है, वासुदेवः सर्वं, सब जगत् वासुदेव है। ब्रह्म समस्त जगत् में व्याप्त हैं, ईशावास्यमिदं सर्वं; अथच वे जगत् के अंदर सीमाबद्ध नहीं हैं, जगत् की अपेक्षा वे अनन्तगुना बड़े हैं। जगत् केवल उनकी एक आंशिक अभिव्यक्ति है, 'एकांशेन स्थितो जगत्'।

उपनिषद् में ब्रह्म के संबन्ध में जो आपात विरोधी विशेषणों का प्रयोग किया गया है, गीता गम्भीर अध्यात्मोपलब्धि के आधार पर पुरुषोत्तम-तत्त्व का वर्णन करके उन सबका अपूर्व समाधान करती है। ब्रह्म जब जगत्रूप में अपने को व्यक्त करते हैं तब वह सविशेष, सगुण, सक्रिय हैं,—गीता की भाषा में क्षर पुरुष हैं; और अक्षर पुरुष के रूप में वह जगत्लीला से अलग हैं,—निर्गुण, निर्विशेष, निष्क्रिय = साक्षी रूप में जगत् को धारण किये हुए हैं। परंतु इस अक्षर के भी ऊपर हैं पुरुषोत्तम; उपनिषद् की भाषा में 'अक्षरात् परतो परः'। क्षर और अक्षर दोनों ही पुरुषोत्तम के अंदर दो भाव हैं। पुरुषोत्तम ही परब्रह्म, परमेश्वर, परमात्मा हैं। वे जगत् से बहुत ऊपर, अनन्त, अव्यक्त हैं, और वे ही अपने एकांश में जीव और जगत् भी हुए हैं, सब जीवों के हृदय में ईश्वररूप से विराजमान हैं, युग युग में मानवमूर्ति धारण करके पृथिवी पर अवतीर्ण होते हैं। यह नश्वर मानव-देह, प्राण, मन किस प्रकार दिव्य अध्यात्मजीवन का आधार हो सकता है, अपने दृष्टान्त द्वारा जगत् को इसकी शिक्षा देते हैं। एक ब्रह्म या पुरुषोत्तम के अंदर इतने विभिन्न विरोधी भावों का समावेश कैसे हुआ ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि श्रुति में ऐसा ही है। जो लोग अध्यात्मसाधना द्वारा उपयुक्त दृष्टि प्राप्त करेंगे, वे अपने ही अंदर इस सत्य का प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त करेंगे। ब्रह्म के अंदर अचिन्त्य ऐश्वर्य योग है, अतएव यह सब विरोध नहीं है, केवल विरोध का आभास मात्र है। समग्र दृष्टि प्राप्त करने पर ही सब विरोधों के सामञ्जस्य का दर्शन किया जा सकता है।

इस जगत्लीला, जीवनलीला को मिथ्या कह-कर छोड़ना नहीं होगा, सबके हृद्देश में जो पुरुषोत्तम विराज रहे हैं, उनके साथ सब प्रकार के मधुर संबन्ध[1] स्थापित करके मनुष्य को उनका साधर्म्य प्राप्त करना होगा। भीतर में अक्षर पुरुष का शान्त, निर्लिप्त, द्रष्टाभाव होगा। और बाहर में भगवान् के मन्त्र के रूप में जगत् में उनकी इच्छा पूर्ण करनी होगी, उनका कार्य संपन्न करना होगा, उनकी आनन्दलीला का रसास्वादन करना होगा—इसी के लिए मर्त्य का मानवजीवन है। क्षुद्र अहंभाव का त्याग करना ही होगा, व्यक्तिगत संकीर्ण वासना, कामना के ऊपर उठना ही होगा, परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि निर्विशेष ब्रह्म में लीन होना होगा। जिस अज्ञान, अहंभाव ने हमें जगत् के अन्य समस्त जीवों से, भगवान् से अलग कर रखा है, उसी को निर्मूल करना होगा। मनुष्य जब यह उपलब्धि करेगा कि जगत् के सभी मनुष्य भगवान् के एक एक अंश हैं, ममैवांशः······सनातनः, एक एक रूप हैं, उनकी दिव्य शक्ति के एक एक विशिष्ट प्रकाश हैं। तभी वह अपने वास्तविक व्यक्तित्व, व्यष्टित्व, individuality का पता पायेगा। तभी वह संसार के सब मनुष्यों के साथ एक निगूढ़ ऐक्य का अनुभव करेगा, सब प्रकार के द्वन्द्वों और मोहों से ऊपर उठेगा, तभी भूतल पर स्वर्गराज्य, प्रेम का राज्य स्थापित होगा। प्रत्येक मनुष्य के अंदर, व्यक्ति के अंदर, भागवत-जीवन की जो अनन्त संभावना निहित है, नाना स्तर के समष्टि जीवन के भीतर से होकर उसका क्रमविकास होगा,—व्यक्ति के जीवन की तरह ही समष्टि का जीवन, समाज का जीवन, भी मानवजाति के अंदर ब्रह्म का ही आत्मप्रकाश होगा।

(५)

मर्त्य में दिव्य जीवन

एक मात्र ब्रह्म ही यदि सत्य हों तो यह जगद्-भ्रान्ति कहाँ से, कैसे आई, माया क्या है और किसकी है? इन प्रश्नों का कोई समुचित उत्तर मायावादी नहीं देते। माया है, अनन्त काल से है, ब्रह्म के अंदर जगत् की भ्रान्ति उत्पन्न करती है, यही उनका मत है। परंतु ऐसी दशा में अध्यात्म-साधना की उपयोगिता क्या है? मुक्ति प्राप्त करने का अर्थ क्या है? अथवा जीव के ज्ञान प्राप्त करके ब्रह्म में लीन होने से ही उसे परित्राण कैसे मिल जायगा? माया तो पुनः उसे जगत् भ्रान्ति के अंदर खींच लायेगी! युक्ति की दृष्टि से भी अधिकतर संगत मतवाद यही है कि माया ब्रह्म की ही वह 'अघटनघटनापटीयसी' शक्ति है, जिसके द्वारा ब्रह्म ने स्वयं अपना बहुरूप में आस्वादन करने के लिए जगत् की सृष्टि की है, वेद की भाषा में जिसे कहते हैं, 'एकोऽहम् बहु स्याम्'। जगत् ब्रह्म की आंशिक अभिव्यक्ति होने पर भी यह मिथ्या नहीं है, भ्रान्ति नहीं है, यह उनकी आनन्दलीला है। ब्रह्म अपने आनन्द से स्वयं पूर्ण हैं। जब उन्होंने आनन्द का आदान प्रदान करके उस आत्मानन्द का

१—पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायाः—गीता ११।४४

अनन्त वैचित्र्य के अंदर आस्वादन करना चाहा, तब इस जगत् की सृष्टि हुई। एवं जिस रहस्य के द्वारा उन्होंने ऐसा किया उसी के विभिन्न नाम शक्ति, प्रकृति, माया आदि हैं। तब इस जीवनलीला को मिथ्या कहकर इसका त्याग करने की सार्थकता क्या है? बल्कि जिससे इस लीला का पूर्णतम विकास हो, सीमा के भीतर असीम का दिव्य स्वर बज उठे, वही मानवजीवन का परम लक्ष्य है।

तब मायावादी लोग जो यह कहते हैं कि जगत् मिथ्या है, इसके मूल में भी कुछ सत्य है। जगत् इस समय जैसा है, उसे देखते हुए कोई नहीं कह सकता कि यह विशुद्ध आनन्दलीला है। जगत् में जिस प्रकार सुख सौन्दर्य का अन्त नहीं है, उसी प्रकार दुःख यन्त्रणा का भी अन्त नहीं है। जगत् यदि आनन्दमय ब्रह्म की अभिव्यक्ति है तो फिर इतना दुःख क्यों, शोक क्यों, जरा, व्याधि, मृत्यु क्यों? वास्तव में जिन्होंने गम्भीरता के साथ जगत् की इस दुःखमय सत्ता का अनुभव किया है और अन्तर्मुखी होकर आत्मा के अंदर परम शान्ति और आनन्द का स्वाद पाया है, वे इस जगत् को मिथ्या कहे बिना रह नहीं सकते, पर यदि वे एक और भी महत्तर सत्य का अनुसंधान प्राप्त कर लें, जिसके द्वारा इस जगत् को रूपान्तरित करके आनन्दमय स्वरूप में परिणत किया जा सकता है तो वे जगत् को मिथ्या न कहें। भारत के वैदिक ऋषियों ने उस महत्तर सत्य का संधान पाया था। आधुनिक जड़विज्ञान ने भी दूसरी दिशा से उस सत्य का कुछ आभास पाया है Theory of Evolution या क्रमविकासवाद के अंदर। आधुनिक क्रमविकासवाद कहता है कि जड़ से प्राणी जगत् उत्पन्न हुआ है, प्राणी जगत से मानवजाति आई है—इस प्रकार जगत् क्रमशः एक अपूर्व पूर्णता की ओर अग्रसर हो रहा है। इसी लिए आधुनिक पाश्चात्य दर्शन कहता है कि भगवान् इस जगत् के अंदर अनुस्यूत, immanent हैं; वे क्रमशः अचेतन से सचेतन हो रहे हैं, अपूर्ण से पूर्ण हो रहे हैं, जगत् में जितने अशुभ, दुःख हैं, वे सब क्रमशः दूर होंगे, क्रमशः जगत् और जीवन पूर्णानन्दमय हो उठेंगे, भगवान् का भी आत्मविकास पूर्ण होगा। परंतु भगवान् अपूर्ण थे, पूर्ण हो रहे हैं; अचेतन थे, सचेतन हो रहे हैं; यह बात कोई धर्म स्वीकार नहीं कर सकता। इसी से पाश्चात्य देश में आज भी विज्ञान, दर्शन और धर्म में सामञ्जस्य नहीं स्थापित होता और यही वर्तमान सभ्यता के संकट का मूल कारण है। परंतु गीता द्वारा प्रचारित उदार वेदान्तिक सत्य के अंदर हमें इन सब तत्त्वों के पूर्ण समन्वय का सूत्र मिलता है। भगवान् परब्रह्म पुरुषोत्तम हैं, वे समस्त देश और काल से अतीत हैं, स्वयं अपने आप चिरपूर्ण हैं, सच्चिदानन्द हैं। उन्हें अपने आपको विकासधारा के द्वारा परिपूर्ण करने की आवश्यकता नहीं पड़ती, परंतु उनका अंश जो जीव है, वह विकास के अंदर से होकर चल रहा है। जीवात्मा प्रकृति से क्रमशः देह, प्राण, मन का विकास करता है, जिसमें व्यष्टि के अंदर भगवान् अपने सच्चिदानन्द स्वरूप को विचित्र रूप में प्रकट कर सकें। जब तक यह विकास पूर्णता को प्राप्त नहीं करता तब तक शोक है, दुःख है। अपनी

अनन्त दिव्य संभावना का विकास करने के लिए भगवान् ने स्वयं जीवरूप में स्वेच्छा से इस दुःख कष्ट को वरण किया है। समस्त सुख दुःख, शुभ अशुभ, जन्म मृत्यु से होकर नाना प्रकार के अनुभव संग्रह करके तथा अपनी सत्ता में निहित भागवत अंश का विकास करके मनुष्य क्रमशः दिव्य जीवन की ओर, अमृतत्व की ओर जा रहा है। और इस विकासलीला को धारण किये हुए है भगवान् की परा प्रकृति, ययेदं धार्यते जगत् (गीता)। वह माया या भ्रान्ति (illusion) नहीं है। जगत् में सर्वत्र जो भगवत्सत्ता निहित है, उसे ही प्रकृति क्रमशः प्रकट कर रही है। प्रकृति की यह विकासलीला ही योग है, अतएव एक प्रकार से मनुष्य का समग्र जीवन योग है। परंतु मनुष्य जब ज्ञानपूर्वक अपने अंदर निहित भगवत्सत्ता का पूर्ण विकास करने की साधना करता है, परा प्रकृति या परमा चिद्शक्ति की क्रिया के साथ स्वेच्छा से सहयोग करता है, तब उसे ही विशेष रूप से योगसाधना कहा जाता है और इसके द्वारा मनुष्य अतिशीघ्रता से दिव्य जीवन प्राप्त करके पार्थिवलीला को सार्थक कर सकता है।

संसार की अनित्यता तथा दुःखमयत्व की उपलब्धि करके भारत के दर्शनशास्त्र जिस समय संसारत्याग, कर्मत्याग की शिक्षा का प्रचार करते थे, उसी समय गीता ने समस्त अध्यात्मसत्य के उत्स वेद और उपनिषद् में लौटकर ब्रह्म और जगत्, आध्यात्मिकता और जीवन, नैष्कर्म्य और कर्म, त्याग और भोग के अंदर अपूर्व सामञ्जस्य की भित्ति की स्थापना की थी। परंतु प्रथमतः बौद्धों के शून्यवाद के प्रभाव से तथा उसके बाद शंकराचार्य के द्वारा बड़े तीव्र रूप में मायावाद के विस्तृत प्रचार के फल से भारत गीता की उस दिव्य शिक्षा का वास्तविक मर्म ग्रहण न कर सका। शंकर की शिक्षा के प्रभाव के कारण इस युग में स्वामी विवेकानन्द तक ने कहा है कि "गीता में भगवान् जो निष्काम कर्म करने के लिए कहते हैं, वह कर्म पूजा, जप, ध्यान इत्यादि है—अन्य कोई कर्म नहीं।" अथच कुरुक्षेत्र के युद्ध के समस्त भीषण कर्म में अर्जुन को प्रवृत्त कराने के लिए समग्र गीता कही गई थी! अन्त में सब कर्मों का त्याग करना ही होगा अन्यथा मुक्ति नहीं मिल सकती। जब तक शरीरपात नहीं हो जाता तब तक किसी प्रकार जीवन धारण करने के लिए जितना कर्म किये बिना नहीं चलता, केवल उतना ही करना चाहिए। भिक्षा माँगना, कौपीन धारण करना,—इसी का प्रचार मानव जीवन के चरम और परम आदर्श के रूप में शंकर ने किया है। परंतु समग्र गीता में ऐसे आदर्श की शिक्षा हमें कहीं दिखाई नहीं पड़ती। मोह के वश पहले इस आदर्श की ओर अर्जुन का झुकाव हुआ था, भगवान् ने गीता की शिक्षा के द्वारा अर्जुन के उस मोह को भङ्ग किया था, परंतु भारत का वह मोह आज भी भङ्ग नहीं हुआ।

मनुष्य जो अहंभाव के वशीभूत होकर काम, क्रोध, लोभ के अंदर पाशविक, आसुरिक जीवन यापन कर रहा है, उसी को गीता ने 'अनित्यम्,

असुखम्, लोकम्' कहा है; इस जीवन को छोड़कर ऊपर उठना ही होगा। परंतु इसका अर्थ जीवन-लीला को ही एकदम छोड़कर निर्विशेष, निर्गुण ब्रह्म के साथ एक हो जाना नहीं है। गीता में कहीं भी मुक्ति का ऐसा अर्थ नहीं मिलता। मुक्ति का स्वरूप बतलाते हुए गीता कहती है, मय्येव निवसिष्यसि, मेरे अंदर वास करोगे, मम साधर्म्यमागताः, मेरा साधर्म्य प्राप्त किया आदि। भगवान् के अंदर वास करने का अर्थ भगवच्चैतन्य के अंदर वास करना है। मनुष्य जो अभी अज्ञान, अविद्या के अंदर पड़ा हुआ है, त्रिगुण के अंदर पड़ा हुआ है, उससे मुक्त होकर एक ऊर्ध्वस्थित चैतन्य में प्रतिष्ठित होना है। इसके लिए इस पार्थिव देह, इस पार्थिव जीवन को छोड़कर कहीं अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं होती। यहीं पर, इहैव भगवान् के साथ ज्ञानैक्य में प्रतिष्ठित होना होगा, सर्वभूत के अंदर भगवान् को देखना होगा, प्रेम करना होगा, भजन करना होगा। भगवान् के साथ जिसने ऐसा घना योग, निविड़ ऐक्य प्राप्त किया है, वह चाहे जहाँ रहे, चाहे जो करे, वह सर्वदा भगवान् के अंदर ही वास करता है—

> सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
> सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥
>
> —गी० ६।३१

मनुष्य वर्तमान में जिस दुःखमय जीवन में पड़ा हुआ है, गीता ने उसी को माया कहा है। यह त्रिगुण के द्वन्द्व का जीवन है, अहंभाव, वासना, कामना का जीवन है, एक शब्द में अज्ञान का जीवन है। इससे ऊपर उठकर ज्ञान के अंदर प्रतिष्ठित होना होगा, नीचे की मानवीय प्रकृति का रूपान्तरित करके दिव्य भगवत्प्रकृति में परिणत करना होगा, यही भगवान् का साधर्म्य प्राप्त करना है। इसके बिना सांसारिक दुःख की, मानवजीवन की किसी समस्या का वास्तविक समाधान नहीं हो सकता। इस दुःखमय, अज्ञानमय, माया के जीवन से उद्धार पाने का एकमात्र मार्ग है—एकान्तभाव से भगवान् के शरणागत होना—

> दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
> मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥
>
> —गी० ७।१४

गीता संन्यास की निन्दा नहीं करती, वरन् यह कहती है कि त्याग ही सच्चा संन्यास है। बाह्य जीवन में कर्म, सुख, संपदा का त्याग नहीं, बल्कि भीतरी जीवन में आसक्ति, वासना, अहंकार का त्याग। गीता स्पष्ट शब्दों में इस जगत् का भोग करने का निर्देश करती है—"तस्मात् त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व, जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।" यह क्या दारिद्र्यव्रत की, संसारत्याग की शिक्षा है? इस पृथ्वी का पूर्णरूप से भोग करना होगा, "भोक्ष्यसे महीम्।" हाँ, वह पाशविक या आसुरिक भोग न हो, भगवान् विश्वलीला में जो आनन्द का आस्वादन कर रहे हैं, उन्हीं का साधर्म्य प्राप्त करके, उनका सखा, साथी, प्रिय होकर, उन्हीं के समान जीवन का भोग दिव्य रूप में करना होगा—यही मानव-*जीवन का निगूढ़ लक्ष्य और अर्थ* है तथा इसी तत्त्व की उपलब्धि के अंदर मानवजाति की, मानव-समाज की समस्त समस्याओं का समाधान निहित है।

(इस प्रबन्ध का नाम मायावाद नहीं मायाविजय होना चाहिए-सं०)

यो सहस्सं सहस्सेन संगामे मानुसे जिने
एकं च जेय्यमत्तानं स वे संगामजुत्तमो

धम्मपद ८।४

एक आदमी संग्राम में हजारों आदमियों को जीत ले, दूसरा अपने को जीत ले; तो यह दूसरा आदमी ही सच्चा विजेता है।

मार विजय

लेखक

भदन्त आनन्द कौसल्यायन,

ऋषिपत्तन, सारनाथ

जिस आदमी ने शत्रु को दूर से देखकर ही पराजय स्वीकार कर ली, उसके भाग्य में न लड़ने का आनन्द बदा है, न विजय का। लड़नेवाले के लिए पराजय और विजय दोनों हैं; न लड़नेवाले के लिए पराजय ही पराजय है। इसलिए हर हालत में कायर बनकर पीछे हट जाने, हाथ पर हाथ धरकर बैठे रहने की अपेक्षा लड़ना अच्छा है। लड़ाई किससे? अपने शत्रु से, अपनी दुर्बलताओं से। हमारी अपनी दुर्बलताएँ ही हमारे सबसे बड़े शत्रु हैं; हमारे बाहरी शत्रु भी हैं, लेकिन वह तभी तक हमें परास्त कर सकते हैं, जब तक हम दुर्बल हैं, कमजोर हैं। अतः अपने बाहरी शत्रुओं से लड़ने का भी उपाय है—अपनी दुर्बलताओं से, अपनी पापप्रवृत्तियों से लड़ना। अपने बाहरी शत्रुओं को भी जीतने का उपाय है—अपने अन्तस्तल की गहराई में छिपी हुई पापप्रवृत्तियों को जीतना। इन्हीं पापवृत्तियों के अवतार का नाम मार है। आज से ढाई सहस्र वर्ष पहले भगवान् बुद्ध ने इस मार से जैसी लड़ाई लड़ी और उसपर जैसी विजय प्राप्त की, वह न केवल प्रत्येक भारतीय के, बल्कि प्रत्येक मनुष्य के अभिमान की वस्तु है। उस लड़ाई और उस विजय का वर्णन हमारे प्राचीन पाली साहित्य के एक अंश [1] जातक-कथा में सुरक्षित है। यह वर्णन अत्यन्त ऊँचे दर्जे का है। लेकिन वह उन लोगों के लिए नहीं, जिन्हें अपने पौराणिक साहित्य के रूपकों के भीतर केवल "गप्पें" ही दिखाई देती हैं। हम यहाँ मूल पाली से उस वर्णन का अनुवाद दे रहे हैं।

"उस समय सामने से घास लिये आते हुए श्रोत्रिय नामक घसियारे ने महापुरुष को देख, उन्हें आठ मुट्ठी तृण दिये। बोधिसत्त्व [2] तृण ले, बोधिमण्डप पर चढ़, दक्षिण दिशा में उत्तर की ओर मुँह करके खड़े हुए। उस समय दक्षिण चक्रवाल दबकर, मानों अवीचि

[1] जातककथा (हिंदी प्र० भा०) दयानन्द प्रेस, लाहोर से प्रकाशित हो चुकी है।

[2] बुद्धत्व प्राप्ति से पूर्व बुद्ध की संज्ञा बोधिसत्त्व थी।

(नरक) तक नीचे चला गया। उत्तर चक्रवाल ऊपर उठकर, मानों भवाग्र तक ऊपर चला गया। मालूम होता है, यहाँ संबुद्धत्व नहीं प्राप्त होगा; ऐसा सोच, बोधिसत्त्व प्रदक्षिणा करते हुए, पश्चिम दिशा की ओर जा पूर्व की ओर मुँह करके खड़े हुए। तब पश्चिम चक्रवाल दबकर, मानों अवीचि (नरक) तक नीचे चला गया। वह जहाँ जहाँ जाकर ठहरे, वहाँ वहाँ नेमियों को लंबे करके, नाभी के सहारे लिटाये हुए, शकट के पहिये के सदृश पृथ्वी ऊँची नीची हो उठी। मालूम होता है यहाँ भी बोधि (=ज्ञान) की प्राप्ति नहीं होगी; ऐसा सोच, बोधिसत्त्व प्रदक्षिणा करते उत्तर दिशा की ओर जा दक्षिण की ओर मुँह करके खड़े हुए। तब उत्तर का चक्रवाल दबकर, मानों अवीची (नरक) तक नीचे चला गया। दक्षिण चक्रवाल ऊपर उठकर, मानों भवाग्र (लोक) तक ऊपर उठ गया। मालूम होता है यह भी बुद्धत्वप्राप्ति का स्थान न होगा; ऐसा सोच, बोधिसत्त्व प्रदक्षिणा करते पूर्व दिशा की ओर जा, पश्चिम की ओर मुँह करके खड़े हुए। पूर्व दिशा सभी (पूर्व के) बुद्धों के बैठने का स्थान (रही) है, इसलिए न हिलती है, न काँपती है। "यह सभी बुद्धों से अपरित्यक्त स्थान है, (यही) दुःखपञ्जर के विध्वंसन का स्थान है"—ऐसा जान, (बोधिसत्त्व ने) उन कुशों के छोरों को पकड़कर हिलाया, उसी समय चौदह हाथ का आसन बन गया और वे तृण ऐसे (सुन्दर) रूप से बैठ गये जैसे (सुन्दर) रूप से कोई चतुर चित्रकार वा पुस्तकलेखक (चित्र) भी चित्रित न कर सके। बोधिसत्त्व ने बोधि-वृक्ष की ओर पीठ करके, दृढ़ चित्त हो निश्चय किया:—"चाहे मेरा चमड़ा, नसें, हड्डी ही क्यों न बाकी रह जायें, (और) शरीर, मांस, रक्त सूख जायें, तो भी यथार्थ ज्ञान को प्राप्त किये बिना इस आसन को नहीं छोड़ूँगा।" और सौ बिजुलियों के गिरने से भी न टूटनेवाला अपराजित आसन लगा बैठ गये। उस समय देवपुत्र मार ने सोचा, सिद्धार्थकुमार मेरे अधिकार से बाहर निकलना चाहता है, इसे नहीं जाने दूँगा और अपनी सेना के पास जा, यह बात कह, घोषणा करवा सेना ले निकल पड़ा। मार के आगे की ओर वह सेना बारह योजन, दाईं और बाईं ओर भी बारह बारह योजन तक तथा पीछे की ओर चक्रवाल के अन्त तक फैली हुई थी। आसमान की ओर सौ योजन तक ऊँची थी। जयघोष करने पर (उसका) जयघोष पृथ्वी के फटने के शब्द की भाँति एक हजार योजन से भी सुनाई देता था। तब देवपुत्र मार ने डेढ़ सौ योजन के गिरी मेखल नामक हाथी पर चढ़कर, सहस्रबाहु से नाना प्रकार के आयुधों को ग्रहण किया। मारसेना के बाकी लोगों में से भी, किसी दो ने एक प्रकार के हथियार नहीं लिये थे; सब नाना प्रकार के रंग और नाना प्रकार के मुख लेकर, बोधिसत्त्व को डराते हुए आये। उस समय दस सहस्र चक्रवालों के देवता बोधिसत्त्व की स्तुति करते रहे। देवेन्द्र शक्र अपने विजयोत्तर शङ्ख को फूँकता रहा। वह शङ्ख एक सौ बीस हाथ का था। एक बार फूँक देने से चार महीने तक बजकर निःशब्द होता था। महाकाल नागराज शेष सौ श्लोकों से गुणगान कर रहा था। महाब्रह्मा श्वेत छत्र लिये खड़ा था। (लेकिन) मारसेना के बोधिमण्डप तक पहुँचते पहुँचते (मारसेना) में (से) कोई एक भी खड़ा न रह सका। (सभी) सामने आते ही भाग गये।

महाकाल नागराज पृथ्वी में अन्तर्धान हो, अपने पाँच सौ योजन के नागभवन में जा, दोनों हाथों से मुँह को ढँक लेट रहा। शक्र विजयोत्तर शङ्ख को पीठ पर रखकर चक्रवाल के प्रधान द्वार पर जा खड़ा हुआ।

महाब्रह्मा श्वेत छत्र को चक्रवाल के सिरे पर रख (स्वयं) ब्रह्मलोक को भाग गया। एक भी देवता न ठहर सका। महापुरुष अकेले ही बैठे रहे। मार ने अपने अनुचरों से कहा—"तात"! शुद्धोदनपुत्र सिद्धार्थ के समान दूसरा (कोई) वीर नहीं है। हम सामने से इससे युद्ध नहीं कर सकेंगे (इसलिए) पीछे से चलकर करें। महापुरुष ने भी सब देवताओं के भाग जाने के कारण तीनों दिशाओं को खाली देखा, फिर उत्तर दिशा की ओर से मारसेना को आगे बढ़ते देख "यह इतने लोग मेरे अकेले के विरुद्ध इतने अधिक प्रयत्नशील हैं। आज माता, पिता, भाई, या मेरा दूसरा कोई संबन्धी यहाँ नहीं है। चिरकाल से सेवित मेरी दस पारमितायें ही मेरे परिजन के समान हैं। इसलिए इन पारमिताओं ही को ढाल बनाकर, (इस) पारमिता शस्त्र ही को चलाकर, मुझे यह सेनासमूह विध्वंस करना होगा"; ऐसा सोच वे उन पारमिताओं का स्मरण करते हुए बैठे रहे।

देवपुत्र मार ने सिद्धार्थ को भगाने की इच्छा से आँधी उत्पन्न की। तत्काल पूर्व, पश्चिम से झञ्झा-वात उठकर, अर्धयोजन, योजन, दो योजन और तीन योजन तक के पर्वतशिखरों को उखाड़ती, वृक्षों का उन्मूलन करती चारों ओर ग्राम नगरों को चूर्ण विचूर्ण करती आगे बढ़ी। किंतु महापुरुष के पुण्यतेज से उसकी प्रचण्डता बोधिसत्त्व के पास पहुँचते पहुँचते इतनी कम हो गई कि उनके चीवर का एक कोना भी न हिल सका।

तब पानी में डुबाने की इच्छा से उसने भयंकर महावर्षा शुरू की। उसके दिव्य बल से सौ, फिर हजार तहोंवाले बादल बरसने लगे। वर्षा की धाराओं के जोर से पृथ्वी में छेद पड़ गये। वनवृक्षों की ऊपरी चोटियों तक महासमुद्र आ गया, तो भी, (वह) महासत्त्व के चीवरों को वैसे भी न भिगो सका जैसे ओस की बूँद।

उसके बाद पत्थरों की वर्षा की; बड़े बड़े धुआँधार जलते दहकते पर्वतशिखर आकाशमार्ग से आये, लेकिन बोधिसत्त्व के पास पहुँचकर दिव्य पुष्पों के गोले बन गये।

उसके बाद आयुधवर्षा आरम्भ की। एकधार, द्विधार तलवार; शक्ति, खुरपा आदि प्रज्वलित आयुध आकाशमार्ग से आने लगे; लेकिन बोधिसत्त्व के पास पहुँचकर वे भी दिव्य पुष्प बन गये।

उसके बाद अङ्गारों की वर्षा की। लाल लाल रंग के अङ्गार आकाश से बरसने लगे; लेकिन बोधि-सत्त्व के पैरों पर वे दिव्य फूल बनकर बिखर गये।

उसके बाद राख की वर्षा की; अत्यन्त उष्ण अग्नि-चूर्ण आकाश से बरसने लगा, (लेकिन) बोधिसत्त्व के चरणों पर वह चन्दनचूर्ण बनकर गिर पड़ा। तब रेत की वर्षा की। धूँए वाली, प्रज्वलित, अतिसूक्ष्म वालुका आकाश से बरसने लगी, (लेकिन) बोधिसत्त्व के चरणों पर वह दिव्य पुष्प बन गिर पड़ी।

तब कीचड़ की वर्षा की। धूँएवाला, प्रज्वलित कीचड़ आकाश से बरसने लगा, (लेकिन) बोधिसत्त्व के पैरों पर वह दिव्य लेप बनकर गिरा।

तब देवपुत्र मार ने कुमार को भगाने की इच्छा से अन्धकार कर दिया। वह अन्धकार चारों ओर से घनघोर अन्धकार था; तो भी बोधिसत्त्व के पास पहुँच, सूर्यप्रभा से विनष्ट अँधेरे की भाँति नष्ट हो गया।

इस प्रकार मार जब वायु, वर्षा, पाषाण, हथियार, धधकती राख, बालू, कीचड़, अन्धकार की वर्षा से (भी) बोधिसत्त्व को न भगा सका तो (अपनी परिषद् से बोला) भणे! क्या खड़े हो, इस कुमार को पकड़ो, मारो, भगाओ और इस प्रकार परिषद् को आज्ञा

देकर अपने आप गिरिमेखल हाथी के कंधे पर बैठ (अपने) चक्र को ले, बोधिसत्त्व के पास पहुँचकर बोला—"सिद्धार्थ! इस आसन से उठ, यह (आसन) तेरे लिए नहीं, मेरे लिए है।" महासत्त्व ने उसके वचन को सुनकर कहा—"मार! तू ने न दस पारमिताएँ पूरी की, न उपपारमिताएँ, न परमार्थपारमिताएँ ही; न तूने पाँच महात्याग ही किये, न जातिहित, न लोकहित के काम किये, न ज्ञान का आचरण किया। यह आसन तेरे लिए नहीं, मेरे ही लिए है।"

मार अपने क्रोध के वेग को न रोक सका; और उसने महापुरुष पर चक्र चलाया। महापुरुष ने (अपनी) दस पारमिताओं का स्मरण किया, वे आयुध उनके ऊपर फूलों का चँदवा बनकर ठहर गये। यह वही तेजचक्र था जिसे यदि और दिनों मार क्रुद्ध होकर फेंकता तो एक ठोस पाषाणस्तम्भ को बाँसों के समूह की तरह खण्ड खण्ड कर देता। जब बोधिसत्त्व के लिए वह मालाओं का चँदवा बन गया, तो मारपरिषद् ने उसे आसन से भगाने के लिए पत्थर की बड़ी बड़ी शिलाएँ फेंकी। वे पत्थर की शिलाएँ भी दस पारमिताओं का स्मरण करते महापुरुष के पास आकर, माला की मणियाँ बनकर, पृथ्वी पर गिर पड़ीं।

चक्रवाल के मुखद्वार पर खड़े देवतागण गर्दन पसार पसार, सिर उठा उठाकर देख रहे थे। "भो! सिद्धार्थकुमार का सुन्दर स्वरूप नष्ट हो गया। अब वह क्या करेगा?" तब महापुरुष ने कहा—पारमिताओं को पूरा करनेवाले बोधिसत्त्वों के बुद्धत्वप्राप्ति के दिन (जो) आसन प्राप्त होता है, वह मेरे लिए ही है, और सामने खड़े मार से पूछा, "मार! तेरे दान देने का कौन साक्षी है।" मार ने मारसेना की ओर हाथ पसारकर कहा "यह इतने जने साक्षी हैं।" उस समय—मैं साक्षी हूँ, मैं साक्षी हूँ; कहकर मारपरिषद् ने जो शब्द किया, वह पृथ्वी फटने के शब्द के समान था। तब मार ने महापुरुष से पूछा—सिद्धार्थ! तूने दान दिया है, इसका कौन साक्षी है? महापुरुष ने कहा, तेरे दान देने के साक्षी तो जीवित प्राणी (=सचेतन) हैं, लेकिन इस स्थान पर मेरे दान (दिये) का कोई जीवित साक्षी नहीं। "दूसरे जन्मों में दिये गये दान (की बात) रहने दे; वेस्सन्तरजन्म के (?) समय मेरे द्वारा सात सप्ताह तक दिये गये दान की तू साक्षिणी है वा नहीं?" कहकर पृथ्वी की ओर हाथ लटकाया। पृथ्वी ने "मैं तेरी तब की साक्षिणी हूँ" (इस प्रकार) सौ वाणी से, सहस्र वाणी से, लाख वाणी से मारबल को तितर बितर करते हुए महानाद किया।

तब देवपुत्र मार ने कहा "सिद्धार्थ! तूने महादान दिया, उत्तम दान दिया है।" वेस्सन्तर के दान पर विचार करते करते डेढ़ सौ योजन के शरीरवाले गिरिमेखल हाथी ने (दोनों) घुटने टेक दिए।

मारसेना दिशाओं, विदिशाओं की ओर भाग निकली। एक मार्ग से दो जनों का जाना नहीं हुआ। वे शिर के आभरण तथा पहने वस्त्रों को छोड़, जिधर मुँह समाया, उधर ही भाग निकले।

तब देवगण ने भागती हुई मारसेना को देख सोचा—"मार की पराजय हुई, सिद्धार्थकुमार विजयी हुए।" (आओ हम चलकर) विजयी की पूजा करें। उस समय प्रमुदित हो नागगण ने "यह श्रीमान् बुद्ध की जय हुई और पापी मार पराजित हुआ" कहकर बोधिमण्डप में महर्षि की विजय उद्घोषित की। उस समय प्रसन्न हो गरुड़ ने "यह श्रीमान् बुद्ध की जय हुई और पापी मार पराजित हुआ" कहकर बोधिमण्डप में महर्षि की विजय उद्घोषित की।

उस समय आनन्दित हो ब्रह्माओं ने "यह श्रीमान् बुद्ध की जय हुई और पापी मार पराजित हुआ" कहकर बोधिमण्डप में स्थिरचित्त (बुद्ध) की विजय उद्घोषित की।

भगवान् महावीर का अहिंसा प्रचार

(लेखक—श्री सुमेरुचन्द्र दिवाकर न्यायतीर्थ, शास्त्री, बी० ए०, एल-एल० बी०, आनरेरी संपादक, 'जैनगजट' सिवनी)

'अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्मपरमम्'

—स्वामी समन्तभद्र

जैनधर्म के अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर ऐतिहासिक महापुरुष थे। आधुनिक अनुसंधान के द्वारा यह बात निर्णीत हुई है कि न केवल भगवान् महावीर ही, किंतु अन्य तीर्थंकर भी ऐतिहासिक व्यक्ति थे। इतिहास की विद्यमान पुस्तकों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट रूप से प्रकट होती है कि महावीर भगवान् की महिमा अहिंसाधर्म के प्रचार करने के कारण थी। सैद्धान्तिक दृष्टि से यदि इस विषय पर प्रकाश डाला जाय, तो यही कहना अधिक संगत होगा कि भगवान् ने अपनी दिव्यवाणी के द्वारा विश्व के संपूर्ण तत्वों को प्रकाशित किया था, जिसमें अहिंसा का भी समावेश है। इसे दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि वे अहिंसा के भी प्रचारक थे, न कि अहिंसा के ही। स्वामी समन्तभद्र ने अपने ग्रन्थ युक्त्यनुशासन में कहा है—

दयादमत्यागसमाधिनिष्ठं नयप्रमाणप्रकृताञ्जसार्थम्।
अधृष्यमन्यैरखिलैः प्रवादैः जिन! त्वदीयं मतमद्वितीयम्॥

अर्थात् हे जिनेन्द्र! दया, इन्द्रियदमन, त्याग और समाधि से युक्त; नय और प्रमाण के अविरुद्ध एवं अन्य प्रतिवादियों के द्वारा प्रतिद्वन्द्विता करने के अयोग्य आपका सिद्धान्त अप्रतिम (unparalleled) है।

अतएव भगवान् को विश्वतत्त्व प्रकाशक एवं प्रचारक कहना अधिक उपयुक्त होगा। अहिंसा के प्रचारक की ख्याति लाभ करने का यह कारण था कि उस समय याज्ञिकी हिंसा का प्रबल प्रचार था तथा धर्म के नाम पर असंख्य प्राणियों की बलि से रक्त की नदियाँ बहाई जाती थीं। यह बात तत्कालीन ग्रन्थों से स्पष्ट हो जाती है। भगवान् जैसी लोकातिशायी आत्मा के अवतीर्ण होने से जगत् ने एक अपूर्व प्रकाशमय जीवन का अनुभव किया, जिससे लोग हिंसा के मलिन कर्म को छोड़कर अहिंसा के आराधक बन गये; और जहाँ हिंसा का रौरव दृश्य था, वहाँ प्रशान्ति का महासागर लहराने लगा। जिन ग्रन्थों में हिंसा का प्रचुर परिमाण में समर्थन था, उनमें भी परिमार्जन एवं संशोधन किया जाने लगा और वे भी अहिंसा के मधुर गीत गाने लगे। यही कारण है कि अन्य धर्मग्रन्थों में हिंसा के साथ साथ अहिंसा का भी प्रतिपादन पाया जाता है। इस बात का संकेत (Suggestion) प्राचीन तथा तत्कालीन साहित्य की तुलना से हो सकता है। भगवान् के लोकोत्तर व्यक्तित्व का प्रभाव मनुष्यसमाज के सिवाय पशुओं तक पर पड़ता था, जिससे वे जन्मजात विरोध को भी छोड़ मैत्री धारण कर लेते थे। महाकवि भगवान जिनसेन ने अपने महाकाव्य आदिपुराण में बड़े भव्य एवं सुन्दर शब्दों में इस बात का सजीव चित्रण किया है:—

सिंहस्तनंधयानत्र करिण्यः पाययन्त्यमूः।
सिंहधेनुस्तनं स्वैरं स्पृशन्ति कलभा इमे॥

आ० पु० पर्व २ श्लोक १३

अर्थात् ये हथिनियाँ सिंह के बच्चों को दूध पिला रही हैं। ये हाथियों के बच्चे स्वेच्छानुसार सिंहनी का दूध पी रहे हैं।

भगवान् के चमत्कारी प्रभाव का कारण यह था कि वे वीतराग थे, सर्वज्ञ थे। लोक में उच्च ज्ञान का

आदर किया जाता है; निष्कलङ्क चरित्र ही पूज्य होता है। भगवान् में दोनों विशेषताओं का अपूर्व समन्वय था। जहाँ वक्ता सर्वगुणसंपन्न हो और उनका विश्व-कल्याणकारी उपदेश हो; वहाँ उनका उपदेश सार्वभौम हो जाय, तो क्या आश्चर्य है ? इसी कारण बड़े बड़े राजा महाराजा भी उनके भक्त एवं अनुयायी हो गये थे। मगधेश्वर सम्राट् बिम्बसार श्रेणिक उनका पक्का भक्त हो गया था। श्री विंसेंट स्मिथ ने अपनी History of India के पेज ४६ में लिखा है 'In former times it (Jainism) pervaded almost every province in India and enjoyed the patronage of mighty Kings',

अर्थात् प्राचीन काल में जैनधर्म प्रायः भारत के प्रत्येक प्रान्त में फैला हुआ था और बलशाली राजाओं के द्वारा संरक्षित था। भगवान् के पुण्यविहार एवं धर्मोपदेश से जो प्रदेश पवित्र किये गये थे, उन पर हरिवंशपुराण पेज १८ में इस प्रकार प्रकाश डाला गया है:—

भगवान् ने मध्य के काशी, कौशल, कौशल्य, कुसंध्य, अपूवष्ट, त्रिगर्त, पाञ्चाल, भद्रकार, पाटच्चार, मौक, मत्स्य, कनीय, सूरसेन एवं वृकार्थक; समुद्रतट के कलिङ्ग कुरुजाङ्गल, कैकेय, आत्रेय, काम्भोज, वाल्हीक, यवनश्रुति, सिन्धु, गान्धार, सूर, सोवीर, भीरु, दशेरुक, वाडवान्, भारद्वाज, काथतोय और उत्तर दिशा के तार्ण, कार्ण, प्रच्छाल आदि देशों में विहार कर उन्हें धर्म की ओर उन्मुख किया था।

भगवान् महावीर की अहिंसा वैयक्तिक एवं सामाजिक शान्ति की उत्पादिका थी। उसमें 'Live and let live' 'जीवित रहो और जीवित रहने दो' का ललित एवं गम्भीर तत्त्व भरा हुआ था। भगवान् के दिव्य उपदेश का अनुकरण करने के कारण लोग भारतवर्ष में एवं अन्यत्र भी समृद्धि एवं शान्तिमय सुवर्ण जीवन का अनुभव कर रहे थे। आज जो संसार अशान्ति का क्रीड़ास्थल बन रहा है, उसका कारण उनके पुण्य उपदेश का विस्मरण करना ही है।

बड़े परिताप की बात यह है कि किन्हीं गण्यमान पुरुषों की यह धारणा हो गई है कि भगवान् की अहिंसा की शिक्षा के कारण भारतवर्ष की दीन दशा हुई है। आरोप का कारण अहिंसा के यथार्थ स्वरूप की अनभिज्ञता है। भगवान् के द्वारा प्रतिपादित अहिंसा में मानवस्वभाव अथवा प्राणियों की आवश्यकताओं और परिस्थितिजन्य दुर्बलताओं की ओर पूर्ण लक्ष्य रखा गया है। जहाँ गृहविरत साधु के लिए सर्वाङ्गीण हिंसा का त्याग अनिवार्य है, वहाँ आध्यात्मिक जीवन बिताने में असमर्थ गृहस्थों के लिए परिस्थितिवश युद्धादि करने का वर्णन है। जैनधर्मानुयायी चक्रवर्ती नारायण आदि पुराणपुरुषों ने तथा चन्द्रगुप्त, अमोघवर्ष, खारबेल आदि सम्राटों ने बड़े बड़े संग्राम किये हैं। फिर भी वे जैनधर्म एवं आचार्यों के द्वारा कीर्तित हुए हैं। आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य गङ्गनरेश के मुख्य सचिव महाराज चामुण्डराय ने अपने जीवन में अनेक बार युद्ध किया था और संग्रामस्थल में ही एक धर्मग्रन्थ की रचना की थी। जैनधर्म के उज्वल आराधकों में उनका नाम लिया जाता है।

सोलहवें तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथ ने अपने गृहस्थ जीवन में चक्रवर्ती के रूप में दिग्विजय की थी। स्वामी समन्तभद्र ने बृहत्स्वयंभूस्तोत्र में क्या ही मार्मिक वर्णन किया है:—

"चक्रेण यः शत्रुभयङ्करेण जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम्।
समाधिचक्रेण पुनर्जिगाय महोदयो दुर्जयमोहचक्रम्॥"

अर्थात् जिन शान्तिनाथ भगवान् ने सम्राट् के रूप में शत्रुओं के लिए भीषण चक्र अस्त्र द्वारा संपूर्ण

राजसमूह को जीता था, उन्हीं महान् उदयशाली ने समाधि ध्यानरूपी चक्र के द्वारा बड़ी कठिनता से जीतने योग्य मोह के बल को पराजित किया।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि महावीर स्वामी की अहिंसा का आराधक निश्चय से महावीर बन सकता है। अहिंसा की आलोचना करनेवाले व्यक्ति यदि थोड़ा सा श्रम जैनवाङ्मयपरिशीलन में करें, तो उन्हें जैनी अहिंसा के वैज्ञानिक (Scientific) वर्णन के परिज्ञान के साथ अपूर्व लाभ एवं आनन्द प्राप्त होगा और वे अहिंसा के प्रबल समर्थक हो जायँगे। प्रकरण एवं अवकाशवश यह उचित है कि अहिंसा का सर्वाङ्गीण विवेचन न करके संक्षेप में उस पर प्रकाश डाला जाय।

अहिंसा का यथार्थ स्वरूप रागद्वेष, मान, माया, लोभ, भीरुता, शोक, हास्य, घृणा, कामवासना आदि कुत्सित एवं विकृत भावों का त्याग करना है। प्राणियों के प्राणों का वियोग करना मात्र हिंसा समझना अयुक्त है। तात्त्विक बात तो यह है कि यदि रागादिक दुर्भाव हैं तो अन्य का प्राणघात न होते हुए भी हिंसा है। यदि रागादि का अभाव है तो प्राणघात होते हुए भी अहिंसा है। महर्षि कुन्दकुन्द ने कहा है कि [1]ईर्यासमितिपूर्वक सावधानी के साथ गमन करनेवाले साधु के चरणों के नीचे दबकर कदाचित् कोई जन्तु मर जाय, तो भी वह रञ्चमात्र हिंसा का दोषी नहीं है। इसके विपरीत यदि कोई अयताचारपूर्वक काम करे तो प्राणिघात न होने पर भी हिंसा का दोष लगता है; कारण इस वृत्ति के द्वारा वह आत्मिक विशुद्ध परणति को मलिन करता है। अहिंसा तथा हिंसा का अविना-भाव विशुद्ध एवं सङ्क्लिष्ट भावों के साथ है[2]। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जब भावों के ऊपर ही हिंसा निर्भर है, तब फिर बाह्य पदार्थों के त्याग का जैनधर्म में क्यों वर्णन किया जाता है?

श्री अमृतचन्द्र सूरि ने पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में इसका अच्छा समाधान किया है।

सूक्ष्मापि न हिंसा खलु परवस्तुनिबन्धना भवति पुंसः।
हिंसायतननिवृत्तिः परिणामविशुद्धये तदपि कार्या॥

अर्थ—पर पदार्थ के निमित्त से मनुष्य को हिंसा का रञ्चमात्र भी दोष नहीं लगता हैं। फिर भी हिंसा के आयतनों—स्थानों (साधनों) की निवृत्ति परिणामों की निर्मलता के लिए करनी चाहिए।

इसी कारण अहिंसा के आराधक के लिए मद्य, मांस, मधु, रात्रिभोजन, अभक्ष्यभक्षण आदि का त्याग आवश्यक बताया गया है। उस अहिंसा के पालक की

---

(१) जैन मतानुसार साढ़े तीन हाथ तक आगे देखकर चलने का नियम ईर्यासमिति कहलाता है।

(२) अर्थाद्रागादयो हिंसा चास्त्यधर्मो व्रतच्युतिः।
अहिंसा तत्परित्यागो व्रतं धर्मोऽथवा किल॥७५५॥
उत्तरार्ध पञ्चाध्यायी।

अर्थ—यथार्थ में रागादिक हिंसा है, व्रत से गिरना अधर्म है। रागादिक का त्याग करना अहिंसा है, व्रत है, अथवा धर्म है।

आरम्भेपि सदा हिंसा सुधीः साङ्कल्पिकीं त्यजेत्।
घ्नतोपि कर्षकादुच्चैः पापोऽघ्नन्नपि धीवरः॥
सागारधर्मामृत

अर्थात् विवेकी को आरम्भ में भी सदा संकल्पी इरादतन (Intentional) हिंसा का त्याग करना चाहिए। प्राणघात न करता हुआ भी (हिंसा की भावना के कारण) धीवर अधिक पापी है; और प्राणघात करते हुए भी (कृषि कर्म में प्राणघात का उद्देश्य नहीं रहने के कारण) किसान पापी नहीं हैं।

शक्ति की दृष्टि से, अनेक भेद हो जाते हैं। जघन्य व्यक्ति की दृष्टि से केवल काकमांस का त्याग करने-वाला खदिरसार नामक भील सरीखा भी अहिंसा की श्रेणी में समाविष्ट किया जा सकता है, जिसने जन्मान्तर में राजा श्रेणिक का पर्याय प्राप्त किया। उच्चता की दृष्टि से यह महान् आत्मा अहिंसक है।

जो आत्मस्वरूप में इतना निमग्न है कि 'ध्यान-ध्याता ध्येय को विकल्प वच भेद न जहाँ'; जो शुद्ध चैतन्य रूप के चिन्तन में इतना तल्लीन है कि 'जिन सुथिर मुद्रा देख मृगगण उपल खाज खुजावते।' इसके मध्यवर्ती अनेक भेद साधक की योग्यता के अनुसार हो जाते हैं। मनुष्य का जीवन अन्य प्राणियों की अपेक्षा विशेष समर्थ और योग्यतापूर्ण समझा जाता है; अतएव उससे आशा की जाती है कि वह यथासंभव और यथाशक्ति 'मनसा, वाचा, कर्मणा' अपनी आत्मा को पवित्र करने में पूर्ण यत्न करेगा। इस कारण शिकार खेलना आदि व्यर्थ में दूसरों के प्राणों को दुखानेवाले दुष्कर्म कभी नहीं करेगा। यद्यपि न्याय के परित्राण के लिए युद्धभूमि में वह अस्त्रसंचालन करने से कभी मुख नहीं मोड़ेगा। योगीश्वर शुभचन्द्राचार्य ने ज्ञानार्णव में कहा है:—

"दूयते यस्तृणेनापि स्वशरीरे कदर्थिते।
स निर्दयः परस्याङ्गे कथं शस्त्रं निपातयेत्॥"

श्लोक ४८, पेज ११८

अर्थात् जो अपने शरीर में फाँस के चुभ जाने पर पीड़ित होता है, भला वह निर्दयी होकर किस प्रकार अन्य के शरीर के ऊपर हथियार चलायगा।

इस निबन्ध को पूर्ण करने के पूर्व एक प्रश्न पर विचारना आवश्यक है कि जब जैनधर्म में चींटी की रक्षा का आदेश है, तब वहाँ मनुष्यों तक के प्राणघात करने का वर्णन पाया जाना कहाँ तक संगत है।

इस प्रश्न का समाधान इस प्रकार से किया जा सकता है कि महावीर भगवान् के भक्त को संकल्पपूर्वक किसी भी जीव का घात नहीं करना चाहिए, किंतु अनिवार्य स्थिति विशेष उत्पन्न होने पर अन्य उचित उपायान्तर के अभाव में न्याय, आत्मगौरव अथवा वीतरागधर्म आदि के रक्षार्थ हथियार चलाना गृहस्थ की दृष्टि से क्षम्य है। ऐसी दशा में उसका भाव प्राण लेने का नहीं है, किंतु न्याय तथा धर्म की रक्षा का है। जैसे सद्भावना रखते हुए भी यदि डाक्टर या वैद्य के द्वारा आपरेशन किये जाने पर यदि रोगी की मृत्यु हो जाय तो भी चिकित्सक दोष का पात्र नहीं है; क्योंकि उसका भाव (motive) प्राणान्त करने का नहीं था। उसकी दृष्टि उसको बचाने की थी। इसी प्रकार अहिंसा का आराधक प्राण लेने की दृष्टि से हथियार नहीं चलायगा। यद्यपि न्यायोचित अधिकार की रक्षा में अनेकों का मरण भी हो जाय, किंतु उसकी दृष्टि मारने की नहीं है। बस, हिंसक और महावीर भगवान् के भक्त कर्तव्यपरायण अहिंसक गृहस्थ की अन्तरङ्गवृत्ति में इतना ही अन्तर है, यद्यपि बाह्य चेष्टाओं में समानता है। अतः कहना होगा कि भगवान् ने वह मार्ग बताया जिसमें हिंसा के भयंकर दोष से बचते हुए भी सफलतापूर्वक लौकिक जीवनयात्रा चलाई जा सकती है।

श्री विंसेंट स्मिथ ने अपनी 'History of India' हिस्ट्री आफ इंडिया के पेज ५३ में यह सुन्दर अवतरण उद्धृत किया है:—

A Jain will do nothing to hurt the feelings of an other person, man, woman or child; nor will be violate the principles of Jainism. Jain ethics are meant for men of all positions—for Kings, warriors, traders, artisans, agriculturists

and indeed for men and women in every walk of life—*'Do your duty. Do it as humanely as you can'* This, in brief, is the primary principle of Jainism.

अर्थात् जैनी दूसरे व्यक्ति के भावों को, चाहे वह पुरुष, स्त्री अथवा बालक हो, हानि पहुँचाने के लिए कुछ भी कार्य न करेगा और न वह जैनधर्म के सिद्धान्तों का उल्लङ्घन करेगा। जैन नीतिविज्ञान सब अवस्थावाले मनुष्यों के—चाहे वे नरेश, योद्धा, व्यापारी, शिल्पकार एवं कृषक हों—उपयोग के लिए है। वह स्त्री तथा पुरुषों की प्रत्येक अवस्था के लिए उपयोगी है।—"अपना कर्तव्य पालन करो और जितनी अधिक दयालुता से बन सके उसे करो।" संक्षेप में जैनधर्म का यह प्रधान सिद्धान्त है।

अहिंसा का पालन प्राणी को परमात्मपद (God-hood) की ओर ले जाता है, जब कि हिंसात्मक वृत्ति पाशविकता की ओर। अतएव अपनी एवं संसार की कल्याणकामना द्वारा सच्चे हृदय से अहिंसा का पालन करना चाहिए और अहिंसा का आभास रखनेवाले पाखण्ड या दम्भ से बचना चाहिए। यही महावीर भगवान् का उपदेश है और इसी का उन्होंने प्रचार किया था।

एक कवि की निम्नलिखित उक्ति हृदयंगम करने योग्य है, जो सदा अहिंसा के उज्वल मार्ग में चलने के लिए प्रेरणा करती रहेगी:—

Whoever places in man's path a snare
Himself will, in the sequel stumble there
Joy's fruits upon the branch of Kindness grows,
Who sows the bramble will not pluck the rose.

अर्थात् जो दूसरे के मार्ग में जाल बिछाता है, वह स्वयं अन्त में उसमें गिरेगा। **करुणा की शाखा में आनन्द के फल लगते हैं।** जो काँटा बोता है, वह गुलाब को नहीं पावेगा।

इस लेख के प्रमाण में Vincent Smith, Major General Furlong, Dr. T. K. Laddu, Prof. Jacobi, Bupler आदि के निबन्ध तथा Encyclopaedia of Religion and Ethics आदि अनेक पुस्तकें देखनी चाहिएँ।

विजयी के दो रूप

(दो मोहन छवि)

वीर कृष्ण की पूजा

१. देखो आँगन में यहाँ स्वयं कृष्ण, दुर्योधन, शिशुपाल आदि के 'चरण' पखार रहे हैं।

२. दो क्षण बाद वही सांवला 'कमकर' (=कर्मकर) सिंहासन में बिठाया जाता है। **पितामह भीष्म** और युधिष्ठिर उसके पैर धो रहे हैं।

सब कह रहे हैं—**वन्दे महापुरुष ! ते चरणारविन्दम्।**

जिसका लक्ष्य है कृष्ण, जिसका लक्ष्य है विजय, वह विजयी कृष्ण के समान कर्म करता है, कर्मकर बनता है, इस **जीवनयज्ञ में सबके चरण धोने को तैयार रहता है। उसे अग्रपूजा तो मिला ही करती है। क्यों?—क्योंकि उसके हृदय में विजय रहती है।**

कामविजय

(ले०—श्री राजेन्द्रकुमार)

यह रामायण की एक कथा है। जाने कितनी बार इस कथा को दुहराया होगा। आज इसके दोहराने में एक नया ही रस आ रहा है।

शिव और सती की कथा यह कोई नई कहानी नहीं है। मनुष्य के जीवन में रोज रोज घटनेवाली घटना है। दक्ष के यज्ञ में सती ने अपना शरीर छोड़ दिया। शिव उस मृत शरीर को ही अपने कंधे पर लादे लादे पृथ्वीपरिक्रमा कर आये। इस परिक्रमा में सती के समस्त अङ्ग अनेक स्थानों में गिर गये। धीरे धीरे सती की याद भूलने लगी। अब वे एकाकी थे। घर पहुँचे, वहाँ पहुँचते ही वे अपने आपको भूल गये, समाधिमग्न हो गये, ध्यान में बैठ गये।

काम से विराग, इच्छाओं का तिरोभाव। दुष्ट बढ़ने लगे। तारकासुर पैदा हुआ और लगा देवताओं को सताने। संहार के देवता संहार करते कैसे? उन्होंने तो काम से विराग ले लिया था, काम की ओर से आँखें मूँद ली थीं, निष्काम हो गये थे, अपने आप में मग्न थे, समाधिस्थ थे, दीन दुनियाँ को, अपने धर्म को भूले हुए। तारकासुर को फिर किसका डर। देवलोक में हाहाकार मच गया।

भयभीत देवता इकट्ठे हुए और बाबा ब्रह्मा के पास अपना दुखड़ा सुनाने चले। बिचारे ब्रह्मा भी क्या करते। संहार के देवता तो निष्काम हुए बैठे थे। उन्हें कैसे सकाम बनाया जाय, दीन दुनियाँ की ओर मोड़ा जाय? कुछ क्षण तक यही सोचते रहे। आखिर थे तो अनुभवी, सोच साचकर उन्होंने काम की सहायता लेना जरूरी समझा। कामदेव उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने चला।

× × ×

वह अपनी पूरी शक्ति से जा रहा था। चारों ओर प्रणयलीला मची हुई थी। विवेक देवता चौकड़ी भर रहे थे। शम, यम, नियम का कोसों पता न था। धीरज, धर्म, ज्ञान, विज्ञान सभी कूँच का डंका बजा चुके थे। यह उसका विकराल रूप था। जहाँ होकर निकला, सबको अपना सा बनाता गया, सब पर अपना प्रभाव छोड़ता गया।

शिव के पास पहुँचने में उसे ज्यादा देर न लगी। बस दो मिनट। इन दो मिनटों में ही उसने तूफान मचा दिया। परंतु वहाँ पहुँचकर भी वह कुछ न कर सका। क्योंकि शिव इस ओर देख ही नहीं रहे थे। वे तो उधर देख रहे थे, जिधर कुछ देखने जैसी चीज ही न थी। कहना चाहिए, वे आत्मस्थ थे।

कामदेव ने आखिर एक स्थान ऐसा पा ही लिया, जहाँ से वह शिव पर अपना प्रभाव डाल सकता था। उस स्थान का नाम था हृदय। जहाँ काम ने हृदय पर अपना काबू किया कि बस! शिवजी भूल गये अपना ध्यान, और देखने लगे उसकी ओर।

× × ×

बुद्धि स्थिर थी, चित्त शान्त था, उस समय वे स्थितप्रज्ञ थे। काम हृदय पर अधिकार करके क्या कर सकता था। शिव ने जैसे ही बाह्य जगत् से संबन्ध जोड़ा, काम जल गया, उसका भयंकर रूप नष्ट हो गया। लेकिन काम तो हृदय पर अधिकार जमा चुका था; अधिकार क्या जमा चुका था, हृदय तो काम का घर ही है। वह कभी नष्ट होता है? हाँ, वह अपने नाशकारी रूप को छोड़कर सौम्य रूप धारण कर लेता है, उन्नतिकारी बन जाता है। शिव के हृदय में जाकर उसने भी सौम्य रूप

धारण कर लिया। वह भी मङ्गलकारी बन गया। काम का यह मङ्गलमय रूप ही तो भगवान् की विभूति है। यही धर्म का अविरोधी काम है।

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि
—गी० ७।११

भयंकर काम ने धर्माविरोधी काम को जगाया। यही काम ज्ञाननेत्र द्वारा बाहर आया। इसने उसके भयंकर रूप को शान्त कर दिया।

× × ×

तारकासुर के कारण दुःखी देवगण शिव के पास पहुँचे। उस समय शिव स्थितप्रज्ञ थे। अन्तर जगत् से बाह्य जगत् में आ चुके थे। अब उन्हें अपने सौम्य काम के अनुसार अपना धर्म चलाना था।

शिव थे तो संहार की मूर्ति। असुरों का संहार, भयंकरों का संहार; यही तो उनका काम था, यही तो उनका धर्म था। इसी संहार से देवताओं का त्राण हो सकता था, उनका दुःख दूर हो सकता था।

× × ×

उमा उस समय तप कर रही थीं। शिव उस समय संहार की योजना बना रहे थे। उमा को शिव की जरूरत थी और शिव को उमा की। एक काल की मूर्ति बने हुए थे और दूसरी सौम्यता की मूर्ति थी ही। देवपरित्राण और असुरसंहार के लिए तपःपूत दो स्थितप्रज्ञों का मिलन हुआ। काम और क्रोध ने जामा बदला। हृदय में दया की मूर्ति उमा ने आसन जमाया। शिव का शक्ति के साथ संयोग हुआ।

× × ×

स्थितप्रज्ञ के काम का फल कितना सुन्दर हुआ! कार्तिकेय जैसे वीर पुत्र का जन्म हुआ। असुर मारे जा रहे थे। देवता प्रसन्न हो रहे थे। लोग कह रहे थे—शिव ने काम पर विजय पाई, काम को परास्त किया।

ऐसी ही कामविजय प्रत्येक मनुष्य को करनी चाहिए; तभी जीवन में विजय मिलती है, सुख मिलता है, श्री मिलती है।

विजयी संस्कृति

(एक संत के उपदेश)

कल उपदेश करते समय उन्होंने कहा कि यों तो भारत में एक ही संस्कृति की धारा बह रही है, पर उसमें अनेक छोटी छोटी धाराएँ (नदियाँ) भी बीच बीच में आकर मिली हैं। हम यहाँ केवल तीन बड़ी और जीवित संस्कृतियों का नामोद्देश करेंगे। १. वैदिक संस्कृति, २. वैष्णव संस्कृति, ३. श्रमण संस्कृति, (१ बौद्ध और २ जैन)। वैदिक और वैष्णव दोनों का एक नाम ब्राह्मण संस्कृति आज विद्वानों में चल गया है। पर वैदिकधर्म का प्रतीक था वृषभ, (= द्यौ, वर्षा करनेवाला) और वैष्णवों का प्रतीक थी गौ, (माता = पृथिवी)। श्रमण संस्कृति का प्रतिनिधि है हरिण (= अन्तरिक्ष, शून्य आकाश), वैदिकधर्म शक्तिप्रधान, कर्तृत्वप्रधान है; उसका अध्यात्म भी कर्म के तेज से चमक रहा है। वह उग्र (उठा हुआ), ऊर्जस्वल धर्म है। वैष्णवधर्म भक्तिप्रधान, प्रेम और सेवाप्रधान है, माता के समान पुत्र के लिए सब कुछ करनेवाला धर्म है। (स्नेह और सौम्यता) श्रमणधर्म ज्ञानप्रधान उदासीन और सौम्य है। उनके यहाँ हरिणों की सौम्यता ही आदर्श मानी जाती है और व्याध से मारा जाना अधिक अच्छा समझा जाता है, पर मारना कभी नहीं। पर वैष्णवों की तो सीधी सौम्य गाय भी अपने बछड़े के लिए यथाशक्ति दूसरे को सींग से मारती है।

इन तीनों उदाहरणों पर प्रत्येक को विचार करना चाहिए।

'वीर माता का उपदेश'

माताएँ शक्ति का रूप हैं। युद्ध के लिए, जीवनसंग्राम के लिए वे ही पुरुषों को तैयार करती हैं, उनमें शक्ति भरती हैं। पुरा काल में ऐसी ही एक माता हुई थीं। उनका नाम था महारानी विदुला। उन्होंने अपने भीरु पुत्र को उत्साहित किया, उसकी कायरता को नष्ट किया, जिसके कारण वह अपने गये विभव को पा सका। यह एक शिक्षाप्रद कथा है। स्त्रियाँ जो अपने पुत्र को वीर बनाना चाहती हैं गर्भावस्था में इसे सुनती हैं। अपने पाठकों के लिए हम इस कथा को महाभारत से यहाँ दे रहे हैं।

अच्छे कुल में उत्पन्न, बुद्धिमती विदुला नाम की एक राजकुमारी थी। वह क्षत्रियधर्म में निरत, आत्माभिमानिनी, उग्र स्वभाववाली और राजसमाज में बहुत जानकार कहलाती थी। विदुला का पुत्र युद्ध में सिन्धुराज से हारकर घर में पड़ा हुआ था। दीनभाव से अपने पुत्र को पड़े देखकर कठिन स्वभाववाली विदुला इस प्रकार उसको फटकारने लगी—अरे शत्रुओं का आनन्द बढ़ानेवाले, तू मेरा पुत्र नहीं है। तू मेरे गर्भ और अपने पिता के वीर्य से उत्पन्न नहीं हुआ। तू कुलाङ्गार कहाँ से इस कुल में आ गया है? तुझ में तनिक भी पौरुष नहीं। तेरा आकार, बुद्धि और प्रकृति नपुंसकों की सी है। मर्दों में गिनती करना भी अनुचित है। हाय! तू बिल्कुल निराश हो गया है। तेरी भुजाओं में बल नहीं है। अरे दुर्बुद्धि, तू अपना भला चाहता है तो पुरुषों के योग्य युद्ध का भार ग्रहण कर, थोड़े में संतुष्ट मत हो। अपने को भूल मत जा। डर छोड़कर उत्साह और तत्परता के साथ शङ्का से व्याकुल चित्त को दृढ़ कर। अरे कायर, हारकर स्वाभिमान गवाँकर बन्धुओं को शोकाकुल और शत्रुओं को आनन्दित करता हुआ इस तरह पड़ा न रह। शीघ्र युद्ध के लिए कमर कसकर उठ खड़ा हो। सच है, छोटी नदियाँ थोड़े जल में ही भर जाती हैं, चूहे की अञ्जलि थोड़े ही पदार्थ में भर जाती है और कायर लोग थोड़े ही लाभ में तृप्त और संतुष्ट हो जाते हैं।

अरे कुलघातक! साँप के मुँह में हाथ डालकर उसके दाँत उखाड़ने में जल्दी प्राण भले ही दे दे, पर कायरपन के साथ मौत के मुँह का कौर न बन। जीवन की आशा छोड़कर पराक्रम दिखा। बाज पक्षी की तरह बेखटके इधर उधर घूमकर, लड़ झगड़कर या चुपचाप, शत्रुओं पर वार करने का अवसर देखता रह। वज्रपात से मरे हुए पुरुष की तरह तू क्यों पड़ा हुआ है? जल्द उठ। शत्रु से हारकर यों सोना ठीक नहीं है। तू इस तरह दीनभाव से अस्त न हो, बल्कि अपने पौरुष से सर्वत्र प्रसिद्ध होने की चेष्टा कर। संधि मध्यम उपाय है, भेद अधम और दान नीच उपाय है। इन नीतियों का सहारा लेने की इच्छा मत कर। दण्ड ही उत्तम उपाय है। उसी दण्डनीति के प्रयोग की चेष्टा कर। तेंदू की लकड़ी की तरह

घड़ी भर ही चाहे प्रज्वलित रह, परंतु जीवन की आशा से ज्वालाहीन भूसी की आग की तरह विषाद के धूरे से अपने को छिपा मत। बहुत समय तक धुआँ देते रहने की अपेक्षा घड़ी भर का प्रज्वलित रहना बहुत अच्छा है। किसी राजा के घर में गधे की तरह सहनेवाला, तेज से हीन, कोमल प्रकृति का पुत्र कभी न उत्पन्न हो। रणनिपुण वीर पुरुष शत्रु से युद्ध ठानकर, पौरुष दिखाकर, धर्म के ऋण से उऋण हो जाते हैं। वे आत्मग्लानि के भागी न होकर प्रसन्न रहते हैं। सफलता मिले चाहे न मिले, उसके लिए समझदार आदमी शोक नहीं करते। वे लगातार बल से सिद्ध होनेवाले काम करते रहते हैं; उन्हें धन की तृष्णा नहीं होती। इसलिए हे पुत्र, या तो अपनी भुजाओं का बल दिखा, नहीं तो मर जा। धर्म से विमुख होकर क्यों जीना चाहता है? अरे नपुंसक! तेरे इष्टापूर्त कर्म, कीर्ति और भोगमूल राज्य का ऐश्वर्य, सब कुछ नष्ट हो चुका है। फिर तू क्यों वृथा जी रहा है? वीर पुरुष, गिरते समय भी, शत्रु को लेकर गिरते हैं। अपनी जड़ कट जाने पर भी पुरुष को कभी खेद न करना चाहिए। इसलिए साहसी और बली घोड़ों की तरह उद्योग और विक्रम दिखा, भार वहन कर और पौरुषसत्त्व, स्वाभिमान आदि गुणों को ग्रहण कर। तेरे कारण कुल डूब रहा है, उसका उद्धार कर।

जनसमाज में जिसके अद्भुत महत् चरित्र की चर्चा नहीं होती, उसकी गिनती न तो स्त्रियों में है और न मर्दों में; उसका जन्म मनुष्यों की गिनती बढ़ाने का कारणमात्र है। दान, सत्य, तप, विद्या और अर्थ प्राप्त करने के कामों में जिसका यश नहीं प्रसिद्ध हुआ, वह माता के मलमूत्र के समान है। जो पुरुष वेदशास्त्र के पढ़ने तथा तप, संपत्ति और पराक्रम आदि बातों में औरों से बढ़ सकता है, वही असली पुरुष है। हे पुत्र, मूर्ख और कायर की तरह अयश बढ़ानेवाली भिक्षावृत्ति का सहारा लेना तेरा कर्तव्य नहीं है। लोगों का अनादरपात्र, भोजन वस्त्र से मोहताज, नीचहृदय, हीनवीर्य और शत्रुओं के आनन्द बढ़ानेवाले पुरुष को पाकर उसके बन्धु कभी सुखी नहीं होते।

जान पड़ता है, हमें स्थान से भ्रष्ट, राज्य से निर्वासित, सब इच्छाओं से वञ्चित और दीन होकर बिना जीविका के मरना पड़ेगा। हे पुत्र, तू कुलाङ्गार और अपने कुल के अयोग्य काम करनेवाला है। तुझे अपने गर्भ में रखने के कारण मैं पुत्ररूपी कलियुग को पैदा करनेवाली समझी जाऊँगी। मेरी तरह कोई भी स्त्री ऐसे क्रोधशून्य, निरुत्साही, वीर्यरहित पुत्र को न पैदा करे! बेटा, अब पड़े पड़े धुआँने (शोक से मलिन होने) का समय नहीं है; प्रज्वलित होकर, शत्रुओं का विनाश कर। शत्रुओं के सिर पर क्षण भर प्रज्वलित होकर बुझ जाना भी अच्छा है। [शत्रुओं के प्रति] क्रोधी और क्षमाहीन पुरुष ही सच्चा मर्द है। जिसमें क्षमा तो है, किंतु क्रोध नहीं है उसकी गिनती मर्दों में क्या, स्त्रियों में भी न करनी चाहिए। संतोष, दया, शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध की तैयारी न करना और डर, ये चार बातें लक्ष्मी को नष्ट करती हैं। जो मनुष्य निरीह अर्थात् आलसी है, उसको कभी महत्त्व नहीं मिलता। इस कारण तू इस समय पराभव के दोष से आत्मा को बचाकर फिर स्वार्थसाधन में लग जा। हृदय को लोहे की तरह कड़ा करके गई संपत्ति लेने की चेष्टा कर। प्रजापालन आदि कठिन कामों का भार ढोने में समर्थ होने के

कारण या शत्रु का मुकाबला करने से ही मनुष्य का नाम पुरुष पड़ा है। जो मर्द औरतों के ढंग से जीवन बिताता है वह निरर्थक पुरुष है। शूर, पराक्रमी, सिंह सा बली पुरुष अगर मर जाता है तो भी उसके अधिकार में रहनेवाली प्रजा आनन्द से रहती है। जो क्षत्रिय राजा अपने भोग, सुख और प्रिय परिवार को छोड़कर राजलक्ष्मी की खोज में रहता है, वह झटपट अपने साथियों और बन्धु बान्धवों को आनन्दित करता है।

तब विदुला के पुत्र संजय ने कहा—माता! मैं जो तुम्हारी आँखों के आगे से चला जाऊँगा या मर जाऊँगा, तो आभूषण, सुखभोग, सारी पृथिवी या जीवन लेकर क्या करोगी?

विदुला ने कहा—पुत्र, मेरी इच्छा यही है कि तेरे शत्रु निरादर पानेवाले निन्दित पुरुषों के लोकों में जायँ और तेरे मित्र आदर पानेवाले लोगों के लोकों को प्राप्त करें। तू बिना नौकर चाकरों के, पराये अन्न से पेट पालनेवाले, दीन, हीन पुरुषों की वृत्ति को न ग्रहण कर। जैसे सब प्राणी मेघों से और देवता इन्द्र से आशा लगाते और जीविका पाते हैं, वैसे ही ब्राह्मण और मित्र तेरे आश्रय में जीविका पावें। पके हुए फूलों से लदे हुए पेड़ के समान जिस मनुष्य का आश्रय लेकर लोग अपनी जीविका चलाते हैं, उसी का जीवन सार्थक है। जो पुरुष अपने बाहुबल से अपनी जीविका चलाता है, वह इस लोक में भारी यश और परलोक में अच्छी गति पाता है।

बेटा, जो ऐसी दुर्दशा के समय तू पौरुष को छोड़ देगा तो तुझे जल्दी ओछे लोगों के नीच मार्ग में पैर रखना पड़ेगा। जो क्षत्रिय वृथा जीवन की आशा में फँसकर यथाशक्ति पराक्रम के साथ तेज नहीं दिखाता, उसे पण्डित लोग चोर कहते हैं। हाय! जैसे मृत्यु के मुख में पड़े हुए पुरुष को दवा नहीं रुचती, वैसे ही सच्चे स्वार्थ को सुझानेवाले गुणपूर्ण, सुभाषित (अच्छे वचन) तुझे नहीं रुचते। सिन्धुराज के पास सहायक और सेना है सही, किंतु कोई उस पर प्रेम नहीं रखता। कमजोरी और उपाय न सूझने के कारण अपनी रक्षा में असमर्थ प्रजा लगातार उस पर विपत्ति आने के समय की बाट जोह रही है। इसके सिवा जो उसके प्रकट शत्रु हैं वे भी, तुझे पौरुष की राह पकड़ते देखकर, यत्न के साथ अपनी संपत्ति और सेना बढ़ाकर, उसके विरुद्ध उठ खड़े होंगे। इसलिए तू भी उन लोगों के साथ मिलकर शत्रु के बुरे दिन की राह देखता हुआ पर्वत दुर्ग का आश्रय ले।

बेटा, तेरा नाम संजय अवश्य है, किंतु जय पाने का कोई काम या उद्योग तुझमें नहीं देख पड़ता। इसी लिए कहती हूँ कि अपना नाम सार्थक कर।

एक चतुर विद्वान् ब्राह्मण ने तेरे जन्म के समय कहा था कि यह बालक पहले बड़ा दुःख पाकर अन्त में परम समृद्धि प्राप्त करेगा। आज उस ब्राह्मण की बात याद कर ही तेरी विजय की संभावना से मैं ऐसे आग्रह के साथ तुझे उत्तेजित कर रही हूँ। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि जो आदमी आप यथार्थ नीति के अनुसार काम करता है, उसके कार्य की सिद्धि में और और लोग भी सहायक बन जाते हैं। उसका मनोरथ अवश्य पूरा होता है। हार हो या जीत, राज्य मिले या न मिले, दोनों को समान समझकर दृढ़ संकल्प से युद्ध कर। बारबार हारना भले पड़े, परंतु युद्ध का उद्योग न छोड़। शम्बर का कहना है कि जब आज या कल खाने का ठिकाना न हो, उससे बढ़कर बुरी दशा नहीं है। उन्होंने ऐसी अवस्था को पति और पुत्र के मरने से भी बढ़कर कष्ट

देनेवाली बताया है। मतलब यह कि दारिद्र्य का दुःख मरने का ही दूसरा रूप है।

देख, मैं श्रेष्ठ कुल की बेटी और श्रेष्ठ कुल की बहू हूँ। कमलिनी जैसे एक सरोवर से दूसरे सरोवर में जाती है, वैसे ही मैं भी एक कुल से दूसरे कुल में आई हूँ। ससुराल में आकर मैं घर की मालकिन हुई। पति ने भी मेरा बड़ा आदर और प्यार किया। पहले सुहृद्गण मुझे सदा बहुमूल्य माला आदि गहने पहने, शरीर में गन्धद्रव्य लगाये और प्रसन्न देखते थे। वे ही इस समय मेरी यह दारुण दुर्दशा देख रहे हैं। हे संजय, तू जब मुझे और अपनी भार्या को दीन, हीन, दुर्बल दशा में देखेगा, तब तुझे जीने से मरना ही अच्छा मालूम होगा। दास, दासी, आचार्य, पुरोहित आदि सब जीविका के बिना जब तुझे छोड़ देंगे, तब तेरे जीवन का प्रयोजन भी समाप्त हो जायगा। मैं जो फिर तुझे पहले की तरह यश और गौरव बढ़ानेवाले श्रेष्ठ कार्य करते न देखूँगी तो मेरे ही हृदय को कैसे शान्ति मिलेगी? कोई ब्राह्मण यदि मुझसे कुछ माँगेगा तो उससे 'नाहीं' करते मेरी छाती फट जायगी। अब से पहले कभी मेरे या मेरे स्वामी के मुँह से नकार नहीं निकला। इस समय जो औरों के आश्रय में रहकर पेट पालना पड़ेगा तो मैं अवश्य अपने प्राण दे दूँगी। इसलिए इस समय तू ही नाव की तरह हम सबको इस विपत्तिसागर के पार लगा। उसके लिए अगर तुझे रहने के अयोग्य स्थान अथवा स्थिति में रहना पड़े या घोर संकट में पड़ना पड़े, तो वह भी तुझे स्वीकार करना पड़ेगा। हम सब परिवार के लोग इस चिन्ता से मृत सदृश हो रहे हैं; हमारे शरीर में जान डालना तेरा काम है। यदि जीने की इच्छा है तो शत्रुओं को हराने का उद्योग कर; नहीं तो इस तरह नपुंसक-वृत्ति ग्रहण करके सदा खिन्न और दीन रहने से तो मर जाना ही अच्छा है। शूर पुरुष केवल एक शत्रु को जीत कर भी यश प्राप्त कर सकता है। देख, देवताओं के राजा इन्द्र ने वृत्रासुर को मारकर ही महेन्द्र नाम पाया है और वे सब देवताओं के प्रभु होकर सब लोकों के स्वामी हुए हैं। उत्साही वीर पुरुष समर में अपना नाम सुनाकर शत्रु को ललकारते हैं। युद्ध में पराक्रम दिखाकर, शत्रुसेना के अगले भाग को भगाकर या उधर के किसी प्रधान योद्धा को मारकर यश प्राप्त कर लेने पर अन्य शत्रु आप ही आप दबकर अधीन हो जाते हैं। रण में मरने मारने को उद्यत शूर पुरुष की सब इच्छाएँ कायर लोग पूरी करते हैं। साहसी, सच्चरित्र पुरुष, राज्य या जीवन की परवा न करके, शत्रु को पाकर उसे मारे बिना नहीं शान्त होते। बेटा, केवल पराक्रम प्रकट करने से ही स्वर्ग का द्वार अथवा राज्य प्राप्त हो सकता है। यह सोचकर जलती हुई लकड़ी के चक्र की तरह शत्रुसेना में घुस पड़। शत्रुओं को मारकर अपने धर्म का पालन कर। मैं तुझे शोक से व्याकुल मित्रमण्डली और आनन्द से उछल रहे शत्रुदल के बीच अत्यन्त खिन्न और दीन हीन पुरुष की तरह रोते न देखूँ। अपने सौवीर देश की कन्याओं द्वारा पहले की तरह तू बड़ाई और आनन्द प्राप्त कर। दीन होकर शत्रु के देश—सिन्धु देश की कन्याओं के उपहास का पात्र न बन। तू रूप, गुण, विद्या, कुल, यश और प्रतिष्ठा से युक्त नौजवान है। बैल की तरह पराया बोझ ढोने के निन्दित कार्य से तो तेरे लिए मरना ही भला है। तुझे दीनभाव से औरों का आसरा लेते देखकर मुझे भी शान्ति न मिलेगी। इस कुल में कोई भी औरों के पीछे चलनेवाला अनुचर पुरुष नहीं उत्पन्न हुआ। इसलिए औरों के अधीन होकर जीना तेरे लिये उचित नहीं है।

विधाता ने जैसा चिरप्रसिद्ध सनातनधर्म क्षत्रियों के लिए नियत कर दिया है, और पहले के और अब के पण्डित उसके बारे में जैसा वर्णन करते हैं, सो सब मैं जानती हूँ। जो व्यक्ति प्रसिद्ध क्षत्रियवंश में जन्म लेकर सब धर्मों के यथार्थ मर्म को जानता हो, उसे प्राणों के डर से शत्रु के आगे झुकना कभी उचित नहीं। यह उसका कर्तव्य नहीं है। उद्योग ही पौरुष है। इसलिए सदा उद्योग करते रहना चाहिए। सिर नीचा करना सदा निन्दित है। असमय ही मर जाना अच्छा, किंतु शत्रु के अधीन होना ठीक नहीं। महात्मा, वीर पुरुष मस्त गजराज की तरह विचरते हैं। वे केवल धर्म के अनुरोध से ब्राह्मणों के आगे सिर झुकाते हैं। बलपूर्वक और वर्णों को अपने अधीन करना और अधर्म को बंद करना उनका कर्तव्य होता है। वे चाहे सहायवान् हों, चाहे निराश्रय, सदा यही किया करते हैं।

संजय ने कहा—हे करुणाहीन, क्रोधी और वीर स्वभाववाली माता! जान पड़ता है कि तेरा हृदय विधाता ने लोहे से बनाया है। अहो! क्षत्रियों के आचार व्यवहार कैसे विचित्र हैं! मैं तुम्हारा एकलौता बेटा हूँ, तो भी तुम दूसरे की माता के समान कठोर वचन कहकर मुझे घोर युद्ध की भूमि में भेजने का उद्योग कर रही हो। मैं पूछता हूँ, जो मैं तुम्हारा प्रिय पुत्र युद्ध में मारा गया तो तुम सारी पृथिवी, गहने, भोग, सुख या जीवन लेकर क्या करोगी?

विदुला ने कहा—बेटा, धर्म और अर्थ के उद्देश्य से ही मनुष्य सब कार्यों का आरम्भ करता है। मैं उसी धर्म और अर्थ की सिद्धि के लिए तुझे युद्धभूमि में भेजती हूँ। देख, तेरे पराक्रम दिखाने का यही ठीक समय है। इस समय कर्तव्यपालन में विमुख होने से लोक, समाज में तेरा अपमान होगा। तू आपही अपना और मेरा घोर अनिष्ट करेगा। फिर धन संपत्ति या प्रतिष्ठा प्राप्त करने की आशा नहीं रहेगी। यदि तेरी अकीर्ति की संभावना समझकर भी पुत्रस्नेह के कारण मैं तुझे अनुचित कार्य से न रोकूँ, तो वह सच्चे स्नेह का काम न होगा। पण्डितों ने ऐसे स्नेह को सामर्थ्य और कारण से हीन गर्दभी वात्सल्य (गधी का पुत्रस्नेह) कहा है। इसलिए तू सज्जनों द्वारा निन्दित मूढ़ जनों के मार्ग को छोड़ दे। देख, इस पृथिवी पर अनेक लोग अविद्या के अँधेरे में डूबे पड़े हैं। तू [उस अविद्या (मोह) के अन्धकार से निकलकर] सदाचार ग्रहण कर। ऐसा करने से ही तू मेरा दुलार पा सकेगा और मैं तुझ पर प्रसन्न होऊँगी। जो कोई ऐसे सदाचारी, विनीत पुत्र पौत्र आदि पर ही प्रीति प्रकट करता है, उसी की प्रीति सच्ची है, स्नेह सच्चा है। जो कोई उद्योग और विनय से हीन पुत्र पौत्र आदि पर प्रीति करता है, उसका पुत्रवान् होना बिलकुल ही नष्ट हो जाता है। जो नराधम मनुष्य के योग्य कर्तव्य न करके निन्दित काम करते हैं, उनको न तो इस लोक में सुख मिलता है और न परलोक में। मतलब यह कि युद्ध और विजय के लिए ही क्षत्रिय का जन्म हुआ है। शत्रु को जीतने से या युद्ध में मरने से, दोनों तरह, क्षत्रिय को इन्द्रलोक मिलता है। शत्रुओं को अपने आधीन करने से क्षत्रिय को जो सुख और समृद्धि मिलती है, वह इन्द्रलोक में भी मिलना असंभव है। मनस्वी पुरुष यदि शत्रु से हार जाता है तो भीतर ही भीतर क्रोध की आग से जला करता है और विजय पाने की इच्छा से या तो युद्ध में लड़कर मर जाता है या शत्रु को मार लेता है। दोनों में से एक बात हुए बिना उसे कल नहीं पड़ती। प्रभावशाली उच्च हृदय के पुरुष थोड़े विभव

को नहीं चाहते। जो स्वल्प ऐश्वर्य में संतुष्ट और तृप्त हो जाता है उसका विनाश जल्दी हो जाता है। प्रिय वस्तु के अभाव में पुरुष को कभी कल्याण प्राप्त नहीं होता। वह पुरुष उसी तरह चौपट होता है, जिस तरह सागर में जाकर गङ्गा लीन हो जाती है।

संजय ने कहा—माता, पुत्र से तुम्हें ऐसी कठोर बातें न कहनी चाहिएँ। तुम जड़ और गूँगे की तरह चुप रहकर मुझसे करुणा का ही व्यवहार करो।

विदुला ने कहा—बेटा, तेरे यह वचन सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। तू मुझे माता के कर्तव्य में लगाता है, मैं भी तुझे तेरा कर्तव्य सुझाती हूँ। बेटा, तू जब सिन्धुराज के सारे वंश का विनाश करके विजय प्राप्त कर लेगा तब मैं तेरा अभिनन्दन करूँगी और तुझे आदर की दृष्टि से देखूँगी।

संजय ने कहा—माता, मेरे पास न तो धन है, और न सेना है। फिर मैं किस तरह जय प्राप्त करूँ? अपनी हालत देखकर मैं इस बारे में हताश हो चुका हूँ। दुष्कर, स्वर्गलाभ की तरह राज्य पाने का इरादा मैंने छोड़ दिया है। हाँ, मेरी कार्य-सिद्धि का अगर कोई उपाय हो तो बताओ। मैं उसी के अनुसार आप की आज्ञा का पालन करूँगा।

विदुला ने कहा—सिद्धि नहीं होगी, यह पहले ही सोचकर अपना अनादर करना ठीक नहीं; क्योंकि घटनाक्रम से कभी असिद्ध प्रयोजन भी पूरा हो जाता है। मतलब यह कि ठीक उपाय करने से सिद्धि प्राप्त हो सकती है। अज्ञान के कारण केवल क्रोध के वश होकर ही कोई काम कर बैठना ठीक नहीं। हर एक काम के फल के बारे में स्थिरता नहीं देख पड़ती, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि फल क्या होगा? जो पुरुष इस तरह फल को अनिश्चित समझकर भी काम करना नहीं छोड़ता उसका मनोरथ सिद्ध हो भी सकता है और नहीं भी। किंतु जो आदमी फल को अनिश्चित समझकर कार्य का उद्योग ही नहीं करता उसके मनोरथ की सिद्धि न होना निश्चित ही है। परंतु चेष्टा करने से सिद्धि और असिद्धि दोनों हो सकती हैं। काम में हाथ लगाने के पहले ही सफलता के बारे में अनिश्चय का ख्याल करके जो पुरुष उद्योग नहीं करता वह वृद्धि और समृद्धि दोनों को अपने से विमुख कर देता है। इसलिए सफलता पाने का निश्चय करके, हृदय की व्याकुलता मिटाकर उद्यम के साथ हर एक काम में लग जाना चाहिए। जो बुद्धिमान् राजा पहले देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा, आराधना, स्वस्त्ययन पाठ आदि माङ्गलिक कृत्यों का अनुष्ठान करके फिर अभीष्ट प्राप्त करने का उपाय करता है, वह अवश्य अपने मनोरथ को पूरा कर लेता है। पूर्व दिशा जैसे सूर्य को गले से लगाती है, वैसे ही राजलक्ष्मी उसे अपनाती है। हे संजय, मैंने उपदेश के तौर पर उपाय और उत्साह बढ़ानेवाले जो वचन कहे हैं उनका प्रभाव तुझ पर पड़ा देख पड़ता है। तू पौरुष करके अच्छी तरह से उद्योग में लग जा। तू यत्न के साथ क्रोधी, लोभी, धन-हीन, अपमानित, गर्वित और स्पर्धाशील पुरुषों को अपने वश में कर। पेशगी धन देकर, प्रिय वचन कहकर, उपकार करके अपने सहायकों का संग्रह कर, प्रचण्ड वेग से पवन जैसे घनी घटाओं को छिन्न भिन्न कर देता है, वैसे ही तू शत्रुसेना को नष्ट-भ्रष्ट कर सकेगा। उस समय तुझे सब लोग अगुआ समझेंगे और तुझसे प्रीति का व्यवहार करेंगे!

जब शत्रु समझ लेता है कि मेरा विपक्षी हथेली पर जान लिये मरने मारने को मुस्तैद है, तब वह इस

तरह डर जाता है जिस तरह घर में साँप के घुस जाने पर मनुष्य बेचैन हो जाते हैं। पराक्रमी शत्रु को वश में करना असाध्य हो तो दूत के द्वारा उसके पास 'संधि' अथवा 'दान' का प्रस्ताव भेजना चाहिए। इससे वह वश में हो जायगा। इस प्रकार शत्रु के खटके से बचकर अपने स्थान में जमने से राजा अपने धनबल को सुखपूर्वक बढ़ा सकता है। मित्र भी धनी का ही आश्रय लेते हैं, उसी का आदर करते हैं। वही धनी यदि निर्धन हो जाता है, तो वे ही मित्र उसके पास नहीं फटकते। उस समय बन्धु बान्धव भी छोड़कर अलग हो जाते हैं। मित्र और बान्धव उस अवस्था में साथ ही नहीं छोड़ देते, बल्कि निन्दा तक करने लगते हैं। जो पुरुष शत्रु को मित्र समझकर उसका विश्वास करता है, उसका राज्य पाना असंभव है; या यों कहो कि वह अपनी राजलक्ष्मी को अपने पास बहुत समय तक नहीं रख सकता।

विदुला ने कहा—बेटा! किसी तरह की कोई आपत्ति क्यों न आ पड़े, किंतु राजा को डरना न चाहिए। अगर डर लगता भी हो तो उसे अपने आकार से प्रकट न करना चाहिए। राजा का डर यदि प्रकट हो जाता है तो राज्य के निवासी, मन्त्री, सैनिक आदि सब अलग अलग मनमानी करने लगते हैं। कोई शत्रु से जाकर मिल जाता है, कोई उसे छोड़कर चला जाता है और कोई कहा नहीं मानता। जिनका पहले अपमान किया जा चुका है, वे बदला लेने के लिए तैयार हो जाते हैं। जो अत्यन्त हित-चिन्तक सुहृद् होते हैं वे ही पास रहते हैं। वे भी जिसका बछड़ा अलग बँधा हुआ है ऐसी गाय की तरह कुछ उपाय करने में असमर्थ होकर केवल भला चाहते हैं। प्रभु के साथ साथ वे भी शोक करते हैं; और कुछ नहीं कर सकते। तू ने पहले जिनका आदर सत्कार किया है, वे सुहृद् अभी तेरे पास मौजूद हैं। वे मन, वाणी, काया से तेरे राज्य की रक्षा चाहते हैं। तू स्वयं डर से व्याकुल होकर उन्हें भी डर से विह्वल न बना। तू वही कर जिसमें वे तुझे शङ्कित देख छोड़कर चल न दें।

बेटा! मैंने तेरे पौरुष, प्रभाव और बुद्धि की परीक्षा करने के लिए, तुझे ढाढ़स देने और तेरा उत्साह बढाने के लिए ऐसे वचन कहे हैं। यदि तूने मेरे उपदेश का मतलब समझा हो, और तुझे यह ठीक जान पड़ा हो, तो धैर्य के साथ विजय प्राप्त करने का उद्योग कर। हे संजय, तुझे नहीं मालूम कि तुझसे छिपा हुआ मेरे पास बहुत सा धन है। उसे मेरे सिवा और कोई नहीं जानता। मैं वह धन तुझे दूँगी। धन के सिवा तेरे ऐसे अनेक सहायक और बन्धु बान्धव भी हैं, जिन्होंने सैकड़ों सुख दुःख सहकर भी अभी तक तेरा साथ नहीं छोड़ा। ऐसे सुहृद्गण कल्याण और ऐश्वर्य की इच्छा रखनेवाले पुरुष के सहायक होते हैं।

संजय ने कहा—हे माता, तुम मुझे भावी कल्याण की आशा दिलाकर उत्साहित कर रही हो, इससे मैं या तो जल में डूबी हुई पृथिवी की तरह अपने पिता के राज्य का उद्धार करूँगा या युद्ध में प्राण दे दूँगा। मैंने केवल तुम्हारे अन्यान्य उपदेशों को सुनने के लिए ही बीच बीच में वैसा उत्तर दिया था। दुर्लभ अमृत पीने से जैसे जी नहीं भरता, वैसे ही तुम्हारे सुमधुर वाक्यों के रस पीने की प्रबल लालसा बनी रहने के कारण ही मैं अब तक चुप था। अब मैं शत्रु को दण्ड देने और उस पर विजय पाने के लिए उद्योग करूँगा।

—म० उद्योगपर्व १३३-१३६

काव्य में धर्म की जय

(ले०—आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल प्रो० वि० वि० काशी)

लोक में फैली दुःख की छाया को हटाने में ब्रह्म की आनन्दकला जो शक्तिमय रूप धारण करती है, उसकी भीषणता में भी अद्भुत मनोहरता, कटुता में भी अपूर्व मधुरता, प्रचण्डता में भी गहरी आर्द्रता साथ लगी रहती है। विरुद्धों का यही सामञ्जस्य कर्मक्षेत्र का सौन्दर्य है, जिसकी ओर आकर्षित हुए बिना मनुष्य का हृदय नहीं रह सकता। इस सामञ्जस्य का और कई रूपों में भी दर्शन होता है। किसी कोट, पतलून, हैटवाले को धाराप्रवाह संस्कृत बोलते अथवा किसी पण्डित वेशधारी सज्जन को अँगरेजी की प्रगल्भ वक्तृता देते सुन, व्यक्तित्व का जो एक चमत्कार सा दिखाई पड़ता है, उसकी तह में भी सामञ्जस्य का यही सौन्दर्य समझना चाहिए। भीषणता और सरसता, कोमलता और कठोरता, कटुता और मधुरता, प्रचण्डता और मृदुता का सामञ्जस्य ही लोकधर्म का सौन्दर्य है। आदि कवि वाल्मीकि की वाणी इसी सौन्दर्य के उद्घाटन महोत्सव का दिव्य संगीत है। सौन्दर्य का यह उद्घाटन असौन्दर्य का आवरण हटाकर होता है। धर्म और मङ्गल की यह ज्योति अधर्म और अमङ्गल की घटा को फाड़ती हुई फूटती है। इससे कवि हमारे सामने असौन्दर्य, अमङ्गल, अत्याचार, क्लेश इत्यादि भी रखता है; रोष, हाहाकार और ध्वंस का दृश्य भी लाता है। पर सारे भाव, सारे रूप और सारे व्यापार, भीतर भीतर आनन्दकला के विकास में ही योग देते पाये जाते हैं। यदि किसी ओर उन्मुख ज्वलन्त रोष है तो उसके और सब ओर करुण दृष्टि फैली दिखाई पड़ती है। यदि किसी ओर ध्वंस और हाहाकार है तो और सब ओर उसकी सहगामी रक्षा और कल्याण है। व्यास ने भी अपने 'जय-काव्य' में अधर्म के पराभव और धर्म की जय का सौन्दर्य प्रत्यक्ष किया था।

वह व्यवस्था या वृत्ति, जिससे लोक में मङ्गल का विधान होता है, 'अभ्युदय' की सिद्धि होती है, धर्म है। अतः अधर्मवृत्ति को हटाने में धर्मवृत्ति की तत्परता—चाहे वह उग्र और प्रचण्ड हो, चाहे कोमल और मधुर—भगवान् की आनन्दकला के विकास की ओर बढ़ती हुई गति है। यह गति यदि सफल हुई तो 'धर्म की जय' कहलाती है। इस गति में भी सुन्दरता है और इसकी सफलता में भी। यह बात नहीं है कि जब यह गति सफल होती है तभी इसमें सुन्दरता आती है। गति में सुन्दरता रहती ही है; आगे चलकर यह सफल हो, चाहे विफल। विफलता में भी एक निराला ही विषण्ण सौन्दर्य होता है। तात्पर्य यह कि यह गति आदि से अन्त तक सुन्दर होती है—अन्त चाहे सफलता के रूप में हो, चाहे विफलता के। उपर्युक्त दोनों आर्ष कवियों ने पूर्णता के विचार से धर्म की गति का सौन्दर्य दिखाते हुए उसका सफलता में पर्यवसान किया है। ऐसा उन्होंने उपदेशक की बुद्धि से नहीं किया है; धर्म की जय के बीच भगवान् की मूर्ति के साक्षात्कार पर मुग्ध होकर किया है। यदि राम द्वारा रावण का बध तथा कृष्ण के साहाय्य द्वारा जरासंध और कौरवों का दमन न हो सकता, तो भी राम कृष्ण की गति विधि में पूरा सौन्दर्य रहता, पर उनमें भगवान् की पूर्ण कला का दर्शन न होता; क्योंकि भगवान् की शक्ति अमोघ है।

विजया दशमी

(ले०—आचार्य बालकृष्ण दत्तात्रेय कालेलकर)

हमारे अपने प्रत्येक त्यौहार का एक विज्ञान है। उसका अपना एक इतिहास है। त्यौहार उन्हीं इतिहास और विज्ञानों के प्रतीक हैं, मूर्ति हैं। विजया दशमी का भी अपना इतिहास है, विज्ञान है। आचार्य काका कालेलकर ने त्यौहारों के इतिहास पर अपनी कलम उठाई है। यह उन्हीं की लेखनी से लिखा हुआ विजया दशमी का इतिहास और विज्ञान है। त्यौहार मनाने के पूर्व इसे अवश्य ही एक बार पढ़ना चाहिए।

दशहरे का त्यौहार भिन्न भिन्न समय की भिन्न भिन्न पुटों से बना है। दशहरे के त्यौहार में असंख्य युगों के असंख्य प्रकार के आर्यपुरुषार्थ की विजय समाविष्ट है।

मनुष्यों का पारस्परिक युद्ध जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही अथवा उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण युद्ध मनुष्य और प्रकृति का है। मनुष्य की प्रकृति पर सबसे बड़ी विजय खेती है। जिस दिन मनुष्य जमीन जोतकर, उसमें नवधान्य बो-कर, कृत्रिम जल का सिञ्चन करके, उससे अपनी आजीविका और भविष्य के संग्रह के लिए आवश्यक अनाज प्राप्त कर सका, वही उसकी बड़ी से बड़ी विजय का दिन था। उस दिन की स्मृति को हमेशा ताजा रखना कृषिप्रधान आर्य लोगों का प्रथम कर्तव्य था।

बीसवीं सदी भौतिक और यान्त्रिक अन्वेषण की सदी मानी जाती है, और वह ठीक भी है। मनुष्य प्राणी की हस्ती और—संस्कृति में जो महान् अन्वेषण कारणीभूत हुए हैं, वे सब आदि युग में ही आविष्कृत हुए हैं। जमीन जोतने की कला, सूत कातने की कला, आग सुलगाने की कला और मिट्टी से पक्का घड़ा बनाने की कला—ये चार कलाएँ मानवी संस्कृति के आधारस्तम्भ हैं। इन चारों कलाओं का उपयोग करके विजया दशमी के दिन हमने कृषिमहोत्सव की रचना की है।

विजया दशमी के त्यौहार में चातुर्वर्ण्य एकत्र दिखाई देता है। ब्राह्मणों का सरस्वतीपूजन और विद्यारम्भ, क्षत्रियों का शस्त्रपूजन, अश्वपूजन और सीमोल्लङ्घन, और वैश्यों की खेती ये तीनों बातें इस त्यौहार में एकत्र होती हैं। और जहाँ इतना बड़ा काम हो, वहाँ शूद्रों की परिचर्या तो समाविष्ट हुई ही है। देहात के लोग नवरात्र के अनाज के सोने जैसे जवारे तोड़कर पगड़ी में खोंस लेते हैं और बढ़िया पोशाक पहनकर बाजे गाजे के साथ सीमोल्लङ्घन करने जाते हैं। उस समय ऐसा दृश्य दिखाई देता है मानों वे सारे देश का पौरुष व पराक्रम दिखाने के लिए बाहर निकल रहे हों। दशहरे का उत्सव जिस प्रकार कृषिप्रधान है, उसी

प्रकार क्षात्रमहोत्सव भी है। जब किराये के सैनिकों को मुरगों की तरह लड़ाने का रिवाज न था, तब क्षात्रतेज और राजतेज किसानों में ही परिवर्द्धित होता था। किसान का अर्थ है क्षेत्रपति क्षत्रिय। जो सालभर तक धरती माता की सेवा करता है, वही प्रसंग पड़ने पर उसकी रक्षा भी करता है। नदी, नाले, पहाड़, पहाड़ी के साथ जिसका रात दिन संबन्ध रहता है, घोड़े, बैल जैसे पशुओं को जो तालीम दे सकता है, अनेक मजदूरों को जो आजीविका दे सकता है, और सारे समाज की जो उदरपूर्ति करता है, उसके अंदर राजत्व के यदि समस्त गुण वृद्धि पावें तो आश्चर्य की क्या बात है ? जो राजा है, वही किसान है और जो किसान है, वही राजा है।

इस अवस्था में कृषि त्यौहार के क्षात्र त्यौहार हो जाने में सोलहों आना ऐतिहासिक औचित्य है। क्षत्रियों का मुख्य कर्तव्य है–स्वदेशरक्षा। पर कितनी ही बार, इसके पहले कि शत्रु स्वदेश में घुसकर देश की खराबी करे, उसके दुष्ट हेतु का पता पाकर खुद ही सीमोल्लङ्घन करके अर्थात् अपनी हद को लाँघकर शत्रु के ही देश में लड़ाई ले जाना ठीक और वीरोचित होता है।

थोड़ा ही विचार करने से ज्ञात हो जायगा कि इसी सीमोल्लङ्घन के मूल में आगे साम्राज्यभाव विद्यमान है। अपनी हद से बढ़कर दूसरे के देश पर कब्जा करना, वहाँ से धन धान्य लूटकर लाना, इसमें धर्मभाव की अपेक्षा महत्त्वाकाङ्क्षा का अंश अधिक है। इस प्रकार लूटकर लाये सोने को यदि पराक्रमी पुरुष अपने ही पास रखे तो वर्तमान युग के क्षात्र प्रकोप (Militarism) के साथ वैश्य प्रकोप (Industrialism) के संमेलन की भयंकर स्थिति उत्पन्न हो जाय। प्रभुत्व और धनित्व जहाँ एकत्र हैं, वहाँ शैतान को अलहदा निमन्त्रण देने की जरूरत नहीं रहती। इसी लिए दशहरे के दिन लूटकर लाया सोना तमाम स्वजनों में बाँट देना उस दिन की एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक विधि निश्चित की गई है।

सुवर्ण बाँट देने के इस रिवाज का संबन्ध रघुवंश के राजा रघु के साथ भी जुड़ा हुआ है।

रघु राजा ने विश्वजित् यज्ञ किया। समुद्रवलयाङ्कित पृथिवी को जीतने के बाद सर्वस्व दान कर देने का नाम विश्वजित् यज्ञ है। ऐसा विश्वजित् यज्ञ पूरा कर चुकने के बाद रघु राजा के पास वरतन्तु ऋषि का शिष्य विद्वान् और तेजस्वी कौत्स आया। कौत्स ने अपने गुरु से चौदह विद्याएँ ग्रहण की थीं और उसकी दक्षिणा के लिए चौदह कोटि सुवर्णमुद्रा गुरु को देने का संकल्प किया था, परंतु सर्वस्व दान कर चुकने के बाद मिट्टी के बरतनों द्वारा रघु को आदरातिथ्य करता देखकर कौत्स ने उनसे कुछ भी याचना करने का विचार छोड़ दिया। राजा को आशीर्वाद देकर वह जाने लगा। रघु ने आग्रहपूर्वक उसे रोक रखा और दूसरे दिन स्वर्ग पर चढ़ाई करके इन्द्र और कुबेर से धन लाने की तजवीज की। रघु चक्रवर्ती राजा था, इससे इन्द्र और कुबेर भी उसके माण्डलिक थे। ब्राह्मण को दान करने के

लिए उनसे कर वसूल करने में संकोच किस बात का? रघु राजा की चढ़ाई की बात सुनकर वे डर गये—उन्होंने एक शमी के पेड़ पर सुवर्णमुद्रा की वृष्टि की। रघु राजा ने सुबह उठकर देखा कि जितना चाहिए उतना स्वर्ण मौजूद है। उसने वह ढेर कौत्स को दे दिया। कौत्स चौदह करोड़ से अधिक लेता नहीं था और राजा दान में दिया धन वापस नहीं चाहता था। अन्त में उसने वह धन नगरवासियों को लुटा दिया; वह दिन था—आश्विन सुदी दशमी। इससे आज भी लोग दशहरे के दिन शमी का पूजन करके उसके पत्तों को सोना समझकर लूटते हैं और एक दूसरे को देते हैं। कितने ही लोग शमी के नीचे की मिट्टी को भी सुवर्ण मानकर ले जाते हैं।

शमी का पूजन बहुत प्राचीन है। ऐसा माना जाता है कि शमी के पेड़ में ऋषियों का तपस्तेज है। प्राचीन समय में शमी की लकड़ी एक दूसरी पर घिसकर आग सुलगाते थे। शमी की समिधा आहुति के काम आती है। पाण्डव जब अज्ञातवास करने गये थे, तब उन्होंने अपने हथियार एक शमी के पेड़ पर छिपा रखे थे, और इसलिए कि कोई वहाँ जा न पावे, एक नरकङ्काल उस पेड़ में बाँध रखा था।

राम ने रावण पर जो चढ़ाई की, सो भी विजया दशमी मुहूर्त पर। आर्य लोगों ने, हिंदू लोगों ने अनेक बार विजया दशमी के मुहूर्त पर चढ़ाई करके विजय प्राप्त की है। इससे विजया दशमी राष्ट्रीय विजय का मुहूर्त अथवा त्यौहार हो गया है। मराठे और राजपूत इसी मुहूर्त पर स्वराज्य की सीमा बढ़ाने के लिए शत्रु के देश पर आक्रमण करते थे। शस्त्रास्त्र से सजकर, हाथी घोड़े पर चढ़कर नगर से बाहर जलूस ले जाने का रिवाज आज भी है। वहाँ शमी का और अपराजिता देवी का पूजन सीमोल्लङ्घन का मुख्य भाग है। पुराणों में कथा है कि महिषासुर से श्री जगदम्बा ने नौ दिन युद्ध करके विजया दशमी के दिन उसका वध किया। इसी से अपराजिता की पूजा और भैंसे का बलिदान करने का रिवाज पड़ा है।

ऐसा माना जाता है कि शमी और अश्मन्तक वृक्ष में भी शत्रु के नाश करने का गुण है। अश्मन्तक कहते हैं उस्तुरा के पेड़ को। जहाँ शमी नहीं मिलती है, वहाँ उस्तुरे के पेड़ की पूजा होती है। उस्तुरे के पत्ते का आकार सोने के सिक्के की तरह गोल होता है और जुड़े हुए कार्ड (Reply card) की तरह उसके पत्ते मुड़े हुए होते हैं, जिससे वे खूबसूरत दिखाई देते हैं। दशहरे के दिनों तक चौमासा लगभग खतम हो जाता है। शिवाजी के किसान सैनिक दशहरे तक खेती की चिन्ता से मुक्त हो जाते थे। कुछ काम बाकी न रहता था। सिर्फ एक ही फसल काटना बाकी रहता था। पर उसे तो घर की औरतें, बच्चे, और बूढ़े लोग कर सकते थे। इससे सेना इकट्ठी करके स्वराज्य की हद बढ़ाने के लिए सबसे नजदीक मुहूर्त दशहरे का था। इसी कारण महाराष्ट्र में दशहरे का त्यौहार अत्यन्त लोकप्रिय था और आज भी है।

हम देख चुके हैं कि विजया दशमी के एक

त्यौहार पर अनेक संस्कारों, अनेक संस्करणों और अनेक विश्वासों की तहें चढ़ी हुई हैं। कृषिमहोत्सव, क्षात्रमहोत्सव हो गया। सीमोल्लङ्घन का परिणाम दिग्विजय तक पहुँचा। स्वसंरक्षण के साथ सामाजिक प्रेम और धन का विभाग करने की प्रवृत्ति का संबन्ध दशहरे के साथ जुड़ा। परंतु एक ऐतिहासिक घटना को अभी हम दशहरे के साथ जोड़ना भूल गये हैं, वह इस जमाने में अधिक महत्त्वपूर्ण है। "दिग्विजय से धर्मजय श्रेष्ठ है। बाह्य शत्रु का वध करने से हृदयस्थ षड् रिपुओं को मारने में ही महान् पुरुषार्थ है। नवधान्य की फसल काटने की अपेक्षा पुण्य की फसल काटना अधिक चिरस्थायी होता है"—यह उपदेश सारे संसार को देनेवाले मारजित, लोकजित् भगवान् बुद्ध का जन्म विजया दशमी के शुभ मुहूर्त में ही हुआ था। विजया दशमी के दिन बुद्ध भगवान् का जन्म हुआ और वैशाखी पूर्णिमा के दिन उन्हें शान्तिदाई चार आर्य तत्त्वों और अष्टाङ्गिक मार्ग का बोध हुआ, यह बात हम भूल ही गये हैं। विष्णु का वर्तमान अवतार बुद्ध अवतार ही है। इसलिए विजया दशमी का त्यौहार भगवान् बुद्ध के मारविजय को स्मरण करके ही हमें मनाना चाहिए।

देवि विजये !

[ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी, बी० ए०]

इस युगों से दलितमव में फिर पधारो, देवि विजये !

(१)

श्रान्त से—उत्क्रान्त से पीड़ित तुम्हारे देवि, जन हैं ;
सुमन मन मुरझा चुके हैं, मौन से ये मधुपगण हैं।
आज हो निष्प्राण से बन्दी हुए तव भक्त सारे ;
मृतक प्राणों में पुनः पीयूष ढारो देवि विजये !

(२)

पुनः बिखरे राम के यश सा प्रखर दैविक उजाला ;
आज फिर इस ओर जागे वह युगों की सुप्त ज्वाला।
ये अनय वैषम्य का फिर से सघन तम दूर होवें ;
लोकका पाखण्डदानव फिर प्रचारो देवि विजये !

(३)

एक नवजीवन किरण सी प्राण में आलोक भर दो ;
यह युगों का प्यासपीड़ित लोक फिर संतृप्त कर दो !
शान्ति की—सद्भाव की—शुभ साम्य की संसृति पुनः हो।
विश्व के इस तुमुल रव में फिर पधारो देवि विजये !

विजय का स्वरूप

(ले०—श्री जीवनशंकर याज्ञिक, एम० ए०, एल-एल० बी हिंदू विश्वविद्यालय, काशी)

संसारक्षेत्र में प्राणिमात्र को आजीवन युद्ध करना पड़ता है। मानों जीवन का अर्थ ही संग्राम करने की सामर्थ्य है। इस जगत् को युद्धक्षेत्र कहना कल्पनामात्र नहीं है; एक अनुभूत, ध्रुव, सत्य है। दुःखनिवृत्ति के उपाय, सुखप्राप्ति के साधन सब युद्ध-स्वरूप ही हैं। परिस्थिति को अनुकूल करने और उसको स्वार्थसिद्धि का सहायक बनाने में हमारा समस्त जीवन निकल जाता है। मनुष्य न आप्त-काम है, न सत्यसंकल्प है। इष्ट पदार्थ की उपलब्धि के लिए उसे प्रयास करना ही पड़ता है, और यदि किसी अंश में सफलता हुई तो उसकी रक्षा के लिए आयोजन करना पड़ता है। फिर परिश्रम सफल हो इसका कोई निश्चय नहीं। एक प्राणी की सफलता प्रायः अनेक की असफलता पर निर्भर होती है। यदि एक मनुष्य ने धन का विपुल अर्जन किया तो वास्तव में अनेक को धनहीन करके ही वह सफल होता है। इस विश्वव्यापी संघर्ष में प्राणि-मात्र उलझे हुए हैं और यह नित्य अनुभव की बात है कि 'जीवो जीवस्य जीवनम्'। अपना हित-साधन अन्य का हितनाश है। अपहरण के बिना प्रायः भोग्य वस्तु की प्राप्ति नहीं होती।

विजिगीषु के लिए आवश्यक है कि अपना और शत्रु के बलाबल का भली प्रकार विचार कर ले और ऐसी नीति और उपायों का अवलम्बन करे जिससे विजयलाभ अवश्य हो। पहले तो शत्रु को पह-चानना चाहिए—युद्ध किससे करना है, उसका स्वरूप क्या है और विजयलाभ किस प्रकार हो?

मनुष्य अन्य प्राणियों की अपेक्षा बुद्धिमान् है। विवेक और विचार के द्वारा वह अपने वास्तविक हित को समझ सकता है। प्रारब्धकर्म के भोगों के लिए यह शरीर मिला है और पूर्व जन्मों की वासनाओं के द्वारा इन्द्रिय सुख की प्रेरणा बराबर होती रहती है। इन वासनाओं की पूर्ति का जो प्रयास है और भोगेच्छा है, वही युद्ध का स्वरूप साधारण इन्द्रिय-परायण मनुष्यों में है। हमारी दशा उस पक्षी की सी है जिसका जन्म ही एक पिंजरे में हुआ हो। उसके पक्ष हैं, परंतु उनका प्रयोग, अनन्त आकाश में विहार, उसके अनुभव में कभी आया ही नहीं। पिंजरा यदि खुला भी रह जाय, तो न उस पक्षी को उड़ने की सामर्थ्य है न इच्छा। भोगलिप्सा ने हमको ऐसा बन्दी बना रखा है और जन्मजन्मान्तर के संस्कारों से हम ऐसे जकड़े हुए हैं कि उन भोगों को छोड़ने की कल्पना तक से भय लगता है। आत्मा-नन्द की इच्छा वा मुमुक्षुता की भावना भी मन में नहीं उठती।

वासनाओं की पूर्ति और भोगों की प्राप्ति में विघ्न आते हैं, कष्ट उठाने पड़ते हैं। और वासना तो बराबर उठा ही करती है। तो क्या होता है?

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥
—गी० २।६२, ६३

विषयों का चिन्तन करते हुए मनुष्य उनमें आसक्त हो जाता है। आसक्ति से काम का जन्म होता है। और काम से क्रोध का। क्रोध से संमोह (अज्ञान) और उससे स्मृति का नाश होता है। स्मृति के नष्ट होने पर बुद्धि का भी नाश होता है। और बुद्धि के नष्ट होने पर मनुष्य अपनी मनुष्यता से हाथ धो बैठता है।

जिसकी बुद्धि का नाश हो गया, तो उसका तो सर्वनाश ही हो गया। अपने हाथ पैर स्वयं काटकर कोई युद्ध में जाकर क्या कर लेगा? यदि बुद्धि सात्त्विक और स्थिर रही तो दो बातों का शीघ्र अनुभव हो जायगा। पहली तो यह कि 'कामकामी' को कभी शान्ति नहीं मिल सकती। ऐसे मनुष्य की दशा तो एक बन्दी की सी है। संग्राम में हार जाने में इतनी लज्जा और आपत्ति नहीं होती, जितनी कि शत्रु के हाथ में पड़कर बन्दी होने में होती है। और दूसरी बात यह मन में बैठ जाती है कि हमारे शत्रु केवल बाह्य नहीं हैं, विपरीत परिस्थितियाँ या भोग की अड़चनें ही नहीं हैं, वरन् हमारे मन में स्थित वासनाएँ हैं, जिनकी पूर्ति के लिए हम बराबर प्रयत्न करते रहते हैं। घर का शत्रु बाहर के शत्रु से अति भयंकर होता है। और यदि उसको हमने मोह और अविद्या से मित्र समझ रखा है तो फिर किसी प्रकार रक्षा होनी ही कठिन है। जो वास्तव में विनाशकारी है ऐसे इन्द्रियसुख को हमने जीवन का ध्येय बना रखा है। शत्रु को मित्र समझना सबसे बड़ी भूल है। अर्जुन ने भी कहा था—

एतान्नहन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
—गी० १।३५

ये यदि मुझे मारें तब भी मैं इनको मारना नहीं चाहता।

हमको अपने जीवन की सार्थकता ही इन्द्रियसेवी बने रहने में जान पड़ती है। यदि यह सुख प्राप्त न हुआ तो जीने में क्या रखा है? जो हमारा नाश करते हैं उन पर हम अपने प्राण न्यौछावर करते हैं। यह हमारी बुद्धि की बलिहारी है!

रण में विजयी की यह इच्छा रहती है कि शत्रु का ऐसा दमन किया जाय कि फिर कभी सिर न उठा सके। परंतु मनुष्य मोहवश ऐसा अंधा हो रहा है कि आप ही रिपु को बराबर बलवान् बनाता जा रहा है और अपनी शक्ति को क्षीण करता रहता है। कामकामी होने से उसको युद्ध से कभी छुट्टी नहीं मिल सकती; जिसको प्रतिक्षण भोगेच्छा प्रेरित कर रही हो उसको संसारक्षेत्र में युद्ध से उपराम होना असंभव है। वास्तव में भोगलिप्सु युद्ध का अन्त चाहता ही नहीं, फिर उसको शान्ति कहाँ से मिल सकती है? युद्धकौशल तो इसमें है कि अपनी हानि न हो और प्रतिपक्षी सदा के लिए निस्तेज हो जाय। परंतु संसार में उलटा व्यवहार देखने में आता है। पद पद पर हम शत्रु को बली बना रहे हैं और अपने को बन्दीरूप से उसके हाथों में समर्पित कर रहे हैं।

इन्द्रिय सुख में विपरीत भावना किये बिना दूसरा कोई उपाय नहीं। संसार के भोगों में विवेक द्वारा जब तक दोषदृष्टि नहीं होगी, तब तक विषयसुख की लालसा बनी रहेगी। इस जंजाल से छूटने के लिए विवेक ही उपाय है। विवेक आने पर मालूम होने लगेगा कि वासनाओं की पूर्ति में जो बाह्य अड़चनें आती हैं और जिनको हम अपना शत्रु समझते थे, वे वास्तव में हमारे हितसाधन में सहायक हैं। यदि ये रुकावटें न होतीं तो न जाने हम कहाँ के कहाँ बह गए होते! जिनको शत्रु समझा था वे मित्र निकले। साथ ही यह भी अनुभव हो जायगा कि शत्रु तो सब आभ्यन्तर हैं। उन्हीं को वश करने की आवश्यकता है। उनके वश करने के उपाय भी भगवत्कृपा से मनुष्य को प्राप्त हैं। रोग के कारण और उसकी निवृत्ति के उपाय साथ ही मौजूद हैं।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

—गी० ६।५

आत्मा ही अपना बन्धु है और आत्मा ही अपना दुश्मन। यह तो बड़ी अच्छी बात रही। जो शत्रु है वही मित्र बन सकता है; और जब कोई रिपु नहीं रहा तो युद्ध का भी अन्त हो ही गया। परंतु यह हो कैसे? कोई साधारण बात नहीं है। इसी की प्राप्ति के लिए ऋषि मुनियों ने कैसी कठोर तपस्याएँ कर डालीं! इन्द्रासन को हिला दिया। इससे बड़ा कोई दूसरा पुरुषार्थ हो नहीं सकता। जिसने इसमें विजय पा ली, वह विश्वविजयी हो गया। श्री राम ने विभीषण को इसका उपाय विजयरथ का वर्णन करते हुए इस प्रकार बताया था—

सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिवेक दम परहित घोरे।
छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजनु सारथी सुजाना।
बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा।
बर बिज्ञान कठिन को दंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना।
सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुरुपूजा।
एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥

इस प्रकार हमको पहले यह निश्चय करना होगा कि हम किस पक्ष के सहायक हैं? दैवी संपत्ति को अपनाया है वा आसुरी संपत्ति को? आसुरी संपत्ति से जन्म मरण का चक्र चलता ही रहेगा। गीता ने यह बताया है कि युद्ध तो अवश्य करना पड़ेगा, परंतु उसकी युक्ति यह है कि सुख दुःख, लाभ हानि, जय अजय को समान समझकर लड़ो। द्वन्द्वातीत होकर संसार में रहो। इसी से त्रिगुणातीत हो सकोगे। त्रिगुण का परस्पर संघर्ष ही सब अनर्थों का मूल है। काम, क्रोध, लोभ आदि रजोगुण से उत्पन्न होते हैं और यही प्रबल शत्रु हैं। रजोगुण के प्राबल्य से तमोगुण को दबाना चाहिए और फिर सत्त्वगुण के अधीन दोनों गुणों को रखना चाहिए। यह तभी संभव है जब दैवी संपत्ति का विकास हो, भोक्तृत्व और कर्तृत्व का अभिमान निःशेष हो जाय। कार्य तो समझ बूझकर करना है, उसके फल को भी जानकर कार्य में प्रवृत्त होना है, परंतु कर्म के फल

में आसक्ति नहीं रखनी है। ठीक है, उपाय तो समझ में आ गया। परंतु हम तो पिंजरे में बंद पक्षी के समान असहाय हैं। काम, क्रोध और लोभ, जिनके हम चिरकाल से दास हैं, उनसे छुटकारा कैसे मिले? एक ही उपाय है और वह है भगवान् को अपनी समस्त क्रिया और उनके फलों को अर्पित कर देना। उनका यन्त्र बन जाना।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
—गी० ८।७

निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।
—गी० ११।३३

इसलिए मेरी याद रखते हुए युद्ध करो। मेरे कार्य में निमित्त बन जाओ।

फिर तो स्वयं पार्थसारथि हमारे रक्षक हो जाते हैं। अब किसका भय! हमको कौन व्यथित कर सकता है! जगत् में प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जो जीता वह हारा और हारा सो मरा। परंतु हमारी विजय बड़ी विलक्षण होती है। शत्रु सब मित्र हो जाते हैं, और विजय का प्रसाद मिलता है—तत्त्वज्ञान वा परतत्त्व की प्राप्ति। "विजय" और "श्री" अर्थात् मोक्ष दोनों हमको एक साथ प्रसादरूप से मिलते हैं। यही सच्ची विजय है और इसी की शुभकामना विजया दशमी को सबको करनी उचित है। यही सनातन आर्यधर्म है जिसके रक्षक स्वयं भगवान् हैं।

आश्रमों की विजय

भारत की सभ्यता आश्रमों की सभ्यता है। आज भी रवीन्द्र, गांधी, अरविन्द आदि के आश्रम ही भारत में सच्चा काम कर रहे हैं। गीता के स्वाध्यायियों के भी आश्रम हैं—काशी, गोरखपुर, बड़ोदा, औंध आदि में। इनका दर्शन करना चाहिए।

विजयी धर्म

कौन धर्म विजयी होता है?

हमारा मित्र कहता है—जिसकी बाँह में बल है उसका धर्म विजयी होता है।

पर अनुभवी ऐतिहासिक कहता है—

वही धर्म विजयी होता है जो जनसेवा कर सकता है। सेवाधर्म ही सब से बड़ा है। वैष्णवधर्म विजयी क्यों हुआ? उसमें सेवा का प्राधान्य है। बौद्ध धर्म संसार का सब से बड़ा धर्म क्यों हुआ? क्योंकि उसका एकमात्र लक्ष्य है लोकसेवा—

जो धर्म इस तत्त्व को भूल जाता है वही गिरने लगता है। सेवा का अभाव और धर्म का पतन साथ साथ चलते हैं। सेवा का ही तो नाम धर्म है।

× × ×

आज के विद्वान् और महात्मा भी तो यही सिखा रहे हैं कि हिंदू धर्म में सेवा की भावना घट रही है उसे फिर से बढ़ाओ।

सेवाधर्मः परमगहनो
योगिनामप्यगम्यः ॥

तब भारत की सच्ची संस्कृति समझ में आवेगी। जब तक भारत के लोग आश्रमों को फिर से न समझ लेंगे तब तक, वे विजय और श्री का सुख न भोग सकेंगे।

विजय का कवि

(ले०—श्री विश्वनाथनारायण सिंह, एम० ए०, बी० एल०)

मैथिलीशरण जीवन, जागृति और गति के कवि हैं। इसी लिए वे विजय के कवि भी हैं।

× × ×

(१)

साधारणतः मनुष्य विजय को घटना समझते हैं। "अमुक अमुक में लड़ाई हुई, अमुक हारा और अमुक जीता।" यहाँ जीत एक घटना है। किंतु एक बार जो जीता, क्या वह बाद को कभी हार नहीं सकता? अथवा, ऐसा भी होता है कि जो एक बात में हार जाता है वह दूसरी बात में जीत जाय, वा एक से जो हार जाय वह दूसरे से जीत जाय। तब वस्तुतः विजय क्या है, और कौन है विजेता?

काल के सागर में कोई अज्ञातशक्ति झञ्झा के समान जीवनजल हिलोड़ती रहती है। घटना-रूपी लहरें गिरने को उठती हैं और उठने को गिरती हैं। यदि इस उठने और गिरने मात्र को हम विजय और पराजय मान लें तो विजय का कोई महत्त्व नहीं रहता। विजय की सार्थकता उसके स्थायित्व में ही हो सकती है।

किंतु काल के संमुख कुछ स्थायी नहीं। सब पर वही विजय प्राप्त करता है; क्योंकि वही 'बचा' रहता है—वही सबका परिणाम है। यदि काल पर भी विजय पाई जा सके तो वही सच्ची विजय है; और ऐसा विजयलाभ करनेवाला ही है सच्चा विजेता। कठोपनिषद् में नचिकेता ने मृत्यु से यही जानना चाहा था—

"अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद"

—कठ० १।२।१४

जो भूत और भविष्य से भी अन्य है ऐसा आप जिसे देखते हैं, वही मुझ से कहिए।

मृत्यु ने उत्तर दिया कि काल के बन्धन से मुक्त एक मात्र 'आत्मतत्त्व' है, और उसकी अनुभूति ही मरण से मुक्ति देती है अर्थात् काल पर विजय प्राप्त कराती है।

"अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते"

—कठ० १।३।१५

जो अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय, रस-हीन, नित्य तथा गन्धहीन है; जो अनादि, अनन्त, महत्तत्त्व से भी पर और ध्रुव है, उस आत्मतत्त्व को जानकर पुरुष मृत्यु के मुख से छूट जाता है।

गीता भी इसी आत्मानुभूति में ही—नर नारायण के योग में ही विजय बतलाती है—

"यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

— गी० १८।७८

यह तो हुई 'विजय' की सिद्धावस्था। किंतु 'विजय' के मार्ग पर बढ़ना भी तो विजय ही है। इसी साधनावस्था का निर्देश कर मृत्यु ने नचिकेता को उपदेश दिया—

"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत"

—कठ० १।३।१४

अर्थात् 'जियो, जागो और बढ़ो। जीवन,

जागृति और गति विजय की गायत्री हैं। अस्तित्व को ही जीवन कहते हैं, जागृति ज्ञान का नाम है। ज्ञानमूलक स्फूर्ति गति है।

जीवन जागृति और गति विजय के अङ्ग हैं। जिसकी कविता में इनका संदेश है, वही विजय का कवि है। इसी कारण मैथिलीशरण विजय के कवि हैं।

(२)

मैथिलीशरण की प्रारम्भिक रचनाओं से यह प्रकट है कि उन्हें कविता के द्वारा देश को जागृत करने और कर्मठ बनाने की धुन थी। इसी धुन में उन्होंने ओजस्वी भाषा में पुरुषार्थ का उपदेश दिया है, भूतकाल की उत्साहवर्द्धक गाथाएँ सुनाई हैं और वीर रस का आश्रय लेकर कार्यशीलता को उत्तेजित किया है। इस प्रकार उपदेश, चरित्रचित्रण और रसानुभूति द्वारा उन्होंने देश को जीवित, जागृत एवं उन्नतिशील बनाने का प्रयत्न किया है।

मैथिलीशरण की कविता में उनका आशावाद माला में सूत की तरह पिरोया हुआ है। आशा के बिना उत्साह नहीं होता, और उत्साह के बिना विजय कहाँ मिलती है? पुराने नीतिकारों का कहना भी था कि विजय के लिए आवश्यक तीन शक्तियों में उत्साहशक्ति सर्वोपरि है। मैथिलीशरण के आशावाद का आधार है उनकी भक्ति की अटल निष्ठा, अपने देश की छिपी हुई शक्ति और आध्यात्मिक महत्ता पर अखण्ड विश्वास।

मैथिलीशरण का काव्यजीवन स्वयं एक बड़ी विजय है। अभ्यास और श्रुति से कोई क्या कर सकता है, इसका उनकी कविताएँ बहुत बड़ा उदाहरण हैं। उनकी आदि रचनाओं और अब की रचनाओं की तुलना इस बात को सिद्ध कर देती है। मैथिलीशरण न केवल दूसरों को ही विजय का संदेश देते हैं—वह स्वयं एक बड़े विजयी हैं।

मैथिलीशरण की रचनाओं को दो युगों में बाँटा जा सकता है।

आदि युग के मैथिलीशरण में वक्तृत्व अधिक है, कवित्व कम। उत्तर युग में कवित्व की प्रधानता है, वक्तृत्व गौणरूप से है।

आदि युग के मैथिलीशरण की कविता पढ़कर मध्य युग के चारणों का स्मरण हो आता है, उत्तर युग के मैथिलीशरण सचमुच में क्रान्तदर्शी प्रतीत होते हैं।

आदि युग के मैथिलीशरण वीर रस के कवि हैं, दूसरे युग में वीर का स्थान धीरे धीरे करुण ले लेता है—और अब तो उनकी कविताकामिनि का उज्वल शृङ्गार अपनी कमनीयता से सहयोगिनियों को लजा रहा है।

पहले युग में कवि के शङ्ख की फूँक सोतों को जगानेवाली, जगे हुओं को उठानेवाली एवं उठे हुओं को बढ़ा देनेवाली है, किंतु दूसरे युग में कवि अपनी हृदयमुरली की टेर सुन, आप आपा खो देता है और दूसरे भी सुधबुध खो बैठते हैं।

पर दोनों युगों के मैथिलीशरण हैं विजय के ही कवि!

अन्तर इतना ही है पहले युग में वह विजय की साधनावस्था में हैं, दूसरे में विजय की सिद्धावस्था में—

पहला युग उनका है—शङ्ख युग, दूसरा मुरली युग।

पहले में है विजय का चञ्चल एवं स्फूर्तिमय रूप, दूसरे में है विजय का स्थिर एवं अनन्य रूप।

(३)

सरल और ओजस्वी शब्दों में उच्च आदर्शों की अभिव्यक्ति करने में मैथिलीशरण एक ही हैं। इसी कारण उनकी कविता ने राष्ट्रीय भावनाओं को जितनी उत्तेजना दी है उतनी दूसरे किसी कवि की कविता ने नहीं दी। 'भारतभारती' हिंदी की उन पुस्तकों में से है, जिसका देश के युवकों के चरित्र पर प्रभाव पड़ा है। एक दिन ऐसा था जब स्कूलों और कालिजों के विद्यार्थी उसे पढ़कर नवजीवन का अनुभव करने लगे थे। उसके प्रारम्भ में कवि ने यह शुभकामना प्रकट की थी—

"भगवान् ! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती"

यह कामना फली और खूब फली। सचमुच में कवि की भारती हिंदी जगत् के कोने कोने में गूँज उठी। इस सफलता का कारण यह था कि इसने एक पददलित जाति को उसके महिमामय अतीत का स्मरण दिलाया था, उसकी तत्कालीन बुराइयों की खुली टीका की थी और उसे एक गौरव-मय भविष्य का स्वप्न दिखाया था। वह विजय का संदेश सुना रहा था—ऐसे समय में—जब लोक उसके लिए लालायित था। उसने अपना काम ही यह बना लिया था—

"धैर्यच्युतों को धैर्य से कवि ही मिलाना जानते
वे ही नितान्त पराजितों को जय दिलाना जानते।"

"वैतालिक" की प्रौढ़ भाषा में कवि स्वयं वैतालिक बनकर अपने देशवासियों की मोहनिद्रा तोड़ने के लिए गाता है—

"प्रकृति पुरुष की है क्रीड़ा,
कभी विकास, कभी व्रीड़ा।
जीव, ब्रह्म, माया न तजो,
शिव को शक्ति समेत भजो।"

दधीचि के बलिदान की कथा में कवि को कङ्कालावशेष भारत की विजय का रहस्य सा छिपा दिखाई देता है। वह पराक्रान्त देश को आश्वासन देते हुए कहता है—

तुम में हो या न हो शेष कुछ, पर हो तो तुम आर्य अभी,
सूख गया तनु तक तो सूखे, रक्त मांस हो या कि न भी,
अरे, हड्डियाँ तो शरीर में बनी हुई हैं अभी वही—
जिनसे विश्रुत वज्र बना था, सिद्ध हुए सुरकार्य सभी।"

'हिंदू' तो कवि ने इसी उद्देश से लिखा ही है, जिसमें जाति के संगठन को प्रोत्साहन मिले। इस पुस्तक की भूमिका में कवि ने अपने बारे में यों लिखा है—"उसकी तुच्छ तुकबंदी सीधे मार्ग से चलती हुई राष्ट्र किंवा जातिगङ्गा में ही एक डुबकी लगाकर हरगङ्गा गा सके तो वह इतने से ही कृतकृत्य हो जायगा।"

किंतु यह समझ लेना भूल होगी कि कवि का विजयसंदेश केवल अपने देश अथवा जाति के लिए ही है। उसमें मनुष्यमात्र को नैतिक बल प्रदान करने की शक्ति है; क्योंकि वह "जीवेम शरदः शतम्" की आकाङ्क्षा रखनेवाले महर्षियों के समान 'जूझने और जीने' का उपदेश देता है:—

"मरे और झंझट से छूटे" यह है हारी बात,
हों तो हों आघात, डरो मत, करो स्वयं प्रतिघात।
जियो और जूझो, जीवन का चिह्न यही है तात!
देवयत्न ही दूर करेंगे दैत्यों का उत्पात।
"जियो अर्थ के अर्थ, धर्म के अर्थ, काम के अर्थ,
जियो मुक्ति के अर्थ और निज अमर नाम के अर्थ।"

वह कच्चे वेदान्तियों के समान मुक्ति का राग नहीं अलापता; क्योंकि वह बद्ध भावना को ही बन्धन का कारण समझता है। उसे आवागमन से ऊब नहीं है; क्योंकि उसे विश्वास है कि उसका जीवन अनन्त है—

"जूझूँगा, जीवन अनन्त है, साक्षी बनकर देख,
और खींचता जा तू मेरे जन्म कर्म की रेख।
सिद्धि का है साधन ही मोल,
सखे, मेरे बन्धन मत खोल।"

कभी भक्त्युद्रेक से प्रेरित होकर वह जीवन को परमात्मा से प्राप्त धरोहर के रूप में समझता है, जिसे लौटा देने पर उसे दुःख वा ग्लानि होने की अपेक्षा आनन्द ही होता है।

"तुम मुझको जो देते हो,
फिर जब वह ले लेते हो।
तब सब कोई बतलाता है
कि है भाग्य मेरा फूटा।
किंतु कहो मेरे स्वामी!
क्या तब मैं भी यही कहूँ
या यह कहकर शान्त रहूँ
कि तो, आज दायित्व भार से
अनायास ही मैं छूटा।"

भगवान् बुद्ध ने सांसारिक कष्टों के दृश्यों से ऊबकर महाभिनिष्क्रमण किया था। किंतु कवि की दृष्टि में इस प्रकार संसार से भाग खड़े होने की आवश्यकता नहीं थी। कवि की यशोधरा ने घर रह कर ही उस 'बुद्धत्व' की प्राप्ति की, जिसके लिए सिद्धार्थ को वन वन की ख़ाक छाननी पड़ी। वह अपनी यशोधरा के द्वारा कहवाता है—

"आओ, प्रिय! भव में भाव विभाव भरें हम,
डूबेंगे नहीं कदापि, तरें न तरें हम।
कैवल्यकाम भी काम, स्वधर्म धरें हम,
संसारहेतु शत बार सहर्ष मरें हम।
तुम, सुनो क्षेम से, प्रेमगीत मैं गाऊँ।
कह, मुक्ति, भला किसलिए तुझे मैं पाऊँ!"

मरने से जो डरता है उसे ही मुक्ति की खोज होती है। जिसे ऐसा डर नहीं, उसे मुक्ति की परवा नहीं। वही चाहता है "संसारहेतु शत बार सहर्ष मरें हम।" वही है नित्यमुक्त और वही है सच्चा विजेता। गीता के "लोकसंग्रहमेवाऽपि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि" का यही तात्पर्य है।

मैथिलीशरण मानवता के पक्के पुजारी हैं। जिस मनुष्यता के प्रभाव से नारायण को नर का रूप लेना पड़ा उस नरत्व का उनको भारी अभिमान है। उनके राम आदर्श मानव हैं। वह सीता से कहते हैं—

"भव में नव वैभव प्राप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया!
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।"

ऐसे देवाराधन से, जिससे मनुष्य अपने को तुच्छ समझने लगता है मैथिलीशरण को बड़ी चिढ़ है। द्वापर में बलराम के मुँह से वह कहलाते हैं—

"कर्मों की खेती है जगती, जैसी जिसने बोई;
देवों का भी कर्मनियन्ता एक और ही कोई।"

फिर,

इन्द्र वृष्टि के अधिकारी हैं तो भागी हैं हम भी;
किंतु शून्य को ही ताकें तो जड़ हैं, हम जङ्गम भी।"

और न वह इस मत के हामी हैं कि कलियुग के आगमन से हमारी शक्ति क्षीण हो गई है, अतः हमारा भविष्य अन्धकारमय है, हम फिर पहले के से महान् नहीं हो सकते। वह कहते हैं:—

"अपने युग को हीन समझना आत्महीनता होगी;
सजग रहो, इससे दुर्बलता और दीनता होगी।
जिस युग में हम हुए, वही तो अपने लिए बड़ा है;
अहा, हमारे आगे कितना कर्मक्षेत्र पड़ा है!"

फिर,

"बड़ा गोप पद से क्या, तुम क्यों 'गोप गोप' कहते हो?

ऐसे ही तो ऋषि रहते हैं, जैसे तुम रहते हो।
मनुष्यत्व जन में ही रहता, नहीं विशाल भवन में;
यह भी क्या दुर्लभ है तुमको, जो तुम चाहो मन में।"

विजय के लिए जागृति की आवश्यकता है। आशा की आवश्यकता है। मृत्यु से निर्भय रहने की आवश्यकता है। आत्मगौरव की आवश्यकता है और आवश्यकता है जीवित रहने का दृढ़ निश्चय किये रहने की। किंतु इन सबों से अधिक आवश्यकता है अनवरत रूप से कुछ करने की—निरन्तर कार्यशील रहने की। तभी विजय मिलती है। इसी लिए हमारा विजय का कवि, कहता है—

"न हो एक उन्माद, एक धुन, एक लगन यदि जन में,
तो उस अप्रमत्त को लेकर है क्या लाभ भुवन में?
देख रहा है, समझ रहा है, किंतु नहीं कुछ करता,
कर्मभूमि का भाररूप वह डूब क्यों नहीं मरता।"

\+ + +

(४)

मैथिलीशरण ने अपने प्रबन्ध अथवा निबन्ध काव्यों के लिए ऐतिहासिक अथवा पौराणिक वीरों के आख्यान ही चुने हैं। इन काव्यों में प्रायः वीररस की प्रधानता है। पात्रों का चरित्रचित्रण भी रस के अनुकूल ही हुआ है। इन बातों से यही सिद्ध होता है कि मैथिलीशरण विजय के कवि हैं।

'जयद्रथवध', 'सैरन्ध्री' 'बकसंहार' और 'वनवैभव' ये चार महाभारत की घटनाओं के आधार पर हैं।

'जयद्रथवध' में अभिमन्यु के वध से क्रुद्ध अर्जुन द्वारा जयद्रथ के मारे जाने की कथा है। 'सैरन्ध्री' में द्रौपदी के अपमान से क्रुद्ध भीम के द्वारा कीचकवध का वृत्तान्त है। दोनों का विषय है अन्याय पर न्याय की विजय।

'वनवैभव' में पाण्डवों को नीचा दिखाने की इच्छा से वन में आये कौरवों के गन्धर्वों द्वारा पकड़े जाने और फिर पाण्डवों द्वारा मुक्त किये जाने की कथा है। इसमें युधिष्ठिर के चरित्र के द्वारा कवि ने विजय के मर्म को समझाने का प्रयत्न किया है। अर्जुन, भीम और द्रौपदी को गन्धर्वों के हाथ कौरवों का पराभव देख प्रसन्नता होती है। उन्हें ऐसा जान पड़ता है मानों बिना प्रयास के विजय मिल गई। किंतु युधिष्ठिर के कहने पर भीमार्जुन को कौरवों की सहायता करनी पड़ती है। युधिष्ठिर का चरित्र उनके निम्नलिखित कथन से झलक रहा है:—

"पाप का क्षणिक प्रभाव विलोक,
लोभ यदि सके न कोई रोक।
शोक तो उसकी मति पर शोक!
बना क्या बिगड़ा जब परलोक!
विजय है वही कि सब संसार
करे पीछे भी जयजयकार।"

'तिलोत्तमा' का कथानक पौराणिक है। इसमें 'तिलोत्तमा' अप्सरा को साधन बनाकर देवताओं ने सृष्टि के उत्पीड़क दो दैत्यों का नाश करवाया है, जो आपस में भाई भाई थे। इस नाटक का पटाक्षेप दानवों के हाहाकार और देवताओं के जयजयकार के साथ होता है। 'शक्ति' में समग्र देवों की कलाओं की समष्टि दुर्गा का शुम्भ, निशुम्भ एवं महिषासुर पर विजय प्राप्त करने की कथा है। दुर्गा वीर रस की मूर्ति हैं। ललना होने पर भी वह सिंहवाहिनी हैं। विजय का पर्व विजया दशमी उनके विजय की पुण्यतिथि है।

'रङ्ग में भङ्ग' तथा 'विकट भट' दोनों वीररस-

प्रधान काव्य हैं। 'रङ्ग में भङ्ग' कवि की सर्वप्रथम रचना है। 'विकट भट' बहुत बाद का है। इन दोनों काव्यों का उद्देश्य भूतकाल के शौर्य की स्मृति दिलाकर हमें उत्साहित करता है। 'विकट भट' की भाषा में जो ओज है और उसके पात्रों में जैसी तेजस्विता है वैसा ओज और वैसी तेजस्विता कवि के और किसी निबन्ध में नहीं पाई जाती। जोधपुर के नरेश विजयसिंह ने अपने सरदार देवीसिंह को उनके खरे उत्तर से रुष्ट होकर मरवा डाला था। राजा को इसका पश्चात्ताप हुआ। उसने देवीसिंह के द्वादशवर्षीय पुत्र को राजसभा में बुलवा भेजा। चलते समय माता ने पुत्र से कहा था, "देखो बेटा! दबना नहीं—चाहे भले तेरी जान पिता की ही तरह चली जावे।"

पुत्र दरबार में आता है। अब तनिक कवि के मुँह से ही सुनिए—

"निर्भय मृगेन्द्र नया करता प्रवेश है—
वन में ज्यों, डाले बिना दृष्टि किसी ओर त्यों,
भोर के भभूके सा प्रविष्ट हुआ साहसी
बालवीर, मन्द मन्द धीर गति से धरा
मानों धसी जा रही थी, बदन गभीर था,
उठता शरीर मानों अङ्ग में न आता था,
वक्षस्थल देख के कपाट खुले जाते थे,
मरने मारने ही को मानों कटि थी कसी,
शोभित सुखड्ग उसमें था खरे पानी का,
पर्त्तली पड़ी थी उपवीततुल्य कंधे में,
उसमें कटार खोंसी, जिसकी समानता
करने को भौंहें भव्य भाल पर थीं तनी।"

राजा ने लड़के से वही प्रश्न पूछा जिसका खरा जवाब देने के कारण लड़के के पिता को जान से हाथ धोना पड़ा था।

बालक निर्भय स्वर में बोला—

—"कटारी? धरा काँपी सदा जिससे?
बिजली की बेटी वह? भौंह महाकाल की?
शत्रु के चबाने को कराल डाढ़ यम की?
चंपावत ठाकुरों की 'पत' वह लोक में?
पूछते हैं आप क्या उसी की बात?"
'दादा ने कटारी वह मेरे पिता के लिए
छोड़ी, और मेरे पिता सौंप गये मुझको।
पर्त्तली के साथ वह मेरे इस पार्श्व में
अब भी है पृथ्वीनाथ, एक जोधपुर क्या?
कितने ही दुर्ग पड़े रहते हैं सर्वदा
क्षात्रकीर्तिवाली पर्त्तली में उसकी।
सच्ची बात कहने से आप रूठ जायँगें,
किंतु जब पूछते हैं, कैसे कहूँ झूठ मैं?
होता जो न जोधपुर पर्त्तली में उसकी
कहिए तो कैसे वह प्राप्त होता आपको।"

'गुरुकुल' में सिक्ख गुरुओं के चरित्र का वर्णन है। इन्हीं गुरुओं के उच्च आदर्शों और बलिदानों पर विजयिनी सिक्ख जाति की स्थिति बनी है। इस पुस्तक का उद्देश्य भी वही है, जो उपरोक्त दो पुस्तकों का बताया जा चुका है।

भारतभारती, वैतालिक तथा हिंदू उपदेशात्मक काव्य हैं, और इनकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं।

पद्यप्रबन्ध और स्वदेशसंगीत स्फुट कविताओं के संग्रह हैं, जिनमें अधिकांश वीररसप्रधान हैं।

'पत्रावली' में ऐतिहासिक व्यक्तियों द्वारा लिखे गये पत्रों को पद्य का रूप मिला है। 'भारतभारती' के समान यह भी उपदेशात्मक ही है।

'शकुन्तला' और 'पञ्चवटी' में दो प्रसिद्ध कथानकों को काव्य का रूप मिला है। 'शकुन्तला' में दुष्यन्त की प्रसिद्ध कथा है। यह काव्य सर्वदमन

के जन्म का उल्लेख करके ही समाप्त होता है। इसी सर्वदमन ने—

"जीत अन्त में सब मही—
प्रजाभरण से भरत नाम पाया सही।"

'पञ्चवटी' में लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के विरूपकरण की कथा है। इसी घटना में राक्षसों से भावी वैर और लङ्काविनाश का बीज निहित है। अतएव यह राक्षसविजय की भूमिका सी है। तभी न रामचन्द्र भावी आपदाओं की आशङ्का कर आश्वासन देते हुए कहते हैं:—

"यदि संकट ऐसे हों, जिनको तुम्हें बचाकर मैं झेलूँ,
तो मेरी भी यह इच्छा है, एक बार उनसे खेलूँ।"

'अनघ' दुष्टता पर शिष्टता की विजय की एक कथा है, जिसका आधार एक बौद्ध जातक है।

'किसान' आधुनिक काल की एक कथा है। इसमें जमींदारों और साहूकारों का ग्रामीणों पर किये गये अत्याचार और कुली होकर विदेश गये भारतीयों पर की गई पाशविकताओं का सजीव चित्र है। किंतु इसका नायक भी अन्त में जर्मन महायुद्ध में भाग लेता है और उसे 'विक्टोरिया क्रास' प्राप्त होता है।

'साकेत', 'यशोधरा', 'सिद्धराज' और 'द्वापर' गुप्तजी के उत्तरकाल की रचनाएँ हैं। इनमें 'विजय' का वह स्थूल रूप नहीं, जो उनके आदि काल की रचनाओं में पाया जाता है।

\+ + + +

(५)

सेना सजी सजाई खड़ी है। दिग्दिगन्त को तुमुल नाद से व्याप्त कर शङ्ख बज उठता है। युद्ध करने की आज्ञा मिल जाती है। योद्धा हथियार उठाकर परपक्ष पर आक्रमण कर देते हैं।

कालिन्दीकूल के एक निभृत निकुञ्ज में वंशी बजती है। उसके स्वर में न जाने कौन सी मोहिनी है कि गोकुल की सभी गोपियाँ—

"सुनत मुरली न धीर धरिकै,
चलीं पित मात अपमान करिकै।
लरत निकसीं सबै तोर फरिकै,
भई आतुर बदन दरस हरि कै।"

पशुपक्षियों की भी ऐसी ही अवस्था हुई है। वृक्ष भी निस्पन्द हो गये हैं, यमुना का प्रवाह थम सा गया है। जड़ जङ्गम सुध बुध खो बैठते हैं। प्रकृति स्तब्ध हो जाती है।

शङ्ख विजययात्रा का घोष है।
मुरली रास का आह्वान है।

शङ्ख सक्रिय होने की आज्ञा देता है। मुरली की टेर सुन, सारे शारीरिक व्यापार शिथिल पड़ जाते हैं।

शङ्ख शत्रुओं पर धावा बोल देने की चुनौती है।

मुरली आत्मा की पुकार है, जो अपनी ओर बरबस खींच लेती है।

शङ्ख सुनकर हमारी वृत्तियाँ बहिर्मुख होती हैं, मुरली सुनकर वे अन्तर्मुख हो जाती हैं।

शङ्ख कर्मयोगी कृष्ण बजाते हैं, वंशी लीलामय गोविन्द।

शङ्ख और मुरली दोनों विजय के द्योतक हैं। शङ्ख शत्रुविजय का द्योतक है। मुरली आत्मविजय, आत्मानुभव की द्योतिका है।

'भारतभारती' और 'वैतालिक' में मैथिलीशरण ने कर्म का शङ्ख फूँका है। किंतु 'झङ्कार' की कविताओं से ऐसा आभास मिल रहा है कि कवि के हृदय में रह रहकर भक्ति की वंशी बज उठती है, जिसके कारण वह शङ्ख बजाना कभी कभी भूल जाता है।

किंतु अभी तक—झङ्कार में—वह निश्चय नहीं कर पाया है कि वह शङ्ख फूँका करे अथवा मुरली की तान में अपने को खो बैठे।

यदि वह निश्चय कर पाता तो ऐसा क्यों कहता ?—

"हा ! इससे तो यही भला है तू जो शङ्ख बजावे,
जिसका सीधा एक 'जूझना' अर्थ समझ में आवे।
गदा चक्र भी पद्मतुल्य हैं जीव मुक्ति झट पावे,
अब भी सँभली नहीं सृष्टि जो वेणुवृष्टि सह जावे।"

कवि की मानसिक परिस्थिति उस मुग्धा की सी है, जो यौवन के सुख का एक बार आस्वादन कर लेने के कारण उसी ओर खिंचती है, किंतु साथ ही उसे अपना बालापन खो बैठने की ग्लानि भी होती है। तभी न वह कहता है—

"विष बरसाती हुई बाँसुरी, हाँ, पीयूष पिलाती,
मार मार फिर मारणकारण बारंबार जिलाती।"
"काले ! तेरी एक फूँक में—मैं क्या कहूँ अरे रे।
कोटि मूर्च्छनाएँ जगती हैं तन में मन में मेरे।"

किंतु यह भी स्पष्ट है कि कवि के ऊपर बाँसुरी अपनी मोहिनी डाल चुकी है। वह अब पहले की तरह शङ्ख न फूँका करेगा। देखिए न वह तो स्वयं यही कहता है—

"जब तक रही अर्थ की मन में मोहकारिणी माया,
तब तक कोई भाव भुवन का भूल न मुझको भाया।
मिटी न तृष्णा, मिला न जीवन बहुतेरा मुँह बाया।
अर्थ भूलकर इसी लिए अब ध्वनि के पीछे धाया।"

'द्वापर' में सचमुच ही शङ्ख का स्थान वेणु ने ले लिया है। सुनिए—

"रामभजन कर पाञ्चजन्य ! तू, वेणु बजा लूँ आज अरे,
जो सुनना चाहे सो सुन ले, स्वर ये मेरे भाव भरे—
कोई हो, सब धर्म छोड़ तू आ, बस मेरा शरण धरे,
डर मत, कौन पाप वह, जिससे मेरे हाथों तू न तरे ?"

'द्वापर', 'साकेत' और 'यशोधरा' में विजय का अत्यन्त सूक्ष्म एवं आध्यात्मिक रूप ही पाया जाता है।

कवि के 'द्वापर' में कंस पर कृष्णविजय की प्रधानता नहीं है।

कवि के 'साकेत' में राम की रावणविजय की घटना सर्वोपरि नहीं है।

'यशोधरा' में गौतम की मारविजय न जाने किस कोने में छिपी है।

'द्वापर' में सरला कुब्जा के आत्मनिवेदन और कृष्ण के अर्द्धनारीश्वर की झाँकी के सामने सभी कुछ झूठा जान पड़ता है।

'साकेत' में उर्मिला का "परिपाण्डु दुर्बल कपोल आनन" जहाँ तहाँ दिखाई देता है।

'यशोधरा' में 'नियमक्षामसुखी' यशोधरा की तपश्चर्या गौतम के त्याग को लजा रही है। उर्मिला, यशोधरा और राधा तीनों को विरह की आग में तपना पड़ा। इस अग्निपरीक्षा में तीनों की प्रेम-भावना ने उज्वल कान्ति पाई। अपने प्रियपात्र के निरन्तर चिन्तन के द्वारा तीनों को आत्मविस्मृति हुई। तीनों ने अपने अपने प्रियपात्र से तन्मयता का अनुभव किया। इस प्रकार तीनों ने विरह के कारणभूत पार्थिवता पर विजय पाई है।

यद्यपि, इस प्रकार उर्मिला यशोधरा और राधा तीनों ने प्रेम के द्वारा विजय की उस सिद्धावस्था का अनुभव किया है, जो आत्मानुभूति के द्वारा ही होती है; तथापि तीनों की अवस्था में तारतम्य है। उर्मिला में आत्मनिवेदन की पराकाष्ठा है। वह लक्ष्मण के संमुख मान का भाव बिलकुल भूल जाती है। कहती है—

"जब थी तब थी आलि, उर्मिला उनकी रानी,
वह बरसों की बात, आज हो गई पुरानी।

शेष ८६५ पृष्ठ पर

प्राप्ति स्वीकार

भारती भंडार, रामघाट, बनारस सिटी से निम्न लिखित पुस्तकें समालोचनार्थ प्राप्त हुई हैं। इनकी विस्तृत आलोचना आगामी अङ्कों में यथा अवसर की जायगी।

(१) अजातशत्रु—लेखक श्री जयशंकरप्रसादजी 'प्रसाद'; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग २०६ पृष्ठ; अजिल्द पुस्तक का मूल्य १)

लेखक द्वारा लिखित एक ऐतिहासिक नाटक है।

(२) राजश्री—ले० श्री जयशंकरप्रसादजी 'प्रसाद'; पृष्ठसंख्या ९० के लगभग; मूल्य ।।=)

लेखक द्वारा लिखित यह एक ऐतिहासिक नाटक है।

(३) आकाशदीप—ले० श्री जयशंकरप्रसादजी 'प्रसाद'; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग २२८ पृष्ठ; सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) अजिल्द १।।।)

लेखक की १९ कहानियों का संग्रह है।

(४) छायापथ—ले० राय कृष्णदासजी; डिमाई १६ पेजी आकार के ९६ पृष्ठ; मूल्य ।।)

इस पुस्तक में लेखक की छायावादी कविताओं का संग्रह है।

(५) कङ्काल—ले० श्री जयशंकरप्रसादजी 'प्रसाद'; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग ३०८ पृष्ठ; एंटिक पेपर पर छपी कागज की जिल्द का ३)

यह लेखक द्वारा लिखित एक सामाजिक नाटक है।

(६) अनाख्या—ले० राय कृष्णदासजी; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग १६८ पृष्ठ; कागज की जिल्द का मूल्य १।)

लेखक द्वारा लिखी गई तथा प्रभा, त्यागभूमि आदि हिंदी की प्रसिद्ध पत्रिकाओं में प्रकाशित १२ आख्यायिकाओं का संग्रह है।

(७) चन्द्रगुप्त—ले० श्री जयशंकरप्रसादजी 'प्रसाद'; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग २७६ पृष्ठ; सजिल्द पुस्तक का मूल्य २।।)

'प्रसाद' जी द्वारा लिखित यह एक ऐतिहासिक नाटक है।

(८) स्नेह—ले० पं० काशीपति त्रिपाठी बी० ए०; मन्त्री काशी विद्यापीठ बनारस, प्रथम संस्करण, डबल क्राउन १६ पेजी साइज के लगभग १८० पृष्ठ; मूल्य १)

(९) विचारविमर्ष—ले० पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग ५७४ पृष्ठ; मूल्य २।।)

आचार्य द्विवेदीजी के लेखों का यह दूसरा संग्रह है।

(१०) संकलन—ले० पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग १८८ पृष्ठ; मूल्य १।)

(११) कसौटी—ले० रावर्ट लुई स्टीवेंसन; अनुवादक, श्री रामचन्द्र टंडन; पृष्ठसंख्या ६४ के लगभग; मूल्य ।।)

प्रस्तुत पुस्तक लेखक की ८ चुनी हुई कहानियों का अनुवाद है।

(१२) गुञ्जन—ले० श्री सुमित्रानन्दन पंत; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग १०६ पृष्ठ; मूल्य १॥) । यह पुस्तक पंतजी की कविताओं का संग्रह है ।

(१३) द्वादशी—ले० पं० वाचस्पति पाठक; प्रथम संस्करण, डबल क्राउन १६ पेजी साइज के लगभग २१२ पृष्ठ; मूल्य १) । लेखक की कहानियों का संग्रह है ।

(१४) स्पर्धा—लेखक श्री जैनेन्द्रकुमार; प्रथम संस्करण, पृष्ठसंख्या ६४ के लगभग; मूल्य ।=)

(१५) पगला—ले० खलील ग्रिवान; अनुवादक राय कृष्णदासजी । प्रथम संस्करण, डबल डिमाई १६ पेजी साइज के लगभग ५० पृष्ठ; अजिल्द पुस्तक का मूल्य ॥)

प्रस्तुत पुस्तक मूल लेखक की The Madman का अनुवाद है ।

(१६) अशया—ले० प्रसिद्ध रूसी औपन्यासिक तुर्गनेव; अनुवादक श्री कृष्णानन्दजी । प्रथम संस्करण, पृष्ठसंख्या ११४ के लगभग; मूल्य ॥)

(१७) शिक्षा और स्वराज्य—ले० राय बहादुर पं० लज्जाशंकर झा, एम० ए०, आई० ई० एस० प्रिंसिपल ट्रेनिंग कालेज, हिंदू युनिवर्सिटी, बनारस । प्रथम संस्करण, डबल क्राउन १६ पेजी साइज के लगभग २५६ पृष्ठ; मूल्य १॥)

(१८) तितली—ले० जयशंकरप्रसादजी 'प्रसाद'; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग ३९२ पृष्ठ; सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) । यह प्रसादजी लिखित एक सामाजिक उपन्यास है ।

(१९) सिन्दूर की होली—ले० श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र, डबल क्राउन १६ पेजी साइज के लगभग १८८ पृष्ठ मूल्य १॥) सजिल्द का । यह एक सामाजिक नाटक है ।

(२०) राजयोग—ले० श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र; प्रथम संस्करण, पृष्ठसंख्या १९८ के लगभग; मूल्य १।); प्राक्कथन लेखक श्री अमरनाथ झा, एम० ए० (अध्यक्ष अंग्रेजीविभाग इलाहाबाद यूनीवर्सिटी) । यह एक नाटक है ।

(२१) जनमेजय का नागयज्ञ—ले० श्री जयशंकरप्रसादजी 'प्रसाद'; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग १३८ पृष्ठ; सजिल्द पुस्तक का मूल्य १)

लेखक द्वारा लिखित एक ऐतिहासिक नाटक है ।

(२२) मैंने कहा था—ले० श्री लक्ष्मीकान्त झा; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग १४६ पृष्ठ; मूल्य सजिल्द १॥)

इस पुस्तक में लेखक की स्वलिखित २४ निबन्धों का संग्रह है ।

(२३) लहर—ले० जयशंकरप्रसादजी 'प्रसाद'; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग ९२ पृष्ठ; एंटिक ऊव कागज पर छपी सजिल्द तथा कवर सहित पुस्तक का मूल्य १)

इस पुस्तक में 'प्रसाद'जी के स्फुट कविताओं का संग्रह है ।

(२४) रूसी कहानियाँ—प्रकाशक की ग्रन्थसंख्या ४१, अनुवादक रामचन्द्र टंडन । प्रथम संस्करण । डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग २८६ पृष्ठ; सचित्र, मूल्य ३)

इसमें रूस के ११ प्रसिद्ध कहानीलेखकों की स्फुट कहानियों का संग्रह है ।

(२५) झरना—ले० श्री जयशंकरप्रसादजी 'प्रसाद'; पृष्ठसंख्या ९० के लगभग, मूल्य ॥)

यह लेखक की छायावादी कविताओं का संग्रह है।

(२६) बुद्धदेव अथवा मूर्तिमान् त्याग—ले० स्वर्गीय विश्वम्भरसहाय 'व्याकुल'; लेखक अनुज श्री मुरारीशरण माङ्गलिक द्वारा संपादित; प्रथम संस्करण; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग १९० पृष्ठ; सजिल्द पुस्तक का मूल्य १॥)

प्रस्तुत पुस्तक में भगवान् बुद्धदेव का जीवनचरित्र नाटकरूप में दर्शाया गया है।

(२७) प्रदीप—ले० श्री वाचस्पति पाठक; प्रथम संस्करण, विक्रेता लीडरप्रेस, प्रयाग; डबल क्राउन १६ पेजी साइज के लगभग १७० पृष्ठ; मूल्य १)

इस पुस्तक में पाठकजी की आठ सुन्दर कहानियों का संग्रह है।

(२८) कामना—ले० श्री जयशंकरप्रसादजी 'प्रसाद'; विक्रेता,लीडरप्रेस, प्रयाग; द्वितीय संस्करण, डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग १२० पृष्ठ; सजिल्द पुस्तक का मूल्य १॥)

'प्रसाद' जी द्वारा लिखित यह एक नाटक है।

(२९) नीरव—ले० शान्तिप्रिय द्विवेदी; प्रथम संस्करण; पृष्ठसंख्या ५२ के लगभग; मूल्य ॥)

इस पुस्तक में द्विवेदीजी की स्फुट कविताओं का संग्रह है।

(३०) कलरव—ले० विश्वकवि बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर; अनुवादक श्री रामचन्द्र टंडन, पृष्ठसंख्या ८० के लगभग, मूल्य ॥=)

यह पुस्तक रवि बाबू के स्ट्रेवर्ड्स का अनुवाद है।

(३१) समन्वय—ले० बा० भगवान्दासजी; पृष्ठसंख्या डबल क्राउन १६ पेजी आकार के ४१८ के लगभग, मूल्य ३)

प्रस्तुत पुस्तक प्रसिद्ध दार्शनिक डा० भगवानदासजी के लिखे निबन्धों का संग्रह है।

(३२) स्कन्दगुप्त—ले० बा० जयशंकरप्रसादजी 'प्रसाद'; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग २५४ पृष्ठ; सजिल्द का मूल्य २॥)

यह 'प्रसाद' जी द्वारा लिखित एक ऐतिहासिक नाटक है।

(३३) ध्रुवस्वामिनी—ले० जयशंकरप्रसादजी 'प्रसाद'; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग ९६ पृष्ठ; सजिल्द पुस्तक का मूल्य ॥=); छपाई सफाई उत्तम।

'प्रसाद' जी द्वारा लिखित यह एक ऐतिहासिक नाटक है।

(३४) साधना—ले० राय कृष्णदासजी; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग १२० पृष्ठ; सजिल्द पुस्तक का मूल्य १)। यह एक गद्य काव्य है।

(३५) सुधांशु—ले० राय कृष्णदासजी; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग १०० पृष्ठ; अजिल्द का मूल्य ।॥)

इस पुस्तक में लेखक की १२ कहानियों का संग्रह है।

(३६) विशाखा—ले० जयशंकरप्रसादजी 'प्रसाद'; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग १२० पृष्ठ; कागज की जिल्द की पुस्तक का मूल्य १)

लेखक द्वारा लिखित यह एक ऐतिहासिक नाटक है। स्वरकार हैं प्रसिद्ध संगीतज्ञ लक्ष्मणदासजी 'मुनीम'।

(३७) प्रेमपथिक—ले० श्री जयशंकरप्रसादजी 'प्रसाद'; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग ३० पृष्ठ; एंटिक पेपर पर छपी सजिल्द पुस्तक का मूल्य ।=)

(३८) करुणालय—ले० श्री जयशंकरप्रसादजी

'प्रसाद'; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग ३२ पृष्ठ; सजिल्द पुस्तक का मूल्य ।)

यह एक दृश्य काव्य गीतिनाटक के ढंग पर लिखा गया तुकान्तविहीन ग्रन्थ है।

(३९) आँसू—ले० श्री जयशंकरप्रसादजी, 'प्रसाद'; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग ८० पृष्ठ; सजिल्द पुस्तक का मूल्य ॥)

'आँसू' पर 'प्रसाद' जी द्वारा लिखित कविताओं का यह संग्रह है।

(४०) महाराणा का महत्त्व—ले० श्री जयशंकर-प्रसादजी 'प्रसाद'; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग ३२ पृष्ठ; एंटिक कागज पर छपी सचित्र पुस्तक का मूल्य ।≈)

यह एक ऐतिहासिक काव्य है।

(४१) भावुक—ले० राय कृष्णदासजी; डबल क्राउन १६ पेजी साइज के लगभग ६८ पृष्ठ; छपाई सफाई उत्तम, सजिल्द पुस्तक का मूल्य ॥)

इस पुस्तक में लेखक की कुछ स्फुट कविताओं का संग्रह है, कुछ की स्वरलिपि भी अन्त में दे दी गई है। स्वरकार हैं प्रसिद्ध संगीतज्ञ लक्ष्मणदास-जी 'मुनीम'।

(४२) प्रवाल—लेखक राय कृष्णदासजी; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग ४० पृष्ठ; एंटिक पेपर पर छपी पुस्तक का मूल्य ।≈)

यह एक गद्यकाव्यग्रन्थ है।

(४३) व्रजरज—ले० राय कृष्णदासजी; विक्रेता लीडर प्रेस, प्रयाग मूल्य ।،)

(४४) दूध बताशा—किशोरकौमुदी की प्रथम किरण, ले० सोहनलाल द्विवेदी बी० ए०; डिमाई आठ पेजी के लगभग ५४ पृष्ठ; सजिल्द पुस्तक का मूल्य ।॥)। इसमें बालसाहित्य है।

(४५) संलाप—ले० राय कृष्णदासजी, प्रकाशक साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी। डबल क्राउन १६ पेजी आकार के लगभग ६४ पृष्ठ; पुस्तक का मूल्य ।≈)

इस पुस्तक में कहानियों का संग्रह है।

(४६) प्रतिध्वनि—ले० जयशंकरप्रसादजी, 'प्रसाद'; प्रकाशक, साहित्यसदन चिरगाँव, झाँसी; पृष्ठसंख्या ७६ के लगभग, डबल क्राउन १६ पेजी साइज के एंटिक पेपर पर छपी पुस्तक का मूल्य ।≈)

इस पुस्तक में लेखक द्वारा लिखी १५ कहानियों का संग्रह है।

(४७) परिचय—संकलनकर्ता पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी; प्रकाशक, साहित्यसदन चिरगाँव, झाँसी; पृष्ठसंख्या २०८ के लगभग; मूल्य १)। कवियों की रचनाएँ तथा उनके परिचय का अनूठा संग्रह है।

सामयिक पत्र पत्रिकाएँ

हिंदी

(१) हिंदुस्तानी—(त्रैमासिक) संपादक रामचन्द्र टंडन; प्रकाशक, हिंदुस्तान एकेडेमी, संयुक्तप्रान्त, इलाहाबाद; वार्षिक मूल्य ५)।

(२) सरस्वती—(मासिक) संपादक पं० देवीदत्त शुक्ल, श्री नाथसिंह; प्रकाशक, इंडियन प्रेस, प्रयाग। वार्षिक मूल्य ६॥)। सामाजिक तथा साहित्यिक पत्र है।

(३) विश्वमित्र—(मासिक) संपादक जगन्नाथप्रसादजी मिश्र एम० ए०, बी० एल०, शिवदेव उपाध्याय शतीश बी० ए०; प्रकाशक, विश्वमित्र कार्यालय १४/१ ए शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता। राजनीति और समाजशास्त्र का सुन्दर पत्र है।

(४) काव्यकलाधर—(मासिक) संपादक रमाकान्त त्रिपाठी "प्रकाश", सिद्धिनाथ 'सिद्धि'; प्रकाशक, आर० एम० आर्ट प्रेस १६१/१ हरिसनरोड, कलकत्ता। वार्षिक मूल्य ३); कवि और कविताप्रेमी सज्जनों के काम का पत्र है।

(५) संकीर्तन—(मासिक) संपादक प्रकाशक, स्वामी शिवानन्द सरस्वती; हृषीकेश, वार्षिक मूल्य ३); भक्त भावुकों के काम का पत्र है।

(६) वीणा—(मासिक) संपादक कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर'; प्रकाशक, मध्यभारत हिंदी साहित्यसमिति, इंदौर; वार्षिक मूल्य ४); साहित्यिक एवं राजनैतिक पत्र है। हिंदी पत्रों में विशालभारत के बाद यही पत्र इस कोटि में स्थान पा सकता है।

(७) दीपक—(मासिक) संपादक तेगराम विशारद, कासिमअली साहित्यालंकार; प्रकाशक, साहित्यसदन अबोहर पंजाब; वार्षिक मूल्य २)। किसानों के काम का पत्र है।

(८) सुकवि—(मासिक) संपादक कविवर स्नेही; प्रकाशक, सुकवि प्रेस, कानपुर; वार्षिक मूल्य ३)। कवि और कविताप्रेमियों के काम का पत्र है।

(९) विश्वज्ञान—(मासिक) संपादक पं० कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर; प्रकाशक मनुदत्त शास्त्री; विश्वज्ञान कार्यालय, कनखल यू० पी०; वार्षिक मूल्य २)। संस्कृति संबन्धी सुन्दर पत्र है।

(१०) बालहित—(मासिक) संपादक कल्लूलाल श्री माली; विद्याभवन; प्रकाशक, पितृसंघ उदयपुर, वार्षिक मूल्य २)

(११) भूगोल—(मासिक) संपादक, प्रकाशक रामनारायणमिश्र बी० ए०; वार्षिक मूल्य ३)। भूगोल संबन्धी हिंदी का अद्वितीय पत्र है।

(१२) शिक्षा—(मासिक) संपादक म० म० पं० सकलनारायण शर्मा, स० संपादक पं० दुर्गाप्रसाद त्रिपाठी; प्रकाशक, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर; वार्षिक मूल्य ३)। शिक्षा संबन्धी सुन्दर पत्र है।

(१३) लेखक—(मासिक) संपादक श्री भारतीय, एम० ए०, स० संपादक श्री महेन्द्रनाथ पाण्डेय, श्री विश्वनाथ कुलश्रेष्ठ; प्रकाशक, लेखकसंघ इलाहाबाद; वार्षिक मूल्य ३) लेखन तथा प्रकाशन संबन्धी कला का सिखानेवाला तथा लेखक और प्रकाशकों का सच्चा हितैषी पत्र है।

(१४) आर्यमहिला—(मासिक) संपादक श्री

पं० रमेशदत्त पाण्डेय बी० ए०, स० संपादक श्री पं० सरयू पंडा गौड़; प्रकाशक, आर्यमहिला कार्यालय, जगतगंज, बनारस कैंट। वार्षिक मूल्य ५)।

(१५) रामबंक—(मासिक) संपादक श्री कान्तानाथ पाण्डेय, एम० ए०, काव्यतीर्थ; प्रकाशक, रामरमापति बैंक, त्रिपुराभैरवी, बनारस सिटी; वार्षिक मूल्य ३)।

(१६) वाणी—(मासिक) संपादक विश्वनाथ सखाराम खोड़े, बी० ए०, एल-एल० बी०; प्रकाशक, श्री वाणीमन्दिर प्रिंटिंग प्रेस, खारखोन, इंदौर; वार्षिक मूल्य ३।।)।

(१७) सुधा—(मासिक) संपादक, प्रकाशक श्री दुलारेलाल भार्गव; गङ्गा फाइन आर्ट प्रेस, लखनऊ; वार्षिक मूल्य ६)। साहित्यिक उच्चकोटि की पत्रिका है।

(१८) वैदिकधर्म—(मासिक) संपादक श्रीपाद दामोदर सातवलेकर; प्रकाशक, स्वाध्यायमण्डल औंध (जि० सतारा); वार्षिक मूल्य ३)। वैदिक-धर्म का सच्चा एवं वेदार्थ दर्शक पत्र है।

(१९) गीता—(मासिक) संपादक श्रीपाद दामोदर सातवलेकर; प्रकाशक, स्वाध्यायमण्डल, औंध (जि० सतारा); वार्षिक मूल्य ३)। गीता संबन्धी खोजपूर्ण लेख रहते हैं।

(२०) कल्पवृक्ष—(मासिक) संपादक दुर्गा-शंकर नागर; प्रकाशक, अध्यात्मिकमण्डल, उज्जैन, वार्षिक मूल्य २।।)। प्रयोगिक अध्यात्मशास्त्र का इसमें अच्छा प्रकाशन होता है।

(२१) गीताज्ञानअमृत—(मासिक) संपादक, प्रकाशक शान्तिनारायण; रणवीर प्रिंटिंग प्रेस, लाहौर, वार्षिक मूल्य ४), साधारण संस्करण २)।

(२२) 'संगीत'—(मासिक) संपादक प्रभु-लाल गर्ग; प्रकाशक, संगीतकार्यालय, हाथरस; वार्षिक मूल्य २)। संगीत का सर्वश्रेष्ठ पत्र है।

(२३) जैनदर्शन—(मासिक) संपादक चैन-सुखदास, अजितकुमार, कैलाशचन्द्र; प्रकाशक, अकलङ्क प्रेस, मुल्तान; वार्षिक मूल्य ३)। जैनधर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा विवेचन अच्छा होता है।

(२४) विज्ञान—(मासिक) संपादक रामदास-जी गौड़ एम० ए०; प्रकाशक, विज्ञानपरिषत् प्रयाग; वार्षिक मूल्य ३)। भारतीय जनता अपने हाथ से जिन जिन चीजों को बनाकर उपयोग में ला सकती है, उनका अच्छा वर्णन इस पत्र में रहता है।

(२५) धर्मदूत—(मासिक) संपादक धर्मरत्न; प्रकाशक, धम्मजोति महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस; वार्षिक मूल्य ।।)। बौद्धधर्म को समझाने-वाला सबसे सस्ता पत्र है।

(२६) हिंदीप्रचारक—(मासिक) संपादक हरिहर शर्मा; प्रकाशक, दक्षिण हिंदीप्रचारकसभा, मद्रास; वार्षिक मूल्य ३)। मद्रास के हिंदीप्रचारकसंघ का मुखपत्र है।

(२७) सखी—(मासिक) संपादक और प्रकाशक एम० एल० पोलाई, बी० ए०; सखीकार्यालय, दिल्ली। वार्षिक मूल्य ३)।

(२८) बालक—(मासिक) संपादक राम-लोचनशरण विहारी; प्रकाशक, पुस्तकभंडार लहरिया-सराय; वार्षिक मूल्य ३)। बच्चों के काम का पत्र है।

(२९) वेदान्तकेसरी—(मासिक) संपादक ब्रह्मचारी विष्णु; प्रकाशक, केसरी प्रेस, वेलनगंज, आगरा। वार्षिक मूल्य ३)।

(३०) विश्वनाथ—(मासिक) संपादक स्वामी महेश्वरानन्दजी; प्रकाशक विश्वनाथ कार्यालय, ढुण्ढि-राज गणेश, बनारस सिटी, वार्षिक मूल्य ३)।

(३१) कल्याण—(मासिक) संपादक हनुमानप्रसादजी पोद्दार; प्रकाशक, गीता प्रेस, गोरखपुर; वार्षिक मूल्य ४)।

(३२) शतपथ ब्राह्मण—(मासिक) संपादक मोतीलाल शर्मा गौड़; प्रकाशक, श्री बालचन्द्र, इलेक्ट्रिक्ट प्रेस, जयपुर; वार्षिक मूल्य ३।)। वैदिक साहित्य के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् राजपण्डित पं० मधुसूदन ओझा द्वारा पढ़ाये गये शतपथ ब्राह्मण का भाषा-भाष्य है।

(३३) सनाढ्य—(मासिक) संपादक प्रभुदयाल शर्मा; प्रकाशक, सनाढ्यकार्यालय, इटावा; वार्षिक मूल्य २)। सनाढ्य जाति का मासिक पत्र है।

(३४) शिशु—(मासिक) संपादक सत्यवान् शर्मा, रामपदार्थ विद्यार्थी; प्रकाशक, शिशु प्रेस प्रयाग; वार्षिक मूल्य २)। बच्चों के उपयोग का पत्र है।

(३५) नवशक्ति—(साप्ताहिक) संपादक श्रीयुत देवव्रतजी; प्रकाशक, नवशक्ति प्रेस, एकजीविशन रोड, पटना; वार्षिक मूल्य ३)। राष्ट्रीय पत्र है।

(३६) जयाजी प्रताप—(साप्ताहिक) संपादक, श्री युधिष्ठिर भार्गव; प्रकाशक, आलीजाह दरबार प्रेस, ग्वालियर; वार्षिक मूल्य ३)।

(३७) नवराजस्थान—(साप्ताहिक) संपादक श्री रामनाथलाल 'सुमन'; रामगोपाल माहेश्वरी, बी० ए०, एल-एल० बी०; प्रकाशक, नवराजस्थान कार्यालय, राजस्थान भवन, अकोला, बरार; वार्षिक मूल्य ३)। आधुनिक राजनीति एवं युगोपयोगी समाजशास्त्र का निदर्शक सुन्दर पत्र है।

(३८) कर्मवीर—(साप्ताहिक) संपादक श्री पं० माखनलाल चतुर्वेदी; प्रकाशक, कर्मवीर प्रेस, खंडवा, सी० पी०; वार्षिक मूल्य ३।।)। राजनैतिक पत्र है।

(३९) वेंकटेश्वर समाचार—(साप्ताहिक) संपादक श्री पं० निरञ्जनशर्मा अजित; प्रकाशक खेमराज श्री कृष्णदास, वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस ३८/४८ खेतवाड़ी बैंक रोड, ७ वीं खंभातालेन, बंबई नं० ४; वार्षिक मूल्य २।।)।

(४०) 'प्रकाश'—(साप्ताहिक) संपादक, श्री शान्तिचन्द्र जैन; प्रकाशक चैतन्य प्रेस, बिजनौर; वार्षिक मूल्य ३)।

(४१) हिंदू—(साप्ताहिक) संपादक हरिश्चन्द्र विद्यालंकार; प्रकाशक हिंदू कार्यालय, दिल्ली; वार्षिक मूल्य ३)। हिंदू महासभा का पत्र है।

(४२) सनातनधर्म—(साप्ताहिक) संपादक सीताराम चतुर्वेदी 'हृदय', एम० ए०, एल-एल० बी०, बी० टी०, विशारद; प्रकाशक, सनातनधर्म कार्यालय, बनारस सिटी; वार्षिक मूल्य ३।)। पूज्य मालवीयजी इस पत्र के संरक्षक हैं। सनातनधर्म संबन्धी लेखों का प्रकाशन होता है।

(४३) विश्ववाणी—(साप्ताहिक) संपादक, हेमचन्द्र जोशी, डी० लिट०, इलाचन्द्र जोशी; प्रकाशक, विंशशताब्दि प्रेस, १०० हरिसन रोड, कलकत्ता; वार्षिक मूल्य ३।।)। पत्र अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक है।

(४४) हरिजन सेवक—(साप्ताहिक) संपादक वियोगी हरि; प्रकाशक, हरिजनसेवकसंघ आफिस, किंगवे, दिल्ली; वार्षिक मूल्य ३।।)। यह पत्र महात्माजी द्वारा निकाला गया है।

(४५) संदेश—(साप्ताहिक) संपादक परमेश्वरीलाल गुप्त; प्रकाशक, प्रभात प्रिंटिंग कारेज, आजमगढ़; वार्षिक मूल्य ३)।

(४६) न्यू सिनेमा संसार—(साप्ताहिक) संपादक श्रीनिधि द्विवेदी; प्रकाशक, मिस सरोजिनी देवी; न्यू सिनेमा कार्यालय, बंबई; वार्षिक मूल्य ३)। यह पत्र सिनेमा संबन्धी है।

(४७) पुण्यभूमि—(साप्ताहिक) संपादक, गोपालसिंह नेपाली; प्रकाशक, ज्ञानोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम; वार्षिक मूल्य ३)।

(४८) विश्वमित्र—(साप्ताहिक) संपादक, श्रीकान्त ठाकुर विद्यलंकार; प्रकाशक, 'विश्वमित्र प्रेस' १४-१ ए० शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता; वार्षिक मूल्य ३॥)। अच्छा राजनैतिक पत्र है।

(४९) गुरुकुल—(साप्ताहिक) संपादक दीनदयालु; प्रकाशक, गुरुकुल कांगड़ी, सहारनपुर; वार्षिक मूल्य २॥)। गुरुकुल कांगड़ी का पत्र है।

(५०) पण्डितपत्र—(साप्ताहिक) संपादक श्री माधव शर्मा; प्रकाशक, पण्डित पत्र कार्यालय, काशी; वार्षिक मूल्य २)।

(५१) सूर्य—(द्विदैनिक) संपादक पं० जानकीशरण त्रिपाठी; प्रकाशक, सूर्य प्रेस, काशी; वार्षिक मूल्य २)।

संस्कृत

(५२) संस्कृतरत्नाकर—(मासिक) संपादक श्री सूर्यनारायणशर्मा शास्त्री, व्याकरणाचार्य, भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, साहित्याचार्य; प्रकाशक, महामहोपाध्याय श्री गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी, व्याकरणाचार्य, जयपुर; वार्षिक मूल्य २)। अखिल भारतवर्षीय संस्कृतसाहित्यसंमेलन का पत्र है।

(५३) अमरभारती—(मासिक) संपादक श्री वाखेडकर नरसिंहाचार्य, श्री गोपाल शास्त्री नेने, नारायण शास्त्री खिस्ते; प्रकाशक, अमरभारती कार्यालय, काशी; वार्षिक मूल्य ३)।

गुजराती

(५४) गीता—(मासिक), संपादक, प्रकाशक, शिवप्रसाद पी० मेहता, गीता आफिस, अहमदाबाद; वार्षिक मूल्य २)।

(५५) संदेश—(दैनिक) संपादक नन्दलाल चुन्नीलाल खोड़ीवाला; प्रकाशक, सरस्वती प्रिंटिंग वर्क्स, सारंगपुर, सरस्वतीभवन, अहमदाबाद।

बंगला

(५६) उत्तरा—(मासिक) संपादक श्री सुरेश चक्रवर्ती; प्रकाशक, उत्तरा प्रेस, गोदौलिया, बनारस; वार्षिक मूल्य ३॥)।

मराठी

(५७) केसरी—(अर्ध साप्ताहिक) संपादक जनार्दन सखाराम कालीकर; प्रकाशक, केसरी प्रेस, पूना; वार्षिक मूल्य ३)।

अंग्रेजी

(५८) प्रबुद्ध भारत—(मासिक) संपादक स्वामी मैथिल्यानन्द; प्रकाशक, स्वामी वीरेश्वरानन्द, ४ विलिंगटन लेन, कलकत्ता; वार्षिक मूल्य ४)।

(५९) इंडियाना—(मासिक) संपादक, एस० सी० गुह; प्रकाशक इंडियाना होम, गांधीग्राम, बनारस सिटी। वार्षिक मूल्य ६॥)।

(६०) विश्वभारती न्यूज—(मासिक) संपादक रवीन्द्रनाथ टैगोर, प्रकाशक शान्तिनिकेतन प्रेस, शान्तिनिकेतन, (वीरभूमि)।

(६१) कल्याणकल्पतरु—(मासिक) संपादक सी० एल० गोस्वामी, एम० ए०, शास्त्री; प्रकाशक, गीता प्रेस, गोरखपुर; वार्षिक मूल्य ४)।

८५६ का शेषांश

अब तो केवल रहूँ सदा स्वामी की दासी,
मैं शासन की नहीं, आज सेवा की प्यासी।"

परंतु उर्मिला का आत्मनिवेदन उसे नवयौवन के समय भोगे हुए विरहपीड़ा की याद न भुला सका। लक्ष्मण से मिलने पर यह याद उसे रह रह कर काँटे चुभा रही है। वह कहती है:—

"स्वामी, स्वामी, जन्म, जन्म के स्वामी मेरे!
किंतु कहाँ वे अहोरात्र, वे साँझ सबेरे।
खोई अपनी हाय! कहाँ वह खिल खिल खेला?
प्रिय, जीवन की कहाँ आज वह चढ़ती वेला?"

उर्मिला का प्रेम विजयी हुआ है, किंतु लड़ाई के घाव अभी तक हरे हैं। लक्ष्मण को सान्त्वना देनी पड़ती है—

"वह वर्षा की बाढ़, गई, उसको जाने दो,
शुचि गँभीरता प्रिये, शरद् की यह आने दो।"

यशोधरा उर्मिला से ऊँची उठ सकी है। मुक्ति-पथ के पथिक आज बुद्धत्व लाभ कर घर लौटे हैं। नगर में जिसे देखो वही उन्हीं की ओर दौड़ा जा रहा है। और दुखिया यशोधरा? वह घर के कोने में बैठी बैठी कहती है—

"सब अपना सौभाग्य मनावें,
दरस परस, निःश्रेयस पावें।
उद्धारक चाहें तो आवें,
रहे यहीं यह चेरी।
रे मन, आज परीक्षा तेरी।"

उद्धारक को आना पड़ता है चेरी के यहाँ। यहाँ यशोधरा से बुद्ध हारे हैं। वह उनके सामने आतुर नहीं हुई। उसे अपने प्रेम की सचाई पर जो विश्वास था!

राधा का क्या कहना! वह न तो मानिनी है और न दासी ही। और हो भी क्यों? वह तो कृष्ण से अपनी भिन्नता का अनुभव भी नहीं करती। तब वह किसे आत्मसमर्पण करे और किससे मान करे? उसकी तो यह अवस्था है—

"डूबी सी वह बीच बीच में पलक खोलकर आधे,
चिल्ला उठती है विलोल सी बोल, राधिके, राधे!"

इस तन्मयता का भी कोई ठिकाना है? तभी न जब उद्धव राधा के दर्शन को जाते हैं तो देखते हैं—

"एक मूर्ति आधे में राधा, आधे में हरि पूरे!"

यही तो प्रेम की तुरीयावस्था है। राधा के प्रेम ने पार्थिव संसार पर पूरी विजय पाई है। यही प्रेम आत्मानुभूति का, विजय का सबसे सुन्दर और काव्यमय रूप है।

राधा के इस चित्रण में ही मैथिली की लेखनी की भी सबसे बड़ी विजय है।

[विजयी कवि की प्रथम रचना जयद्रथवध और सबसे नवीन और सुन्दर रचना द्वापर है—संपादक]

एक विजयी पुरुष

(श्री गीतानन्दजी से संवाद)

संपादक—आपके विचारों से मैं सर्वथा सहमत हूँ कि सब मनुष्यों के जीवनचरित में जो साधारण अंश हैं वे आप में भी हैं—अर्थात् माता पिता, जन्मस्थान, जन्मकाल, विद्याध्ययन, लोकव्यवहार, सुख दुःख, राग द्वेष, मैत्री कलह, आधिव्याधि...अन्त में मृत्यु !—

इसको जानने से 'गीताधर्म' के पाठकों को क्या लाभ ? तथापि गताङ्क में मैं वचन दे चुका हूँ कि आपकी जीवनी पाठकों को सुनाऊँगा। सो आपकी जीवनी (चाहे आपके अर्थ में ही क्यों न हो) थोड़ी बहुत मुझको अवश्य इस विजयाङ्क के लिए चाहिए। यों तो आपका 'शब्दचित्र' अद्भुत संवाद[1] रूप से यथासमय निकलेगा ही। पर मैं अभी जीवन-चरित में सामान्यतः अपेक्षित सब बातें एक एक करके पूछना चाहता हूँ। आपका जन्म कब हुआ ?

गीतानन्द—मेरे दो जन्म हुए हैं। एक नित्य जन्म—

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥
अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥

—गी० ८।७-१८

इसको हुए ६ मन्वन्तर, २७ चतुर्युग, सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि के प्रायः ५००० वर्ष बीते हैं।

दूसरा—अनित्य जन्म। इसको हुए प्रायः ६० वर्ष बीते हैं।

सं०—आपका जन्म कहाँ हुआ ?

गी०—'नवद्वारे पुरे'।

सं०—आपके माँ बाप कौन हैं ?

गी०—सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः।
तासां ब्रह्ममहद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥

—गी० १४।४

सं०—आपका नाम क्या है ?

गी०—मेरा सामान्य नाम "देही" है। और विशेष नाम मनुष्य है। —गी० १५।२

सं०—आपका यज्ञोपवीतसंस्कार कितनी वयोऽवस्था में हुआ ?

गी०—मैंने जन्मतः ही यज्ञाधिकार पाया।
'सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा'।

—गी० ३।१०

सं०—आपके आचार्य कौन थे ?

गी०—ॐ तत्सत् नामक प्रजापति

—गी० १७।२३,३।१०

सं०—आपका विद्याध्ययन इत्यादि ?

गी०—मैंने केवल ढाई अक्षर पढ़ा है और वह भी जन्मसिद्ध ही है। मैं उनका अहोरात्र, किं बहुना प्रति-क्षण, प्रति श्वासोछ्वास में स्वाध्याय करता हूँ। और उसका अनध्याय भी नहीं है।

'सोऽहं'

—गी० १०।२५

सं०—नव द्वारवाले पुर में आपका घर कहाँ है ?

गी०—मैं 'अनिकेत' रहता हूँ।

—गी० १३।१९

१—विद्यानन्द ग्रन्थमाला में 'अद्भुत संवाद' नाम से श्री गीतानन्दजी के अद्भुत प्रश्नोत्तर छप रहे हैं।

सं०—यदि आपसे कोई मिलना चाहे तो ?

गी०—वैसे तो मैं सर्वगत हूँ।

—गी० २।२४

हाँ, इतना अवश्य है कि दिन में और रात में भिन्न भिन्न प्रदेश में रहता हूँ।

सं०—आपने अच्छा किया ! पुत्रदारगृहादि की उपाधि से हम लोग बड़े परेशान रहते हैं। आप इस झगड़े से मुक्त हैं।

गी०—इतना मेरा भाग कहाँ ? मेरी निज की चिन्ता नहीं तो क्या ? मुझे दूसरों की चिन्ता करनी पड़ती है।

—गी० ५।२५

सं०—अच्छा कम से कम यह फ़ायदा तो ज़रूर है कि आपके कोई शत्रु मित्र तो न होंगे ?

गी०—आपके अनुमान में भूल है। मेरा भी एक शत्रु और एक मित्र है।

सं०—उनका क्या नाम है ?

गी०—दोनों का नाम एक ही है। आत्मा।

— गी० ६।५

सं०—आपने भी खूब कहा ! आपके जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है ? कर्तव्य क्या है ?

गी०—कर्तव्य वा प्राप्तव्य कुछ भी नहीं है। हाँ कुछ ज्ञातव्य जरूर है। —गी० ३।२२

सं०—सो क्या है ?

गी०—ब्रह्म। —गी० १३।१२

सं०—इसके जानने से लाभ क्या ?

गी०—अमृतमश्नुते।

—गी० १३।१२

सं०—अमृतप्राप्ति से क्या होता है ?

गी०—यह प्रश्न ही अजिज्ञास्य है।

कारण—

'यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।'

और देही कृतकृत्य हो जाता है। इसलिए न कुछ कर्तव्य शेष रह जाता है, न प्राप्तव्य। गी० १४।२०,६।२२

सं०—तब तो मेरे लिए मैं समझता हूँ कि कुछ प्रष्टव्य भी शेष नहीं रहा। हाँ, जाने के लिए आपकी आज्ञा माँगना ही बाक़ी है।

विजय का साहित्य

भारत के साहित्य में विजय, श्री, विभूति और उल्लास भरा हुआ है। भारत का कवि कहता है—संसार सत्य है। संसार में ज्ञान की ज्योति जग रही है। संसार में आनन्द हिलोरें ले रहा है।

भारत का साधु उपासना करता है सच्चिदानन्द की।

भारत का इतिहास कहता है—इतिहास का नाम है जय। विशाल बुद्धि ने अपनी विशाल दृष्टि से देखा तो उन्हें वेद, पुराण, इतिहास, काव्य, सभी में जय ही जय देख पड़ी। उन्होंने हाथ उठाकर कहा। जो कुछ है उसका नाम जय है। वाङ्मय मात्र का नाम जय है। कवि की वाणी का नाम ही जय है। अर्थात् ? इसका अर्थ है कि जिस साहित्य में जय का संदेश नहीं, जिसमें श्री और सौन्दर्य (विभूति) नहीं, वह साहित्य ही नहीं। ऐसा विजयी और सहस्रदल कमल के समान हँसनेवाले साहित्य को जो नासमझ रोने का—शोकमय और कमजोर साहित्य कहते हैं वे सचमुच नासमझ हैं।

हमारे तो नये युग के कवि मैथिली भी उच्च स्वर से कहते हैं।

जय जय गिरिधारी गोपाल की।

—द्वापर

—श्री पद्मनारायण आचार्य, एम० ए०

नवनीत

विजय का देवता—

विजय की आराधना शक्ति की आराधना है। शक्ति का प्रत्यक्ष रूप अग्नि है। भारत का साहित्य (विशेष कर वैदिक साहित्य) तो अग्नि की उपासना करता है। ऋग्वेद का आरम्भ अग्नि की स्तुति से ही होता है—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ॥

—ऋ० १. १. १.

अग्नि (जीवन यज्ञ के) पुरोहित हैं। वे ही उसके देवता हैं। वे ही उसके ऋत्विज और होता (देवता को बुलानेवाले) हैं। और वे ही रत्नोंवाले (श्रीमान्, दयालु दाता) हैं। हम उनकी स्तुति करते हैं।

अग्नि का दूसरा अर्थ बल है। उपनिषदों में इस बल की खूब प्रशंसा की गई है—

बलं वावविज्ञानाद्भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवतामेको बलवानाकम्पयते।
स यदा बली भवत्यथोत्थाता भवत्युत्तिष्ठन्परिचरिता भवति।
परिचरन्नुपसता भवत्युपसीदन्द्रष्टा भवति, श्रोता भवति, मन्ता भवति,
वोद्धा भवति, कर्ता भवति, विज्ञाता भवति।
बलेन वै पृथिवी तिष्ठति, बलेनान्तरिक्षं, बलेन द्यौर्बलेन पर्वता, बलेन
देवमनुष्या, बलेन पशवश्च वयांसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्ग-
पिपीलिकं, बलेन लोकस्तिष्ठति। बलमुपास्व।

—छान्दोग्य ९. ८. १.

विज्ञान से बल श्रेष्ठ है। अकेला बलवान् सौ विज्ञानवालों को कँपा देता है। जो बली होता है वही उत्थानकर्ता होता है, वही परिचारक होता है और वही (आत्मा को) देखनेवाला होता है। उस (आत्मा) की बातों को सुननेवाला होता है, मनन करनेवाला होता है और निश्चयवान् होता है। कर्ता होता है और विज्ञाता भी होता है।

बल से ही पृथिवी स्थिर है। आकाश स्थिर है। पर्वत, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, घास, वनस्पति, कीट, पतङ्ग, चींटी ठहरे हुए हैं। बल से ही लोकों की स्थिति है। इसलिए बल की उपासना करो अर्थात् बली बनो।

बल को ही तप कहते हैं। महात्मा तुलसीदासजी ने शंकर की प्राप्ति के लिए इसी तप का उपदेश एक ब्राह्मण द्वारा पार्वती को कराया है—

विजय की साधना—

तपबल रचहिं प्रपंच विधाता । तपबल विष्णु सकल जग त्राता ॥
तपबल संभु करहिं संहारा । तपबल सेष धरहिं महिभारा ॥
तप अधीन सब सृष्टि भवानी । करहु जाय तप अस जिय जानी ॥

तपस्या धीर पुरुष ही करते हैं। इसमें उन्हें अनेक कष्ट भी सहने पड़ते हैं। परंतु उन्हें इनकी थोड़ी भी परवाह नहीं रहती। ऐसे लोग धीर कहलाते हैं।

विजयी धीर—

महर्षि भर्तृहरि ने अपने नीतिशतक में तीन श्लोक कहे हैं—

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा, न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् ।
सुधां विना न प्रययुर्विरामं, न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः ॥

क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनं,
क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ।
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो,
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम् ॥

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा, न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

इन्हीं का अनुवाद महाराजा जयपुर ने किया है, जिसे हम ज्यों का त्यों दे रहे हैं।

महा अमोलक रत्न नाहिं रीझे सुर तिनसों ।
महा हलाहल जान प्राण डरपत नहिं जिनसों ॥
रहत चित्त की वृत्ति एक अमृत सों अति ही ।
तैसे ही नर धीर काज निश्चय कर मति ही ॥
सब दोषरहित अरु गुणसहित ऐसे कारण मन धरत ।
तिहि को सअर्थ अमृत लहत कोऊ सुख को नहिं करत ॥

भूमिशयन कहुँ पलंग पै, शाकाहार कहुँ मिष्ट ।
कहुँ कंथा सिर पाव कहुँ अर्थी सुख दुख इष्ट ॥

नीतिनिपुण नर धीर वीर कुछ स्वयश करो किन ।
अथवा निंदा कोटि कहो दुर्वचन छिनहिं छिन ॥
संपत हू चलि जाव रहो अथवा अगणित धन ।
अवहिं मृतक किन होहु होउ अथवा निश्चल तन ॥
पर न्यायपंथ को तजत नहिं बुधिविवेकगुणज्ञाननिधि ।
वे संग सहायक रहत नित देत लोक परलोक सिधि ॥

महर्षि भर्तृहरि ने ऊपर के एक श्लोक में देव और असुरों द्वारा अमृत के लिए समुद्र मथने का जिक्र किया है। भाई सियारामशरण गुप्तजी ने अमृत नामक अपनी रसमयी कविता में अमृत के पहले हलाहल निकलने का जिक्र किया है और बतलाया है कि भगवान् शिव समुद्र में से निकले हुए इसी हलाहल को पीकर मृत्युंजय हो गये। विजय के प्रेमियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

अमृतविजय—

अमृत कहाँ वह अमृत कहाँ है अमृत कहाँ वह हाय ।
विना अमृत के यह जीवन सब नीरस मृतकप्राय ॥
देव और दानव दोनों थे उसके हित कृतयत्न ।
अतुल जीवनोदधि में भीतर छिपा कहाँ वह रत्न ॥

समुद्र के किनारे आकर वे देव और दानव कहते हैं—

तो आओ मिलकर उखाड़ लें यह मन्दरगिरि तूर्ण ।
मथ डालें इसको ही लेकर यह सागर संपूर्ण ॥
रज्जु बना लेंगे वासुकि को वे भी नहीं अबाध्य ।
यह उत्साह रहे तो हाँ फिर क्या हमको दुस्साध्य ॥
सचमुच वह दुस्साध्य उन्होंने सिद्ध किया तत्काल ।
मथने लगे सिन्धु देवासुर वह गिरि उसमें डाल ॥
हुआ भयंकर उर्मिजाल में उनके बल का भास ।
उठने लगे क्षुब्ध अर्णव में छन छन फेनोच्छ्वास ॥
नव नवनीततुल्य उसमें से निकल पड़े बहु रत्न ।
किंतु उन्हें तो इष्ट अमृत था रुका न उनका यत्न ॥

सहसा सन्नाटा सा हो यह किसका आविर्भाव।
कालपुरुष सा असह कौन यह इसका अमित प्रभाव॥
इसकी भयंकरी आभा में दृग सबके हैं अन्ध।
लिये नील घट है यह कैसा उत्कट जिसका गन्ध॥
अगणित भय कम्पित कण्ठों से उठा त्रस्त चीत्कार।
कालकूट है, कालकूट यह! मूर्तिमंत संहार॥
क्षण में ही यह निखिल वायु में हो जावेगा व्याप्त।
अमृत यहाँ लेने आये थे हुआ मरण विष प्राप्त॥
थम सी गईं सिन्धु की लहरें नीरस नीलाकाश।
मलिन हो गया दिन के मुख का प्रखर प्रसन्न प्रकाश॥
ज्ञात हुआ इस कालकूट का यह भय भीषण दंश।
निखिल धरा की हरियाली का कर डालेगा ध्वंस॥
उड़ते हुए विहङ्ग धरा पर पतित हुए हत चेत।
उड़कर भी क्या बच न सकेगा कोई शौर्य निकेत॥
नयन निमीलित हुए सभी के कुञ्चित नासा रन्ध्र।
फैल उठा सर्वत्र शीघ्र वह तीव्र हलाहल गन्ध॥
झट झकझोर उठा निज में ही सबको वह आवर्त्त।
जाते कहाँ चतुर्दिक ही था अचिर मरण का गर्त॥
दो कर आगे बढ़े अचानक कालपुरुष के पास।
छीन उन्होंने लिया झटककर घट उसका सोल्लास॥
जब तक सब देखें देखें ही करके नयनोन्मेष।
पान कर लिया शिवशंकर ने कालकूट निश्शेष॥
एक साथ ही नवजागृति में दमक उठा आकाश।
विमल वायु में आलोडित हो, लिया धरा ने श्वास॥
किया सिन्धु ने वे पद छूकर, लहरावलि में नृत्य।
शुचिस्नात हो नवजीवन में हुए सभी कृतकृत्य॥

जल थल नभ में एक साथ ही गूँजा जय जयकार ।
जय मृत्युंजय जय भवभयहर जय जय भुवनाधार ॥
चौंक पड़ा दानवपति मानो निद्रा का कर त्याग ।
छले गये हा छले गये हम पा न सके निज भाग ॥
सुरदल ही है जयी यहाँ पर मिला उसी को तथ्य ।
जिसे हलाहल समझा हमने अमृत वही था सत्य ॥

विजय के विघ्न—

इस जीवन में विजय पाने के लिए मनुष्य को अनेक विघ्नों का सामना करना पड़ता है। ऐसे अनेक विघ्नों में से मुख्य मुख्य विघ्नों की ओर महर्षि भर्तृहरि ने संकेत किया है और जिन्होंने इनको पार कर लिया उनके मत से उन्होंने ही तीनों लोकों को जीत लिया।

कान्ताकटाक्षविशिखा न दहन्ति यस्य चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः ।
कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशैर्लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः ॥

तियकटाक्ष शर विधत नहिं दहत न कोप कृशानु । लोभ पाश खैंचत न ते तिहुँ पुर वश किय जानु ॥

विजयरथ—

महात्मा तुलसीदासजी के शब्दों में आत्मा रथी है। इससे विजय पाने के लिए एक रथ की आवश्यकता है। इस रथ का वर्णन उन्होंने भगवान् राम के द्वारा विभीषण को सुनाया है—

सौरज धीरज तेहि रथ चाका । सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका ॥
बल विवेक दम परिहित घोरे । क्षमा दया समता रजु जोरे ॥
ईश भजन सारथी सुजाना । विरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परशु बुधि शक्ति प्रचंडा । वर विज्ञान कठिन कोदंडा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना । सम यम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा । यहि सम विजय उपाय न दूजा ॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके । जीतन कहँ न कतहु रिपु ताके ॥

यह रथ जीवनसंग्राम में विजय पाने के लिए है। जीवन से उकताकर मृत्यु को बुलाने के लिए नहीं। मृत्यु को बुलाना तो कायरता है, उससे हार जाना है। तभी तो मैथिलीशरणजी गुप्त अपनी शक्ति नामक पुस्तक में लिखते हैं।

विजय के मन्त्र—

मरे और झंझट से छूटे यह है हारी बात। हों तो हों आघात, डरो मत, करो स्वयं प्रतिघात॥
जियो और जूझो जीवन का चिह्न यही, हे तात।

जियो अर्थ के अर्थ, धर्म के अर्थ, काम के अर्थ।
जियो मुक्ति के अर्थ और निज अमर नाम के अर्थ॥

इस जीवनसंग्राम में विजय होना बस यही तो एक लक्ष्य है, फिर चाहे किसी तरह विजय की जाय। आगे जाकर वे इसी का उल्लेख भी करते हैं—

छल हो बल हो या कौशल हो, सब हैं रण में धर्म।
शत्रुनाश के लिए नहीं है निन्दित कोई कर्म॥

जय की पताका—

जीवनसंग्राम में मृत्यु तो *जय की पताका* है।

रण में मृत्यु वरण करते हैं जीव इसी के हेतु।
मरणभूमि पर ही उड़ता है जीवन का जयकेतु॥

दोषी—

कुछ लोग संघर्ष में न आने के लिए संतोष का सहारा लेते हैं, दुर्गति में भी चुपचाप पड़े रहते हैं। कवि उनके लिए वैतालिक में कहता है—

दुर्गति में संतोषी हो। तो तुम प्रभु के दोषी हो॥
उसने जो भव विभव दिया। उसे आप तुमने न लिया॥

दुर्गति में भी संतोष की साँस लेना जीते हुए मुर्दा बने रहना है। यह तो मृत्यु से डरने का चिह्न है।

जीते हो कि मरे हो तुम। मुर्दा बने धरे हो तुम॥
जय है यहाँ प्राण प्रण में। मरण कहाँ जीवन रण में॥

यदि देखा जाय तो दुर्गति हमारे लिए विजय का निमन्त्रण है। दुर्गति में पड़ना ही तो संग्राम में आना है। इसी के आगे तो हमारी विजय है। कविवर सुमित्रानन्दन पंत कहते हैं—

जीवन का मोल—

तरसते हैं हम आठो याम। इसी से सुख अतिसरस प्रकाम॥
झेलते निशिदिन का संग्राम। इसी से निश्चय जय अभिराम॥
अलभ है इष्ट अतः अनमोल। साधना ही जीवन का मोल॥

साधना ही जीवन में विजयी होने का साधन है। इसी लिए शास्त्रों ने हमें साधना करने का आदेश दिया है। संग्राम में बराबर लगे रहना ही अच्छा समझा जाता है। बन्धन का आदर किया जाता है। मुक्ति को अपनाने में हिचकिचाहट होती है। श्री मैथिलीशरणजी इसी लिए अपनी यशोधरा से कहलाते हैं—

मुक्ति या बन्धन—

निज बन्धन को संबन्ध सयत्न बनाऊँ, कह मुक्ति भला किस लिए तुझे मैं पाऊँ।
जाना चाहे यदि जन्म भले ही जावे, आना चाहे तो स्वयं मृत्यु भी आवे।
पाना चाहे तो मुझे मुक्ति ही पावे, मेरा तो सब कुछ वही, मुझे जो भावे।
मैं मिलनशून्य में विरहघटा सी छाऊँ! कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?
माना, ये खिलते फूल सभी झड़ते हैं; जाना, ये दाड़िम, आम सभी सड़ते हैं;
पर क्या यों ही ये कभी टूट पड़ते हैं? या काँटे ही चिरकाल हमें गड़ते हैं?
मैं विफल तभी, जब बीजरहित हो जाऊँ, कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?
यदि हममें अपना नियम और शम दम है, तो लाख व्याधियाँ रहें स्वस्थता सम है।
वह जरा एक विश्रान्ति; जहाँ संयम है, नवजीवन दाता मरण कहाँ निर्मम है?
भव भावे मुझको और उसे मैं भाऊँ, कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?
आकर पूछेंगे जरा मृत्यु यदि हमसे, शैशव यौवन की बात व्यङ्ग्य विभ्रम से।
हे नाथ! बात भी मैं न करूँगी यम से, देखूँगी अपनी परंपरा को क्रम से।
भावी पीढ़ी में आत्मरूप अपनाऊँ, कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?
ये चन्द्र सूर्य निर्वाण नहीं पाते हैं, ओझल हो होकर हमें दृष्टि आते हैं।
झोंके समीर के झूम झूम जाते हैं; जा जाकर नीरद नया नीर लाते हैं।
तो क्यों जा जाकर लौट न मैं भी आऊँ? कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?
रस एक मधुर ही नहीं अनेक विदित हैं, कुछ स्वादहेतु कुछ पथ्यहेतु समुचित हैं।

भोगें इन्द्रिय, जो भोगविधान विहित हैं; आने को जीता जहाँ, वहीं सब जित हैं।
निज कर्मों का ही कुशल सदैव मनाऊँ, कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ ?
होता सुख का क्या मूल्य जो न दुख रहता ? प्रिय हृदय सदय हो तपस्ताप क्यों सहता ?
मेरे नयनों से नीर न यदि यह बहता, तो शुष्क प्रेम की बात कौन फिर कहता ?
रह दुःख ! प्रेम परमार्थ दया मैं लाऊँ, कह मुक्ति, भला किसलिए तुझे मैं पाऊँ।
आओ प्रिय, भव में भाव विभाव भरें हम, डूबेंगे नहीं कदापि तरें न तरें हम।
कैवल्य काम भी काम, स्वधर्म धरें हम, संसार हेतु शतबार सहर्ष मरें हम।
तुम सुनो क्षेम से, प्रेमगीत मैं गाऊँ, कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ ?

वीतराग और संग्राम—

ये मैथिलीशरणजी अपने साकेत में अवसर पड़ने पर वीतराग साधु श्री भरतजी से कहलाते हैं—

भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन में। सिन्धुपार वह बिलख रही है व्याकुल मन में॥
बैठा हूँ मैं भंड साधुता धारण करके। अपने मिथ्या भरत नाम को नाम न धरके॥
कलुषित कैसे शुद्ध सलिल को आज करूँ मैं ? अनुज मुझे रिपु रक्त चाहिए डूब मरूँ मैं॥
मेटूँ अपने जड़ीभूत जीवन की लज्जा। उठो इसी क्षण शूर करो सेना की सज्जा॥
पीछे आता रहे राजमण्डल दल बल से। पथ में जो जो पड़ें, चलें वे जल से थल से॥
सजैं अभी साकेत बजै हाँ, जय का डंका। रह न जाय अब कहीं किसी रावण की लङ्का॥

इसी विजय की साधना का शङ्ख फूँकते हुए श्रीसियारामशरणजी गुप्त कहते हैं—

शङ्खनाद—

ओ भैरव, कवि की वाणी का मृदु माधुर्य लजा दे आज;
वंशी के ओठों पर अपना निर्मम शङ्ख बजा दे आज!
नभ को छूकर दूर दूर तक गूँज उठे तेरा जयनाद;
घर के भीतर छिपे पड़े जो बाहर निकल पड़ें साह्लाद।
तिमिरसिन्धु में कूद, तैरकर सुप्रभात से उठ आवें;
निखिल संकटों के भीतर भी पावें तेरा पुण्य प्रसाद।
जीवन रण के योग्य हमारा निर्भय साज सजा दे आज,
ओ भैरव, कवि की वाणी में निर्मम शङ्ख बजा दे आज।

अनासक्त विजयी—

इसी शङ्खनाद को सुनकर विजयाभिलाषी अनासक्त होकर अपना कर्तव्य पालन करने के लिए श्री मैथिलीशरणजी गुप्त के शब्दों में किसप्रकार कहता है—

सुनने को हुंकार सैनिको, यही तुम्हारी। जिसके आगे उड़े शत्रु की मति गति सारी॥
सहसा मैंने तुम्हें जगाया है, तुम जागे। नाच रही है विजय प्रथम ही अपने आगे॥
किंतु विजय तो शरण, मरण में भी वीरों के। चिरजीवन है कीर्तिवरण में भी वीरों के॥
भूल जयाजय और भूलकर जीना मरना। हमको निज कर्तव्यमात्र है पालन करना॥

ऐसा व्यक्ति ही सदा वन्दनीय है—

विजयाश्वासन—

अविजय के इस नवावरण में तेरी जय ही है आई,
इस कुत्सित कुत्सा के भीतर तेरी स्तुति ही है छाई।
तू आगे बढ़ता आया है आघातों प्रतिघातों में,
ऊँचा सिर कर खड़ा रहा है पीड़न के पवि पातों में।
कुण्ठित हुई न तेरी वाणी यद्यपि रूँधा गया गला,
हुई सुदृढ़ ही तेरी दृढ़ता संकट के संघातों में।
तुझे प्राप्त कर असफलता ने सुकृति सफलता है पाई,
अविजय के इस नवावरण में तेरी जय ही है आई।
बद्ध नहीं है जय की जयता केवल झड़ते फूलों में,
खिल पड़ती है कभी कभी वह कण्टकतरु के झूलों में।
यह अविजय ऐसी है, इसमें, तू नहिं शोभा पाता है,
मृत्युंजय के अतुल कण्ठ में गरल अमृत बन जाता है।
नहीं झिझकती है दीपावलि अन्ध अमा में आने से,
गिरकर पङ्किल भी हो घनजल किसे नहीं तू भाता है?
ऊपर ही है तू गौरव से इस शय्या के शूलों में,
बद्ध नहीं है जय की जयता केवल झड़ते फूलों में।

—सियारामशरण गुप्त

जय गान—

अन्तहीन जयशील सदा तुम हे विक्रान्त अशान्त।
क्रिये हुए हो निखल चराचर निज बल से आक्रान्त॥
झाड़ दिया हैं पतझड़ सा कर जड़ता का जंजाल।
बद्ध तुम्हारे पद बन्धन में बन्धहीन लय ताल॥
किसी देश में किसी काल में नहीं कहीं तुम म्लान।
सुना तुम्हीं ने सबसे पहिले संकट का आह्वान॥
दौड़ पड़े तुम उसके पीछे पथबाधाएं ठेल।
अहो तरुण शिशु, उस संकट से खेला तुमने खेल॥
सुनकर हिंसक काल फणी की दर्पोद्धत फुंकार।
उसे पकड़ कर तुमने उससे किया रौद्र शृङ्गार॥
सब अवाक् हैं रूप देख वह मन में विस्मय मान।
यह अवाक् ही अहो तुम्हारा है सच्चा जय गान॥

—सियारामशरण गुप्त

विजय का प्रसाद—

अब हम अमर भये न मरेंगे।
या कारन मिथ्यात दियो तज, क्यों कर देह धरेंगे॥ अ०॥ १॥
राग दोष जगबंध करत हैं इनको नाश करेंगे
मर्यो अनंतकाल ते प्रानी सो हम काल हरेंगे॥ अ०॥ २॥
देह विनाशी हौं अविनाशी अपनी गति पकरेंगे
नासी नासी हम थिर वासी, चोखे ह्वै निखरेंगे॥ अ०॥ ३॥
मर्यो अनंत बार बिन समज्यो अब सुख दुख विसरेंगे।
आनन्दघन जिन पै दो अक्षर नहिं समरे सो मरेंगे॥ अ०॥ ४॥

—आनन्दघन

अब हों कासों बैर करों।
कहत पुकारत प्रभु निज मुखते। घट घट हौं विहरों॥
आपु समान सबै जग लेखो। भक्तन अधिक डरों॥
श्री हरिदास कृपा ते हरि की नित निर्भय विचरों॥ १॥

—हरिदास

संपादकीय

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

जिसमें बल नहीं, उसे 'अपनी चीज' भी नहीं मिलती। फिर भला निर्बल और शक्तिहीन विजयी कैसे हो सकता है? जीवन के आरम्भ से ही हमें लड़ाई लड़नी पड़ती है। *जीवन का अर्थ ही है—संग्राम, संघर्ष, युद्ध*। जबसे जीव गर्भ में आता है तभी से उसे अपनी स्थिति बनाये रखने के लिए युद्ध करना पड़ता है, शक्ति संग्रह करनी पड़ती है। यों आत्मा स्वयं शक्तिपुञ्ज है, शक्तिघन है, परंतु गुणमयी माया उस शक्तिपुञ्ज को ढँके रहती है। यह माया 'हिरण्मय पात्र' है। *हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्*। यह सत्य, यह शक्तिपुञ्ज माया की चमकीली झलक के अन्तस्तल में घुसा बैठा है। हमें दिखाई देता नहीं है। यह चमकीली झलक हमें उसको देखने नहीं देती। हमें दिखाई देती है चमकीली झलक, जो हमारे बाहर चारों ओर बड़ी दूर तक फैली हुई है। हम उसी को देखते हुए, उसी को पकड़ने के लिए बड़ी दूर तक दौड़ते हुए चले जा रहे हैं, फिर भी वह हमसे दूर है, उतनी ही दूर जितनी दूर कि वह पहले थी। और हमारे दौड़ते हुए चले जाने पर भी वह उतनी ही दूर बराबर बनी रहती है। हम उसे पकड़ना चाहते हैं इसलिए वह हमारी पकड़ाई में आती नहीं है। हमें उसे पकड़ने की जरूरत नहीं है। वह तो हमारी छाया है, भला अपनी छाया भी पकड़ में आती है! छाया हमेशा हमारे काबू में है। हमें समझ भर लेना है कि यह हमारी छाया है, विश्वास भर कर लेना है कि यह हमसे ही प्रतिबिम्बित है। समझ और विश्वास ये दो ही ऐसी चीजें हैं जो अनुभव करा देंगी कि माया और कुछ नहीं, हमारी छाया है। ये चमकीली किरणें हमारी छाया हैं। हमारी इच्छा के अनुसार ही हमारी छाया चलती है। अपनी इच्छा के अनुसार ही आप अपनी छाया को चलाइए; न कि छाया के अनुसार आप चलिए। इस समय आप अपनी छाया के अनुसार जा रहे हैं, इसलिए ही तो आप उसके अनुसार चल नहीं रहे हैं, पद पद पर हार रहे हैं। पद पद पर असफल हो रहे हैं, पराजित हो रहे हैं। माया तो स्वयं चिल्ला रही है—

> यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
> यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति॥

जो मुझे संग्राम में जीतेगा, जो मेरे घमंड को तोड़ेगा, जो मुझ से बली होगा, वही मेरा शासक होगा, वही मेरा भोग करेगा।

आत्मा की छाया माया है। माया से आत्मा नहीं जीती जाती। आत्मा से आत्मा जीती जाती है। आत्मा ही तो बल है। बल की झलक ही माया है। यही झलक छाया कहलाती है। फिर आप माया से—जो दूसरे के बल से बली है—माया को किस तरह जीतना चाहते हैं, छाया को किस तरह पकड़ना चाहते हैं। आइए छाया के जरिये आत्मा को पहचानें। माया के द्वारा आत्मा तक पहुँचें। तब माया पर विजय पावें, उसपर शासन करें। माया के द्वारा आत्मा को जानने की इच्छा, छाया से चलकर आत्मा तक

पहुँचने की इच्छा ही तो सच्ची *विजययात्रा* है। यहीं से मायापूजा का श्री गणेश होता है। दुर्गापूजा प्रारम्भ होती है।

यात्रा के आरम्भ में आप क्या करेंगे ? इच्छा-जागरण, आत्मप्राप्ति की कामना। अभी तक आपकी कामना थी माया को पकड़ने की, छाया के पीछे दौड़ने की। आत्मप्राप्ति के लिए आपको यह कामना छोड़नी पड़ेगी, यह दौड़ बंद करनी होगी। जिस दिन आपकी यह दौड़ बंद हो जायगी, माया को पकड़ने की प्रवृत्ति बंद हो जायगी, बस उसी दिन से आपकी सच्ची विजययात्रा प्रारम्भ होगी। माया को छोड़कर आत्मा को पकड़ने की कामना ही तो आपकी *कामविजय* है। दूसरे शब्दों में इसी का नाम *मारविजय* है। विजययात्रा का प्रथम दिन है। यहीं पर आप शक्ति की अधिष्ठात्री का पूजन करिए।

आप देखेंगे, आपके सामने एक प्रतिमा है। एक भैंसा खड़ा हुआ है, उसके पास ही एक सिंह है, ध्यान से देखिए—इस सिंह के ऊपर कौन है ? महामाया ! दुर्गा ! साकार शक्ति; और उसकी अगल बगल, पार्श्वभाग में—लक्ष्मी और सरस्वती ! महामाया के दस हाथ हैं, दस भुजाएँ हैं—हर एक हाथ में आयुध है। शक्ति का चिह्न आयुध है। दिशाओं का चिह्न भुजा—हाथ है। दिशाएँ कितनी हैं ?—दस। शक्ति तो दसों दिशाओं में फैली हुई है। इसी लिए दुर्गा के दसों हाथों में समस्त बल है, समस्त शक्ति है। और शक्ति के दोनों ओर हैं लक्ष्मी और सरस्वती। शक्ति का आधार है क्रिया। क्रिया की मूर्ति सिंह है। क्रिया पर अधिष्ठित होकर, क्रिया का आश्रय लेकर शक्ति का त्रिशूल भैंसारूप प्रमाद को मार रहा है। वह काम जो आत्मा की ओर जाने में बाधा डाल रहा है, जड़ता की ओर खींचे लिये जा रहा है, प्रबल इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति, सतत अध्यवसाय से नष्ट किया जा रहा है। जड़तारूप महिषासुर के नष्ट हो जाने पर दोनों ओर श्री और विद्या का साक्षात्कार होता है। यही तो *विजय की देवी दुर्गा* हैं, जिनकी हम पूजा करते हैं। इसी दुर्गा के लिए युधिष्ठिर कहते हैं—

जया त्वं विजया चैव संग्रामे च जयप्रदा

—म० वि० ६।१६

तुम्हीं *जया* हो और तुम्हीं *विजया*। तुम्हीं संग्राम में जय देनेवाली हो।

छाया या माया की ओर दौड़नेवाली वृत्ति आसुरी वृत्ति है। यही वृत्ति आत्मा पर ढकन लगाती है, परदा डालती है। इतिहास में इसका लक्षण रावण में मिलता है। अतः इस वृत्ति की ओर बढ़े जाना आसुरिक विजय है अथवा *रावण की विजय* है। दूसरे शब्दों में आत्मा को पाने का प्रयत्न न करना, उसे भूलते जाना ही *आत्महत्या* है। परंतु माया के फेर में न पड़कर, उसके भुलावे में न आकर उसकी जड़ की ओर जाना और उसे जान लेना ही सच्ची आत्मविजय है। इतिहास की दृष्टि से यही *राम की विजय* है। आत्मा को जान लेनेवाला ही सच्चा *विजयी वीर* है। और आत्मा को जानना ही *सच्ची विजय* है। इसी का नाम *आत्मविजय* है।

माया का एक नाम श्री है और दूसरा नाम सरस्वती। विजय की देवी दुर्गा की अगल बगल

इन्हीं दोनों का वास है। आत्मा को पाने के बाद माया तो मिल ही जाती है; क्योंकि आत्मा का तेज ही मायारूप से दिखाई देता है। यहाँ इतना और समझ रखना जरूरी है कि आत्मा का तेज माया ही नहीं है; माया तो एक अंश भर है।

आत्मा का तेज जब छिपा रहता है अर्थात् अकेली आत्मा ही आत्मा रहती है, तब विजय नहीं होती। इसी प्रकार उसके तेज के चमकते रहने पर भी यदि आत्मा दिखाई नहीं देती, तब भी विजय नहीं होती। विजय तो होती है आत्मा और माया के साथ साथ रहने और आत्मानुसार माया के काम करते रहने से। संजय ने इसी लिए कहा है—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

जहाँ योगेश्वर कृष्ण (आत्मा अपने स्वरूप से) पार्थ धनुर्धर (माया) के साथ हैं, वहीं श्री (लक्ष्मी), विजय (विजय की देवी दुर्गा), भूति (माया), सरस्वती (ध्रुवानीति) हैं—ऐसा मेरा मत है।

रामलीला में राम और सीता का चरित्र, सीताहरण, रावण पर विजय, सीतामिलन आदि में जो कुछ दिखाया जाता है, वह इन्हीं सिद्धान्तों की मूर्ति है।

विजया दशमी के दिन दसों दिशाओं की शक्ति को केन्द्रित करके उसकी पूजा की जाती है। *अर्जुन की दिग्विजय* भी ऐसी ही है। अर्जुन ने भी दसों दिशाओं की शक्तिओं को लाकर युधिष्ठिर के चरणों में डाल दिया था। ये युधिष्ठिर ही आत्मा हैं। आत्मा की समस्त बिखरी हुई शक्तियाँ जब केन्द्रित हो जाती हैं तभी दिग्विजय होती है। ये शक्तियाँ आत्मा में ही केन्द्रित होती हैं। आत्मा में ही अनन्त आकर छिप जाता है। *युधिष्ठिर* इसी लिए *अनन्त विजयी* हैं।

अपने प्रति दिन के 'जय' शब्द द्वारा 'जय राम', 'जय कृष्ण', 'जय रामजी की' आदि शब्दों से हम इसी सिद्धान्त का घोष करते हैं। जिस दिन इस घोष को हम अपने जीवन में लायेंगे, प्रयोग में लायेंगे उसी दिन हमारी सच्ची विजय होगी। दुर्गा और विजय की उपासना करेंगे। आत्मा को पायेंगे। श्री संपन्न होंगे।

—वि. श. चतुर्वेदी

विजय का दर्शन

हम विजया को विजय का दर्शन करना चाहते हैं। विजय का सखा पंखों वाला 'द्विज' (Winged angel) होना चाहिए। ऐसे सुपर्ण सखा का वर्णन वेदों में है और संसार के सभी धर्म ग्रन्थों में भी है। हमारे भारत के ऋषियों ने उस विजय के दूत को अपने सामने उड़ते देखा है; उसका नाम है—

नीलकण्ठ।

(नीलकण्ठ की कथा पढ़ो—नवनीत में दी हुई है। उसका नाम है अमृत विजय)

नीलकण्ठायतेनमः।

—*पद्मनारायण आचार्य*

પૂર્ણ યોગ

(લે૦ — અમ્બાલાલ પુરાણી શ્રી અરવિન્દ આશ્રમ પાણ્ડિચેરી.)

(૫)

A new light shall break upon the earth, a new world shall be born, things that were promised shall be fulfilled—

—Mother.

'પૃથ્વી ઉપર એક નવીન જ્યોતિ પ્રગટશે, નવીન સૃષ્ટિ આ પૃથ્વી ઉપર અવતરશે, અપાએલાં વચનો સાર્થક થશે'—

—શ્રી માતાજી.

વિજ્ઞાનમય ભૂમિકા !—જ્યારે જુઓ ત્યારે 'વિજ્ઞાનમય ચૈતન્ય' વિજ્ઞાનમય ભૂમિકાની પ્રાપ્તિની જ હકીકત આ યોગમાં આવ્યા કરે છે. એ 'વિજ્ઞાન' શી ચીજ છે? શા માટે માનવે તેને પ્રાપ્ત કરવી જોઈએ? અને તે જો પ્રાપ્ત કરવાની હોય તો કેવી રીતે પ્રાપ્ત કરવી જોઈએ ? આને વિચારવા અયોગ્ય નહિ ગણાય.

વિજ્ઞાનમય ચેતના એટલે સત્યની ચેતના, ઋત-ચેતના. વિજ્ઞાનની ભૂમિકા એટલે સત્યં, ઋતં, અને બૃહત્ ની ભૂમિકા. ઋતં એટલે ક્રિયાત્મક સત્ય. સત્ય એટલે અસ્તિત્વમાં રહેલું સત્ય. ચૈતન્યની દરેક ભૂમિકા પેઠે વિજ્ઞાનનો પણ એક લોક છે, એને આપણે 'સૂર્યલોક' યા તો 'સત્યલોક' કહી શકીએ.

ત્યારે વેદાંતમતવાળા જેને નિરંજન, નિરાકાર, અચિન્ત્ય 'બ્રહ્મ' કહે છે,—જે મહાન, અનન્ત, શૂન્યાકાર, શુષ્ક, નિરપેક્ષ, માનવથી દૂર દૂર સદૂર છે,—જેમાં પ્રવેશ કરતાં માનવની માનવતા ગૂંગળાઈ જાય, મરી જાય, તે જ ને એ વિજ્ઞાનમય ચેતના ?— ના. વિજ્ઞાનમય ચેતના વિષેના એ ખોટા ભ્રમો છે. વિજ્ઞાનમય ભૂમિકા મનોમયતાથી ઊર્ધ્વ છે. એ સાવ સાચું, પરન્તુ એવા અર્થમાં નહિ કે વિજ્ઞાનમય ચેતના અને મનોમય કે પ્રાણમય કે અન્નમય ભૂમિકા વચ્ચે કશો સમ્બન્ધ જ નથી. ઊલટું વિજ્ઞાનનો ધર્મ તો એ છે કે જીવનનો, સ્થૂલ ભૂમિકાનો, સર્વે માનવ કરણોનો સ્વીકાર કરવો ને પ્રાણની સમ્પૂર્ણ પ્રફુલ્લતા, પરિપૂર્ણતા, ભોગ સામર્થ્ય અને આનન્દને ધારણ કરવાની શક્તિની અનન્ત વિપુલતા પ્રગટાવવી. હમણાં તો માનવનાં એ કરણોમાં એ શક્તિ એટલી ઓછી છે કે તેને 'ક્ષુદ્ર' કહી શકાય.

તો, વિજ્ઞાનમય ભૂમિકાને પ્રાપ્ત કરવાથી માનવજીવનના આનન્દનો, તેની પ્રાણશક્તિનો, શરીર વગેરેનો ત્યાગ કરવાની ફરજ નહિ પડે ? અત્યારે જે અવિદ્યાને વશ કરણો છે, જે અપૂર્ણ આનન્દનાં સ્વરૂપો છે તથા જે મર્યાદિત શક્તિ પ્રાણમાં તથા શરીરમાં છે તેનો ત્યાગ તો થવો જોઈએ. પરન્તુ એ ત્યાગ એટલે સમૂળો સન્યાસ નથી,— એ ત્યાગ એટલે તેમનો ઉચ્છેદ નહિ. અત્યારે માનવના પ્રાણમાં ભોગશક્તિ કેટલી છે વારૂ ? પ્રાણની શીઘ્ર-ક્લાન્ત ઉત્તેજનના અને નાડીઓની વિશિષ્ટ ગતિ — તે પણ કેવળ મર્યાદિત, અપૂર્ણ અને ક્ષણિક ! તેને ઠેકાણે જ્યારે એનાં એ કરણોમાં વિજ્ઞાનમય ચૈતન્યનું અવતરણ થશે અને તેમનું રૂપાન્તર થઈ જશે ત્યારે શરીરના એકે-એક અણુપરમાણુમાં, નાડીમાં, પ્રાણ શક્તિમાં, માનસિક

શક્તિમાં, અનન્તગુણુ શક્તિ, અનન્તગુણુ આનન્દ ધારણુ કરવાની ક્ષમતા પ્રાપ્ત થશે.

આટલા ઉપરથી વિજ્ઞાનની ભૂમિકામાં રહેલું ચૈતન્ય પ્રાપ્ત કરવાથી શાં શાં પરિણામો આવે તેનો કાંઈક ઓછો ખ્યાલ વાંચનારને આવશે. વિજ્ઞાનમાં ગતિ કરતી ચેતનાને બેવડું કાર્ય કરવાનું હોય છેઃ (૧) નિમ્નસ્તરોમાંથી ઊર્ધ્વમાં આરોહણુ તથા (૨) વિજ્ઞાનની ચેતના સહિત નિમ્નસ્તરોમાં અવરોહણુ. જેટલા પ્રમાણુમાં આરોહણુ વધારે ઊર્ધ્વ, તેટલા પ્રમાણુમાં અપરોહણુ પણુ તેટલુંજ નીચે અને વિશેષ સમ્પત્તિ સહિત થવાનું. અને ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણે વિજ્ઞાનની વિશિષ્ટતાજ એ છે કે જ્યારે માનવના આધારમાં તેનું અવતરણુ થાય છે ત્યારે તેની સાથે પ્રાણુની, અન્નમય ભૂમિકાની સત્ય ચેતના અને સત્ય ધર્મો તે પ્રગટાવે છે.

ત્યારે વિજ્ઞાનની અન્દર વસતી એ ચેતના બિનઅંગત-વ્યક્તિ વિહોણીજ હોય છે?—એવો પ્રશ્ન થવાનો સમ્ભવ છે. આપણે માનસશાસ્ત્રની દૃષ્ટિએ અભ્યાસ કરીએ છીએ તેમાં બુદ્ધિની સમજૂતીની સગવડને ખાતર આપણુને એ સઘળું બિનઅંગત માની લેવાની ફરજ પડે છે. પરન્તુ વાસ્તવમાં એ ચેતના બિનઅંગત હોતી નથી. અલબત્ત, સદા પોતાના ક્ષુદ્ર વ્યક્તિત્વમાં રચ્યા-પચ્યા રહેનાર માનવને વિજ્ઞાનમાં વસતા દિવ્ય વ્યક્તિત્વનો ખ્યાલ પણુ આવવો મુશ્કેલ છે; તો પણુ વિજ્ઞાનમાંની એ દિવ્ય ચેતના સર્વે વિશ્વોથી ક્યાંયે પર હોવા છતાં 'દિવ્ય માતા' 'આદ્ય શક્તિ' રૂપ છે. આદ્ય શક્તિ એટલે પરમ ભાગવત ચેતના. ભગવાનની—સર્વશક્તિમાન, સર્વજ્ઞ અને સર્વવ્યાપી ચેતનાને કેવળ તે આદ્યશક્તિજ પોતામાં ધારણુ કરી શકે છે. જગતમાં ભગવાનના આવિર્ભાવો—ક્ષર તથા અક્ષર દ્વારા—તે 'આદ્ય શક્તિ' જ કરે છે. જગજ્જનની રૂપે અનન્તકોટિ વિશ્વોનું સર્જન એજ કરે છે.

આ રીતે જોતાં ભગવાનની ચેતના, તેની શક્તિ તેજ આદ્ય શક્તિ,—તેજ વિજ્ઞાનમય ચેતના. એ આદ્યશક્તિ પોતાની ઊર્ધ્વ ભૂમિકામાં ત્રણુ પ્રકારે પ્રગટ થાય છેઃ (૧) પરાત્પરરૂપે, (૨) વિરાટ્‌રૂપે અને (૩) વ્યક્તિરૂપે. પરાત્પર રૂપે તે વિશ્વોથી પર રહી ભગવાનના અપ્રગટ સ્વરૂપ સાથે વિશ્વોને સાંકળે છે. આદ્ય, પરાત્પર શક્તિ પોતાની સનાતન ચેતનામાં ભગવાનની પરમ ચેતનાને ધારણુ કરે છે. પ્રભુના અપ્રગટ સ્વરૂપમાંથી જે જે સત્યો વિશ્વમાં પ્રગટાવવાનાં હોય તે સર્વેને તે પોતામાં ધારણુ કરે છે અને પોતાની શક્તિમાંથી તેમને પ્રાણુ આપે છે, તથા પોતાના રૂપમાંથી તેમને રૂપ આપે છે. એ આદ્યશક્તિમાં રમતી ભાગવત ચેતના સનાતન સચ્ચિદાનન્દમયી હોય છે.

વિરાટ્-શક્તિ રૂપે એ મહાશક્તિ સર્વે વિશ્વો-ઉત્પન્ન કરે છે તથા પોતે તેમાં પ્રવેશીને નાની-મોટી સઘળી ક્રિયાઓ, પ્રક્રિયાઓ, વિશ્વ-નિયમો વગેરે અનન્તવિધ પ્રવૃત્તિઓને ચલાવે છે. પ્રત્યેક લોક એટલે મહાશક્તિની લીલા એ વિરાટ્ લીલાનો વિસ્તાર પણુ ક્યાં મર્યાદિત હોય છે? સૌથી ઉપરની ટોચ ઉપર અનન્ત સત્, અનન્ત ચૈતન્ય અને અનન્ત આનન્દના લોક વિસ્તરી રહેલા છે; અને સનાતન આદ્યશક્તિ તરીકે મહાશક્તિ તેમનાથી પણુ ઉપર આવી રહી હોય છે. ત્યાં ઊર્ધ્વ લોકત્રયમાં, સર્વે સત્

પૂર્ણતા રૂપજ હોય છે, કારણ કે મહાશક્તિ પોતે તેમને પોતાના હાથમાં સલામત સમ્ભાળે છે. તેનાથી નીચે, આપણી માનવતાની વધારે સમીપ, વિજ્ઞાનમય સૃષ્ટિઓ આવી રહેલી છે. એમાં મહાશક્તિ પોતે દિવ્ય, સર્વજ્ઞ, તપઃશક્તિરૂપે તથા સર્વશક્તિમાન જ્ઞાનસ્વરૂપે હાજર હોય છે. એ ભૂમિકા સત્યની સાહજિક પૂર્ણતાની ભૂમિકા છે. ત્યાં સઘળું સત્યસ્વરૂપજ હોય છે. ત્યાં સર્વે સત્ દિવ્ય જ્યોતિર્મયજ હોય છે. અનુભૂતિ સર્વે આનંદમયજ હોય છે. માનવ જે જગતમાં ઉત્ક્રાંત થયેલ છે તે આપણી પાર્થિવ ભૂમિકા—મન પ્રાણ અને શરીરની ભૂમિકાત્રય અવિદ્યામાં આવી રહેલી છે, અને છતાં, તેમને પણ દોરી તો મહાશક્તિજ રહેલી છે. અવિદ્યામય મન, પ્રાણ અને અન્નમય ભૂમિકાઓ અને વિદ્યામય સત્યસ્વરૂપ વિજ્ઞાનની ભૂમિકા એ બેની વચ્ચે આપણી અવિદ્યામય ભૂમિકાઓની અધિષ્ઠાત્રી તરીકે મહાશક્તિ જુદીજ અન્તરિયાલ ભૂમિકામાં વસે છે. સર્વે દેવતાઓથી તેની એ ભૂમિકા ઊર્ધ્વ છે. ત્યાંથી તે વિભૂતિઓ, પોતાનો પ્રાદુર્ભાવ કરનારા અંશો વગેરેનો આપણી પૃથ્વી ઉપર આવિર્ભાવ સમયે સમયે કરે છે.

પરન્તુ એ ઊર્ધ્વ ભૂમિકામાં રહીનેજ મહાશક્તિ આપણા ત્રિલોકને ચલાવે છે, એવું પણ નથી. એ તો આપણી પાર્થિવ ભૂમિકા ઉપર અવતરે છે પણ ખરી. વિશ્વની અનન્તવિધ શક્તિઓમાં કાર્ય પણ તે મહાશક્તિજ કરી રહેલી છે. પરન્તુ એ સર્વસામાન્ય હકીકત ઉપરાંત વ્યક્તિ-સ્વરૂપે પણ મહાશક્તિ અવતરે છે. અને માનવ જાતિને ઊર્ધ્વ ભૂમિકાઓ પ્રત્યે દોરે છે. દિવ્ય પરાત્પર ભાગવત ચૈતન્ય અને માનવતા એ બેની વચ્ચે દૂતી તરીકે મહાશક્તિ કાર્ય કરે છે.

વિજ્ઞાનની ભૂમિકામાં વસતી આદ્યશક્તિનાં ચાર વ્યક્તિ સ્વરૂપો આપણા વિશ્વની ઘટનામાં આગળ પડતાં જણાય છે. એ ચાર સ્વરૂપો તે ૧ માહેશ્વરી, ૨ મહાકાલી, ૩ મહાલક્ષ્મી અને ૪ મહાસરસ્વતી. પ્રથમ સ્વરૂપ છે શાન્ત સર્વગ્રાહી જ્ઞાનસામર્થ્યવાળું પ્રશાન્ત માયાળુતા અને અખૂટ દયાવાળું. એ સ્વરૂપ સમ્રાટસમાં અલૌકિક મહિમાવાળું તથા સર્વશાસક પ્રભાવનું મૂર્ત સ્વરૂપ છે. બીજું છે તેના તેજસ્વી સામર્થ્યનું અને અપ્રતિહત દુર્ધર્ષ વેગનું—મહાશક્તિનું ક્ષાત્ર સ્વરૂપ દુર્ધર્ષ અવિકારી તપઃશક્તિનું, વિદ્યુતસમા વેગનું અને વિશ્વસકળને કમ્પાવી મૂકે તેવી ઝન્ઝાવાત સમશક્તિનું સ્વરૂપ. ત્રીજું છે મધુરતા અને વિશદતાવાળું, સૌન્દર્ય તથા સમ્વાદના ગહન રહસ્યથી પૂર્ણ અને સૂક્ષ્મ વિવિધ સમ્પત્તિ અને સિદ્ધિવાળું; તેના પ્રત્યે વળવાની ફરજ પાડે એવી લોહચુંબકસમી આકર્ષણ-શક્તિભર્યું તથા મોહિની લગાડી પરવશ કરે એવું લાવણ્યમય, ચોથા સ્વરૂપમાં આત્મસંરક્ષક ઊંડું જ્ઞાન, તથા કાળજીભરી સ્ખલનરહિત ક્રિયાશક્તિ હોય છે. સર્વે પદાર્થોમાં શાન્ત અને ચોક્કસ કાર્ય કરી પૂર્ણતા પ્રગટ કરવાનું સામર્થ્ય તેનામાં હોય છે. ૧ જ્ઞાન, ૨ શક્તિ, ૩ સમ્વાદ અને ૪ સિદ્ધિ એ ચાર ગુણો એ ચાર સ્વરૂપોમાં અનુક્રમે પ્રધાન હોય છે.

વિશ્વમાં જે દેવતાઓ છે તે સર્વે એ આદ્યશક્તિથી સ્વતન્ત્ર શક્તિઓ નથી. ખરૂં જોતાં 'દેવ' બધા એકજ ભૂમિકાના હોતા નથી. ચૈતન્યની જુદીજુદી ભૂમિકામાં દેવતાઓ હોય છે. ગામડામાં પૂજાય છે તે વેરાઈ માતાજીથી

આરમ્ભીને, હનુમાન, ભૈરવ, ભદ્રકાળી, ગણપતિ, સૂર્ય; શિવ, બ્રહ્મા, વિષ્ણુ વગેરે દેવતાઓ ચૈતન્યની એકજ ભૂમિકાના નથી. સાચા દેવતાઓ વિજ્ઞાનની પૂર્વે આવેલી 'દિવ્ય મનીષા' (Overmind) ની ભૂમિકામાં વસે છે. ત્યાં વસનારા સર્વે દેવો મહાશક્તિનાંજ વ્યક્તિસ્વરૂપો, તેની અન્દરથી પ્રગટતાં કિરણો અને અંશરૂપ હોય છે. એવા અંશો જ્યારે પૃથ્વી ઉપર મહાશક્તિ પ્રગટાવે છે, ત્યારે તેઓ મહાશક્તિ સાથે આન્તર ચૈતન્ય વડે સતત સમ્બન્ધ રાખે છે. અને જ્યારે વિશ્વમાં તેમના આવિર્ભાવનો હેતુ સિદ્ધ થાય છે ત્યારે તેનાં સ્વરૂપો પાછાં મહાશક્તિમાં લય પામી જાય છે.

વિજ્ઞાનની ભૂમિકામાં સર્વે દેવો મહાશક્તિનાજ પોતાના અંશ હોઈ સર્વે પરસ્પર સમ્પૂર્ણ સમ્વાદમાં રહી કાર્ય કરે છે. વિરાટ્નાં કાર્યો ઉપર અધિષ્ઠાતા તરીકે સ્થાપન થયેલા દેવો મહાશક્તિની આ વિરાટ લીલામાં સનાતન અંશ તરીકે નિત્ય હાજર હોય છે.

પરન્તુ વાંચનારને લાગશે કે આતો ભારે ખીચડો થઈ ગયો ! વિજ્ઞાનમય કોશ, વિજ્ઞાનમય ચેતનાને પ્રાપ્ત કરવાની વાત આ આખાય ખંડમાં આવે છે અને અહીં તો વિજ્ઞાનમય શક્તિ તેજ આદ્યશક્તિ અને તેજ મહાશક્તિ, તેજ માહેશ્વરી, મહાકાલી, મહાલક્ષ્મી અને મહાસરસ્વતી,—એમ કહેવામાં આવ્યું, ત્યારે પછી માનવે તેનેજ પ્રાપ્ત કરવાનીને ? ઉત્તરમાં કહી શકાય 'હા'

પરન્તુ આપણી બુદ્ધિથી સમજી શકાય તેટલા માટે આપણે વિજ્ઞાનની એ મનસાતીત ભૂમિકાનું માનસશાસ્ત્રની દૃષ્ટિએ નિરૂપણ કરીશું.

પ્રાચીન કાળથી આર્ય માનસશાસ્ત્રમાં મનસાતીત અને અતીન્દ્રિય એવી ભૂમિકાઓનું અસ્તિત્વ સ્વીકારાતું આવ્યું છે. કેટલીકવાર ચૈતન્યના બે ગોલાર્ધ પણ માનવામાં આવેલા છે. એક ઊર્ધ્વ અને બીજો નિમ્ન. ઊર્ધ્વ ગોલાર્ધ ત્રણ સ્તરોનો બનેલો હોઈ તેમાં અનન્તતા વિલસે છે. એને સચ્ચિદાનન્દ એટલેકે સત્, ચિત્ અને આનન્દનાં મૌલિક તત્ત્વોની અનન્તતાનો બનેલો ઊર્ધ્વ ગોલાર્ધ કહેવામાં આવે છે. એ અનન્તતાનો ઊર્ધ્વ ગોલાર્ધ અને મન, પ્રાણ તથા અન્નમય ચેતનાનો બનેલો આપણો માનવતાનો નિમ્ન ગોલાર્ધ એ બેની વચ્ચે વિજ્ઞાનમય ભૂમિકા બેને જોડનાર આંકડા તરીકે આવી રહેલી છે.

પરન્તુ આટલા ઉપરથી આપણી મનોમય ભૂમિકા છોડીએ કે તુરતજ વિજ્ઞાનમય ચેતના આવે છે, એવું માની લેવાની ભૂલ ન કરવી જોઈએ. ખરૂં જોતાં મનોમય અને વિજ્ઞાનની ઉચ્ચમાં ઉચ્ચ ભૂમિકા વચ્ચે ઘણી ઘણી પાયરીઓ, તબક્કાઓ આવી રહેલા છે. ઉદાહરણ તરીકે,—વિજ્ઞાનથી નિમ્ન સ્તરોમાં "દિવ્ય-મનીષા" (Overmind) ની ભૂમિકા આવી રહેલી છે. ઘણા ઘણા પ્રાચીન સાધકોએ તે ભૂમિકાની અનુભૂતિનેજ ભૂલથી વિજ્ઞાનની ભૂમિકા માની લીધેલી જણાય છે ! દિવ્યમનીષાની એ ભૂમિકા ઉપર કાર્ય કરતી શક્તિ (Formative power)—રૂપો ઘડનારી શક્તિ છે. ત્યાં અનેક શક્યતાઓ પરસ્પર અથડાતી અને આપણી સ્થૂલ ભૂમિકા ઉપર પ્રગટ થવા મથતી માલૂમ પડે છે. પરન્તુ (તેવી તેમાંની) અમુકજ છેક સ્થૂલ સુધી પોતાનો આવિર્ભાવ કરવામાં ફતેહ મેળવી શકે છે. આમ હોવાથી દિવ્યમનીષાની ભૂમિકાને ચૈતન્યની ઉચ્ચમાં ઉચ્ચ અને સત્યતમ ભૂમિકા માની લેનારા ઘણા

સાધકો એવા નિર્ણય ઉપર આવે છે કે એ દિવ્ય શક્તિજ ઉચ્ચતમ સર્જક શક્તિ છે અને તે જ્યારે પોતાનાં સર્વે ઘડતરો સ્થૂલ ભૂમિકામાં પ્રગટ કરી શકતી નથી—તે પણ જ્યારે પોતાનાં ઘડતરોને પ્રગટવા માગતી નથી, એમ કહો તો પછી તે માયાશક્તિ નહિ તો બીજું શું ? એવી દલીલ કરી શકાય. આમ અન્તિમ સત્યને પ્રાપ્ત કરવા જતાં આડે રસ્તે ચઢી જવાથી, અપૂર્ણ માનવ પ્રકૃતિનું વિજ્ઞાનમય સત્યમાં અને પૂર્ણતામાં રૂપાંતર કરવાનું રહસ્ય તેઓ જોઈ શક્યા નહિ. અને આવી એકદેશીયતાની ભૂલ કરનાર સાધકો કાંઈ જેવા તેવા ન હતા ! શંકરાચાર્ય જેવા પ્રખર બુદ્ધિશાળી અને ઉચ્ચ કોટિના સાધકે પણ એજ નિર્ણય બાંધ્યો ! ખરૂં છે કે વૈષ્ણવ ધર્મમાં અને તન્ત્રમાર્ગમાં માનવ પ્રકૃતિનો સ્વીકાર કરી તેનું રૂપાંતર કરવા માટે લગભગ સફળતાની સીમાએ પહોંચેલો પ્રયત્ન કરવામાં આવ્યો. પરન્તુ છેવટનું રહસ્ય તેમના હાથમાંથી સરી ગયેલું લાગે છે. વૈષ્ણવ ધર્મમાં ભક્તિનું વિશુદ્ધ સ્વરૂપ પ્રાણના મિશ્રણને લઈને કલુષિત થયું અને પૃથ્વી ઉપર પ્રભુનું વૈકુંઠ પ્રગટાવવાનો પ્રયત્ન કરવા જતાં પાર્થિવતાને દિવ્યતાનું નામ આપીને સન્તોષ માનવો પડ્યો.

ખરૂં જોતાં ભગવાનની પ્રાપ્તિ આપણે ત્યાં એક પ્રકારની નિષ્ક્રિય ચૈતન્ય-અવસ્થાનીજ પ્રાપ્તિના પર્યાયરૂપ ગણાતી હોય, એમ લાગે છે. ભગવાન એટલે વિશ્વવ્યાપી જાગતી જ્યોત, ભગવાન એટલે જીવનનું સક્રિય દિવ્ય સત્ય, એ વિચારજ લગભગ ભૂલાઈ ગયા જેવો થઈ ગયો છે, અને એમ થવાનાં અનેક કારણોમાંનું એક એ છે કે વિજ્ઞાનની પૂર્વે જે દિવ્યમનીષાની ભૂમિકા આવેલી છે તેમાં કાર્ય કરનારી શક્તિને ઘણા સાધકોએ સાચી વિજ્ઞાનની શક્તિ તરીકે સ્વીકારી લીધી જણાય છે, યા તો તેને પણ 'માયા' 'મિથ્યા' ગણી કાઢીને તેનો ત્યાગ કરીને અપૌરૂષેય નિરંજન નિરાકાર અવ્યક્તમાં લય પામવાનોજ આદર્શ સેવ્યો છે. ખરી વાત એ છે કે એ દિવ્યમનીષાની ભૂમિકા મનોમયતાનું ઉચ્ચતમ શિખર છે. ચૈતન્યના નિમ્ન ગોલાર્ધનું તે ઉચ્ચતમ શિખર છે. પરન્તુ વિજ્ઞાનની ભૂમિકાને પહોંચવા માટે સાધકે આ 'દિવ્યમનીષા'ની ભૂમિકાને વટાવવીજ પડે છે.

માનવની મનોમય ચેતના અને દિવ્ય-મનીષાની ભૂમિકાએ બેની વચ્ચે ઘણી ઘણી અન્તરાલ ભૂમિકાઓ મધ્યદશાઓ અને પગથીઆંઓ આવી રહેલાં છે, એમ ઉપર કહેવામાં આવેલું છે. આ વિજ્ઞાનયોગનો આખો ખંડ એ અન્તરાલ ભૂમિકાઓમાંની ફક્ત કેટલીકનાજ ધર્મોનું વર્ણન કરવાનો પ્રયત્ન છે, એમ કહીએ તો પણ ખોટું નથી. વાંચકે જાતે એ વિગતવાર વર્ણન વિજ્ઞાનખંડમાંથી વાંચી લેવું. અહીં ચૈતન્યના ઊર્ધ્વ ગોલાર્ધ તથા નિમ્ન ગોલાર્ધની રૂપરેખા આપવાનો પ્રયત્ન કરીશું.

પ્રાચીન માનસશાસ્ત્રની એક પ્રણાલિ પ્રમાણે ઊર્ધ્વ ગોલાર્ધમાં ૧ ઈશ્વર, ૨ શક્તિ અને ૩ જીવ એમ ત્રણ તત્ત્વો ગણાય છે, જ્યારે બીજી પ્રમાણે ૧ સચ્ચિદાનન્દ, ૨ માયા અને ૩ જીવ એ ત્રણનો સમાવેશ થાય છે. શ્રીઅરવિન્દની વિજ્ઞાનની પદ્ધતિમાં ૧ આનન્દ (સત્ અને ચિત્ એ બે તેના ઉપર પ્રતિષ્ઠિત ગણી લેવાનાં) ૨ વિજ્ઞાન ૩ દિવ્યમનીષા (overmind plane) એ ત્રણ તત્ત્વો ઊર્ધ્વ ગોલાર્ધમાં મૂકી શકાય.

દિવ્ય-મનીષાની નીચે વિજ્ઞાન-બુદ્ધિ, દૃષ્ટિ,

શ્રુતિ અને સ્મૃતિ એ મનોમય ભૂમિકાથી ઊર્ધ્વમાં રહે તો પ્રદેશ અને તેની નીચે મનોમય ભૂમિકા-જેમાં શુદ્ધબુદ્ધિ, વ્યવહારલક્ષી બુદ્ધિ અને સમજણ શક્તિ તથા તે ઉપરાંત કલ્પના, નિર્ણય, વિવેક વગેરે શક્તિઓ પણ આવી જાય છે, તે તથા તેનાથી નીચે જતાં કપાળમાં ભ્રમર વચ્ચે સૂક્ષ્મ દૃષ્ટિનું તથા તપઃશક્તિનું અને ગળામાં વાણી દ્વારા-અભિવ્યક્તિનું કેન્દ્ર આવે છે તથા તેનાથી નીચે હૃદય પાસેજ ઇન્દ્રિયાધિષ્ઠિત માનસ અને હૃદયની સપાટી પર ભાવપ્રધાન ચિત્ત અને ઊંડાણમાં ચૈત્ય-પુરૂષ આવી રહેલ છે. હૃદયની નીચે નાભિમાં ઊર્ધ્વ પ્રાણનું કેન્દ્ર આવી રહેલું છે. ત્યાંથી નીચેના ભાગમાં નિમ્ન પ્રાણની અને કરોડના અન્તમાં મૂલાધારમાં અન્નમય ચેતનાનું કેન્દ્ર આવી રહેલું છે.

Super-Mind વિજ્ઞાન

સર્વ સમર્થ અને સર્વશાસક જ્ઞાનશક્તિ અને આનન્દની સૃષ્ટિ

Over-Mind દિવ્ય-મનીષા

Divine-Reason વિજ્ઞાન બુદ્ધિ

Revelation દૃષ્ટિ અને

Intuitive Discrimination સ્મૃતિ વિવેક શક્તિ

Inspiration શ્રુતિ અને Intuition સ્મૃતિ

Mental Being મનોમય ભૂમિકા

Emotional Being ચિત્ત

Vital Being પ્રાણ

Physical Being અન્ન

પરન્તુ માનવના માનસનાં કરણોના ભેદ-પ્રભેદ પાડવાની આ એક જ રીત સમ્ભવિત છે, એમ માની લેવાનું નથી. તેમની યોજના આપણે જુદી જુદી રીતે કરી શકીએ. બધી યોજનાઓ આપણી બુદ્ધિની સમજુતીની સગવડને ખાતર છે, એ વાંચનારે ખાસ ધ્યાનમાં રાખવું જોઈએ. વ્યહવારમાં એ કરણોના કાર્યમાં ઘણો ફેર પડી જાય છે અને તેમની ક્રિયા પરસ્પર સંમિશ્ર થઈ ઘણી અટપટી બની જાય છે. તેમની ગોઠવણીની બીજી પદ્ધતિમાં આપણે ચૈત્ય-પુરૂષને કેન્દ્રમાં ગોઠવીને બાકીનાં બીજાં બધાંને તેની આજુ બાજુ વર્તુલાકારે ગોઠવી શકીએ. આવી સર્વે ગોઠવણી આપણી બુદ્ધિની સગવડને ખાતર ઉપયોગી છે. વસ્તુતઃ સૂક્ષ્મ કરણોમાં તેને લઈને કશો ભેદ પડતો નથી.

વિજ્ઞાનમય સત્ય કેવી રીતે પ્રાપ્ત કરવું ?

પૂર્ણયોગના ગ્રન્થોમાં એના ઉપાયો જુદે જુદે સ્થળે આપવામાં આવ્યા છે, તેમાંના કેટલાક વિધિ નિષેધાત્મક માલૂમ પડશે. પરન્તુ આપણે પ્રથમ વિજ્ઞાનપ્રાપ્તિનો મૌલિક સિદ્ધાન્ત સ્પષ્ટરીતે સમજવા પ્રયત્ન કરીશું, બે શક્તિઓનું પરસ્પર ન્યૂનતાપૂર્વક કાર્ય થાય ત્યારે વિજ્ઞાનમય ભૂમિકાની પ્રાપ્તિમાં સફળતા મળે. ૧ અવિરત—અવિચ્છિન્ન અને સતત એવી વ્યક્તિની અભીપ્સા. ૨ ઊર્ધ્વ ભૂમિકામાંથી માનવની અભીપ્સાનો પ્રત્યુત્તર આપનાર પરમ ભાગવત કરૂણા એ બે શક્તિઓ છે. પોતાના અંગત પ્રયત્નથી, માનવતાની ઊર્ધ્વ જે દિવ્યશક્તિ આવી રહેલી છે તેને સાધક પોતાનામાં અવતરણ કરવાની ફરજ પાડી શકતો નથી, યાતો, પોતે સ્વપ્રયત્ન માત્રથી પોતાનાથી પર એવી ભૂમિકાઓમાં આરોહણ કરી શકતો નથી. સ્વપ્રયત્નથી માનવ પોતાની જાતને ઊર્ધ્વ ભૂમિકામાં ગતિ કરવા લાયક બનાવી શકે, ઊર્ધ્વ ભૂમિકાની દિવ્ય શક્તિ પોતાના આધારમાં

અવતરણ કરે તેની શરતો પોતાના આધારમાં તે પૂરી પાડી શકે એ ખરૂં છે. એ માનવસાધ્ય પ્રયત્ન શ્રી અરવિન્દના અભિપ્રાય પ્રમાણે ત્રણ મુખ્ય રૂપમાં વ્યકત થાય છે. ૧ અભીપ્સા; ૨ અસ્વીકાર યાને ઈન્કાર; ૩ આત્મસમર્પણ. પોતાનાથી ઊર્ધ્વ ચેતના માટે, સત્ય માટે, અવિદ્યા દૂર કરવા માટે, વિદ્યાની સ્થાપના માટે, પ્રકૃતિનું રૂપાન્તર કરવા માટે એમ અનેક ઇષ્ટ તત્ત્વો માટે સાધક પોતાની અન્દર અભીપ્સાની અગ્નિજ્યોતને જવલન્ત રાખી શકે છે. કેટલાક પ્રારબ્ધવાદી સાધકોની એવી માન્યતા—જે 'સઘળું ભગવાન કરે છે માટે આપણી સાધના—આપણાવતીની અભીપ્સા પણ, તેજ કરશે'—એ સાવ ભૂલભરેલી હોઈ આધ્યાત્મિક પ્રગતિની ધ્વંસક અને માનવ આત્માને હાનિકારક છે. એ પ્રમાણેજ ઈન્કાર કરવાનો પ્રયત્ન એટલે કે પોતાની પ્રકૃતિમાં રહેલાં અનિષ્ટ તત્ત્વોનો—કાર્યો અને શક્તિઓનો, ગતિઓનો અને વસ્તુઓનો અસ્વીકાર કરવો એ સાધકના સ્વપ્રયત્ન વડે સાધ્ય છે. ભગવાન પોતે આપણી અન્દરની સર્વે અનિષ્ટ વસ્તુઓને દૂર કરી દેશે, એમ માની લઈ સાધકે હાથ જોડી બેસી રહેવાનું નથી. ખરૂં છે કે પોતાની પ્રકૃતિની કેટલીએ ખામીઓ અને મુશ્કેલીઓને ઈચ્છવા છતાં અને પ્રયત્ન કરવા છતાં સાધક સહેલાઈથી દૂર કરી શકશે નહિ. પરન્તુ તેટલા ઉપરથી એમ સિદ્ધ નથી થતું કે સાધકે કાંઇજ કરવાનું નથી. પોતાની પ્રકૃતિમાં જે કાંઈ અસત્ય હોય, જે કાંઈ અજ્ઞાન વડેજ આચ્છાદિત હોય, તેને જાતે શોધવાનું છે. તે શોધવામાં પ્રભુની મદદ માગી તથા લઈ શકાય છે. અને એવી વસ્તુઓની શોધ થયા પછી તેમનો ખાતરીપૂર્વક સતત ઈન્કાર સાધકે કર્યે જવો જોઈએ અને એ પ્રમાણે પોતે ખંતપૂર્વક એકધારો પ્રયત્ન કરે તોજ પોતાને સહાય કરવા માટે સાધક ભગવાનની દિવ્ય શક્તિને આહ્વાન કરી શકે. "સત્ય અને અસત્ય, જ્યોતિ અને અન્ધકાર, આત્મસમર્પણ અને સ્વાર્થ" શ્રીઅરવિન્દ કહે છે—"એ બન્ને એકજ સાથે કેવી રીતે રહેવા દઈ શકાય ?!"

સમર્પણનું પણ ઉપર બે પ્રકારના પ્રયત્ન વિષે કહ્યું તેવુંજ સમજવાનું છે, ભગવાન પોતે કે ભગવાનની મહાશક્તિજ યોગસાધના કરે છે ને ? માટે આત્મસમર્પણ પણ તેજ કરશે ને ?' એવી વૃત્તિ તમોગુણોનું પરિણામ છે. ભગવાનની શક્તિ સાધકમાં સર્વે કાર્યો કરે એ તો સાધનાની અન્તિમ દશામાંજ સમ્ભવે. શરૂઆત કરનાર એવી વૃત્તિ સાચી રીતે કદી પણ ધારણ કરી શકતો નથી. અને છતાં કેટલીક વાર પોતે એ પ્રમાણે ભગવાનની શક્તિને બધું સમર્પણ કરી ચૂક્યો છે, એમ માની લે છે. વળી ભગવાન સાધક પાસે સમર્પણની આશા રાખે છે પણ પોતાના સર્વશક્તિમાનપણાનો લાભ લઈ સાધકને સમર્પણ કરવાની ફરજ તે કદી પાડતો નથી. ભગવાન માનવનું આત્મસમર્પણ ચાહે છે પરન્તુ તે સમર્પણ સ્વેચ્છાપૂર્વક અને આનન્દભેર થાય, એમ એ ચાહે છે અને માગે છે. અને છતાં ઘણીવાર જડતાભરી તામસિક નિષ્ક્રિયતાને સાચા સક્રિય આત્મસમર્પણ તરીકે સ્વીકારી લેવામાં આવે છે. એવી તામસિક નિષ્ક્રિયતામાંથી સમર્થ અને ઉચ્ચ પ્રકારની આધ્યાત્મિક અનુભૂતિ કદી જન્મતી નથી.

આ ઊર્ધ્વગતિ માટે અભીપ્સા રાખનાર સાધકે કેટલીક સાવચેતીઓ રાખવાની જરૂર છે.

એ નિષેધાત્મક સૂચનાઓ પ્રથમ લઈશું. સર્વ પ્રકારના અહઙ્કારમાંથી સાધકે પોતાના માનસને મુક્ત કરવાને સતત જાગ્રત પ્રયત્ન કરવો જોઈએ. "હું મહાન છું" એવી અભિમાની લાગણીથી માંડીને 'હું પ્રભુનું દિવ્ય કરણ છું,' 'મારા વિના પ્રભુનું કાર્ય પણ નહિ થઈ શકે' એવી માન્યતા સુધી અહન્તા નડે છે, એટલુંજ નહિ પરન્તુ 'મારામાં કશી પણ યોગ્યતા નથી', 'હું નમ્ર છું' એવી નિરભિમાની દેખાતી માન્યતાઓમાં પણ તે પ્રવેશી રહે છે!! તેનાં સર્વે બદલાતાં રૂપો, તેની સર્વે ક્રિયાઓને શોધીશોધીને સાધકે સતત ઈન્કાર કર્યા કરવાનો છે.

ત્યારે અહંતા વિના સાધક કાર્યજ શી રીતે કરવાનો? એવો પ્રશ્ન થાય તો ઘણો વ્યહવારૂ ગણાય, કારણકે આપણી પ્રાચીન સાધનાપ્રણાલિકામાં 'સાત્વિક અહંકાર'—થોડો તેનો આકાર—કર્મમાત્રને માટે આવશ્યક ગણાય છે અને જો સાધનાનો અન્તિમ ઉદ્દેશ વિલયાત્મક મોક્ષની પ્રાપ્તિજ હોય તો એ માન્યતા ઘણે અંશે સાચી પણ કહેવાય. પરન્તુ પૂર્ણયોગમાં જીવનનો અર્થાત્ કર્મોનો પણ સ્વીકાર છે. પરન્તુ તેમાં જે કર્મો કરવાની છૂટ સાધકને છે તે સર્વે તેની સાધના કે અહંતામાંથી કે તેના મર્યાદિત, ક્ષુદ્ર, વ્યક્તિ સ્વરૂપમાંથી નહિ, પરન્તુ તેની અન્દર રહેલા સત્યસ્વરૂપ, તેના 'જીવ' માંથી જન્મે છે. અહીં ફરીને શ્રીઅરવિન્દની યોગસાધનાની ભાવાભાવાત્મકતા ઉપર ભાર દેવો પ્રાપ્ત થાય છે. 'અહંતા' દૂર થાય, એ ઈષ્ટ ખરૂંજ. પરન્તુ તેને કરીને શૂન્યમાં કે જડતામાં સાધકે ડૂબવાનું નથી. તેણે ખાલી કરેલે ઠેકાણે ચૈત્ય-પુરૂષ અને વિજ્ઞાનની દિવ્યભૂમિકામાં રહેતા પોતાના 'જીવ-સ્વરૂપ' ને સાધકે સ્થાપન કરવાનું છે.

જરા વધારે સ્પષ્ટ રૂપમાં મૂકી ને આ નિષેધની પાછળ રહેલ ભાવાત્મક, વ્યવહારૂ ઉપાયોની સમાલોચના કરીશું તો આપણને જણાશે કે અત્યારે માનવની ચેતનાની સપાટી ઉપર જે ક્ષર વ્યક્તિત્વને તે પોતાનું સાચું સ્વરૂપ માનતો હોય છે, તેની પાછળ આવી રહેલ આ ચૈત્યપુરૂષને અન્તરના ઊંડાણમાં ઉતરીને પ્રાપ્ત કરવો તથા ક્રમે ક્રમે તેને બહાર ચૈતન્યની સપાટી ઉપર લાવી મનોમય, પ્રાણમય તથા સ્થૂલ અન્નમય પ્રકૃતિને તેના વડે સંચાલિત કરવી, એ આ યોગમાર્ગની એક ઉપયોગી અને વિજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ માટે તો અનિવાર્ય જરૂરિયાત છે. એવો પ્રશ્ન પણ થવાનો સમ્ભવ છે કે એ ચૈત્ય-પુરુષ કેવી રીતે પોતાની અન્દર સાધક જાગ્રત કરી શકે? પ્રાથમિક શરત તરીકે એમ કહી શકાય કે પોતાના પ્રાણમાં ઉદ્ભવતા અન્ય કામનામય હેતુઓના શુદ્ધ આધ્યાત્મિક હેતુ જોડે-થતા મિશ્રણને સાધક દૂર કરે તો ચૈત્ય-પુરુષ વધારે સહેલાઈથી જાગ્રત થઈ શકે. અર્થાત્ કોઈ પ્રકારની મહત્ત્વાકાંક્ષા, અભિમાન કે આધ્યાત્મિક શક્તિ પ્રાપ્ત કરવાની યા તો સિદ્ધિ મેળવવાની ઇચ્છા જાગ્રત થાય તો ચૈત્ય-પુરુષની જાગૃતિ અસમ્ભવિત થઈ પડે છે. પણ એ ચૈત્ય-પુરુષ કોણ છે? એની જાગૃતિ વિના વિજ્ઞાન પ્રાપ્તિના સમ્ભવત નથી એટલી બધી તેની અગત્ય છે ત્યારે તેનું સ્વરૂપ શું તે જાણવું જરૂરનું છે. ચૈત્ય-પુરુષ એ સાધકની અજ્ઞાન અવસ્થામાં કાર્ય કરતું, અપૂર્ણ અહંતાની પાછળ આવી રહેલું તેનું પોતાનું સત્ય વ્યક્તિત્વ વિજ્ઞાનમાં ભગવાનના અંશ રૂપે રહેલ—દિવ્ય વ્યક્તિત્વનું જીવનું નિમ્ન પ્રકૃતિમાં આવી રહેલ સક્રિય પ્રતિનિધિ તે ચૈત્યપુરુષ. આ મત પ્રમાણે જુની વેદાંતી માન્યતા કે "જીવ તો અવિ-

દ્યામાં પડેલ શિવ" એ બરાબર નથી. "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः" એમાં શ્રીકૃષ્ણ ભગવાન્ પણ એજ મુદ્દો સ્પષ્ટ કરે છે કે જીવ ભગવાનનો પોતાનો અંશ છે અને ભગવાન જે વિજ્ઞાનમય ભૂમિકામાં રહી કાર્ય કરે છે, ત્યાં જીવ પણ તેની સાથે રહેલો છે. તાત્પર્ય કે અવિદ્યામાં થતી જન્મ-જન્માન્તરની ઘટનામાં જીવ પોતે આવી પડેલો હોતો નથી પરન્તુ ઊર્ધ્વ વિજ્ઞાનમય ભૂમિકામાં રહ્યો તે નિમ્ન પ્રકૃતિને પોતાના પ્રતિનિધિ ચૈત્યપુરુષ દ્વારા ઊર્ધ્વ ભૂમિકાઓ પ્રત્યે ઉત્ક્રાન્તિના ક્રમ દ્વારા દોરે છે. આ બાબતમાં શ્રી અરવિંદની મીમાંસા બીજા ઘણા આર્ય મીમાંસકોથી જુદી પડે છે, તેની વાંચકે ખાસ નોંધ લેવી.

એ ચૈત્ય પુરૂષને જાગ્રત કેવી રીતે કરવો? અને પોતાની પ્રકૃતિમાં તે આગળ પડતો ભાગ લે, તેજ તેનું નેતૃત્વ કરે, એવી સ્થિતિ કેવી રીતે ઉત્પન્ન કરવી? એમ કરવા માટે પોતાની બહિર્મુખ પ્રકૃતિમાંથી ચૈતન્યને પાછું ખેંચીને અન્તરના ઊંડાણમાં ડૂબકી મારવાનો અભ્યાસ કેળવવો જોઈએ. એમ સતત કરવાથી મનોમય ભૂમિકાની ક્રિયામાં પણ આન્તર મનનો ભાગ, પ્રાણમય સત્‌ની સર્વે ક્રિયાઓમાં આન્તર પ્રાણની પ્રવૃત્તિ આગળ પડતી થાય છે. બુદ્ધિ વડે, વિચાર વડે પોતાની સર્વે ક્રિયાઓ કરવાના જુના અભ્યાસને ધીમે ધીમે દૂર કરીને તેને ઠેકાણે ચૈત્ય પુરૂષની પ્રવૃત્તિ પોતાને દોરે એવી અભીપ્સા સેવી તેને અનુસાર વર્તન કરવાનો અભ્યાસ કરવો જરૂરનો છે. જ્યાં સુધી કામનામય પ્રાણ, મનોમય બુદ્ધિ યાતો બીજું કોઈ તત્ત્વ આપણી પ્રકૃતિનું નેતૃત્વ કરતું હોય છે, ત્યાં સુધી આ આપણી પ્રકૃતિની પાછળ રહેલ શુદ્ધ વ્યક્તિત્વ ને બહાર આવવાની તક મળતી નથી અને ત્યાં સુધી જીવનની ગતિ સાચી દિશામાં થઈ શકતી નથી.

જ્યારે એ પ્રમાણે કાંઈક અંશે થઈ શકે છે ત્યારે માલૂમ પડે છે કે અંતરમાં ડૂબકી મારવાની ક્રિયાની સાથે સાથે ઊર્ધ્વ ગતિ યાને ચૈતન્યનું આરોહણ પણ થવા માંડે છે. નિમ્ન પ્રકૃતિમાં થતી પ્રત્યેક ક્રિયાનો આરંભ ત્યાર પછીથી ઊર્ધ્વ ભૂમિકામાં થાય તેની સાધક વાટ જુએ છે. ત્યાર પછીથી ત્રીજી ક્રિયા થાય છે, તે એ કે ઉપરની આધ્યાત્મિક ભૂમિકાની દિવ્ય શક્ત સાધકની નિમ્ન પ્રકૃતિમાં અવતરણ કરીને તેનું રૂપાંતર કરી નાંખે છે.

પણ તે કાર્ય ટૂંકા સમયમાં થઈ જતું નથી. એ આખું આરોહણનું, અવરોહણનું અને રૂપાંતરનું કાર્ય લાંબી તપસ્યાભર્યું હોય છે. એને સલામતપણે વિરલાજ પાર પાડી શકે છે. કેમકે માર્ગમાં જતાં કેટલાએ અંતરાયો, મુશ્કેલીઓ અને વિરોધી શક્તિઓના હમલાઓ તેને નડે છે અને એ સઘળામાંથી સલામત પસાર થવું ઘણું મુશ્કેલીભર્યું છે. અંતઃકરણની પવિત્રતા, પ્રભુપ્રાપ્તિ સિવાય બીજા કોઈ પણ હેતુની ગેરહાજરી, ભગવાનને અહંકાર રહિત, દંભ કે વેપારી વૃત્તિભરી માગણી સિવાયનું શુદ્ધ આત્મસમર્પણ કરવાની શક્તિ સાધકે પોતામાં કેળવવી પડે છે. એ આખી ક્રિયા કષ્ટ-સાધ્ય છે.

ઉપરાંત, પ્રકૃતિનું આવું સમૂળું રૂપાંતર કરવાની ધારણા રાખનાર સાધકમાં ધીરજના અખૂટ ભંડારની કેટલી બધી જરૂર છે તે વાંચકે પોતે વિચારી લેવું જોઈએ. બેદરકારી કે અધૂરૂં કામ જેમતેમ કરવાની વૃત્તિ થતાં કાર્યની સંગીનતા ઓછી થાય છે. જલદી જલદી કામ કરી નાંખવાની અધીરાઈને પરિણામે કાર્યમાં વેગ આવે તો

સાથે સાથે ચોકસાઈની ખામીઓ આવેજ. અલબત્ત ઉપર સાધકે પોતાના અન્તરમાં તીવ્ર અભીપ્સા સતત જાગ્રત રાખવી એમ કહેવામાં આવ્યું છે પરંતુ એનો અર્થ સાધકે પોતાનામાં ઉતાવળ કે અધીરાઈને આપવા દેવાં જોઈએ, એવો મુદ્દલે થતો નથી. તેમ જડતામાં અને નિષ્ક્રિયતામાં ડુબ્યા રહેવું, એ પણ બરાબર નથી. નહિ રાજસિક આતુરતા કે નહિ તામસિક જડતા અને નિરુત્સાહ; છતાં સતત જાગ્રત શાંત અભીપ્સા તથા અનાસક્ત વિવેકશક્તિની ક્રિયા સાધકે પોતાનામાં રાખવી જોઈએ.

વળી અનેક મુશ્કેલીઓ અને જુદા જુદા સંયોગો વચ્ચે સાધકે સંપૂર્ણ શાંતિ અને સમતા કેળવવાનાં છે. પોતાને અસાધારણ અનુભવો થાય;—ઉચ્ચ અને ભવ્ય સાક્ષાત્કાર હોય કે પછી નિમ્ન પ્રકૃતિનાં ઊંડાણના ગર્તોમાં પતન થવાનો સંભવ ઉપસ્થિત થાય, તો પણ સાધકે તો પોતાની સમતા અખંડ જાળવતાં શીખવું જોઈએ, આવી શાંતિ અને સમતા સ્થાપન કરવાનું મુખ્ય કારણ એ છે કે સાધકની અવિદ્યામય પ્રકૃતિની ક્રિયાઓનું રૂપાંતર કરવાના પ્રયત્નમાં (૧) જૂની વૃત્તિઓ ફરી ફરી આવ્યા કરવાનો, (૨) નવી ઉન્નત પ્રકૃતિની સ્થાપનાનો વિરોધ કરવાનો, (૩) તથા બહાર કાઢી નાખવામાં આવે તો પણ ફરીને પુનરાવર્તન સ્થાપન કરવાનો પ્રયત્ન કરે છેજ: આખી ક્રિયા સીધે સીધી સલામત યાત્રા નહિ પરંતુ સતત લડાઈ કરતા લશ્કરની કૂચના જેવી હોય છે. વળી જીવનના બાહ્યાચારમાં કોઈ પ્રકારની સામાન્ય બુદ્ધિની ખામી ન જણાય એવી તટસ્થ સમતા જરૂરની છે. પોતાની પ્રકૃતિની સર્વે ક્રિયાઓ પ્રત્યે એક પ્રકારની અપૌરૂષેય તટસ્થતા સ્થાપન કરવી જરૂરની છે; જેથી કરીને પોતાનાં સર્વે આંતર તથા બાહ્ય કર્મો પ્રત્યે સાધક તટસ્થ અને અનાસક્ત રહી શકે.

વળી ઘણી વાર એમ પણ બને કે સાધક પોતાના આધ્યાત્મિક વિકાસમાં પોતાના જૂના વિચારોને વળગી રહે છે, યાતો અંતિમ મનસાતીત સત્યને વિષે પણ પોતે માનસિક વિચારો અને અભિપ્રાયો બાંધી બેસે છે. પરિણામે મનસાતીત સત્યની પ્રાપ્તિના પ્રયત્નમાં અડચણો નડે છે, કારણકે કોઈ પણ પ્રકારનું માનસિક બંધારણ એ પ્રકારના સત્યનું અવતરણ થતું અટકાવે છે. અને કાંઈ નહિ તો છેવટ તેને મર્યાદિત તો કરે છેજ. વળી સાધના કરતાં પોતાને જે કાંઈ અનુભૂતિઓ થાય તેમાંની કોઈને માટે સાધકે પોતાની અન્દર અતિ પક્ષપાત રાખવો જોઈએ નહિ કેમકે તેમ કરવાથી બીજી વધારે ઊર્ધ્વ અનુભૂતિ પ્રાપ્ત કરવી તેને માટે અસંભવિત બની જાય છે.

સાધકના માનસમાં ઉલટી એક પ્રકારની વિવેક શક્તિની જ્યોતિ સતત હાજર રહે, તો ઘણું ઇચ્છવા લાયક છે, કારણકે વિવેક શક્તિ વિના ઘણી મોટી ભૂલો સાધકે કરી બેસવાનો સંભવ છે. અનેક સ્ખલનોમાંથી, મુશ્કેલીઓમાંથી અને વિરોધી શક્તિઓના હુમલામાંથી બચાવનારી શક્તિ વિશુદ્ધ અભીપ્સાની સતત જાગ્રત જ્યોતિ છે. ઊર્ધ્વ શક્તિને પોતાના ઉપયોગમાં લેવાને વિચાર છોડીને પોતે તેના થઈ રહેવા, તે ઊર્ધ્વ સત્યને સંપૂર્ણ આત્મસમર્પણ કરવા,—સાધકે તૈયાર રહેવું જોઈએ. કોઈ પ્રકારની શક્તિ પ્રાપ્ત થાય તો તેને ભગવાનની બક્ષિસ તરીકે ગણવી,— પોતાની અંગત માલિકીની વસ્તુ તરીકે નહિ.

ટુંકામાં સાધકે પોતે તો બીજી સર્વે કામનાઓ નો ત્યાગ કરી દઈને ઊર્ધ્વ ભૂમિકામાં રહેલી ભગવાનની મહાશક્તિની, વિશુદ્ધિ, તેની શક્તિ, તેની જ્ઞાનજ્યોતિ, તેની વિશાળતા અને શાંતિ, પોતાની અંદર આવે,—પોતાની પ્રકૃતિમાં સ્થાપન થાય—એવી અભીપ્સા સતત સેવવી જોઈએ. પોતાની નિમ્નમુખ પ્રકૃતિનું ઊર્ધ્વ પ્રકૃતિની ક્રિયામાં રૂપાંતર થવા માટે પોતે અંતરમાં સતત માગણી કરવી જોઈએ.

આમ થતાં ક્રમે ક્રમે વ્યક્તિત્વની મર્યાદા ધીમે ધીમે દૂર થતી અનુભવાશે અને સાધકની ચેતના ક્રમે ક્રમે વિરાટ્ સાથે ઐકતા પામતી જશે. જગતના મધ્યબિંદુમાં "અહં" ને રાખીને વિચાર કરવાની જૂની ટેવ સાધકની ચેતનામાંથી દૂર થઈ જશે અને એમ થાય તોજ યથાર્થ જ્ઞાન તેને પ્રાપ્ત થઈ શકે એ પણ સ્પષ્ટ છે.

જ્યારે એવી અવસ્થા સાધકનું ચૈતન્ય પ્રાપ્ત કરે છે ત્યારે ઊર્ધ્વ ભૂમિકામાં રહેલી દિવ્ય મહાશક્તિ પ્રત્યે—શુદ્ધ વિજ્ઞાનમય શક્તિ પ્રત્યે—તે પોતાના આધારને ખુલ્લો કરી શકે છે અને એ મહાશક્તિજ માનવના આધારનું છેવટનું અને સાચું રૂપાંતર કરી શકે છે. એમાં પણ એક બે સાવચેતીઓ રાખવાની જરૂર છે. કેટલીક વાર તો મહાશક્તિ સિવાયની કોઈ સામાન્ય શક્તિજ સાધકમાં પ્રવેશ કરવા પ્રયત્ન કરે છે અને પોતેજ મહાશક્તિ છે, એવું તેને સમજાવવા મથે છે. વળી એમ પણ બને છે કે સાધકની પોતાની "અહંતાજ" તેને ભૂલાવામાં નાંખે અને પોતાના નિર્ણયો, વિચારો, અનુભવો વગેરે મહાશક્તિનાજ છે એવું મનાવવા પ્રયત્ન કરે છે. આ બન્ને વખતે સાધકે જાગ્રત રહીને અસત્યને પારખી શકે એવી તટસ્થ વિવેકશક્તિનો ઉપયોગ કરવો જરૂરનો છે.

સાધના કરીને તેનાં ફળ તરીકે કોઈ પણ પ્રકારની સિદ્ધિ માગવી, એ પણ એક પ્રકારની કામના છે. માગણીજ કરવી હોય તો ભગવાન પાસે વિજ્ઞાનમય પરમ દિવ્ય સત્યને માટે માગણી કરવી અને તેનો વિજય, તેનો સાક્ષાત્કાર, આ પૃથ્વી ઉપર અને આપણી અંદર સ્થાપન થાય એજ વરદાન યાચવું. બાકીનું બધું એ દિવ્ય મહાશક્તિના હાથમાં સોંપવું, એજ સર્વે મુશ્કેલીઓમાંથી સલામત ઉતરવાનો સરળ ઉપાય છે. . .

કૃષ્ણ જન્મ

કૃષ્ણ-સાધનાનું જીવન અથવા રસમયજીવન

(લોકસંગ્રહી સ્વામી વિદ્યાનંદજી. અનુવાદકઃ ત્ર્યંબક.)

કૃષ્ણ જન્મ પ્રત્યેક જન્માષ્ટમીએ થાય છે. આપણે ઉત્સવ ઉજવીએ છીએ, પરંતુ એકવાર કૃષ્ણનો જન્મ થયો હતો અને વસુદેવ દેવકીનાં બધાં કષ્ટ દૂર થઈ ગયાં હતાં, આખો સંસાર સુખી થઈ ગયો હતો, પરંતુ આજે તે પ્રમાણે કેમ થતું નથી ? આપણે સુખી કેમ થતા નથી ? આનો ઉત્તર એકજ છે કે આપણે કૃષ્ણ જન્મનું નાટક કરીએ છીએ, તેનો અર્થ સમજતા નથી અને કૃષ્ણ આપણે ઘેર જન્મ પણ લેતા નથી. ભાઈઓ, કૃષ્ણની જે સાધના કરે છે તેને ઘેર, તેના કુટુંબમાં જન્મ લે છે. જે કુટુંબ વસુદેવ દેવકીની પેઠે સાધનામય જીવન ગાળે છે; તે સાધનામય જીવન શું છે ? તેનોજ આપણે આજે વિચાર કરીશું. આ સાધનાના જીવનનું વર્ણન ગીતામાં છે, ભાગવતમાં છે, મોટા મોટા સદ્ગ્રંથોમાં છે.

આ સાધના બે પ્રકારની હોય છે—એક આંતરિક અને બીજી બાહ્ય. એક સાધક ભગવાન કૃષ્ણની સાધના પોતાના હૃદયની અંદર કરેછે, અને બીજો આખા સંસારમાં; તે કૃષ્ણને જુવે છે અને રાધા-કૃષ્ણમય જગતની ઉપાસના કરે છે. છે બન્નેય સાધક અને બન્નેને સુખ મળેછે. એક હૃદયકમળ નો ઉપાસક છે અને બીજો વિશ્વકમળનો. આપણું જે હૃદય છે તેને યોગી લોકો કમળ કહેછે અને તેની અંદર ભગવાન કૃષ્ણનું ધ્યાન ધરેછે. આપણમાંથી પ્રત્યેક પોતાના હૃદય-કમળની અંદર તે જ્યોતિરૂપ ભગવાનનું ધ્યાન ધરી શકે છે. જેને આ ધ્યાનની વિધિ શીખવી હોય તે ભાગવતના એકાદશ સ્કંધનો ચૌદમો અધ્યાય વાંચે અથવા ગીતાનો ધ્યાનયોગ વાંચે.

બીજા પ્રકારની સાધનાનું નામ વિશ્વરૂપદર્શન છે. જ્યારે મનુષ્ય સંસારના અણુઅણુમાં ભગવાનનું દર્શન કરવા લગે છે, ત્યારે તે સંસારને જ ભગવાનનું સ્વરૂપ માનવા લગેછે. ત્યારે તેને હૃદય-કમળમાં પ્રવેશ કરવાની જરૂર પડતી નથી, તેને તો બહાર બધી ચીજોમાં ભગવાનની વિભૂતિ નજરે પડે છે, ભગવાનની જ્યોતિ દેખાય છે. તે એકલો બેસે છે તો, બધાની સાથે રહે છે તો, બધી જગાએ બધી દશાએમાં ભગવાનનું દર્શન કરતા રહે છે. તેને બધી વાતોમાં રસ આવે છે, બધાં કામોમાં સુખ મળે છે. પછી તેને નકામો સંદેહ રહેતો નથી અને તે કહ્યા કરેછે કે —

'करिष्ये वचनं तव'

તે સંસારમાં નિમિત્ત બનીને રહે છે તેની પાસે ભગવાન જે કંઈ કરાવે છે તે સર્વ કંઈ તે કરે છે. કેમ કે તે સમજે છે કે અસંસાર ભગવાનની લીલા ભૂમિ છે, તેમનું લીલાપદ્મ છે. (સંસારને એક કમળ, તો યોગી અને પૌરાણિક બધા માને છે.) આ બીજી પ્રકારની સાધનાનો ઉપદેશ રામાયણ અને ગીતામાં કરવામાં આવ્યો છે. અમે અત્રે બે પ્રસિદ્ધ ઉદાહરણ આપીશું. એક અર્જુનનું અને બીજું હનુમાનજીનું. અર્જુનને ભગવાન કૃષ્ણનું વિશ્વરૂપ જોવાનું મળ્યું હતું અને વિશ્વરૂપ જોયા પછીજ તેની બુદ્ધિ ઠેકાણે આવી હતી **(स्थितोऽस्मि)** વિશ્વરૂપ જોઇને તે સમજી ગયો હતો કે સર્વકર્તા-કારવતા ઈશ્વર છે. જીવ તો નિમિત્તમાત્ર બને છે, તેથી પ્રત્યેક મનુષ્યે જે કામ ભગવાન બતાવે તે કરવું જોઈએ. પોતાના સ્વધર્મનું પાલન કરવું જોઈએ

એમજ સમજી ને તેણે મહાભારતનું યુદ્ધ પણ કર્યું. અર્જુનની રોમાંચકારી વિશ્વરૂપ દર્શનની કથા જેને વાંચવી હોય તે ગીતાનો અગીઆરમો અધ્યાય વાંચે, બીજું ઉદાહરણ પ્રસિદ્ધ રામભક્ત હનુમાનનું છે. તેમને પણ સંસાર સિયારામ-મય જણાતો હતો. ભક્ત અને વીર હનુમાનની આ વાત તો પ્રસિદ્ધજ છે કે તેમણે પોતાના શરીરના રોમેરોમમાં બધાને રામનું દર્શન કરાવ્યું હતું. (જુઓ તુલસીકૃત રામાયણ ઉત્તરકાણ્ડ રામસભાનું વર્ણન) હનુમાનના ભક્ત તુલસીદાસજી પણ તેમનીજ પેઠે કહેતા હતા કે—

સિયારામમય સબ જગ જાની, કરૌં પ્રણામ સપ્રેમ સુબાણી.

હવે વિચાર કરીને જોઈએ તો પહેલો માર્ગ આત્મ-સાધનાનો માર્ગ છે, અને બીજો વિશ્વસાધનાનો; પહેલાથી બીજો કઠણ, પરંતુ શ્રેષ્ઠ છે. આ કથન જોકે બરાબર નથી; તોપણ એટલું તો કહી શકાય કે આત્મ-દર્શન પછી જ્યારે વિશ્વદર્શન અથવા બ્રહ્મદર્શન થાય છે ત્યારે સાચું જ્ઞાન થાય છે, ધર્મનો માર્ગ મળેછે, સાધના સિદ્ધ થાય છે. પહેલાં સાધક પોતાની અંદર (આત્મામાં) ભગવાનનું દર્શન કરે છે, પરંતુ પછી વધતાં વધતાં તે પોતાની ચારે બાજુ બધી ચીજોમાં, વિશ્વભરમાં—ભગવાનનું રૂપ જોવા લાગે છે. એજ વિશ્વદર્શનની અવસ્થા સાધકની સિદ્ધ અવસ્થા માનવામાં આવે છે, તેથી પહેલી સાધના અર્થાત્ આત્મ-સાધના આ વિશ્વ-સાધનાનો એકમાત્ર ઉપાય છે. જે લોકોએ આ વિશ્વ-રૂપનાં દર્શન કરી લીધાં છે તેમને ખાલી આત્મસાધનાથી સંતોષ થતો નથી. તેઓ કાં તો લોકસંગ્રહ (લોક કલ્યાણનાં કાર્યો ધર્મ જ્ઞાન પ્રચાર વગેરે) કરે છે અથવા જીવન મુક્તની પેઠે વિશ્વમાં વિચર્યા કરે છે.

એ બન્ને સાધનોનું પૂરૂં વર્ણન જેમને વાંચવું હોય તેઓ ભગવદ્‌ગીતા વાંચે અને વાંચીને પહેલાં આત્મ-દર્શન અને પછી વિશ્વદર્શન કરે. ત્યારે તેમને કૃષ્ણ-જન્મનું રહસ્ય સમજાશે. જે દિવસે સાધના કરતાં કરતાં મનુષ્યને ભગવાનનાં દર્શન થઈ જાય છે તેજ દિવસે તેને માટે કૃષ્ણનો જન્મ થાય છે, અને તેજ દિવસે તેણે કૃષ્ણજન્મનો ઉત્સવ ઉજવવો જોઈએ.

આ કૃષ્ણજન્મની આધ્યાત્મિક વ્યાખ્યા થઈ, આ તરફ અમારા અધ્યાત્મ-પ્રેમી ગીતાધર્મના શ્રોતાઓએ વિશેષ ધ્યાન આપવું જોઈએ.

કૃષ્ણ જન્મનો આધિદૈવિક અર્થ અમારા ભક્ત વાચકો જાણેજ છે, તેઓ હમેશાં દેવ કૃષ્ણની જન્માષ્ટમી ઉજવે છે અને આધિભૌતિક અર્થ આપણા ઇતિહાસ અને કાવ્યપ્રેમીઓ જાણેછે. શ્રીકૃષ્ણ મહાપુરૂષ હતા. તેમના મહાન ચરિત્રનું આપણે અધ્યયન કરવું જોઈએ અને તેનાથી લાભ મેળવવો જોઈએ.

અંતમાં અમે એટલુંજ કહીશું કે જો પોતાનું જીવન સફલ બનાવવું હોય. તો કૃષ્ણજન્મનો આધ્યાત્મિક અર્થ સમજવો જોઈએ અને સાધના દ્વારા જીવનને ભરપૂર અને રસમય બનાવવું જોઈએ. આ સાધનાની શરૂ-આત શ્રવણ કરવું જોઈએ. પછી શ્રવણ કરીને તેના ઉપર મનન કરવું જોઈએ અને પછી વારે વારે તેજ સાંભળેલી વાતનું સ્મરણ કરી કરીને એટલું બધું મનન કરવું જોઈએ કે તે ભગવાનની કથા આપણી આંખો આગળ દેખાયાજ કરે. આ પ્રકારે વારંવાર યાદ કરવા અને વિચારવાનું નામ નિદિધ્યાસન છે. આ પ્રમાણે કરતા રહેવાથી પછી ભગવાનનું ધ્યાન સ્વાભાવિક બની જાય છે અને એજ ધ્યાન ધારણ દ્વારા સમાધિનો અનુભવ થાય છે. સારૂં પૂછવામાં આવે તો ધ્યાન વધી જવાથીજ સમાધિ લાગી જાય છે, તેથી આપણે સૌએ ભગવાનના ધ્યાનનો અભ્યાસ કરવો જોઈએ. શ્રવણથી ધ્યાન સુધીનો ક્રમ હું બતાવી ચૂક્યો છું.

આજ કૃષ્ણ-સાધનાનું જીવન અને આજ ગીતાધર્મનું જીવન છે.

ધ્યાનનાં બે રૂપ

(પદ્મ)

ભગવાનનું ધ્યાન હમેશાં અરવિંદ અથવા કમળમાં કરવામાં આવે છે. એજ બાહ્ય પદ્મ પાછળથી હૃદય-પદ્મ બની જાય છે. ભગવાન હૃદયમાંજ રહે છે.

हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।

(ગી० ૧૮-૬૧)

આ ધ્યાન-મૂર્તિ અનેક પ્રકારની હોઈ શકે છે. પરંતુ પ્રસિદ્ધ (ધ્યાન લાયક) રૂપ બેજ માનવામાં આવે છે. (૧) ચતુર્ભુજ (૨) દ્વિભુજ મનુષ્ય રૂપ. અર્જુન, ધ્રુવ, કર્દમ વગેરે પહેલાં ચતુર્ભુજ રૂપના ઉપાસક હતા. ઉદ્ધવ જેવા સાધકોને પણ એજ ધ્યાનનો ઉપદેશ આપવામાં આવે છે. પરંતુ માધુર્ય મંડળમાં દ્વિભુજ (બે હાથવાળા) રૂપની ઉપાસના થાય છે, ગોપીઓના નટવર બે હાથવાળાજ હતા. મીરાંના ગિરધર ગોપાલ બે હાથવાળાજ હતા. પદ્મપુરાણના નિર્વાણખંડમાં વર્ણન છે કે ભગવાન ને એક વાર બ્રહ્માને પોતાના એવા સ્વરૂપનાં દર્શન કરાવ્યાં હતાં કે જે વેદગોપ્ય (વેદમાં પણ નહિ વર્ણવાયેલું) અને અત્યંત મધુર હતું. તે આજ બે હાથ વાળું ગોપ સ્વરૂપ હતું. નવકિશોર નટવર કદંબની નીચે બંસી લઇને બેઠા છે. શામળો રંગ, પીળો દુપટ્ટો ખેસ અને ગળામાં વનમાળા. મુખ ઉપર મંદ હાસ્ય. ચારે તરફ ગોપ બાળકો-અને બાલિકાઓ ઉભીછે. એવા વૃંદાવનવિહારી માખણચોર ગોપાળનાં દર્શન બ્રહ્માએ કર્યાં ને તેઓ આનંદિત થઈ ઉઠયા. આજ ધ્યાન અમે અમારા કૃષ્ણાંકના પહેલા પૃષ્ઠ ઉપર રાખ્યું છે અને લખ્યું છે—લક્ષ્ય (અરવિંદના હૃદયમાં કૃષ્ણ)

અમારૂં લક્ષ્ય એમ છે કે અમારા હૃદયકમળમાં હમેશાં કૃષ્ણ વિરાજતા રહે (અને અમે શું કરીએ—'मामनुस्मर युध्य च')

गी० ८।७

એ બન્ને ધ્યાન ને માટે અમે બે સુંદર શ્લોક અત્રે રજુ કરીએ છીએ—

ગોપાલ કૃષ્ણ

(૧)

વન્દે મુકુન્દમરવિંદદલાયતાક્ષં
કુન્દેન્દુશંખદશનં શિશુગોપવેશમ્ ।
ઇન્દ્રાદિદેવગણવન્દિતપાદપીઠં
વૃન્દાવનાલયમહં વસુદેવસૂનુમ્ ॥ ૧ ॥

ભગવાન કૃષ્ણ

(૨)

સશઙ્ખચક્રં સકિરીટકુણ્ડલમ્
સપીતવસ્ત્રં સરસીરૂહેક્ષણમ્ ।
સહારવક્ષસ્થલકૌસ્તુભશ્રિયમ્
નમામિ વિષ્ણું શિરસા ચતુર્ભુજમ્ ॥૨॥

અનુવાદક—ત્ર્યંબકલાલ મા० શુકલ

કૃષ્ણ

(વ્યાસ-વચનામૃત)

ગયે વખતે ગુરૂપૂર્ણિમાને પ્રસંગે અમે કહ્યું છે કે સંપત્તિ બે પ્રકારની હોય છે—દૈવી અને આસુરી. આજે અમે એટલુંજ કહીશું કે એ બન્ને પ્રકારની સંપત્તિઓની ઓળખાણ એજ છે કે જે બાજુ કૃષ્ણ રહે છે તે દૈવી સંપત્તિ છે અને જ્યાં કૃષ્ણ નથી રહેતા તે આસુરી સંપત્તિ છે. કૃષ્ણવડે સંપત્તિની એળખાણ થાય છે. આમ તો સ્વાભાવિકપણેજ થોડાક માણસો દેવતા હોય છે અને થોડા રાક્ષસ (અસુર). પરંતુ જેને કૃષ્ણ-રૂપી સંપત્તિ મળી જાય છે, તેજ સાચો મનુષ્ય થાય છે. તેનાજ તરફ બધા દેવતાઓ રહે છે, તેનાજ તરફ ધર્મ રહે છે. કારણ કે મનુષ્ય જન્મથી ગમે તો દૈવી સંપત્તિવાળો હોય કે આસુરી સંપત્તિવાળો, પરંતુ તે કૃષ્ણ ભક્ત થતાં, કૃષ્ણની સંપત્તિ પ્રાપ્ત કરી લીધા પછી આદર્શ મનુષ્ય બની જાય છે. તેને સર્વ કંઈ મળી જાય છે.

યત્ર યોગેશ્વરઃ કૃષ્ણો યત્ર પાર્થો ધનુર્ધરઃ ।
તત્ર શ્રીર્વિજયો ભૂતિર્ધ્રુવાનીતિર્મતિર્મમ ॥

ગી૦ ૧૮।૭૮

જ્યાં કૃષ્ણ રહેછે ત્યાંજ શ્રી, વિજય, ભૂતિ (કલ્યાણ) અને નીતિ સર્વ પ્રકારે રહે છે.

એજ વ્યાસ અને વાસુદેવ બન્નેનો મત છે. એજ મહાભારતકાર કૃષ્ણ અને ગીતાકાર કૃષ્ણ બન્નેનો મત છે. "જ્યાં કૃષ્ણ છે ત્યાંજ સર્વ કંઈ છે" તેથ જે કંઈ પણ ઇચ્છતા હો તો કૃષ્ણને પોતાની પાસે બોલાવો. તમે અર્જુનની પેઠે કૃષ્ણના સખા બનો, કૃષ્ણ તમારી પાસે રહેશે અને પછી તમને કોઈપણ ચીજની વાસના નહિ રહે. કોઈ પણ ચીજની ઇચ્છા રહેશે નહિ. જ્યારે તમારી પાસે સર્વ કંઇ ભરપૂર રહેશે, ત્યારે તમને અવશ્યજ સંતોષ થશે; તમે નિષ્કામ થઈ જશો. તેથી ભાઈઓ ! નિષ્કામ, બેપરવા, યોગી થવાનો એકજ ઉપાયછે. કૃષ્ણને પોતાની પાસે રાખો, કૃષ્ણને પોતાના હૃદય કમળમાં બંધ કરી રાખો.—

આજથી ગીતાના છેલ્લા શ્લોકનું હમેશાં ભજન કર્યા કરો અને તેના અર્થ ઉપર નિત્ય મનન કર્યા કરો. આ ભજન અને મનનથી તમને પોતાના લક્ષ્ય કૃષ્ણને પામવામાં પૂરી મદદ મળશે.

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते !
यत्र योगेश्वरः कृष्णः........................
तत्र श्रीर्विजयो भूतिः..........................

અનુવાદક—ત્ર૦ મા૦ શુકલ

ગુજરાતી ભાષા કે લિયે કુછ જ્ઞાતવ્ય—

है अथवा हैं — છે

था थी — હતો, હતી, હતું (નપું)

होगा या होगी — થશે

हुआ, हुई — થયો, થઈ, થયું (નપું)

हुआ था, हुई थी — થયો હતો, થઈ હતી, થયું હતું (નપું)

हुआ होगा, हुई होगी, થયો હશે, થઈ હશે, થયું હશે (નપું)

‘ વિભક્તિ કા ઉપયોગ ’

हिन्दी —	ગુજરાતી
प्र० राम	રામ
द्वि० रामको	રામને
तृ० रामने, राम से	રામે, રામ વડે
च० रामके लिये	રામને માટે
प० रामसे	રામથી
ष० रामका-की	રામને, રામજી, રામનું
स० राममें	રામમાં

हिन्दी के समान गुजराती में भी बहुवचन या द्विवचनके लिए कोई प्रत्यय नहीं होता, गुजराती में नपुंसक लिङ्गका प्रयोग होता है और गुजराती के व्याकरण में नपुंसक लिङ्ग के अर्थ में ‘नान्यतर’ शब्द का प्रयोग आता है। हिन्दी और गुजराती के सम्बोधन भी प्रायः समान हैं।

एक महत्त्वपूर्ण कार्य

इसी वर्ष नागपुर में सभी भारतीय भाषाओं से राष्ट्रभाषा हिंदी का परिचय बढ़ाने के संबन्ध में जो परिषद् करने का आयोजन हुआ था उसकी महत्ता को सब लोग अच्छी तरह जानते हैं। हमें यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि इस कार्य के अनुष्ठान में गीताधर्म भी काफी प्रयत्न कर रहा है। हमारे पत्र में जो लेख हिंदी में 'व्यासवचनामृत' शीर्षक से अथवा लोकसंग्रही स्वामी विद्यानन्दजी के नाम से छपते हैं, उनका गुजराती रूप आगामी अङ्क में अन्य गुजराती लेखों के साथ दे दिया जाता है। इससे गुजरातीवाले हिंदी को और हिंदीवाले गुजराती को आसानी से सीख सकेंगे। इसलिए ऐसे पत्र का जितना ही प्रचार किया जावे, लोककल्याण की दृष्टि से उतना ही भला होगा। जो धार्मिक होंगे उन्हें ज्ञानोपदेश मिलेगा और जो केवल भाषा सीखना चाहेंगे उन्हें दूसरी भाषा का ज्ञान।

आशा है, जनता हमारे इस महत्त्वपूर्ण कार्य पर ध्यान देकर गीताधर्म को अपनावेगी।

— मैनेजर, 'गीताधर्म'

गीताधर्म का अनूठा और अद्वितीय कार्यक्रम

गीताधर्म का उद्देश्य है **स्वधर्म** का ज्ञान कराना—अपनी संस्कृति और अपने साहित्य का ज्ञान कराना। इसी विचार से गीताधर्म के प्रत्येक अङ्क में एक विशेष विषय पर लेख प्रकाशित किये जाते हैं। गत नौ महीनों में इसके दस अङ्क निकल चुके हैं। १–**प्रवेशाङ्क** (गीताङ्क), २–**कुम्भाङ्क**, ३–**वसन्ताङ्क**, ४–**यज्ञाङ्क**, ५–**रामाङ्क**, ६–**शंकराङ्क**, ७–**गङ्गाङ्क**, ८–**व्यासाङ्क**, ९–**कृष्णाङ्क**, १०–**पुरुषोत्तमाङ्क**। ११–**विजयाङ्क** आपके हाथ में है।

लोगों को अङ्क इतने अधिक अच्छे लगे हैं कि **ग्राहकसंख्या** इस थोड़े समय में ही **छ हजार** हो गई है। पहला और दूसरा अङ्क दूसरी बार छपाना पड़ा है। आप भी शीघ्र ४) भेजकर ग्राहक बन जाइए। पीछे अङ्कों के समाप्त हो जाने पर फाइल पूरी न हो सकेगी।

देखिए आगे और भी सुन्दर और शिक्षाप्रद अङ्क निकलेंगे—

१—दीपाङ्क २—दर्शनाङ्क ३—विश्वधर्माङ्क

नये वर्ष का **प्रवेशाङ्क** बड़ा विशाल अङ्क होगा—लगभग छ सौ पृष्ठ का एक संग्रहणीय ग्रन्थ होगा। ग्राहकों को तो मुफ्त ही मिलेगा।

—मैनेजर,

गीताधर्म, काशी।

सी० पी०, मध्यभारत, नीमाड़ और राजस्थान
की
विविध विषय विभूषित सचित्र साहित्यिक मासिक पत्रिका

वार्षिक मूल्य 3।।)

वाणी

एक प्रति ।=)

(प्रधान संपादक--विश्वनाथ सखाराम खोड़े, बी० ए०, एल-एल० बी०)

वाणी के विशेषाङ्क गम्भीर ऐतिहासिक और पुरातत्त्व संबन्धी गवेषणाओं से पूर्ण होते हैं।

आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी--"वाणी के नीमाड़ अङ्क" के दर्शन हुए। उसमें वर्णित ऐतिहासिक तथ्य तो बड़े ही महत्त्व के हैं।

महाकवि मैथिलीशरणजी गुप्त--"मैं कह सकता हूँ कि आपका उद्योग सर्वथा श्लाघनीय है, लेखों के चुनाव में सुरुचि और उपयोगिता का ध्यान रखा गया है"।

'सरस्वती'—सचमुच इसका [वाणी का] नीमाड़ अङ्क बहुत ही उपयोगी निकला है। इसमें सभी लेख सुपाठ्य और ज्ञानवर्धक हैं।

नीमाड़ अङ्क के दो भाग प्रकाशित कर चुकने पर अब हम "नीमाड़ अङ्क तीसरा भाग" प्रकाशित करने जा रहे हैं।

जो कि—नई सज धज, कई सुन्दर चित्रों और महत्त्वपूर्ण विषयों से संग्रहणीय होगा। इसे निःशुल्क प्राप्त करने के लिए आज ही अविलम्ब 'वाणी' के ग्राहक बन जाइए।

।=)।। के टिकट भेजकर नमूना मँगाइए।

व्यवस्थापक 'वाणी' खरगोन, होलकर राज्य

विद्यानन्द विनोद

स्वामीजी ने हरिद्वार में गङ्गा के किनारे कुछ विनोद की बातें लिखीं। वे बड़ी रसभरी हैं--स्वामीजी के हृदय के उद्गार हैं। स्वामीजी का हृदयरस ही समझिए। 'विनोद' को पढ़कर अपना जी हलका कीजिए--आत्मविनोद कीजिए। 'काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्'।

❁ ❁ ❁ ❁

गीताधर्म के ग्राहकों को यह साहित्यिक, सचित्र, रसभरा ग्रन्थ मुफ्त मिलेगा। यह गुजराती और हिंदी दोनों में छप रहा है।

दूसरों के लिए मूल्य आठ आने मात्र।

—मैनेजर 'गीताधर्म' काशी

सुधा के प्रवेशाङ्क, परिशिष्टाङ्क और विशिष्टाङ्क निकल गये !

आपके पास न हों, तो मँगा लीजिए !!

शीघ्र ही फिर मैथिलीशरणाङ्क निकलेगा !!!

अब तक हिंदी संसार में किसी हिंदी मासिक पत्रिका ने, साल भर में सुन्दर, भावपूर्ण लेखों और चित्रों से सुसज्जित तीन विशेषाङ्क न निकाले होंगे। अभी हमने सुधा के तीन विशेषाङ्क निकाले हैं, और अब चौथे का प्रबन्ध कर रहे हैं। क्या आप अब भी ग्राहक बनकर और बनाकर हमें प्रोत्साहित न करेंगे?

राजसंस्करण १२) में

सुधा का राजसंस्करण भी निकलता है। इसकी छपाई मोटे, चिकने आर्ट पेपर (जो रंगीन तस्वीरों में लगता है) पर होती है। रंगीन स्याहियों में छपता है। वार्षिक मूल्य १२) है। धनी मानी, कृपालु ग्राहकगण इसके ग्राहक बनकर हमें बहुत सहायता पहुँचा सकते हैं। यह संस्करण उनकी लाइब्रेरी की शोभा बढ़ावेगा।

साधारण संस्करण ६) में

यह संस्करण ऐंटिक पेपर पर छापा जाता है। यह सर्वसाधारण ग्राहकों के लिए बहुत ही सुन्दर है। वार्षिक मूल्य ६) है।

सस्ता संस्करण ४) में

इधर हमारे पास ऐसे पत्र आ रहे थे कि सुधा के मूल्य में कुछ कमी कर दीजिए। सुधा का खर्च देखते हुए हम ऐसा करने से विवश हैं, तथापि गरीब छात्रों, स्त्रियों तथा सार्वजनिक संस्थाओं के लिए हमने एक सस्ता संस्करण भी निकाला है, जिसका वार्षिक मूल्य केवल ४) है।

लेकिन क्या आपका भी कुछ कर्तव्य है ?

है, और वह यही कि आप अपने स्थान से कुछ सुधा के ग्राहक बना दें। भला, यह भी कोई बड़ी बात है? यदि आप जरा सी कृपा करें, तो अनायास ही सुधा के काफी ग्राहक बन जायँ। आइए, हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि के पुनीत कार्य में हमारा हाथ बँटाइए। सुधा के शुभचिन्तकों तथा हिंदी-प्रेमियों से भी हमारा नम्र निवेदन है कि वे खुद तो सुधा के ग्राहक बनें ही, साथ ही अपनी जान-पहचानवाले सेठ, साहूकार, रईस एवं ऐसे हिंदी-प्रेमीमात्र से केवल सुधा का ग्राहक बनने का अनुरोध ही न करें, वरन् उन्हें शीघ्र ग्राहक बनाएँ।

—मैनेजर सुधा, लखनऊ

हिंदी में—

अपने विषय की पहली पुस्तक

स्वप्नविज्ञान

सपने तो आप हमेशा देखा करते हैं; परंतु क्या उनके तत्त्वों पर भी आपने कभी विचार किया है ?

यदि नहीं

तो 'स्वप्नविज्ञान' की एक प्रति आज ही मँगाइए और देखिए कि

स्वप्न क्या हैं ? स्वप्न कब दिखाई देते हैं ? अद्भुत और भयानक स्वप्न कब और क्यों दिखाई पड़ते हैं ? स्वप्न कितनी देर दिखते हैं ? स्वप्न से स्वास्थ्य-परीक्षा कैसे होती है ? क्या स्वप्न देखे और दिखलाए जा सकते हैं ? स्वप्न लाकर गणित के सवालों का हल कैसे किया जाता है, और चोरी कैसे पकड़ी जाती है ? स्वप्नों का फल क्या होता है ? देशी और विदेशी विद्वानों ने स्वप्नफल पर अपने क्या विचार प्रकट किये हैं ? अनोखी पुस्तक, सुन्दर कागज, बढ़िया छपाई, मूल्य सिर्फ १) रु०।

पता—हिंदीसाहित्यमण्डल, बनारस सिटी।

UTTARA PRESS.

For Book Job & Fancy Printing.

उत्तरा उत्तर भारत में उत्कृष्ट साहित्यिक पत्र, प्रवासी बंगालियों का बाँका मुखपत्र, हरएक सौर मास के अन्त में प्रकाशित होता है। एकादश वर्ष से चल रहा है। वार्षिक ३॥), प्रति संख्या ।-)

Uttara-Bengali Monthly-11th year R. 3/8

Advt. Medium in N. India

Apply to the Manager—

Uttara Press, Godhulia, Benares City.

दिवाली तक

और मिलेगा !

जो सज्जन वार्षिक चंदा दो रुपया तीन आना मनीआर्डर से भेजकर अथवा डाक-व्यय सहित दो रुपया सात आना की वी० पी० स्वीकार कर 'संजय' के स्थिर ग्राहक बनेंगे, उन्हें "भारत-रत्नाङ्क" के साथ सवा रुपया मूल्य का सचित्र "महाभारत-अङ्क" भी उपहार में मिलेगा। उपरोक्त दोनों विशेषाङ्क स्थिर साहित्य की अनुपम वस्तु हैं। यह उपहार सिर्फ दिवाली तक ही और मिलेगा। 'संजय' की साधारण प्रति नमूना-स्वरूप मुफ्त भेजी जाती है।

मैनेजर—'संजय' नयाबाज़ार, देहली।

गीताधर्म में प्रकाशित लेख आदि की सूची Indiana में प्रकाशित होती है। Indiana नमूना -) टिकट

Editar Indiana, 6 Gandhigram
Benares City.

—संचित और प्रारब्ध कर्म जानने का अपूर्व अवसर—

अपने पूर्व जन्म के कर्मों का ज्ञान हो जाने से मनुष्य सावधान होकर ऐसे कर्म करता है जिससे उसका वर्तमान जीवन सुखी बने।

यदि इच्छा हो तो जन्मपत्रिका, मासपत्रिका, वर्षपत्रिका भेजकर लाभ उठाइए। यदि कुछ भी न हो तो किसी भी समय एक पुष्प का तथा अपना नाम लिखकर पण्डितजी के पास प्रश्न भेजिए। वे उत्तर देंगे। प्रश्न करते समय शान्त चित्त से भगवान् का ध्यान करना चाहिए और वही प्रश्न करने का समय नोट करके भेजना चाहिए। पण्डितजी पत्रिकाएँ भी बनाते हैं।

पण्डितजी का पता है—

पं० श्रीधर उपाध्याय आचारी, आजमगढ़ सिटी (U.P.)

गीताधर्म कार्यालय के द्वारा भी इनसे पत्रव्यवहार हो सकता है।

महत्त्व की ग्रन्थसूची

गीताधर्म के आगामी अङ्क होंगे—

दीपाङ्क, दर्शनाङ्क, और विश्वधर्माङ्क।

प्रति अङ्क में हम एक ग्रन्थसूची देंगे। दीपावली, दर्शनशास्त्र और विश्व के सभी धर्मों के अच्छे ग्रन्थों की सूची हम देना चाहते हैं। जो पाठक तथा प्रकाशक पता भेजकर अथवा पुस्तक भेजकर इस स्वाध्याय में सहायता कर सकें, अवश्य करें (प्रकाशकों और लेखकों का तो एक प्रकार का विज्ञापन हो जावेगा)।

संपादक—
'गीताधर्म'

महाविद्या का 'मैथिली अङ्क' विजया पर

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के जीवन और साहित्य पर एक विशद विशेषाङ्क

इधर कतिपय मास से महाविद्या का साहित्यिक और धार्मिक जनता के बीच जो अपूर्व स्वागत हुआ है; इससे प्रोत्साहित होकर हम लोग विजया दशमी के शुभ अवसर पर महाविद्या का महाकवि गुप्तजी के संमानार्थ विशेषाङ्क प्रकाशित कर रहे हैं। सभी महान् शब्दशिल्पी और रससिद्ध कवीश्वर हमारी सहायता कर रहे हैं। अनेक मनोमोहक चित्र और विविध पाठ्यविषयों से विभूषित अङ्क स्थायी ग्राहकों को तो मुफ्त ही मिलेगा। अधिक प्रशंसा व्यर्थ है। हमारे यशस्वी संपादकमण्डल की नामावलि ही विशेषाङ्क की विशिष्टता का प्रमाण है—

पं० पद्मनारायण आचार्य, एम० ए०

पं० कमला प्रसाद अवस्थी 'अशोक' बी० ए०, विशारद, कविरत्न

पं० मधुसूदन प्रसाद मिश्र 'मधुर' व्याकरणाचार्य, काव्यतीर्थ

पं० वृषकेतु उपाध्याय 'शुक', बी० ए०

श्री देवीनारायण बी० ए०, एल-एल० बी०,

पं० जगन्नारायणदेव शर्मा 'कविपुष्कर' विशारद, साहित्यशास्त्री

विनीत—
व्यवस्थापक

दर्शन और पूजा

के लिए

हमारे यहाँ से चित्र मँगाइए

१. गीताधर्म—भगवान् कृष्ण की लीलाओं का चित्र, मूल्य प्रति कापी)॥ आकार (७॥×१०)
२. सरस्वती—ध्यान के लिए खास चित्र ,, ,,
३. गङ्गा ,, ,, ,,
४. योगेश्वर कृष्ण ,, ,, ,,
५. विश्वनाथ महादेव ,, ,, ,,
६. गणेशजी ,, ,, ,,
७. स्वामी विद्यानन्दजी ,, ,, ,,
८. लक्ष्मीनारायण ,, ,, ,,
९. हनुमान्‌जी ,, ,, ,,
१०. गोस्वामी तुलसीदासजी ,, ,, ,,
११. लक्ष्मणजी ,, ,, ,,
१२. रामचन्द्रजी ,, ,, ,,
१३. सीताजी ,, ,, ,,
१४. भक्तों के हृदयकमल में भगवान् कृष्ण ,, ,, ,,
१५. बद्रीश पञ्चायतन ,, एकरंगा ,, ,,
१६. जगत् के माता पिता— ,, नन्दलालबोस की कृति एकरंगा ,, ,,
१७. कारागार में कृष्णजन्म ,, ,, ,,
१८. यशोदाकृष्ण ,, ,, ,,
१९. फुलवारी—भगवान् राम के साथ सीता का जनक के बगीचे में मिलन ,, ,, ,,
२०. गीता का उपदेश देते हुए भगवान् कृष्ण ,, ,, ,,
२१. भगवान् महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास ,, ,, ,,

बड़े चित्र

१. गीताधर्म (१२×२३) ।)
२. सरस्वती (१८×२३) ।)

आप गीताधर्म के ग्राहक
बढ़ाइये प्रभु आपको बढ़ायँगे ।
—स्वामी विद्यानन्द
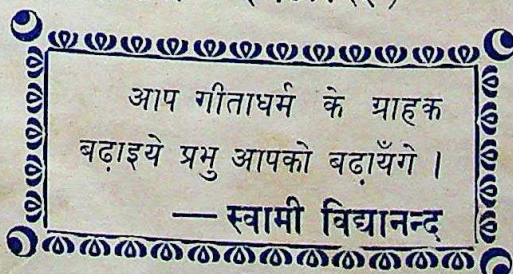
एजेंटों को भरपूर कमीशन
पत्रव्यवहार का पता

मैनेजर
गीताधर्म बुकडिपो, बनारस

गीताधर्म कहाँ मिलता है ?

कलकत्ता, बंबई, काशी, प्रयाग, अहमदाबाद, बड़ौदा, इंदौर, जबलपुर, नागपुर, गाडरवारा, नरकटियागंज, आजमगढ़, दिल्ली आदि प्रसिद्ध स्थानों में गीताधर्म के प्रेमियों ने ऐसा प्रबन्ध कर दिया है कि जो गीताधर्म लेना चाहें उन्हें मिल सकता है। पूरे पते भीतर देखिए।

ब्रजरज

(रचयिता—सुप्रसिद्ध कवि और कलाविद् श्री राय कृष्णदासजी काशी)

यदि आप ब्रजभाषा की सबसे नई रचना का रसास्वादन करना चाहते हैं, तो आज ही ब्रजरज खरीदिए। इसमें 'रत्नाकर' जी की मँजी भाषा, सत्यनारायण कविरत्न की सहृदयता, श्रीधर पाठक की कोमलकान्त पदावली और 'हरिऔध' जी की कल्पना का एक स्थान पर समावेश मिलेगा। आधुनिक ब्रजभाषाकाव्य का यह प्रतिनिधि कवितासंग्रह है। अभी अभी श्रावण में निकला है; आप भी जल्दी करिए अन्यथा द्वितीय संस्करण का रास्ता देखना पड़ेगा। मूल्य आठ आने मात्र।

Gita Dharma Registered No. A 2843.

विद्यानन्द ग्रन्थमाला के ग्रन्थ

(पढ़िए, विद्यालाभ भी होगा, आनन्द भी मिलेगा)

१. शब्दशक्ति (प्रथम और अद्वितीय ग्रन्थ) रु० १)
२. गीता (स्वाध्याय के लिए) ~)
३. विद्यानन्द भजनावली (भक्तों के लिए अपूर्व भाण्डार) ~)
४. व्यास (आलोचना और खोज से भरी सरस जीवनी) ॥)
५. विद्यानन्द विनोद (अद्भुत और अनूठी आत्म-कथा) ग्राहकों के लिए मुफ्त।
६. कुम्भ (मेले की त्रिविध व्याख्या) ।)
७. सत्यनारायण (स्वामीजी के अनुसार आध्यात्मिक व्याख्या और सुन्दर भाष्य)
८. गीताभाष्य (लोकसंग्रही) शीघ्र ही प्रकाशित होगा।
९. गीतानुवाद (सरल शब्दानुवाद)
१०. कृष्ण जन्मभूमि
११. नित्य नियम
१२. अद्भुत संवाद (स्वयं प्रकाशवाले प्रसिद्ध तपस्वी गीतानन्दजी के प्रश्नोत्तर)
१३. आत्महत्या (अथवा पराजय)
१४. गङ्गा (चित्रमय गङ्गा का वर्णन)
१५. ऋग्वेद, भागवत आदि के अनुवाद
१६. गीता और ऋग्वेद के इंडेक्स छप रहे हैं। शीघ्रता करिए, स्थायी ग्राहक बनिए।

गीताधर्म में विज्ञापन देने से बड़ा लाभ होता है; रेट भीतर देखिए।

श्री पद्मनारायण आचार्य, एम० ए० द्वारा गीताधर्म प्रेस, साक्षीविनायक, काशी से मुद्रित, संपादित और प्रकाशित।